

॥ श्रीहरिः ॥

॥ ॐ नमो भगवते त्रिविक्रमाय ॥

अथ श्रीवामनपुराणम्

पहला अध्याय

श्रीनारदजीका पुलस्त्य ऋषिसे वामनाश्रयी प्रश्न; शिवजीका
लीलाचरित्र और जीमूतबाहन होना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

त्रैलोक्यराज्यमाक्षिप्य ललेरिन्द्राय यो ददौ।
श्रीधराय नमस्तस्मै छन्दवामनरूपिणे॥ १

पुलस्त्यमुदिमासीनमाश्रमे चाग्निदां वरम्।
नारदः परिपप्रच्छ पुराणं वामनाश्रयम्॥ २

कथं भगवता ब्रह्मन् विष्णुना प्रभविष्णुना।
वामनत्वं धृतं पूर्वं तन्ममाचक्ष्व पुच्छतः॥ ३

कथं च वैष्णवो भूत्वा ब्रह्मादौ दैत्यसत्तमः।
त्रिदशैर्घुयुधे सार्धमत्र मे संशयो महान्॥ ४

भगवान् श्रीनारायण, मनुष्योंमें श्रेष्ठ नर, भगवती सरस्वतीदेवी और (पुराणोंके कर्ता) महर्षि व्यासजीको नमस्कार करके जय (पुराणों तथा महाभारत आदि ग्रन्थों)-का उच्चारण (पठन) करना चाहिये^१।

जिन्होंने यलिते (भूमि, स्वर्ग और पतताल—इन) तीनों लोकोंके राज्यको छीनकर इन्द्रको दे दिया, उन मायामय वामनरूपधारी और लक्ष्मीको हृदयमें धारण करनेवाले विष्णुको नमस्कार है।

(एक चारकी बात है कि—) चाग्नियोंमें श्रेष्ठ विद्वद्भर पुलस्त्य ऋषि अपने आश्रममें बैठे हुए थे; (वहीं) नारदजीने उनसे वामनपुराणकी कथा—(इस प्रकार) पूछी। उन्होंने कहा—ब्रह्मन्! महाप्रभावशाली भगवान् विष्णुने कैसे वामनका अवतार ग्रहण किया था, इसे आप मुझ जिज्ञासुको बतलायें। एक तो मेरी यह शङ्का है कि दैत्यसर्व ब्रह्मादेने विष्णुभक्त होकर भी

१. महाभारतके उत्पत्त्यानुसार नर-नारायण ब्रह्मर्षिरूपमें विभक्त परमात्मा ही हैं, जो बादमें अर्जुन और कृष्ण हुए। वे ही नारायणीय या भागवतधर्मके प्रधान प्रचारक हैं, अतः भगवतोय ग्रन्थोंमें सर्वत्र इन दोनोंको नमस्कार किया गया है। पुराण-ग्रन्थवर्गमें भी इस लोकोक्तको साहित्यिक रूपमें बढ़नेकी प्राचीन प्रथा है।

महाभारतका प्राचीन नाम 'जय' है; पर उपलब्धतासे पुराणोंका भी ग्रहण किया जाता है। भविष्यपुराणका वचन है—

अष्टादश पुराणानि रामस्तु चरितं तया। काशर्षे वेदपञ्चमं च यन्महाभारतं विदुः॥

अथेति नाम वैतेषां प्रवदन्ति मनोविणः॥

(भविष्यपुराण १।१।५-६)

अर्थात्—अठारहों पुराण, रामायण और सम्पूर्ण (वेदार्थ) पाँचवाँ वेद, जिसे महाभारत-रूपमें जानते हैं—इन सबको मनोमीलन 'जय' कहते हैं।

श्रूयते च द्विजश्रेष्ठ दक्षस्य दुहिता सती ।
 शंकरस्य प्रिया भार्या बभूव वरवर्णिनी ॥ ५
 किमर्थं सा परित्यज्य स्वशरीरं वरानना ।
 जाता हिमवतो गेहे गिरीन्द्रस्य महात्मनः ॥ ६
 पुनश्च देवदेवस्य पत्नीत्वमगमच्छुभा ।
 एतन्मे संशयं छिन्धि सर्ववित् त्वं मतोऽसि मे ॥ ७
 तीर्थानां चैव साहाय्यं दानानां चैव सत्तम ।
 व्रतानां विविधानां च विधिमाचक्ष्व मे द्विज ॥ ८
 एवमुक्तो नारदेन पुलस्त्यो मुनिसत्तमः ।
 प्रोवाच वदतां श्रेष्ठो नारदं तपसो निधिम् ॥ ९

पुलस्त्य उवाच

पुराणं वामनं वक्ष्ये क्रमान्निखिलमादितः ।
 अवधानं स्थिरं कृत्वा शृणुष्व मुनिसत्तम ॥ १०
 पुरा हैमवती देवी मन्दरस्थं महेश्वरम् ।
 उवाच वचनं दृष्ट्वा ग्रीष्मकालमुपस्थितम् ॥ ११
 ग्रीष्मः प्रवृत्तो देवेश न च ते विद्यते गृहम् ।
 यत्र वातातपी ग्रीष्मे स्थितयोनीं गमिष्यतः ॥ १२
 एवमुक्तो भवान्या तु शंकरो वाक्यमब्रवीत् ।
 निराश्रयोऽहं सुदति सदारण्यधरः शुभे ॥ १३
 इत्युक्त्वा शंकरेणाथ वृक्षच्छायासु नारद ।
 निदाघकालमनयत् समं शर्वेण सा सती ॥ १४

निदाघान्ते समुद्भूतो निर्जनाचरितोऽद्भुतः ।
 घनान्धकारिताशो वै प्रावृट्कालोऽतिरागवान् ॥ १५
 स दृष्ट्वा दक्षतनुजा प्रावृट्कालमुपस्थितम् ।
 प्रोवाच वाक्यं देवेश सती सप्रणयं तदा ॥ १६

देवताओंके साथ युद्ध कैसे किया और ब्राह्मणश्रेष्ठ! दूसरी जिज्ञासा यह है कि दक्षप्रजापतिकी पुत्री भगवती सती, जो भगवान् शंकरकी प्रिय पत्नी थी, उन श्रेष्ठ मुखवाली (सती)—ने अपना शरीर त्यागकर पर्वतराज हिमालयके घरमें किसलिये जन्म लिया? और पुनः वे कस्याणी देवदेव (महादेव)—की पत्नी कैसे बनीं? मैं मानता हूँ कि आपको सब कुछका ज्ञान है, अतः कृपया मेरी इस शंकाको दूर कर दें। साथ ही सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ है द्विज! तीर्थों तथा दानोंकी महिमा और विविध व्रतोंकी अनुष्ठान-विधि भी मुझे बताइये ॥ १-८ ॥

नारदजीके इस प्रकार कहनेपर मुनियोंमें मुख्य तथा वक्ताओंमें श्रेष्ठ तपोधन पुलस्त्यजी नारदजीसे कहने लगे ॥ ९ ॥

पुलस्त्यजी बोले—नारद! आपसे मैं सम्पूर्ण वामनपुराणकी कथा आदिसे (अन्ततक) वर्णन करूँगा। मुनिश्रेष्ठ! आप मनको स्थिर कर ध्यानसे सुनें! प्राचीन समयमें देवी हैमवती (सती)—ने ग्रीष्म-ऋतुका आगमन देखकर मन्दर पर्वतपर बैठे हुए भगवान् शंकरसे कहा—देवेश! ग्रीष्म-ऋतु तो आ गयी है, परंतु आपका कोई घर नहीं है, जहाँ हम दोनों ग्रीष्मकालमें निवास करते हुए वायु और तापजनित कठिन समयको बिता सकेंगे। सतीके ऐसा कहनेपर भगवान् शंकर बोले—हे सुन्दर दाँतोंवाली सति! मेरा कभी कोई घर नहीं रहा। मैं तो सदा बनोंमें ही घूमता रहता हूँ ॥ १०-१३ ॥

नारदजी! भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर सती-देवीने उनके साथ वृक्षोंकी छायामें (जैसे-तैसे रहकर) निदाघ (गर्मी)—का समय बित्तया। फिर ग्रीष्मके अन्तमें अद्भुत वर्षा-ऋतु श्रवण गयी, जो अत्यधिक रागको बढ़ानेवाली होती है और जिसमें प्रायः सबका आध्यात्मन अवरुद्ध हो जाता है। (उस समय) मेघोंसे आवृत हो जानेसे दिशाएँ अन्धकारमय हो जाती हैं। उस वर्षा-ऋतुको आयी देखकर दक्ष-पुत्री सतीने प्रेमसे महादेवजीसे यह वचन कहा — ॥ १४-१६ ॥

१. भक्तिपुराणके प्रमाणानुसार वामनपुराणके वक्ता चतुर्मुख (ब्रह्माजी) हैं, पर यहाँ पुलस्त्यजी ऐसा उल्लेख नहीं करते कि 'पुराणं वामनं वक्ष्ये ब्रह्मणा च मया कुतम्।' इससे प्रतीत होता है कि वक्तृ-साम्बन्धी श्लोक अनुपलब्ध है। मत्स्यपुराणमें भी चतुर्मुख (ब्रह्म) के वक्ता होनेका उल्लेख है—

'त्रिविक्रमस्य महात्म्यमधिकृत्य चतुर्मुखः । त्रिवर्गसम्यग्वात् तस्य वामनं परिकीर्तितम् ॥'

विद्यहन्ति वाता हृदयावदारणा
गर्जनधमी तोयधरा महेश्वर।
स्फुरन्ति नीलाभ्रगणेषु सिद्ध्युते
वाशन्ति केकारवमेव बर्हिणः ॥ १७
पतन्ति धारा गगनात् परिच्युता
बका बलाकाश्च सरन्ति तोयदान्।
कदम्बसञ्जार्जुनकेतकीद्रुमाः
पुष्पाणि मुह्यन्ति सुमारुताहताः ॥ १८
श्रुत्वैव मेघस्य द्रष्टुं तु गर्जितं
त्यजन्ति हंसाश्च सरांसि तत्क्षणात्।
यथाश्रयान् योगिगणाः समन्तात्
प्रवृद्धमूलानपि संत्यजन्ति ॥ १९
इमानि यूथानि वने मृगाणां
चरन्ति धावन्ति रमन्ति शंभो।
तथाचिराभाः सुतरां स्फुरन्ति
पश्येह नीलेषु घनेषु देव।
नूनं समृद्धिं सलिलस्य दृष्ट्वा
चरन्ति शूरास्तरुणहुमेषु ॥ २०
उद्वृत्तवेगाः सहस्रैश्च निम्नगा
जाताः शशाङ्काङ्कितचारुमौले।
किमत्र चित्रं यदनुज्ज्वलं जनं
भिषेक्य योषिद् भवति त्वशीला ॥ २१
नीलैश्च मेघैश्च समावृतं नभः
पुष्पैश्च सञ्जा मुकुलैश्च नीपाः।
फलैश्च बिल्वाः पयसा तथापगाः
पत्रैः सपद्मैश्च महासरांसि ॥ २२
इतोदशे शंकर दुःसहेऽद्भुते
काले सुरौद्रे ननु ते ब्रवीमि।
गृहे कुरुष्वत्र महाचलोत्तमे
सुनिर्वृता येन भवामि शंभो ॥ २३
इत्थं त्रिनेत्रः श्रुतिरामणीयकं
श्रुत्वा वचो वाक्यमिदं बभाषे।
न मेऽस्ति वित्तं गृहसंघयार्थं
मृगारिज्जर्मावरणं मम प्रिये ॥ २४
ममोपवीतं भुजनेश्वरः शुभे
कर्णेऽपि पद्मश्च तथैव पिङ्गलः।
केयूरमेकं मम कम्बलस्त्यहि-
र्द्वितीयमन्यो भुजगो धनंजयः ॥ २५

महेश्वर! हृदयको विदीर्ण करनेवाली वायु वेगसे चल रही है। ये मेघ भी गर्जन कर रहे हैं, नीले मेघोंमें बिजलियाँ कौंध रही हैं और मयूरगण केकाध्वनि कर रहे हैं। आकाशसे गिरती हुई जलधाराएँ नीचे आ रही हैं। बगुले तथा बगुलोंकी पंक्तियाँ जलाशयोंमें तैर रही हैं। प्रबल वायुके झोंके खाकर कदम्ब, सर्ज, अर्जुन तथा केतकीके वृक्ष पुष्पोंको गिरा रहे हैं—वृक्षोंसे फूल झड़ रहे हैं। मेघका गम्भीर गर्जन सुनकर हंस तुरन्त जलाशयोंको छोड़कर चले जा रहे हैं, जिस प्रकार योगिजन अपने सब प्रकारसे समृद्ध घरोंको भी छोड़ देते हैं। शिवजी! वनमें मृगोंके ये यूथ आनन्दित होकर इधर-उधर दौड़ लगाकर, खेल-कूदकर आनन्दित हो रहे हैं और देव! देखिये, नीले बादलोंमें विद्युत् भलीभाँति चमक रही है। लगता है, जलकी वृद्धिको देखकर चोंरगण हरे-भरे सुपुष्ट नये वृक्षोंपर विचरण कर रहे हैं। नदियाँ सहसा उद्यम (बढ़े) वेगसे बहने लगी हैं। चन्द्रशेखर! ऐसे उत्तेजक समयमें यदि असुसृत व्यक्तिके फंदेमें आकर स्त्री दुःशील हो जाती है तो इसमें क्या आश्चर्य ॥ १७—२१ ॥

आकाश नीले बादलोंसे घिर गया है। इसी प्रकार पुष्पोंके द्वारा सर्ज, मुकुलों (कलियों)-के द्वारा नीप (कदम्ब), फलोंके द्वारा बिल्व-वृक्ष एवं जलके द्वारा नदियाँ और कमल-पुष्पों एवं कमल-पत्रोंसे बड़े-बड़े सरोवर भी ढक गये हैं। हे शंकरजी! ऐसी दुःसह, अद्भुत तथा भयंकर दशामें आपसे प्रार्थना करती हूँ कि इस महान् तथा उत्तम पर्वतपर गृह-निर्माण कौजिये; हे शंभो! जिससे मैं सर्वथा निश्चिन्त हो जाऊँ। कानोंको प्रिय लगनेवाले सतीके इन वचनोंको सुनकर तीन नयनवाले भगवान् शंकरजी बोले—प्रिये! घर बनानेके लिये (और उसकी साज-सज्जाके लिये) मेरे पास धन नहीं है। मैं व्याघ्रके चर्ममात्रसे अपना शरीर ढकता हूँ। शुभे! (सूत्रोंके अभावमें) सर्पराज ही मेरा उपवीत (जनेऊ) बना है। पद्म और पिङ्गल नामके दो सर्प मेरे दोनों कानोंमें (फुण्डलका काम करते) हैं। कम्बल और धनंजय नामके ये दो सर्प मेरे दोनों बाँहोंके बाजूबंद

नागस्तर्धैवाश्चतरो हि कङ्कणं
सव्येतरे तक्षक उत्तरे तथा ।
नीलोऽपि नीलाङ्गनतुल्यवर्णः
श्रोणीतटे राजति सुप्रतिष्ठः ॥ २६

पुलस्त्य उवाच

इति वचनमद्योगं शंकरात्सा मृडानी
श्रुतमपि तदसत्यं श्रीमदाकर्ण्य भीता ।
अवनितलमवेक्ष्य स्वामिनो वासकुच्छात्
परिवदति सरोधं लज्जयोच्छ्वस्य चोष्णाम् ॥ २७

देव्युवाच

कथं हि देवदेवेश प्रावृद्कालो गमिष्यति ।
वृक्षमूले स्थिताया मे सुदुःखेन वदाम्यतः ॥ २८

शंकर उवाच

घनावस्थितदेहायाः प्रावृद्कालः प्रयास्यति ।
यद्याम्बुधारा न तव निपतिष्यन्ति विग्रहे ॥ २९

पुलस्त्य उवाच

ततो हरस्तदघनखण्डमुनत-
मारुह्य तस्थी स्रष्ट दक्षकन्यया ।
ततोऽभवन्नाम महेश्वरस्य
जीमूतकेतुस्त्विति विश्रुतं दिवि ॥ ३०

॥ इस प्रकार श्रीरामनपुराणमें पहला अध्याय समाप्त हुआ ॥ १ ॥

~~~~~

## दूसरा अध्याय

शरदागम होनेपर शंकरजीका मन्दरपर्वतपर जाना और दक्षका यज्ञ

पुलस्त्य उवाच

ततस्त्रिनेत्रस्य गतः प्रावृद्कालो घनोपरि ।  
लोकानन्दकरी रम्या शरत् समभवन्मुने ॥ १

त्यजन्ति नीलाम्बुधरा नभस्तलं  
वृक्षांश्च कङ्काः सरितस्तटानि ।  
पद्माः सुगन्धं निलयानि वायसा  
रुरुर्विधापां कलुषं जलाशयाः ॥ २

हैं। मेरे दाहिने और बायें हाथोंमें भी क्रमशः अश्वतर तथा तक्षक नाग कङ्कण बने हुए हैं। इसी प्रकार मेरी कमरमें नीलाङ्गनके वर्णवाला नील नामका सर्प अवस्थित होकर सुसोभित हो रहा है ॥ २२—२६ ॥

**पुलस्त्यजी बोले—** महादेवजीसे इस प्रकार कडो तथा ओजस्वी एवं सत्य होनेपर भी असत्य प्रतीत हो रहे वचनको सुनकर सतीजी बहुत डर गयीं और स्वामीके निवासकहको देखकर गरम साँस छोड़ती हुई और पृथ्वीकी ओर देखती हुई (कुछ) क्रोध और लज्जासे इस प्रकार कहने लगीं— ॥ २७ ॥

**सतीदेवी बोलीं—** देवेश! वृक्षके मूलमें दुःखपूर्वक रहकर भी मेरा वर्षाकाल कैसे व्यतीत होगा! इसीलिये तो मैं आपसे (गृहके निर्माणकी बात) कहती हूँ ॥ २८ ॥

**शंकरजी बोले—** देवि! मेघ-मण्डलके ऊपर अपने शरीरको स्थित कर तुम वर्षाकाल भलीभाँति व्यतीत कर सकोगी। इससे वर्षाकी अलधारण तुम्हारे शरीरपर नहीं गिर पायेंगी ॥ २९ ॥

**पुलस्त्यजी बोले—** उसके बाद महादेवजी दक्षकन्या सतीके साथ आकाशमें उन्नत मेघमण्डलके ऊपर चढ़कर बैठ गये। तभीसे स्वर्गमें उन महादेवजीका नाम 'जीमूतकेतु' या 'जीमूतयाहन' विख्यात हो गया ॥ ३० ॥

**पुलस्त्यजी बोले—** इस प्रकार तीन नयनवाले भगवान् शिवका वर्षाकाल मेघोंपर बस्ते हुए ही व्यतीत हो गया। हे मुने! तत्पश्चात् लोगोंको आनन्द देनेवाली रमणीय शरद् ऋतु आ गयी। इस ऋतुमें नीले मेघ आकाशको और यगुले वृक्षोंको छोड़कर अलग हो जाते हैं। नदियाँ भी तटको छोड़कर बहने लगती हैं। इसमें कमलपुष्प सुगन्ध फैलाते हैं, कोंवे भी घोंसलोंको छोड़ देते हैं। रत्नमृगोंके शृङ्ग गिर पड़ते हैं और जलाशय

विकासमायान्ति च पङ्कजानि  
 अन्नांशयो भान्ति लताः सुपुष्पाः ।  
 नन्दन्ति हृष्टान्यपि गोकुलानि  
 सन्तश्च संतोषयन्नुजजन्ति ॥ ३  
 सरःसु पद्मा गगने च तारका  
 जलाशयेष्वेव तथा पयांसि ।  
 सतां च चित्तं हि दिशां मुखैः समं  
 वैमल्यमायान्ति शशाङ्कान्तयः ॥ ४  
 एतादृशे हरः काले मेघपृष्ठाधिवासिनीम् ।  
 सतीमादाय शीलेन्द्रं मन्दरं समुपाययौ ॥ ५  
 ततो मन्दरपृष्ठेऽसौ स्थितः समशिलातले ।  
 राम शंभुर्भगवान् सत्या सह महाद्युतिः ॥ ६  
 ततो व्यतीते शरदि प्रतिबुद्धे च केशवे ।  
 दक्षः प्रजापतिश्रेष्ठो यष्टुमारभत क्रतुम् ॥ ७  
 द्वादशीं च स चादित्याञ्चाक्रादींश्च सुरोत्तमान् ।  
 सकश्यपान् समामन्य सदस्यान् समधीकरत् ॥ ८  
 अरुन्धत्या च सहितं वसिष्ठं शंसितव्रतम् ।  
 सहानसूययात्रिं च सह धृत्या च कौशिकम् ॥ ९  
 अहल्यया गौतमं च भरद्वाजममायया ।  
 चन्द्रया सहितं ब्रह्मन्धिमिन्द्रिरसं तथा ॥ १०  
 आपन्न्य कृतवान्दक्षः सदस्यान् यज्ञसंसदि ।  
 विद्वान् गुणसंपन्नान् वेदवेदाङ्गपारगान् ॥ ११  
 धर्मं च स समाहूय भार्ययाऽहिंसया सह ।  
 निमन्य यज्ञवाटस्य द्वारपालत्वमादिशत् ॥ १२  
 अरिष्टनेमिनं चक्रे इध्माहरणकारिणम् ।  
 भृगुं च मन्त्रसंस्कारे सप्र्यग् दक्षः प्रयुक्तवान् ॥ १३  
 तथा चन्द्रमसं देवं रोहिण्या सहितं शुचिम् ।  
 धनानामाधिपत्ये च युक्तवान् हि प्रजापतिः ॥ १४  
 जामातृदुहितृश्चैव दौहित्रांश्च प्रजापतिः ।  
 सशंकरां सतीं मुक्त्वा मखे सर्वान् न्ययन्वत् ॥ १५

नारद उवाच

किमय लोकपतिना धनाध्यक्षो महेश्वरः ।  
 ज्येष्ठः श्रेष्ठो वरिष्ठोऽपि आद्योऽपि न निमन्त्रितः ॥ १६

सर्वथा स्वच्छ हो जाते हैं। इस समय कमल विकसित होते हैं, सुप्र चन्द्रमाकी किरणें आनन्ददायिनी होकर फैल जाती हैं, सतार्पें पुष्पित हो जाती हैं, गौमें हृष्ट-पुष्ट होकर आनन्दसे विहरती हैं तथा संतोंको बड़ा सुख मिलता है। तालावोंमें कमल, गगनमें तारागण, जलाशयोंमें निर्मल जल और दिशाओंके मुखमण्डलके साथ सम्पन्नोंका चित्त तथा चन्द्रमाकी ज्योति भी सर्वथा स्वच्छ एवं निर्मल हो जाती है ॥ १-४ ॥

ऐसी शरद्-ऋतुमें शंकरजी मेघके ऊपर वास करनेवाली सतीको साथ लेकर श्रेष्ठ मन्दरपर्वतपर पहुँचे और महातेजस्वी (महाकान्तिमान्) भगवान् शंकर मन्दरावलके ऊपरी भागमें एक समतल शिलापर अवस्थित होकर सतीके साथ विश्राम करने लगे। उसके बाद शरद्-ऋतुके चीत जानेपर तथा भगवान् विष्णुके जाग जानेपर प्रजापतियोंमें श्रेष्ठ दक्षने एक विशाल यज्ञका आयोजन किया। उन्होंने द्वादश आदित्यों तथा कश्यप आदि (ऋषियों)-के साथ ही इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवताओंको भी निमन्त्रित कर उन्हें यज्ञका सदस्य बनाया ॥ ५-८ ॥

नारदजी! उन्होंने अरुन्धतोसहित प्रशस्तव्रतधारी वसिष्ठको, अनसूयासहित अत्रिमुनिको, धृतिके सहित कौशिक (विश्वामित्र) मुनिको, अहल्याके साथ गौतमको, अमायाके सहित भरद्वाजको और चन्द्राके साथ अश्विना ऋषिको आमन्त्रित किया। विद्वान् दक्षने इन गुणसम्पन्न वेद-वेदाङ्गपारगाही विद्वान् ऋषियोंको निमन्त्रितकर उन्हें अपने यज्ञमें सदस्य बनाया। और, उन्होंने (प्रजापति दक्षने) यज्ञमें धर्मको भी उनको पत्नी अहिंसाके साथ निमन्त्रितकर यज्ञमण्डपका द्वारपाल नियुक्त किया ॥ ९-१२ ॥

दक्षने अरिष्टनेमिको समिधा लानेका कार्य सौपा और भृगुको समुचित मन्त्र-पाठमें नियुक्त किया। फिर दक्ष-प्रजापतिने रोहिणीसहित 'अर्थशुचि' चन्द्रमाको कोषाध्यक्षके पदपर नियुक्त किया। इस प्रकार दक्षप्रजापतिने केवल शंकरसहित सतीको छोड़कर अपने सभी जाम्भताज्यों, पुत्रियों एवं दौहित्रोंको यज्ञमें आमन्त्रित किया ॥ १३-१५ ॥

नारदजीने कहा (पूछ) - (पुलस्त्यजी महाराज!) लोकस्वामी दक्षने महेश्वरको सबसे पहले, श्रेष्ठ, वरिष्ठ, सबके आदिमें रहनेवाले एवं समग्र ऐश्वर्यके स्वामी होनेपर भी (यज्ञमें) क्यों नहीं निमन्त्रित किया? ॥ १६ ॥

पुलस्त्य उवाच

ज्येष्ठः श्रेष्ठे वरिष्ठोऽपि आद्योऽपि भगवाज्ज्ञावः ।  
कपालीति विदित्वेशो दक्षेण न निमन्त्रितः ॥ १७

नारद उवाच

किमर्थं देवताश्रेष्ठः शूलपाणिस्त्रिलोचनः ।  
कपाली भगवान् जातः कर्मणा केन शंकरः ॥ १८

पुलस्त्य उवाच

शृणुष्वावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम् ।  
प्रीक्षामादिपुराणे च ब्रह्मणाऽध्यक्तमूर्तिना ॥ १९

पुरा त्वेकार्णवं सर्वं जगत्स्थवरजङ्गमम् ।  
नष्टचन्द्रार्कनक्षत्रं प्रणष्टपवनानलम् ॥ २०

अप्रतर्क्यमविज्ञेयं भावाभावाविवर्जितम् ।  
निर्माणपर्वततल तमोभूतं सुदुर्दशम् ॥ २१

तस्मिन् स शेते भगवान् निद्रां वर्षसहस्रिकीम् ।  
रात्र्यन्ते सृजते लोकान् राजसं रूपमास्थितः ॥ २२

राजसः पञ्चवदणो वेदवेदाङ्गपारणः ।  
ब्रह्मा चराचरस्यास्य जगतोऽद्भुतदर्शनः ॥ २३

तमोमयस्तर्धवान्यः समुद्भूतस्त्रिलोचनः ।  
शूलपाणिः कपर्दी चं अक्षमालां च दर्शयन् ॥ २४

ततो महात्मा ह्यसृजदहंकारं सुदारुणम् ।  
येनाक्रान्तायुधौ देवौ तावेव ब्रह्मशंकरौ ॥ २५

अहंकारावृतो रुद्रः प्रत्युवाच पितामहम् ।  
को भवानिह संप्राप्तः केन सुष्टोऽसि मां वद ॥ २६

पितामहोऽप्यहंकारात् प्रत्युवाचाद्य को भवान् ।  
भवतो जनकः कोऽत्र जगनी या तदुच्यताम् ॥ २७

इत्यन्योन्यं पुरा ताभ्यां ब्रह्मज्ञाभ्यां कलिप्रिय ।  
परिवादोऽभवत् तत्र उत्पत्तिर्भवतोऽभवत् ॥ २८

भवानप्यन्तरिक्षं हि जातमात्रस्तदोत्पत्तम् ।  
धारयन्तुलां वीणां कुर्वन् कलिकिलाद्यनिम् ॥ २९

पुलस्त्यजीने कहा—(नारदजी!) ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, वरिष्ठ तथा अग्रगणी होनेपर भी भगवान् शिवको कपाली जानकर प्रजापति दक्षने उन्हें (यज्ञमें) निमन्त्रित नहीं किया ॥ १७ ॥

नारदजीने (फिर) पूछा—(महाराज!) देवश्रेष्ठ शूलपाणि, त्रिलोचन भगवान् शंकर किस कर्मसे और किस प्रकार कपाली हो गये, यह बतलायें ॥ १८ ॥

पुलस्त्यजीने कहा—नारदजी! आप ध्यान देकर सुनें। यह पुरानी कथा आदिपुराणमें अप्यक्तमूर्ति ब्रह्मजीके द्वारा कही गयी है। (यें उसी प्राचीन कथाको आपसे कहता हूँ।) प्राचीन समयमें समस्त स्थावर-जङ्गमात्मक जगत् एकीभूत महासमुद्रमें निमग्न (डूबा हुआ) था। चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, वायु एवं अग्नि—किसीका भी कोई (अलग) अस्तित्व नहीं था। 'भाव' एवं 'अभाव'से रहित जगत्की उस समयकी अवस्थाका कोई ठीक-ठीक ज्ञान, विचार, तर्कना या वर्णन सम्भव नहीं है। सभी पर्वत एवं वृक्ष जलमें निमग्न थे तथा सम्पूर्ण जगत् अन्धकारसे व्याप्त एवं दुर्दशाग्रस्त था। ऐसे समयमें भगवान् विष्णु हज्जरो कर्पोंकी निद्रामें शयन करते हैं एवं रात्रिके अन्तमें तबिस रूप ग्रहणकर वे सभी लोकोंकी रचना करते हैं ॥ १९—२२ ॥

इस चराचरात्मक जगत्का ब्रह्मा भगवान् विष्णुका वह अद्भुत राजस स्वरूप पञ्चमुख एवं वेद-वेदाङ्गीका ज्ञाता था। उसी समय तमोमय, त्रिलोचन, शूलपाणि, कपर्दी तथा स्त्राक्षमाली धारण किया हुआ एक अन्य पुरुष भी प्रकट हुआ। उसके बाद भगवान्ने अतिदारुण अहंकारकी रचना की, जिससे ब्रह्मा तथा शंकर—वे दोनों ही देवता आक्रान्त हो गये। अहंकारसे व्याप्त शिवने ब्रह्मासे कहा—तुम कौन हो और यहाँ कैसे आये हो? तुम मुझे यह भी बतलाओ कि तुम्हारी सृष्टि किसने की है? ॥ २३—२६ ॥

(फिर) इसपर ब्रह्माने भी अहंकारसे उत्तर दिया—आप भी बतलाइये कि आप कौन हैं तथा आपके माता-पिता कौन हैं? लोक-कल्याणके लिये कलहको प्रिय माननेवाले नारदजी! इस प्रकार प्राचीनकालमें ब्रह्मा और शंकरके बीच एक-दूसरेसे दुर्विवाद हुआ। उसी समय आपका भी प्रादुर्भाव हुआ। आप उत्पन्न होते ही अनुपम वीणा धारण किये कलिकिला शब्द करते हुए अन्तरिक्षकी ओर ऊपर चले गये। इसके बाद भगवान् शिव मानो



ततो विनिर्जितः शंभुर्मानिना यथायोनिना ।  
 तस्यावधोमुखो दीनो ग्रहाक्रान्तो यथा शशी ॥ ३०  
 पराजिते लोकपती देवेन परमेष्ठिना ।  
 क्रोधान्धकारितं रुद्रं पञ्चभोऽञ्च मुखोऽञ्चवीत् ॥ ३१  
 अहं ते प्रतिजानामि तमोमूर्ते त्रिलोचन ।  
 दिग्वासा वृषभारूढो लोकक्षयकरो भवान् ॥ ३२  
 इत्युक्तः शंकरः क्रुद्धो वदनं घोरघञ्जुषा ।  
 निर्दग्धुकामस्त्वनिशं ददर्श भगवान्जः ॥ ३३  
 ततस्त्रिनेत्रस्य समुद्रवर्नि  
 वक्त्राणि पञ्चाथ सुदर्शनानि ।  
 श्वेतं च रक्तं कनकावदातं  
 नीलं तथा पिङ्गजटं च शुभम् ॥ ३४  
 वक्त्राणि दृष्ट्वाऽकैसमानि सद्यः  
 पैताम्हं वक्त्रमुवाच त्रावयम् ।  
 समग्रतस्याथ जलस्य बुदबुदा  
 भवन्ति किं तेमु पराक्रमोऽस्ति ॥ ३५  
 तच्छ्रुत्वा क्रोधयुक्तेन शंकरेण महात्मना ।  
 नखाग्रेण शिरश्छिन्नं ब्राह्मं परुषवादिनम् ॥ ३६  
 तच्छिन्नं शंकरस्यैव सव्ये कनतलेऽपतत् ।  
 पतते न कदाचिच्च तच्छंकरकराच्छिरः ॥ ३७  
 अथ क्रोधावृतेनापि ब्रह्मणाद्भुतकर्मणा ।  
 सुष्टस्तु पुरुषो धीमान् कवची कुण्डली शरी ॥ ३८  
 धनुष्पाणिर्महाबाहुर्बाणशक्तिधरोऽव्ययः ।  
 चतुर्भुजो महातूणी आदित्यसमदर्शनः ॥ ३९  
 स ग्राह गच्छ दुर्बुद्धे मा त्वां शूलिन् निपातये ।  
 भवान् पापसमायुक्तः पापिष्ठे को जिघांसति ॥ ४०  
 इत्युक्तः शंकरस्तेन पुरुषेण महात्मना ।  
 त्रपायुक्तो जगामाथ रुद्रो बदरिकाश्रमम् ॥ ४१  
 नरनारायणस्थानं पर्वते हि हिमाश्रये ।  
 सरस्वती यत्र मुण्या स्यन्दते सरितां वरा ॥ ४२  
 तत्र गत्वा च तं दृष्ट्वा नारायणमुवाच ह ।  
 भिक्षां प्रयच्छ भगवन् महाकापालिकोऽस्मि भोः ॥ ४३  
 इत्युक्तो धर्मपुत्रस्तु रुद्रं वचनमब्रवीत् ।  
 सव्यं भुजं ताडयस्व त्रिशूलेन महेश्वर ॥ ४४

ब्रह्माद्वारा पराजित-से होकर राहुग्रस्त चन्द्रमाके समान  
 दीन एवं अधोमुख होकर खड़े हो गये ॥ २७—३० ॥

(ब्रह्माके द्वारा) लोकपति (शंकर)-के पराजित  
 हो जानेपर क्रोधसे अन्धे हुए रुद्रसे (श्रीब्रह्माजीके)  
 पाँचवें मुखने कहा—तमोमूर्ति त्रिलोचन! मैं आपको  
 जानता हूँ। आप दिग्म्बर, वृषारोही एवं लोकोंको नष्ट  
 करनेवाले (प्रलयकर) हैं। इसपर अजन्मा भगवान्  
 शंकर अपने तीसरे घोर नेत्रद्वारा भस्म करनेकी इच्छासे  
 ब्रह्माके उस मुखको एकटक देखने लगे। तदनन्तर  
 श्रीशंकरके श्वेत, रक्त, स्वर्णिम, नील एवं पिंगल वर्णके  
 सुन्दर पाँच मुख समुद्रभूत हो गये ॥ ३१—३४ ॥

सूर्यके समान दीप्त (उन) मुखोंको देखकर  
 पितामहके मुखने कहा—जलमें आपात करनेसे बुदबुद  
 तो उत्पन्न होते हैं, पर क्या उनमें कुछ शक्ति भी होती  
 है? यह सुनकर क्रोधभरे भगवान् शंकरने ब्रह्माके कठोर  
 भाषण करनेवाले सिरको अपने नखके अग्रभागसे काट  
 डाला; पर वह कटत हुआ ब्रह्माजीका सिर शंकरजीके  
 ही चाम इधेलीपर जा गिरा एवं वह कपाल श्रीशंकरके  
 उस इधेलीसे (इस प्रकार चिपक गया कि गिरानेपर  
 भी) किसी प्रकार न गिरा। इसपर अद्भुतकर्म ब्रह्माजी  
 अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। उन्होंने कवच-कुण्डल एवं शर  
 धारण करनेवाले धनुर्धर विशाल बाहुवाले एक पुरुषकी  
 रचना की। वह अव्यय, चतुर्भुज बाण, शक्ति और भारी  
 तरकस धारण किये वह तब सूर्यके समान तेजस्वी दीप्त  
 पड़ता था ॥ ३५—३९ ॥

उस नये पुरुषने शिवजीसे कहा—दुर्बुद्धि  
 शूलधारी शंकर! तुम शीघ्र (यहाँसे) चले जाओ,  
 अन्यथा मैं तुम्हें मार डालूँगा। पर तुम चपसुक्त हो;  
 भला, इतने बड़े पापीको कौन मारना चाहेगा? जब  
 उस महापुरुषने शंकरसे इस प्रकार कहा, तब शिवजी  
 लज्जित होकर हिमालय पर्वतपर स्थित बदरिकाश्रमको  
 चले गये, जहाँ गर-नारायणका स्थान है और जहाँ  
 नदियोंमें श्रेष्ठ पवित्र सरस्वती नदी बहती है। वहाँ  
 जाकर और उन नारायणको देखकर शंकरने कहा—  
 भगवन्! मैं महाकापालिक हूँ। आप मुझे भिक्षा दें।  
 ऐसा कहनेपर धर्मपुत्र (नारायण)-ने रुद्रसे कहा—  
 महेश्वर! तुम अपने त्रिशूलके द्वारा मेरी चामों भुजापर  
 ताड़ना करो ॥ ४०—४४ ॥

नारायणवचः श्रुत्वा त्रिशूलेन त्रिलोचनः ।  
 सख्यं नारायणभुजं ताडयामास वेगवान् ॥ ४५ ॥  
 त्रिशूलाभिहतान्मार्गात् तिस्रो धारा विनिर्ययुः ।  
 एका गगनमाक्रम्य स्थिता ताराभिमण्डिता ॥ ४६ ॥  
 द्वितीया न्यपतद् भूमीं तां जग्राह तपोधनः ।  
 त्रिस्तस्मात् समुद्भूतो दुर्वासा शंकरांशतः ॥ ४७ ॥  
 तृतीया न्यपतद्भास कपाले रौद्रदर्शने ।  
 तस्माच्छिशुः समभवत् संनद्धकवचो युवा ॥ ४८ ॥  
 श्यामावदातः शरघापपाणि-

गर्जन्यद्या प्राणेषु तोयदोऽसी ।  
 इत्थं ब्रुवन् कस्य विशातयामि  
 स्कन्धाच्छिरस्तालफलं यक्षैव ॥ ४९ ॥  
 तं शंकरोऽध्येत्य वचो बभाषे  
 चरं हि नारायणब्राह्मजातम् ।  
 निपातयैनं नर दुष्टवाक्यं  
 ब्रह्मात्मजं सूर्यशतप्रकाशम् ॥ ५० ॥  
 इत्येवमुक्तः स तु शंकरेण  
 आद्यं धनुस्त्राजगवं प्रसिद्धम् ।  
 जग्राह तूणानि तथाऽक्षयाणि  
 मुद्धाय वीरः स मतिं चकार ॥ ५१ ॥  
 ततः प्रयुद्धी सुभुजं महाबली  
 ब्रह्मात्मजो बाहुभवश्च शर्वः ।  
 दिव्यं सहस्रं परिवत्सराणां  
 ततो हरोऽध्येत्य विरञ्जिमुखे ॥ ५२ ॥  
 जितस्त्वदीयः पुरुषः पितामहं  
 नरेण दिव्याद्भुतकर्मणा बली ।  
 महापृष्ठकैरभिपत्य ताडित-  
 स्तदद्भुतं चेह दिशो दशैव ॥ ५३ ॥  
 ब्रह्मा तमीशं वचनं बभाषे  
 नेहास्य जन्मान्यजितस्य शंभो ।  
 पराजितश्चेष्यतेऽसी त्वदीयो  
 नरो मदीयः पुरुषो महात्मा ॥ ५४ ॥  
 इत्येवमुक्त्वा वचनं त्रिनेत्र-  
 शिक्शेप सूर्यं पुरुषं विरिञ्चेः ।  
 नरं नरस्यैव तदा स विग्रहे  
 चिक्षेप धर्मप्रभवस्य देवः ॥ ५५ ॥

शिवजीने नारायणकी बात सुनकर त्रिशूलद्वारा बड़े वेगसे उनकी चाम भुजापर आघात किया। त्रिशूलद्वारा (भुजापर) प्रताडित मार्गसे जलकी तीन धारें निकल पड़ीं। एक धारा आकाशमें जाकर ताराओंसे मण्डित आकाशगङ्गा हुई; दूसरी धारा पृथ्वीपर गिरी, जिससे तपोधन अत्रिने (मन्दाकिनीके रूपमें) प्राप्त किया। शंकरके उसी अंशसे दुर्वासाका प्रादुर्भाव हुआ। तीसरी धारा भयानक दिखायी पड़नेवाले कपालपर गिरी, जिससे एक शिशु उत्पन्न हुआ। वह (अन्ध सेते ही) कवच बाँधे, श्यामवर्णका युवक था। उसके हाथोंमें धनुष और बाण था। फिर वह वर्षाकालमें मेघ-गर्जनके समान कहने लगा—‘मैं किसके स्कन्धसे सिरको तालफलके सहस्र काट गिराऊँ?’ ॥ ४५—४९ ॥

श्रीनारायणकी बाहुसे उत्पन्न उस पुरुषके समीप जाकर श्रीशंकरने कहा—हे नर! तुम सूर्यके समान प्रकाशमान, पर कटुभाषी, ब्रह्मासे उत्पन्न इस पुरुषको मार डालो। शंकरजीके ऐसा कहनेपर उस वीर नरने प्रसिद्ध माजगव नामका धनुष एवं अश्व्य तूणीर ग्रहणकर युद्धका निश्चय किया। उसके बाद ब्रह्मात्मज और नारायणकी भुजासे उत्पन्न दोनों नरोंमें सहस्र दिव्य वर्षांतक प्रयत्न युद्ध होता रहा। तत्पश्चात् श्रीशंकरजीने ब्रह्माके पास जाकर कहा—पितामह! यह एक अद्भुत बात है कि दिव्य एवं अद्भुत कर्मवाले (मेरे) नरने दसों दिशाओंमें व्याप्त महान् बाणोंके प्रहारसे ताडित कर आपके पुरुषको जीत लिया। ब्रह्माने उस ईशसे कहा कि इस अजितका जन्म यहाँ दूसरोंद्वारा पराजित होनेके लिये नहीं हुआ है। यदि किसीको पराजित कहा जाना अभीष्ट है तो यह ठेरा नर ही है। मेरा पुरुष तो महाबली है—ऐसा कहे जानेपर श्रीशंकरजीने ब्रह्माजीके पुरुषको सूर्यमण्डलमें फेंक दिया तथा उन्हीं शंकरने उस नरको धर्मपुत्र नरके शरीरमें फेंक दिया ॥ ५०—५५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ २ ॥



## तीसरा अध्याय

शंकरजीका ब्रह्महत्यासे छूटनेके लिये तीर्थोंमें धमण; बदरिकाश्रममें नारायणकी स्तुति;

वाराणसीमें ब्रह्महत्यासे मुक्ति एवं कपाली नाम पड़ना

पुनस्तप उवाच

ततः करतले रुद्रः कपाले दारुणे स्थिते।  
संतापमगपद् ब्रह्माश्रित्तया व्याकुलेन्द्रियः ॥ १

ततः समागता रौद्रा नीलाञ्जनचवप्रभा।  
संरक्तमूर्द्धजा भीमा ब्रह्महत्या हरान्तिकम् ॥ २

तामागतां हरो दृष्ट्वा पप्रच्छ विकरालिनीम्।  
काऽसि त्वमागता रौद्रे केनाप्यर्थेन तद्बद्ध ॥ ३

कपालिनमथोवाच ब्रह्महत्या सुदारुणा।  
ब्रह्मवध्याऽस्मि सम्प्राप्ता यां प्रतीच्छ त्रिलोचन ॥ ४

इत्येवमुक्त्वा वचनं ब्रह्महत्या विवेश ह।  
त्रिशूलपाणिनं रुद्रं सम्प्रतापितविग्रहम् ॥ ५

ब्रह्महत्याभिभूतश्च शर्वो बदरिकाश्रमम्।  
आगच्छन् ददर्शाथ नरनारायणावृषी ॥ ६

अदृष्ट्वा धर्मतनयौ चिन्ताशोकसमन्वितः।  
जगाम यमुनां स्नातुं साऽपि शुष्कजलाऽभवत् ॥ ७

कालिन्दीं शुष्कसलिलां निरीक्ष्य वृषकेतनः।  
प्लक्ष्जं स्नातुमगमदन्तर्द्धानं च सा गता ॥ ८

ततो नु पुष्करारण्यं मागधारण्यमेव च।  
सैन्धवारण्यमेवासी गत्वा स्नातो यथेच्छया ॥ ९

तथैव नैमिषारण्यं धर्मारण्यं तथेष्टरः।  
स्नातो नैव च सा रौद्रा ब्रह्महत्या व्यमुञ्चत ॥ १०

सरित्सु तीर्थेषु तथाश्रमेषु  
पुण्येषु देवायतनेषु शर्वैः।  
समायुतो योगयुतोऽपि पापा-

ज्जावाप मोक्षं जलदध्वजोऽसी ॥ ११  
ततो जगाम निर्विण्णः शंकरः कुरुजाङ्गलम्।  
तत्र गत्वा ददर्शाथ चक्रपाणिं खगध्वजम् ॥ १२

तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं शङ्खचक्रगदाधरम्।  
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा हरः स्तोत्रमुदीरयत् ॥ १३

पुनस्तपजी बोले— नारदजी! तपश्चात् शिवजीको अपने करतापमें भयंकर कपालके सट जानेसे बड़ी चिन्ता हुई। उनकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयीं। उन्हें बड़ा संताप हुआ। उसके बाद कालिखके समान नीले रंगकी, रक्तवर्णके केशवाली भयंकर ब्रह्महत्या शंकरके निकट आयी। उस विकराल रूपवाली स्त्रीको आयी देखकर शंकरजीने पूछा—ओ भयावनी स्त्री! यह क्यालाओ कि तুম कौन हो एवं किसलिये यहाँ आयी हो? इसपर उस अत्यन्त दारुण ब्रह्महत्याने उनसे कहा—मैं ब्रह्महत्या हूँ; हे त्रिलोचन! आप मुझे स्वीकार करें—इसलिये यहाँ आयी हूँ ॥ १—४ ॥

ऐसा कहकर ब्रह्महत्या संतापसे जलते शरीरवाले त्रिशूलपाणि शिवके शरीरमें समा गयी। ब्रह्महत्यासे अभिभूत होकर श्रीशंकर बदरिकाश्रममें आये; किन्तु वहाँ नर एवं नारायण ऋषियोंके उन्हें दर्शन नहीं हुए। धर्मके उन दोनों पुत्रोंको वहाँ न देखकर वे चिन्ता और शोकसे युक्त हो यमुनाजीमें स्नान करने गये; परंतु उसका जल भी सूख गया। यमुनाजीको निर्जल देखकर भगवान् शंकर सरस्वतीमें स्नान करने गये; किन्तु वह भी सूख हो गयी ॥ ५—८ ॥

फिर पुष्करारण्य, धर्मारण्य और सैन्धवारण्यमें जाकर उन्होंने बहुत समयतक स्नान किया। उसी प्रकार वे नैमिषारण्य तथा सिद्धपुरमें भी गये और स्नान किये; फिर भी उस भयंकर ब्रह्महत्याने उन्हें नहीं छोड़ा। जीमूतकेतु शंकरने अनेक नदियों, तीर्थों, आश्रमों एवं पवित्र देवायतनोंकी यात्रा की; पर योगी होनेपर भी वे पापसे मुक्ति न प्राप्त कर सके। तपश्चात् वे खिन्न होकर कुरुक्षेत्र गये। वहाँ जाकर उन्होंने गरुडध्वज चक्रपाणि (विष्णु)-को देखा और उन शङ्ख-चक्र-गदाधारी पुण्डरीकाक्ष (श्रीनारायण)-का दर्शनकर वे हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे— ॥ ९—१३ ॥

हर उवाच

नमस्ते देवतानाथ नमस्ते गरुडध्वज ।  
 शङ्खचक्रगदापाणे वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥  
 नमस्ते निर्गुणानन्त अप्रतर्क्याय वेधसे ।  
 ज्ञानाज्ञान निरालम्ब सर्वालम्ब नमोऽस्तु ते ॥ १५ ॥  
 रजोयुक्त नमस्तेऽस्तु ब्रह्ममूर्ते सनातन ।  
 त्वया सर्वभिदं नाथ जगत्सृष्टं चराचरम् ॥ १६ ॥  
 सत्त्वाभिहित लोकेश विष्णुमूर्ते अधोद्वज ।  
 प्रजापाल महाबाहो जगद्वर्धन नमोऽस्तु ते ॥ १७ ॥  
 तमोमूर्ते अहं ह्येष त्वदंशक्रोधसंभवः ।  
 गुणाभियुक्त देवेश सर्वव्यापिन् नमोऽस्तु ते ॥ १८ ॥  
 भूरियं त्वं जगन्नाथ जलाम्बरहुताशनः ।  
 वायुर्बुद्धिर्मनश्चापि शर्वरी त्वं नमोऽस्तु ते ॥ १९ ॥  
 धर्मो यज्ञस्तपः सत्यमहिंसा शौचभार्जवम् ।  
 क्षमा दानं दया लक्ष्मीर्ब्रह्मचर्यं त्वमीश्वर ॥ २० ॥  
 त्वं साङ्गाक्षतुरो वेदास्त्वं वेद्यो वेदपादगः ।  
 उपवेदा भवानीश सर्वोऽसि त्वं नमोऽस्तु ते ॥ २१ ॥  
 नमो नमस्तेऽच्युत चक्रपाणे  
 नमोऽस्तु ते माधव मीनमूर्ते ।  
 लोके भवान् कारुणिको मतो मे  
 ज्ञायस्व मां केशव पापबन्धात् ॥ २२ ॥  
 ममाशुभं नाशय विग्रहस्थं  
 यत् ब्रह्महत्याऽभिभवं बभूव ।  
 दग्धोऽस्मि नष्टोऽस्म्यसमीक्ष्यकारी  
 पुनीहि तीर्थोऽसि नमो नमस्ते ॥ २३ ॥

सुतस्य उवाच

इत्थं स्तुतश्रुतधरः शंकरेण महात्मना ।  
 प्रोवाच भगवान् वाक्यं ब्रह्महत्याक्षयाम हि ॥ २४ ॥

हरित्वाच

महेश्वर शृणुस्वैमां मम वाचं कलस्यनाम् ।  
 ब्रह्महत्याक्षयकारी शुभदां पुण्यवर्धनीम् ॥ २५ ॥  
 योऽसीं प्राङ्मण्डले पुण्ये मर्दंशप्रभवोऽव्ययः ।  
 प्रयागे वसते नित्यं योगशास्त्रीति विश्रुतः ॥ २६ ॥  
 चरणान् दक्षिणात्तस्य विनिर्याता सरिद्धरा ।  
 विश्रुता चरणेत्येव सर्वपापहता शुभा ॥ २७ ॥

भगवान् शंकर बोले— हे देवताओंके स्वामी!

आपको नमस्कार है। गरुडध्वज! आपको प्रणाम है। शङ्ख-चक्र-गदाधारी वासुदेव! आपको नमस्कार है। निर्गुण, अनन्त एवं अतर्कनीय विधाता! आपको नमस्कार है। ज्ञानाज्ञानस्वरूप, स्वयं निराश्रय किंतु सबके आश्रय! आपको नमस्कार है। रजोगुण, सनातन, ब्रह्ममूर्ति! आपको नमस्कार है। नाथ! आपने इस सम्पूर्ण चराचर विश्वकी रचना की है। सत्त्वगुणके आश्रय लोकेश! विष्णुमूर्ति, अधोद्वज, प्रजापालक, महाबाहु, जनार्दन! आपको नमस्कार है। हे तमोमूर्ति! मैं आपके अंशभूत क्रोधसे उत्पन्न हूँ। हे महान् गुणवासे सर्वव्यापी देवेश! आपको नमस्कार है ॥ १४—१८ ॥

जगन्नाथ! आप ही पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि, वायु, बुद्धि, मन एवं रात्रि हैं; आपको नमस्कार है। ईश्वर! आप ही धर्म, यज्ञ, तप, सत्य, अहिंसा, पवित्रता, सरलता, क्षमा, दान, दया, लक्ष्मी एवं ब्रह्मचर्य हैं। हे ईश! आप अङ्गोसहित चतुर्वेदस्वरूप, वेद्य एवं वेदपादगामी हैं। आप ही उपवेद हैं तथा सभी कुछ आप ही हैं; आपको नमस्कार है। अच्युत! चक्रपाणि! आपको बारंबार नमस्कार है। मोनमूर्तिधारी (मत्स्यावतारी) माधव! आपको नमस्कार है। मैं आपको लोकमें दयालु मानता हूँ। केशव! आप मेरे शरीरमें स्थित ब्रह्महत्यासे उत्पन्न अशुभको नष्ट कर मुझे पाप-बन्धनसे मुक्त करें; बिना विचार किये कार्य करनेवाला मैं दग्ध एवं नष्ट हो गया हूँ। आप साक्षात् तीर्थ हैं, अतः आप मुझे पवित्र करें। आपको बारंबार नमस्कार है ॥ १९—२३ ॥

पुलस्त्यजीने कहा— भगवान् शंकरद्वारा इस प्रकार

स्तुत होनेपर चक्रधारी भगवान् विष्णु शंकरकी ब्रह्महत्याको नष्ट करनेके लिये उनसे वचन बोले— ॥ २४ ॥

भगवान् विष्णु बोले— महेश्वर! आप ब्रह्महत्याको

नष्ट करनेवाली मेरी मधुर वाणी सुनें। यह शुभप्रद एवं पुण्यको बढ़ानेवाली है।

यहाँसे पूर्व प्रयागमें मेरे अंशसे उत्पन्न 'योगशास्त्री' नामसे विख्यात देवता हैं। वे अव्यय—विकररहित पुरुष हैं। वहाँ उनके नित्य निवास हैं। वहाँसे उनके दक्षिण चरणसे 'चरणा' नामसे प्रसिद्ध श्रेष्ठ नदी निकली है। यह

सव्यदन्या द्वितीया च असिरित्येव विश्रुता ।  
ते उभे तु सरिच्छ्रेष्ठे लोकपूज्ये बभूवतुः ॥ २८

ताभ्यां मध्ये तु यो देशस्तत्क्षेत्रं योगशास्त्रिनः ।  
त्रैलोक्यप्रवरं तीर्थं सर्वपापप्रमोचनम् ।  
न तादृशोऽस्ति गगने न भूम्यां न रसातले ॥ २९  
तत्रास्ति नगरी पुण्या ख्याता वाराणसी शुभा ।  
यस्यां हि भोगिनोऽपीश प्रयान्ति भवतो लयम् ॥ ३०  
विलासिनीनां रशनास्वनेन  
श्रुतिस्वमैर्वाङ्मणपुगवानाम् ।  
शुचिस्वरत्वं गुरुषो निशाम्य  
हास्यादशासन्तं मुहुर्मुहुस्तान् ॥ ३१  
व्रजत्सु योषित्सु चतुष्पथेषु  
पदान्यलत्कारुणिताभिः दृष्ट्वा ।  
ययी शशी विस्मयमेव यस्यां  
किंस्वित् प्रयाता स्थलप्रद्विनीयम् ॥ ३२  
तुङ्गानि यस्यां सुरमन्दिराणि  
रुन्धानि चन्द्रं रजनीमुखेषु ।  
दिवाऽपि सूर्यं पवनाप्लुताभिः  
दीर्घाभिरेवं सुपताकिकाभिः ॥ ३३  
भृङ्गश्च यस्यां शशिकान्तभिनी  
प्रलोभ्यमानाः प्रतिबिम्बितेषु ।  
आलेख्ययोषिट्पिम्बलागनाब्जे

ष्वीयुर्धमानैव च पुष्पकान्तरम् ॥ ३४

परिभ्रमंश्चापि पराजितेषु  
नरेषु संमोहनलेखनेन ।  
यस्यां जलक्रीडनसंगतासु  
न स्त्रीषु शंभो गृहदीर्घिकासु ॥ ३५

न चैव कश्चित् परमन्दिराणि  
रुणद्धि शंभो सहसा श्रुतेऽक्षरम् ।  
न चाबलानां तरसा पराक्रमं  
करोति यस्यां सुरतं हि मुक्त्वा ॥ ३६

पाशाग्रन्थिर्गजेन्द्राणां दानच्छेदो मदस्युतौ ।  
यस्यां मानमदी पुंसां करिणां वीरनागमे ॥ ३७

सब पापोंको हरनेवाली एवं पवित्र है वहाँ उनके नाम  
पादसे 'असि' नामसे प्रसिद्ध एक दूसरी नदी भी निकली  
है ये दोनों नदियाँ श्रेष्ठ एवं लोकपूज्य हैं ॥ २५-२८ ॥

उन दोनोंके मध्यका प्रदेश योगशास्त्रीका क्षेत्र है ।  
वह तीनों लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ तथा सभी पापोंसे छुड़ा  
देनेवाला तीर्थ है उसके समान अन्य कोई तीर्थ  
आकाश, पृथ्वी एवं रसातलमें नहीं है । ईश वहाँ पवित्र  
शुभप्रद विख्यात वाराणसी नगरी है जिसमें भोगी लोग  
भी आपके लोकको प्राप्त करते हैं । श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको  
वेदध्वनि विलासिनी स्त्रियोंकी करधनीकी ध्वनिसे  
मिश्रित होकर मङ्गल स्वरका रूप धारण करती है उस  
ध्वनिको सुनकर गुरुजन बारंबार उपहासपूर्वक उनका  
शासन करते हैं । जहाँ चौराहोंपर भ्रमण करनेवाली  
स्त्रियोंके अलङ्कार (महावर) से अरुणित चरणोंको देखकर  
चन्द्रमाको स्थल-पद्मिनीके चलनेका भ्रम हो जाता है  
और जहाँ रात्रिका आरम्भ होनेपर ऊँचे ऊँचे देवमन्दिर  
चन्द्रमाकर (मानों) अवरोध करते हैं एवं दिनमें पवनान्दोलित  
(हवासे फहरा रही) दीर्घ पताकाओंसे सूर्य भी छिपे  
रहते हैं ॥ २९-३३ ॥

जिस (वाराणसी) में चन्द्रकान्तमणिकी भित्तियोंपर  
प्रतिबिम्बित चित्रमें निर्मित स्त्रियोंके निर्मल मुख-  
कामलोंको देखकर भ्रमर उनपर भ्रमवश लुब्ध हो जाते  
हैं और दूसरे पुष्पोंकी ओर नहीं जाते हे सम्मो! वहाँ  
सम्मोहनलेखनसे पराजित पुरुषोंमें तथा घरकी बालियोंमें  
जलक्रीड़ाके लिये एकत्र हुई स्त्रियोंमें ही 'भ्रमण' देखा  
जाता है, अन्यत्र किसीको 'भ्रमण' (चक्कर रोग) नहीं  
होता । घृतक्रोडा (जुआके खेल) के पासके सिवाय  
अन्य कोई भी दूसरेके 'पाश' (बन्धन) में नहीं डाला  
जाता तथा सुरत समयके सिवाय स्त्रियोंके साथ कोई  
आवोगयुक्त पराक्रम नहीं करता । जहाँ हाथियोंके बन्धनमें  
ही पाशाग्रन्थि (रस्तीकी गँठ) होती है उनकी मदस्युतिमें  
(मदके चूनेमें) ही 'दानच्छेद' (मदकी धाराका टूटना)  
एवं नर ब्राह्मणोंके वीरनागममें ही 'मान' और 'मद'  
होते हैं अन्यत्र नहीं, तात्पर्य यह कि दान देनेकी धारा  
निरन्तर चलती रहती है और अधिमानों एवं मदवाले  
लोग नहीं हैं ॥ ३४-३७ ॥

१ यहाँ शब्द परिस्पष्टात्मक है । परिसंख्यालेखक कहें होता है, वहाँ किसी वस्तुका एक स्थानसे निषेध करके उसका दूसरे स्थानमें स्थापन हो । ऐसा वर्णन आनन्दरामाचार्यके अष्टाध्यायी-वर्णमन्त्र, कदम्बोर्ध्वमें, कातोच्छ्रयमें वल्ली आदिके वर्णमन्त्रों में भी प्राय होता है ।

प्रियदोषाः सदा यस्यां कौशिका नेतरे जनाः ।  
तारंगणोऽकुलीनत्वं गच्छे वृत्तच्युतिर्विभो ॥ ३८

भूतिलुब्धा विलासिन्यो भुजंगपरिवारिता ।  
चन्द्रभूषितदेहाश्च यस्यां त्वमिव शंकरः ॥ ३९

ईदृशायां सुरेशान् वाराणस्यां महाश्रमे ।  
वसते भगवत्त्वोलः सर्वपापहरो रविः ॥ ४०

दशाश्वमेधं यत्प्रोक्तं मदंशो यत्र केशव ।  
तत्र गत्वा सुरश्रेष्ठ पापमोक्षमवाप्स्यसि ॥ ४१

इत्येवमुक्तो गरुडध्वजेन  
वृषध्वजस्तं शिरसा प्रणम्य ।

जगाम वेगाद् गरुडो यथाऽसौ  
वाराणसीं पापविमोचनाय ॥ ४२

गत्वा सुपुण्यं नगरीं सुतीर्था  
दृष्ट्वा च लोलं सबशाश्वमेधम् ।

स्नात्वा च तीर्थेषु विमुक्तपापः  
स केशवं ब्रह्मपुत्रजगाम ॥ ४३

केशवं शंकरो दृष्ट्वा प्रणिपत्येदमब्रवीत् ।  
त्वत्प्रसादाद्दुष्प्रीकेशं ब्रह्माहत्या क्षयं गतं ॥ ४४

नेदं कपालं देवेश मन्दस्तं परिमुञ्चति ।  
कारणं चेन्नि न च तदेतन्मे वक्तुमर्हसि ॥ ४५

पुनस्तत्र उवाच

महादेववचः श्रुत्वा केशवो वाक्यमब्रवीत् ।  
विद्यते कारणं रुद्र तत्सर्वं कथयामि ते ॥ ४६

शोऽसौ यथाग्रतो दिव्यो हृदः पश्योत्पलैर्युतः ।  
एष तीर्थधरः पुण्यो देवगन्धर्वपूजितः ॥ ४७

एतस्मिन्नावरे तीर्थं स्नानं शंभो समाचर ।  
स्नातमात्रस्य चाद्यैव कपालं परिमोक्षयति ॥ ४८

विभो। जहाँ ठलूक ही सदा दोषा (रात्रि) प्रिय होते हैं अन्य लोग दोषोंके प्रेमी नहीं हैं। तारंगणोंमें ही अकुलीनता (पृथ्वीमें न छिपना) है, लोगोंमें कहीं अकुलीनताका नाम नहीं है, गद्यमें ही वृत्तच्युति (छन्दोभङ्ग) होती है अन्यत्र वृत्त (चरित्र) च्युति नहीं दीखती शंकर जहाँकी विलासिनीयाँ आपके सदृश (भस्म) 'भूतिलुब्धा' 'भुजंग (सर्प) परिवारिता' एवं 'चन्द्रभूषितदेहा' होती हैं (यहाँ पक्षान्तरमें—विलसिनियोंके पक्षमें—संगतिके लिये 'भूति' पद 'भस्म' और 'धन'के अर्थमें, 'भुजङ्ग' पद 'सर्प' एवं 'आर'के अर्थमें तथा 'चन्द्र' पद 'चन्द्राभूषण'के अर्थमें प्रयुक्त हैं) सुरेशान्। इस प्रकारकी वाराणसीके महान् आश्रममें सभी पापोंको दूर करनेवाले भगवान् 'लोल' नामके सुयं निवास करते हैं। सुरश्रेष्ठ यहीं दशाश्वमेध नामका स्थान है तथा यहीं श्री अंशस्वरूप केशव स्थित हैं। यहाँ जाकर आप पापसे छुटकारा प्राप्त करेंगे ॥ ३८—४१ ॥

भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर शिवजीने उन्हें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया फिर वे पाप छुड़ानेके लिये गरुडके समान तेज देगले वाराणसी गये। यहाँ परमपवित्र तथा तीर्थभूत नगरीमें जाकर दशाश्वमेधके साथ 'असी' स्थानमें स्थित भगवान् लोलार्कवत् दर्शन किया तथा (यहाँके) तीर्थोंमें स्नान कर और पाप-मुक्त होकर वे (वरुणासंगमपर) केशवका दर्शन करने गये उन्होंने केशवका दर्शन करके प्रणामकर कहा— हृषीकेश! आपके प्रसादसे ब्रह्माहत्या तो नष्ट हो गयी, पर देवेश यह कपाल मेरे हाथको नहीं छोड़ रहा है इसका कारण मैं नहीं जानता। आप ही मुझे यह बतला सकते हैं ॥ ४२—४५ ॥

पुनस्तथैव बोले—महादेवका वचन सुनकर केशवने यह वाक्य कहा रुद्र। इसके समस्त कारणोंको मैं तुम्हें बतलाता हूँ। मेरे सामने कमलोंसे भरा यह जो दिव्य सरोवर है, यह पवित्र तथा तीर्थोंमें श्रेष्ठ है एवं देवताओं तथा गन्धर्वोंसे पूजित है। शिवजी! आप इस परम श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान करें, स्नान करनेमात्रसे आज ही यह कपाल (आपके हाथको) छोड़ देगा इससे रुद्र! संसारमें आप

ततः कपाली लोके च ख्यातो रुद्र भविष्यति ।  
कपालमोचनेत्येवं तीर्थं चेदं भविष्यति ॥ ४९

पुलस्त्य उवाच

एवमुक्तः सुरेशेन केशवेन महेश्वरः ।  
कपालमोचने सखी वेदोक्तविधिना मुने ॥ ५०  
स्नातस्य तीर्थे त्रिपुरान्तकस्य  
पविच्युतं हस्ततलात् कपालम् ।  
नाम्ना कभूवाथ कपालमोचनं  
सतीर्थवर्गं भगवत्प्रसादात् ॥ ५१

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

~~~~~

चौथा अध्याय

विजयाकी मौसी सतीसे दक्ष-यज्ञकी वार्ता, सतीका प्राण-त्याग; शिवका क्रोध
एवं उनके गणोंद्वारा दक्ष-यज्ञका विध्वंस

पुलस्त्य उवाच

एवं कपाली संजातो देवर्षे भगवान् हरः ।
अनेन कारणेनासी दक्षेण न निमन्त्रितः ॥ १
कपालिजायेति सतीं विज्ञायाथ प्रजापतिः ।
यज्ञे चार्हापि दुहिता दक्षेण न निमन्त्रिता ॥ २
एतस्मिन्नन्तरे देवीं द्रष्टुं गौतमनन्दिनी ।
जया जगाम शीलेन्द्र मन्दरं चारुकन्दरम् ॥ ३
तामभगतां सतीं दृष्ट्वा जयामेकामुवाच ह ।
किमर्थं विजया नागारज्यन्ती चापराजिता ॥ ४
सा देव्या वचनं श्रुत्वा ठवाच्च परमेश्वरीम् ।
गता निमन्त्रिताः सर्वा पश्ये मातामहस्य ताः ॥ ५
समं पित्रा गौतमेन यात्रां चैवाप्यहृत्यया ।
अहं समागता द्रष्टुं त्वां तत्र गमनोत्सुका ॥ ६
किं त्वं न यज्ञसे तत्र तथा देवो महेश्वरः ।
नामन्त्रिताऽसि तातेन उताहोस्विद् अजिष्यसि ॥ ७
गतास्तु श्रवणः सर्वे ऋषिपत्न्यः सुरास्तथा ।
मातृष्वसः शशाङ्कश्च संपत्नीको गतः कतुम् ॥ ८
चतुर्दशेषु लोकेषु जन्तवो ये चराचरा ।
निमन्त्रिताः कतौ सर्वे किं नासि त्वं निमन्त्रिता ॥ ९

'कपाली' नामसे प्रसिद्ध होंगे तथा यह तीर्थ भी
'कपालमोचन' नामसे प्रसिद्ध होगा ॥ ४६—४९ ॥

पुलस्त्यजी बोले—मुने सुरेश्वर केशवके ऐसा
कहनेपर महेश्वरने कपालमोचनतीर्थमें वेदांक विधिसे
स्नान किया। उस तीर्थमें स्नान करते ही उनके
हाथसे ब्रह्म-कपाल गिर गया तभीसे भगवान्की
कृपासे उस उद्यम तीर्थका नाम 'कपालमोचन'
पड़ा ॥ ५०—५१ ॥

पुलस्त्यजी बोले—देवर्षे! भगवान् शिव इस
प्रकार कपाली नामसे ख्यात हुए और इसी कारण वे
दक्षके द्वारा निमन्त्रित नहीं हुए प्रजापति दक्षने सतीको
अपनी पुत्री होनेपर भी कपालीकी पत्नी समझकर
निमन्त्रणके योग्य न मानकर उन्हें यज्ञमें नहीं बुलाया
इसी बीच देवीका दर्शन करनेके लिये गौतम-पुत्री जया
सुन्दर गुफावाले पर्वतश्रेष्ठ मन्दरपर गयी। जयाको वहाँ
अकेली आयी देखकर सती बोली—विजये! जयन्ती
और अपराजिता यहाँ क्यों नहीं आयी? ॥ १—४ ॥

देवीके वचनको सुनकर विजयाने उन सती परमेश्वरसे
कहा—अपने पिता गौतम और माता अहल्याके साथ वे
मातामहके सत्र (यज्ञ) में निमन्त्रित होकर सती गयी हैं
वहाँ जानेके लिये उत्सुक मैं आपसे मिलने आयी हूँ क्या
आप तथा भगवान् शिव वहाँ नहीं जा रहे हैं? क्या भित्तीने
आपको नहीं बुलाया है? अथवा आप चहाँ जायेंगे? सभी
ऋषि, ऋषि-पत्नियाँ तथा देवगण वहाँ गये हैं हे मातृष्वसः
(मौसी)! पत्नीके सहित शशाङ्क भी उस यज्ञमें गये हैं
चौदहों लोकोंके समस्त चराचर प्राणी उस यज्ञमें निमन्त्रित
हुए हैं। क्या आप निमन्त्रित नहीं हैं? ॥ ५—९ ॥

पुलस्त्य उवाच

जयायास्तद्वचः श्रुत्वा वज्रपातसमं सतीं ।
मन्युनाऽभिप्लुता बहान् पञ्चत्वमगमत् ततः ॥ १०
जया मृतां सतीं दृष्ट्वा क्रोधशोकपरिप्लुता ।
मुञ्चती वारि मेघाभ्यां सस्वरं विललाप ह ॥ ११
आकन्दितध्वनिं श्रुत्वा शूलपाणिस्त्रिलोचनः ।
आः किमेतद्वितीत्युक्त्वा जयाभ्याशमुपागतः ॥ १२
आगतो दृष्टो देवीं लतामिव वनस्पते ।
कृतां परशुना भूमीं श्लक्ष्णाङ्गीं पतितां सतीम् ॥ १३
देवीं निपतितां दृष्ट्वा जयां पप्रच्छ शंकरः ।
किमियं पतिता भूमीं निकृतेषु लता सती ॥ १४
सा शंकरवचः श्रुत्वा जया वचनमब्रवीत् ।
श्रुत्वा मखस्था दक्षस्य भगिन्यः पतिभिः सह ॥ १५
आदित्याद्यस्त्रिलोकेश समं शक्रादिभिः सुरैः ।
मातृध्वसा विपनेयमन्तर्दुःखेन दह्यती ॥ १६

पुलस्त्य उवाच

एतच्चक्रुत्वा वधो रौद्रं रुद्रः क्रोधाप्लुतो बभी ।
कुद्भस्य सर्वगात्रेभ्यो निश्चेष्टः सहसार्चिषः ॥ १७
ततः क्रोधात् त्रिनेत्रस्य गात्रोर्मोद्भवा मुने ।
गणाः सिंहमुखा जाता वीरभद्रपुरोगमा ॥ १८
गणैः परिवृतस्तस्मान्मन्दराद्विमसाङ्कयम् ।
गतः कनखलं तस्माद् यत्र दक्षोऽयजत् क्रतुम् ॥ १९
ततो गणानामधिपो वीरभद्रो महाबलः ।
दिशि प्रतीव्युत्तरायां तस्थौ शूलधरो मुने ॥ २०
जया क्रोधाद् गदां गृह्य पूर्वदक्षिणतः स्थिता ।
मध्ये त्रिशूलधृक् शर्वस्तस्थौ क्रोधान्महामुने ॥ २१
गुणारिवदनं दृष्ट्वा देवाः शक्रपुरोगमा ।
अथ यो यक्षगन्धर्वाः किमिदं त्वित्यचिन्तयन् ॥ २२
ततस्तु धनुरादाय शरांश्चाङ्गीविधोपमान् ।
द्वारपालस्तदा धर्मो वीरभद्रमुपद्रवत् ॥ २३
तदापतन्तं सहसा धर्मं दृष्ट्वा गणेश्वरः ।
करेणैकेन जग्राह त्रिशूलं वह्निस्त्रिभम् ॥ २४
कार्मुकं च द्वितीयेन तृतीयेनाथ मार्गणान् ।
चतुर्थेन गदां गृह्य धर्ममभ्यद्रवद् गणाः ॥ २५

पुलस्त्यजी बोले—बहान् (नारदजी!) वज्रपातके
समान जयाकी उस बातको सुनकर क्रोध एवं दुःखसे
भरकर सतीने प्राण छोड़ दिये। सतीको मरी हुई देखकर
क्रोध एवं दुःखसे भरी जया जीसू बहते हुए जोर-जोरसे
विलाप करने लगी। रोनेकी करुणाध्वनि सुनकर शूलपाणि
भगवान् शिव 'ओरे क्या हुआ, क्या हुआ' ऐसा कहकर
उसके पास गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने परसेसे कटी
वृक्षपर चढ़ी लताकी तरह सतीको भूमिपर मरी पड़ी
देखा तो जयासे पूछा ये सती कटी लताकी तरह
भूमिपर क्यों पड़ी हुई है? शिवके वचनको सुनकर जया
बोली है त्रिलोकेश्वर! दक्षके यज्ञमें अपने अपने
पतिके साथ बहनोंका एवं इन्द्र आदि देवोंके साथ
आदित्य आदिका निमन्त्रित होकर उपस्थित होना
सुनकर आन्तरिक दुःख (की ज्वाला) से दग्ध हो
गयीं। इससे मेरी माताकी बहन (सती) के प्राण निकल
गये ॥ १०—१६ ॥

पुलस्त्यजीने कहा जयाके इस भयंकर
(अमङ्गल) वचनको सुनकर शिवजी अत्यन्त क्रुद्ध हो
गये। उनके शरीरसे सहसा अग्निको तेज ज्वालार्ह निकलने
लगे। मुने इसके बाद क्रोधके कारण त्रिनेत्र भगवान्
शिवके शरीरके लोमोंसे सिंहके समान मुखवाले वीरभद्र
आदि बहुत-से ऋगण उत्पन्न हो गये। अपने गणोंसे घिरे
भगवान् शिव मंदरपर्वतसे हिमालयपर गये और वहाँसे
कनखल चले गये, जहाँ दक्ष यज्ञ कर रहे थे। इसके बाद
सभी गणोंमें अग्रणी महाबली वीरभद्र शूल धारण किये
पश्चिमोक्त (वायव्य) दिशामें चले गये ॥ १७—२० ॥

महामुने। क्रोधसे गदा लेकर जया पूर्व दक्षिण
दिशा (अग्निकोण) में खड़ी हो गयी और मध्यमें
क्रोधसे भरे त्रिशूल लिये शंकर खड़े हो गये। सिंहवदन
(वीरभद्र) को देखकर इन्द्र आदि देवता, ऋषि, यक्ष
एवं गन्धर्वलोग सोचने लगे कि यह क्या है? तदनन्तर
द्वारपाल धर्म धनुष एवं सर्पके समान बाणोंको लेकर
वीरभद्रकी ओर दौड़े। सहस्र धर्मको आता हुआ देखकर
गणेश्वर एक हाथमें अधिके सहस्र त्रिशूल, दूसरे हाथमें
धनुष, तीसरे हाथमें बाण और चौथे हाथमें गदा लेकर
उनकी ओर दौड़ पड़े ॥ २१—२५ ॥

ततश्चतुर्भुजं दृष्ट्वा धर्मराजो गणेश्वरम् ।
तस्यावष्टभुजो भूत्वा नानायुधधरोऽप्ययः ॥ २६

स्रग्धर्मगदाप्रासपरश्वधराङ्कुशैः ।
चापमार्गणभुजस्थी हन्तुकामो गणेश्वरम् ॥ २७

गणेश्वरोऽपि संकुद्धो हन्तुं धर्मं सनातनम् ।
सर्वं मार्गणास्तीक्ष्णान् यथा प्रावृषि तोचदः ॥ २८

तावन्मोन्यं महात्मानो शरचापधरी मुनेः ।
रुधिरारुणसिक्तरङ्गी किंशुकाविष रेजतुः ॥ २९

ततो वरास्त्रैर्गणनायकेन
जितः स धर्मः तरसा प्रसह्य ।
पराङ्मुखोऽभूद्विमन्त्र मुनीन्द्र
स वीरभद्रः प्रविशेत् यज्ञम् ॥ ३०
यज्ञवाटं प्रविष्टं तं वीरभद्रं गणेश्वरम् ।
दृष्ट्वा तु सहसा देवा उत्तस्थुः सायुधैः मुने ॥ ३१
वसवोऽष्टौ महाभागा ग्रहा नव सुदारुणाः ।
इन्द्राद्या द्वादशादित्या रुद्रास्त्वेकादशैव हि ॥ ३२
विश्वेदेवाश्च साध्याश्च सिद्धगन्धर्वपन्नगाः ।
यक्षाः किंपुरुषाश्चैव खगाश्च कथरास्तथा ॥ ३३
राजा वैवस्वताद् वंशाद् धर्मकीर्तिस्तु विश्रुतः ।
सोमवंशोद्भवश्चोग्रो भोजकीर्तिर्महाभुजः ॥ ३४
दितिजा दानवाक्षान्ये येऽन्ये तत्र समागताः ।
ते सर्वेऽभ्यद्रवन् रौद्रं वीरभद्रमुदामुधाः ॥ ३५

तत्रापतत एवाशु चापबाणधरो गणः ।
अभिदुद्राव वेगेन सर्वानेव शरोत्करैः ॥ ३६

ते शस्त्रवर्षमतुलं गणेशाय समुत्सृजन् ।
गणेशोऽपि वरास्त्रैस्तान् प्रविच्छेद विभेद च ॥ ३७

शरैः शस्त्रैश्च सततं मध्यमाना महात्मना ।
वीरभद्रेण देवाद्या अवहारमकुर्वत ॥ ३८

ततो त्रिवेश गणपो यज्ञमध्यं सुविस्तृतम् ।
जुह्वाना ऋषयो यत्र हवींषि प्रवितन्वते ॥ ३९

इसके बाद धर्मराजने चतुर्भुज गणेश्वरको देख और नानाप्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सज्जित हो तथा आठ भुजाओंको धारणकर इनका सामना किया और गणेश्वर स्वामी वीरभद्रपर प्रहार करनेकी हृष्टासे वे अपने हाथोंमें डाल, तलवार, गदा, भाला, फरसा, अंकुश, धनुष एवं बाण लेकर खड़े हो गये गणेश्वर वीरभद्र भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर धर्मको मारनेके लिये सर्पाकारिक मेषके सदृश उनके ऊपर वीक्षण बाणोंकी वर्षा करने लगे मुने! धनुषको लिये रुधिरसे लथपथ (उत्तप्लव) लाल शरीरवाले वे दोनों महात्मा पलाश-पुष्पके समान दोखने लगे ॥ २६—२९ ॥

मुनियज! इसके बाद श्रेष्ठ शस्त्रास्त्रोंके कारण वीरभद्रसे पराजित होकर धर्मराज खिन्न होकर पीछे हट गये। इधर वीरभद्र यज्ञशालामें घुस गये। मुने! गणेश्वर वीरभद्रको यज्ञमण्डपमें घुसते देखकर सहसा सभी देवता अस्त्र-शस्त्र लेकर उठ खड़े हुए। महाभाग आठों वसु, अत्यन्त दारुण नवों ग्रह, इन्द्र आदि दिक्पाल, द्वादश आदित्य, एकादश रुद्र, विश्वेदेव, साध्यगण, सिद्ध, गन्धर्व, पन्नग, यक्ष, किंपुरुष, महाबाहु, विहंगम, चक्रधर, वैवस्वत-वंशीय प्रसिद्ध राजा धर्मकीर्ति, चन्द्रवंशीय महाबाहु, उग्र बलशाली राजा भोजकीर्ति, दैत्य-दानव तथा वहाँ आये हुए अन्य सभी लोग आयुध लेकर रौद्र वीरभद्रकी ओर दीढ़ पड़े ॥ ३०—३५ ॥

धनुष-बाण धारण किये गणोंने उन देवताओंके आगे ही उनपर सेगपूर्वक शस्त्रोंद्वारा आक्रमण कर दिया। इधर देवताओंने भी वीरभद्रके ऊपर अतुलनीय बाणोंकी वर्षा की। गणनायक वीरभद्रने देवताओंके अस्त्रोंको छिन्न-भिन्न कर डाला महात्मा वीरभद्रद्वारा विविध बाणों और अस्त्रोंसे आहत होकर देवता आदि रणभूमिसे भाग चले तब गणपति वीरभद्र सुविस्तृत यज्ञके मध्यमें प्रविष्ट हुए जहाँ मुनिगण यज्ञकुण्डमें हविषकी आहुति दे रहे थे ॥ ३६—३९ ॥

ततो महर्षयो दृष्ट्वा भृगेन्द्रवदनं गणाम् ।
 भीता होत्रं परित्यज्य जग्मुः शरणमन्युतम् ॥ ४०
 तान्नातश्चक्रभृद् दृष्ट्वा महर्षीस्त्वस्तमानसान् ।
 न भेतव्यमितीत्युक्त्वा समुत्तस्थी वरायुधः ॥ ४१
 समानम्य ततः हाह्वै शरानग्निशिखोपमान् ।
 मुमोच वीरभद्राय कायावरणदारणान् ॥ ४२
 ते तस्य कायमास्त्राद्य भ्रमोघा वै हरेः शराः ।
 निषेतुर्भुवि भग्नाज्ञा नास्तिकादिषु व्याचक्र ॥ ४३
 शरांस्त्वपोधान्मोघत्वमापन्नान्बीक्ष्य केशवः ।
 दिव्यैस्त्रैर्वीरभद्रं प्रच्छदयितुमुद्यतः ॥ ४४
 तानस्त्रान् वासुदेवेन प्रक्षिप्तान् गणनायकः ।
 वारयापास शूलेन गदया मार्गर्षिस्तथा ॥ ४५
 दृष्ट्वा विषन्नान्यस्त्राणि गदां चिक्षेप माधवः ।
 त्रिशूलेन समाहृत्य पातयामास भूतले ॥ ४६
 मुञ्चत् वीरभद्राय प्रचिक्षेप हत्त्रायुधः ।
 साङ्गत्वं च गणेशोऽपि गदया प्रत्यवारयत् ॥ ४७
 मुञ्चत् सगदं दृष्ट्वा साङ्गत्वं च निवारितम् ।
 वीरभद्राय चिक्षेप चक्रं क्रोधात् खगञ्जजः ॥ ४८
 तमापतन्तं शतसूर्यकल्पं
 सुदर्शनं बीक्ष्य गणेश्वरस्तु ।
 शूलं परित्यज्य जग्राह चक्रं
 यथा मर्दुं मीनवपुः सुरेन्द्रः ॥ ४९
 चक्रे निगीर्णं गणनायकेन
 क्रोधातिरक्तोऽसितचारुनेत्रः ।
 मुरारिरभ्येत्य गणपतिधेन्द्रः
 मुत्क्षिप्य वेगाद् भुवि निष्पिपेव ॥ ५०
 हरिबाहुरुवेगेन विनिष्पिष्टस्य भूतले ।
 सहितं रुधिरोद्गारिर्मुञ्जाच्चक्रं विनिर्गतम् ॥ ५१
 ततो निःसृतमालोक्य चक्रं कैटभनाशनः ।
 समादाय हृषीकेशो वीरभद्रं मुमोच ह ॥ ५२
 हृषीकेशेन मुक्तस्तु वीरभद्रो जटाधरम् ।
 गत्वा निवेदयामास वासुदेवात्पराजयम् ॥ ५३
 ततो जटाधरो दृष्ट्वा गणेशं शोभिताम्बुतम् ।
 विश्वसन्तं यथा नार्गं क्रोधं चक्रे तदाख्ययः ॥ ५४

तब वे महर्षि सिंहमुख वीरभद्रको देखकर भयसे
 हड़कन छोड़कर विष्णुकी शरणमें चले गये। चक्रधारी
 विष्णुने भयभीत महर्षियोंको दुःखी देखकर 'हरो मत'
 ऐसा कहकर अपने श्रेष्ठ अस्त्र लेकर छड़े हो गये और
 अपने शङ्ख धनुषको चढ़ाकर वीरभद्रके ऊपर शरीरको
 विदीर्ण करनेवाले अग्निशिखाके तुल्य बाणोंको बचा
 करने लगे पर श्रीहरिके व अमोघ (सफल) बाण
 वीरभद्रके शरीरपर पहुँचकर भी पृथ्वीपर ऐसे (यों ही
 व्यर्थ होकर) गिर पड़े, जैसे कि यावत् नास्तिकके पाससे
 विफल—निपट होकर लौट जाते हैं ॥ ४०—४३ ॥

अपने (अव्यर्थ) बाणोंको व्यर्थ होते देखकर भगवान्
 विष्णु पुनः वीरभद्रको दिव्य अस्त्रोंसे डक देनेके लिये
 तैयार हो गये वासुदेवके द्वारा प्रयुक्त उन बाणोंको
 गणश्रेष्ठ वीरभद्रने शूल, गदा और बाणोंसे रोककर विफल
 कर दिया भगवान् विष्णुने अपने अस्त्रोंको नष्ट होते
 देखकर उसपर क्रोधादको गदा फेंकी। किंतु वीरभद्रने
 उसे भी अपने त्रिशूलसे काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया।
 हत्त्रायुधने वीरभद्रकी ओर मूसल और हल फेंका जिसे
 वीरभद्रने गदासे निवारित कर दिया गदाके सहित मूसल
 और हलकी नष्ट हुआ देखकर गरुडभ्वज विष्णुने क्रोधसे
 वीरभद्रके ऊपर सुदर्शनचक्र चला दिया ॥ ४४—४८ ॥

गणेश वीरभद्रने सैकड़ों सूर्यके सदृश सुदर्शन
 चक्रको अपनी ओर आते देखा तो शूलको छोड़कर
 चक्रको जड़ ऐसे निगल लिया जैसे मीनशरीरधारी विष्णु
 मधुदैत्यको निगल गये थे। वीरभद्रद्वारा चक्रके निगल
 लिये जानेपर विष्णुके सुन्दर काले नेत्र क्रोधसे लाल हो
 गये। वे उसके निकट पहुँच गये और उसे वेगसे उठा
 लिया तथा पृथ्वीपर पटककर उसे पीसने लगे। भगवान्
 विष्णुकी भुजाओं और जाँघोंके प्रबल वेगसे भूतलमें
 पटके गये वीरभद्रके मुखसे रुधिरके फौहारेके साथ चक्र
 बाहर निकल आया। चक्रको मुखसे निकला देखकर
 भगवान् विष्णुने उसे ले लिया और वीरभद्रको छोड़
 दिया ॥ ४९—५२ ॥

भगवान् विष्णुद्वारा छोड़ दिये जानेपर वीरभद्रने
 जटाधारी शिवके निकट जाकर वासुदेवसे हुई अपनी
 पराजयका वर्णन किया। फिर वीरभद्रकी खूनसे लथ-
 पथ तथा सर्पके सदृश निःशक्त लेते देख अव्यय

ततः क्रोधाभिभूतेन वीरभद्रोऽथ शंभुना ।
 पूर्वोद्दिष्टे तदा स्थाने सायुधस्तु निवेशितः ॥ ५५
 वीरभद्रमकादिश्य भद्रकालीं च शंकरः ।
 निवेश क्रोधताप्राक्षो यज्ञवार्तं त्रिशूलभृत् ॥ ५६
 ततस्तु सेवप्रवरे जटाधरे
 त्रिशूलपाणी त्रिपुरान्तकारिणि ।
 दक्षस्य यज्ञं विशति क्षयंकरे
 जातो ऋषीणां प्रवरो हि साध्वसः ॥ ५७

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें चौथा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

दक्ष-यज्ञक विध्वंस, देवताओंका प्रताड़न, शंकरके कालरूप और राक्षसादि
 रूपोंमें स्वरूप कथन

पुलस्त्य उवाच

जटाधरं हरिर्दृष्ट्वा क्रोधाद्वरकलौचनम् ।
 तस्मत् स्थानदपाक्रम्य कुब्जाग्रेऽन्तर्हितः स्थितः ॥ १
 वसवोऽष्टौ हरं दृष्ट्वा सुस्रुवर्षंगतो मुने ।
 सा तु जाता सन्निच्छेष्टा सीता नाम सरस्वती ॥ २
 एकादश तथा रुद्रास्त्रिनेत्रा दुषकेतवाः ।
 कान्दिशीका स्वयं जम्बुः समभ्येत्यैव शंकरम् ॥ ३
 विश्वेऽश्विनौ च साध्याश्च मरुतोऽनलभास्कराः ।
 सम्पासाद्य पुरोडाशं भक्षयन्तो महामुने ॥ ४
 चन्द्रः समभृक्षगणैर्निर्जा समुपदर्शयन् ।
 उत्पत्वारुह्य गगनं स्वमधिष्ठानमास्थितः ॥ ५
 कश्यपाद्याश्च ऋषयो जपन्तः शतरुद्रियम् ।
 पुष्पाञ्जलिपुटा भूत्वा प्रणताः संस्थिता मुने ॥ ६
 अमकृद् दक्षदयिता दृष्ट्वा रुद्रं जलाधिकम् ।
 शक्रादीनां सुरेशानां कृपणं बिललाप ॥ ७
 ततः क्रोधाभिभूतेन शंकरेण महात्पना ।
 तलप्रहरिरमरा बहवो विनिपातिताः ॥ ८

जटाधर (शंकर) ने क्रोध किया। इसके बाद क्रोधसे तिलमिलाये शंकरने अस्त्रसहित वीरभद्रको पहले बतलाये स्थानपर बैठा दिया। वे त्रिशूलधर शंकर वीरभद्र तथा भद्रकालीको आदेश देकर क्रोधसे लाल आँखें किये यज्ञमण्डपमें प्रविष्ट हुए। त्रिपुर नामक राक्षसको मारनेवाले उन त्रिशूलपाणि त्रिपुरारि देवश्रेष्ठ जटाधरके दक्ष-यज्ञमें प्रवेश करते ही ऋषियोंमें भारी भय उत्पन्न हो गया ॥ ५३—५७ ॥

पुलस्त्यजी बोले—जटाधारी भगवान् शिवको क्रोधसे आँखें लाल किये देखकर भगवान् विष्णु इस स्थानसे हटकर कुब्जाग्र (ऋषिकेश) में छिप गये। मुने! क्रुद्ध शिवको देखकर आठ वसु तैजीसे पिघलने लगे, इस कारण वहाँ सीता नामकी श्रेष्ठ नदी प्रवाहित हुई। वहाँ पूजाके लिये स्थित त्रिनेत्रधारी ग्यारहों रुद्र भयके मारे इधर उधर भागते हुए शंकरके निकट जाकर उनमें ही शौच हो गये। महामुनि नारद! शंकरको निकट आते देख विश्वदेवगण, अश्विनिकुमार, साध्यवृन्द, वायु, अग्नि एवं सूर्य पुरोडाश खाते हुए भाग गये ॥ १—४ ॥

फिर वो ताराओंके साथ चन्द्रमा रात्रिको प्रकाशित करते हुए आकाशमें ऊपर जाकर अपने स्थानपर स्थित हो गये इधर कश्यप आदि ऋषि शतरुद्रिय (मन्त्र) का जप करते हुए अञ्जलिमें पुष्प लेकर विनीतभावसे खड़े हो गये। इत्यादि सभी देवताओंसे अधिक बली रुद्रको देखकर दक्ष-पत्नी अत्यन्त दीन होकर बार-बार करुण विलाप करने लगी। इधर क्रुद्ध भगवान् शंकरने धम्मड़ोंके प्रहारसे अनेक देवताओंको मार गिराया ॥ ५—८ ॥

पादप्रहरिरपरे त्रिशूलेनपरे मुने ।
 दृष्टवन्निना तथैवान्ये देवाद्याः प्रलपीकृताः ॥ ९
 ततः पूषा हरं वीक्ष्य विनिघ्नन् सुरसुरान् ।
 क्रोधान् बाहु प्रसार्याथ प्रदुश्रव महेश्वरम् ॥ १०
 तमापतन्तं भगवान् संनिरीक्ष्य त्रिलोचनः ।
 बाहुभ्यां प्रतिजग्राह करेणैकेन शंकरः ॥ ११
 कराभ्यां प्रगृहीतस्य शंभुनांशुमतोऽपि हि ।
 कराह्नुलिभ्यो निश्चेरुसुगंधाराः समन्ततः ॥ १२
 ततो वेगेन महता अंशुमन्तं दिवाकरम् ।
 भ्रामयामास सततं सिंहो भृगुशिशुं यथः ॥ १३
 भ्रामितस्यानिवेगेन नारदांशुमतोऽपि हि ।
 भुजी ह्रस्वत्वमापन्नी त्रुटितस्त्रायुबन्धनी ॥ १४
 रुधिराज्जुतसर्वाङ्गमंशुमन्तं महेश्वरः ।
 संनिरीक्ष्योत्सर्जनमन्यतोऽभिजगाम ह ॥ १५
 ततस्तु पूषा विद्वन् दशनाग्निं विदर्शयन् ।
 प्रोवाचैहोहि कापालिन् पुनः पुनरश्वेश्वरम् ॥ १६
 ततः क्रोधाभिभूतेन पूष्यो वेगेन शंभुना ।
 मुष्टिनाहत्य दशनाः पातिता धरणीतले ॥ १७
 भग्नदन्तस्तथा पूषा शोणिताभिधनुतानन ।
 पपात भुवि निःसंज्ञो वज्राहत इव्यचलः ॥ १८
 भगोऽभिबीक्ष्य पूषाणं पतितं रुधिरगोक्षितम् ।
 नेत्राभ्यां घोररूपाभ्यां खूबध्वजमवैक्षत ॥ १९
 त्रिपुरजस्ततः क्रुद्धस्तलेनाहत्य अक्षुषी ।
 निपातयामास भुवि क्षोभयन् सर्वदेवताः ॥ २०
 ततो दिवाकराः सर्वे पुरस्कृत्य शतक्रतुम् ।
 मरुद्भिश्च हुताग्नेश्च भ्याग्जगमुर्दिशो दश ॥ २१
 प्रतियातेषु देवेषु प्रह्लादाद्या द्वितीधराः ।
 नमस्कृत्य ततः सर्वे तस्थुः प्राञ्जलयो मुने ॥ २२
 ततस्तं यज्ञवाटं तु शंकरो घोरचक्षुषा ।
 ददर्श वर्यं कोपेन सर्वाङ्गेन सुरासुरान् ॥ २३
 ततो धिलिलिखरे वीराः प्रणेमुर्दुद्रुवुस्तथा ।
 भ्यादन्वो हरं दृष्ट्वा गता वैवस्वतक्षयम् ॥ २४

मुने ! शंकरने इसी प्रकार कुछ देवताओंको पैतृक प्रहारसे, कुछको त्रिशूलसे और कुछको अपने तृतीय नेत्रकी अग्निद्वारा नष्ट कर दिया। उसके बाद देवों एवं असुरोंका संहार करते हुए शंकरको देखकर पूषादेवता (अन्यतम सूर्य) क्रोधपूर्वक दोनों बाहोंको फैलाकर शिवजीको और दौड़े। त्रिलोचन शिवने उन्हें अपनी ओर आते देख एक ही हाथसे उनकी दोनों भुजाओंको पकड़ लिया। शिवद्वारा सूर्यके पकड़ो गयी दोनों भुजाओंकी अङ्गुलियोंमें चारों ओर रक्तकी धारा प्रवाहित होने लगी ॥ ९-१२ ॥

फिर भगवान् शिव दिवाकर सूर्यदेवको अत्यन्त वेगसे ऐसे घुमाने लगे जैसे सिंह हिरण-शावकको घुमाता (दौड़ाता) है। नारदजी अत्यन्त वेगसे घुमाये गये सूर्यकी भुजाओंके स्नायुबन्ध टूट गये और वे (स्नायुरें) बहुत छोटी—नष्टप्राय हो गयीं। सूर्यके सभी अङ्गोंको गहरे लथपथ देखकर उन्हें छोड़कर शंकरजी दूसरी ओर चले गये इसी समय हैंसते एवं दौत दिखलाते हुए पूषा देवता (बारह अर्बदित्योंमेंसे एक सूर्य) कहने लगे—ओ कपालिन् ! आओ इधर आओ ॥ १३-१६ ॥

इसपर क्रुद्ध रुद्रने वेगपूर्वक मुक्केसे मारकर पूषाके दोनोंको धरतीपर गिरा दिया इस प्रकार दौत टूटने एवं रक्तसे लथपथ होकर पूषा देवता वज्रसे नष्ट हुए पर्वतके समान बेहोश होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। इस प्रकार गिरे हुए पूषाको रुधिरसे लथपथ देखकर भग देवता (तृतीय सूर्यभेद) भयंकर नेत्रोंसे शिवजीको देखने लगे। इससे क्रुद्ध त्रिपुरान्तक शिवने सभी देवताओंको धुब्ध करत हुए हथेलीसे पीटकर भगकी दोनों आँखें पृथ्वीपर गिरा दीं ॥ १७-२० ॥

फिर क्या था ? सभी दसों सूर्य इन्द्रको आगे कर मरुद्गणों तथा अग्निदेवोंके साथ भयसे दसों दिशाओंमें भाग गये। मुने ! देवताओंके चले जानेपर प्रह्लाद आदि दैत्य महेश्वरको प्रणामकर अञ्जलि बाँधकर खड़े हो गये इसके बाद शंकर उस यज्ञमण्डपको तथा सभी देवासुरोंको दग्ध करनेके लिये क्रोधपूर्ण घोर दृष्टिसे देखने लगे। इधर दूसरे वीर महेश्वरकी देखकर भयसे जहाँ तहाँ छिप गये कुछ लोग प्रणाम करने लगे कुछ भाग गये और कुछ तो भयसे ही सीधे यमपुरी पहुँच गये ॥ २१-२४ ॥

प्रयोऽग्नयस्त्रिभिर्नैर्दुःसहं समवैक्षत ।
दृष्टमात्रास्त्रिनेत्रेण भस्मीभूताभवन् क्षणात् ॥ २५

अग्नौ प्रणष्टे यज्ञोऽपि भूत्वा दिव्यवपुर्मृगः ।
दुद्राव विक्लवगतिर्दक्षिणासहितोऽम्बरं ॥ २६

तमेवानुससारेणैकाक्षपमानम्य वैगवान् ।
शरं पाशुपतं कृत्वा कालरूपी महेश्वरः ॥ २७

अर्द्धेन यज्ञवादान्ते जटाधर इति श्रुतः ।
अर्द्धेन गगने शर्वः कालरूपी च कथ्यते ॥ २८

शरद उवाच

कालरूपी त्वयाख्यातः शंभुर्मग्नगोचरः ।
लक्षणं च स्वरूपं च सर्वं व्याख्यातुमर्हसि ॥ २९

पुलस्त्य उवाच

स्वरूपं त्रिपुरास्य वदित्वे कालरूपिणः ।
येषाम्बरं मुनिश्रेष्ठ व्याप्तं लोकहितेषुना ॥ ३०

यत्राश्विनी च भरणी कृत्तिकायास्तथाशकः ।
मेघो राशिः कुजक्षेत्रं तच्छिरः कालरूपिणः ॥ ३१

आग्नेयांशास्त्रयो ब्रह्मन् द्राजापत्यं कवेर्गृहम् ।
सौम्याद्धं दधनामेदं वदनं परिकीर्तितम् ॥ ३२

मृगार्द्धमाश्रित्याशांस्त्रयः सौम्यगृहं त्विदम् ।
मिथुनं भुजयोस्तस्य गगनस्थस्य शूलिनः ॥ ३३

आदित्यांशश्च पुष्यं च आश्लेषा शशिनो गृहम् ।
राशिः कर्कटको नाम पार्श्वं मखविनाशिनः ॥ ३४

पित्र्यर्द्धं भगदैवत्यमुत्तमंशश्च केसरी ।
सूर्यक्षेत्रं विभोर्ब्रह्मन् हृदयं परिणीयते ॥ ३५

उत्तरांशास्त्रयः पाणिश्चित्रार्धं कन्यका त्वियम् ।
सोमपुत्रस्य सद्यतत् द्वितीयं जठरं विभोः ॥ ३६

चित्रांशद्वितयं स्वातिर्विशालायांशकत्रयम् ।
द्वितीयं शुक्रसदनं तुला नाभिरुदाहृता ॥ ३७

फिर भगवान् जिवने अपने तीनों नेत्रोंसे तीनों अग्रियों (आहवनीय, गार्हपत्य और शालाग्रियों) को देखा उनके देखते ही वे अग्रियाँ क्षणभरमें नष्ट हो गयीं उनके नष्ट होनेपर यज्ञ भी मृगका स्त्रीर धारण कर आकाशमें दक्षिणाके साथ तीव्रगतिसे भाग गया कालरूपी वेगवान् भगवान् सिव धनुषको झुकाकर उसपर पाशुपत बाण संधानकर उस मृगके पीछे दौड़े और आधे रूपसे तो यज्ञशालामें स्थित हुए जिनका नाम 'जटाधर' पड़ा। इधर आधे दूसरे रूपसे वे आकाशमें स्थित होकर 'काल' कहलाये ॥ २५—२८ ॥

नारदजी बोले—(धुने) आपने आकाशमें स्थित शिवको कालरूपी कहा है आप उनके सम्पूर्ण स्वरूप और लक्षणोंकी भी व्याख्या कर दें ॥ २९ ॥

पुनस्त्यजीने कहा—मुनिवर मैं त्रिपुरको मारनेवाले कालरूपी उन शंकरके स्वरूपको (वास्तविक रूपको) बतलाता हूँ। उन्होंने लोककी भलाइकी इच्छासे ही आकाशको व्याप्त किया है। सम्पूर्ण अश्विनी तथा भरणी नक्षत्र एवं कृत्तिकाके एक चरणसे युक्त भीमका क्षेत्र मेघ राशि हो कालरूपी महादेवका सिर कहा गया है। ब्रह्मम् इसी प्रकार कृत्तिकाके तीन चरण, सम्पूर्ण रोहिणी नक्षत्र एवं मृगशिराके दो चरण, यह शुक्रकी वृष राशि ही उनका मुख है। मृगशिराके शेष दो चरण, सम्पूर्ण अर्द्धा और पुनर्वसुके तीन चरण बुधकी (प्रथम) स्थितिस्त्वान मिथुन राशि आकाशमें स्थित शिवकी दोनों पुजाएँ हैं ॥ ३०—३३ ॥

इसी प्रकार पुनर्वसुका अन्तिम चरण, सम्पूर्ण पुष्य और आश्लेषा मक्षत्रोंवाला चन्द्रमाका क्षेत्र कर्क राशि यज्ञविनाशक शंकरके दोनों पार्श्व (बगल) हैं। ब्रह्मन्! सम्पूर्ण मघा, सम्पूर्ण पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीका प्रथम चरण, सूर्यकी सिंह राशि शंकरका हृदय कहा जाता है। उत्तराफाल्गुनीके तीन चरण, सम्पूर्ण हस्त नक्षत्र एवं चित्राके दो पहले चरण, बुधकी द्वितीय राशि, कन्या राशि शंकरका जठर है चित्राके शेष दो चरण, स्वातीके चारों चरण एवं विशाखाके तीन चरणोंसे युक्त शुक्रका दूसरा क्षेत्र तुला राशि महादेवकी नाभि है ॥ ३४—३७ ॥

विशाखांशमनूराधा ज्येष्ठा भीमगृहं त्रिवदम् ।
द्वितीयं वृश्चिको राशिर्येदं कालस्वरूपिणः ॥ ३८

मूलं पूर्वोत्तरांशश्च देवाचार्यगृहं धनुः ।
करुदुगलमीशस्य अमरये प्रगीयते ॥ ३९

उत्तरांशास्वयो ऋक्षं श्रवणं मकरो मुने ।
धनिष्ठार्थं शनिक्षेत्रं जानुनी परमेष्ठिनः ॥ ४०

धनिष्ठार्थं ज्ञतभिषा प्रौष्ठपद्यांशकप्रयम् ।
मीरं सद्यापरमिदं कुम्भो जङ्घे च विश्रुते ॥ ४१

प्रौष्ठपद्यांशमेकं तु उत्तरां रेवती तथा ।
द्वितीयं जीवसदनं मीनस्तु चरणावुभौ ॥ ४२

एवं कृत्वा कालरूपं त्रिनेत्रो
यज्ञं क्रोधाभ्यामर्गणैराजवान् ।

विद्वद्भ्रातृ वेदनाबुद्धिमुक्तः
खे संतस्थौ तारकाभिश्चिताङ्गः ॥ ४३

नारद उवाच

राशयो गदिता सहांस्त्वया द्वादश वै भग्न ।
तेषां विशेषतो बृद्धिं लक्षणानि स्वरूपतः ॥ ४४

पुलस्त्य उवाच

स्वरूपं तव वक्ष्यामि राशीनां भृशु नारद ।
यादृशा यत्र संचारा यस्मिन् स्थाने वसन्ति च ॥ ४५

भेषः समानमूर्तिश्च अजाविकधनादिषु ।
संचारस्थानमेवास्य धान्यरत्नाकरादिषु ॥ ४६

नवश्राद्धलसंछन्वसुधायां च सर्वशः ।
नित्यं चरति फल्सेषु सरसां पुलिनेषु च ॥ ४७

वृषः सदृशरूपो हि चरते गोकुलादिषु ।
तस्याधियासभूमिस्तु कृषीवलधराश्रयः ॥ ४८

स्त्रीपुंसयोः समं रूपं शय्यासनपरिग्रहः ।
वीणावाद्यधृङ् मिथुनं गीतनर्तकशिल्पिषु ॥ ४९

स्थितः क्रीडारतिर्नित्यं विहारान्निरस्य तु ।
मिथुनं नाम विख्यातं राशिर्ह्येधात्मकः स्थितः ॥ ५०

विशाखाका एक चरण, सम्पूर्ण अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र, मङ्गलका द्वितीय क्षेत्र वृश्चिक राशि कासरूपी महादेवका उपस्थ है। सम्पूर्ण मूल पूरा पूर्वाषाढ और उत्तराषाढको प्रथम चरणवाली धनु राशि जो बृहस्पतिका क्षेत्र है, महेश्वरके दोनों ऊपर हैं। मुने! उत्तराषाढके शेष तीन चरण, सम्पूर्ण ऋषण नक्षत्र और धनिष्ठाके दो पूर्व चरणको मकर राशि शनिका क्षेत्र और परमेष्ठी महेश्वरके दोनों घुटने हैं। धनिष्ठाके दो चरण, सम्पूर्ण ज्ञतभिष और पूर्वभाद्रपदके तीन चरणवाली कुम्भ राशि शनिका द्वितीय गृह और शिवकी दो जंघायें हैं ॥ ३८-४१ ॥

पूर्वभाद्रपदके शेष एक चरण, सम्पूर्ण उत्तरभाद्रपद और सम्पूर्ण रेवती नक्षत्रोंवाला बृहस्पतिका द्वितीय क्षेत्र एवं मीन राशि इनके दो चरण हैं इस प्रकार कालरूप धारणकर शिवने क्रोधपूर्वक हरिणरूपधारी यज्ञको बाणोंसे मारा। उसके बाद बाणोंसे विद्व होकर, किंतु वेदनाको अनुभूति न करता हुआ, वह यज्ञ ताराओंसे घिरे शरीरवाला होकर आकाशमें स्थित हो गया ॥ ४२-४३ ॥

नारदजीने कहा—ब्रह्मन्! आपने मुझसे बारहों राशियोंका वर्णन किया। अब विलक्षणरूपसे इनके स्वरूपके अनुसार लक्षणोंकी बातलायें ॥ ४४ ॥

पुलस्त्यजी बोले—नारदजी! आपको मैं राशियोंका स्वरूप बतलाता हूँ, सुनिये। ये जैसी हैं तथा जहाँ संचार और निवास करती हैं वह सभी वर्णित करता हूँ। मेष राशि भेड़के समान आकारवाली है। बकरो, भेड़, धन-धान्य एवं रत्नाकरादि इसके संचार-स्थान हैं तथा नवदुर्वासे आच्छादित समग्र पृथ्वी एवं पुष्पित वनस्पतियोंसे युक्त सरोवरोंके पुलिनोमें यह नित्य संचरण करती है। वृषभके सम्पन्न रूपयुक्त वृषभराशि गोकुलादिमें विचरण करती है तथा कृषकोंकी भूमि इसका निवास-स्थान है ॥ ४५-४८ ॥

मिथुन राशि एक स्त्री और एक पुरुषके साथ-साथ रहनेके समान रूपवाली है। यह शय्या और आसनोपर स्थित है। पुरुष-स्त्रोके हाथोंमें वीणा एवं (अन्य) वाद्य हैं इस राशिका संचरण गानेवालों, नाचनेवालों एवं शिल्पियोंमें होता है। इस द्वित्वभाष्य राशिको मिथुन कहते हैं। इस राशिका निवास क्रीडास्थल एवं

कर्कः कुलीरेण समः सलिलस्थः प्रकीर्तितः ।
केदारवापीपुलिने विविक्तावनिरिव च ॥ ५१

सिंहस्तु पर्वतारण्यदुर्गकन्दरभूमिषु ।
वसते व्याधपल्लीषु गह्वरेषु गुहासु च ॥ ५२

झीहिप्रदीपिककरा नावारुढा च कन्यका ।
घरते स्त्रीरतिस्थाने वसते नङ्गवलेषु च ॥ ५३

तुलापाणिश्च पुरुषो श्रीध्यापणविचारकः ।
नगराध्वानशालासु वसते तत्र नारदः ॥ ५४

श्रध्वत्पीकसंघारी वृश्चिको वृश्चिकाकृतिः ।
विषगोम्वकीटादिपाषाणादिषु संस्थितः ॥ ५५

धनुस्तुरङ्गजघनो दीप्यमानो धनुर्धरः
वाजिशूरास्त्रविहीनः स्थायी गजश्वादिषु ॥ ५६

मृगास्यो मकरो ब्रह्मन् वृषस्कन्धेक्षणाङ्गजः ।
मकरोऽसी नदीचारी वसते च महीदधौ ॥ ५७

रिक्तकुम्भश्च पुरुषः स्कन्धधारी जलाप्लुतः ।
घृतशालाचरः कुम्भः स्थायी शीपिठकसंघसु ॥ ५८

मीनद्वयमधासक्तं मीनस्तीर्थाब्धिसंचरः ।
वसते पुण्यदेशेषु देवब्राह्मणसंघसु ॥ ५९

लक्षणा गदितास्तुभ्यं मेघादीनां महामुने ।
न कस्यचित् त्वयाख्येयं गुह्यमेतत्पुरातनम् ॥ ६०

एतन् मया ते कथितं सुर्ये
यथा त्रिनेत्रः प्रमथाय यज्ञम् ।
पुण्यं पुराणं परमं पवित्रं
मखात्तत्त्वान्पापहरं शिवं च ॥ ६१

विहारः भूमियोंमें होता है। कर्क राशि कंकड़ेके रूपके समान रूपवाली है एवं जलमें रहनेवाली है अलसे पूर्ण क्यारी एवं नदी तीर अथवा बालुका एवं एकान्त भूमि इसके रहनेके स्थान हैं सिंह राशिका निवास घन, पर्वत, दुर्गमस्थान, कन्दरा, व्याधोंके स्थान, गुफा आदि होता है ॥ ४९-५२ ॥

कन्या राशि अन्न एवं दीपक हाथमें लिये हुए है तथा नौकापर अरुद्ध है यह स्त्रियोंके रतिस्थान और सरपत, कण्ठा आदिमें विचरण करती है। नारद तुला राशि हाथमें तुला लिये हुए पुरुषके रूपमें गलियों और बाजारोंमें विचरण करती है तथा नगरों, मार्गों एवं भवनोंमें निवास करती है। वृश्चिक राशिका आकार बिच्छू-जैसा है। यह गड़े एवं बल्मीक आदिमें विचरण करती है। यह विष, गोबर, कीट एवं पत्थर आदिमें भी निवास करती है। धनु राशिकी जंघा घोड़ेके समान है यह ज्योतिःस्वरूप एवं धनुष लिये है यह घुड़सवारी, बीरताके कार्य एवं अस्य-सत्त्वोंका ज्ञाता तथा सूर है। गज एवं रथ आदिमें इसका निवास होता है ॥ ५३-५६ ॥

ब्रह्मन्! मकर राशिका मुख मृगके मुख सदृश एवं कंधे वृषके कन्धोंके तुल्य तथा नेत्र हाथीके नेत्रके समान हैं यह राशि नदीमें विचरण करती तथा समुद्रमें विश्राम करती है। कुम्भ राशि रिक्त घड़ेको कंधेपर लिये जलसे भीगे पुरुषके समान है इसका संचार स्थान घृतगृह एवं सुखलय (मद्यशाला) है। मीन राशि दो संयुक्त मछलियोंके आकारवाली है। यह तीर्थस्थान एवं समुद्र देशमें संचरण करती है। इसका निवास पवित्र देशों, देवमन्दिरों एवं ब्राह्मणोंके घरोंमें होता है। महामुने! मैंने आपको मेघादि राशियोंका लक्षण बतलाया। आप इस प्राचीन रहस्यको किसी अपात्रसे न बतलाइयेगा। देवर्षि! भगवान् शिवने जिस प्रकार यज्ञको प्रमथित किया, उसका मैंने आपसे वर्णन कर दिया। इस प्रकार मैंने आपको श्रेयस्कर, परम पवित्र, पापहारी एवं कल्याणकारी अत्यन्त पुराना पुराण-आख्यान सुनाया ॥ ५७-६१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें श्रीचर्चा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

छठा अध्याय

नर-नारायणकी उत्पत्ति, तपश्चर्या, बदरिकाश्रमकी वसन्तकी शोभा, काम दाह और कामकी अनङ्गताका वर्णन

पुलस्त्य उवाच

इन्द्रो ब्रह्मणो योऽसौ धर्मो दिव्यवपुर्मुने ।
 दाक्षायणी तस्य भार्ग्य तस्यामजनयत्सुतान् ॥ १
 हरिं कृष्णं च देवर्षे नारायणनरी तथा ।
 योगाभ्यासरती नित्यं हरिकृष्णौ बभूवतुः ॥ २
 नरनारायणी चैव जगतो हितकाम्यया ।
 तप्येतां च तपः सौम्यौ पुराणायुधिसत्तमौ ॥ ३
 प्रालेयाद्रिं समागम्य तीर्थं बदरिकाश्रमे ।
 गृणन्तौ तत्परं बह्व गङ्गाया विपुले तटे ॥ ४
 नरनारायणाभ्यां च जगदेतच्चराचरम् ।
 तापितं तपसा ब्रह्मशक्रः क्षोभं तदा ययौ ॥ ५
 संक्षुब्धस्तपसा ताभ्यां क्षोभणाय शतक्रतुः ।
 रम्भाद्याप्सरसः श्रेष्ठाः प्रेम्बयत्स महाश्रमम् ॥ ६
 कन्दर्पश्च सुदुर्धर्षश्चूताङ्कुरमहायुधः ।
 समं सहचरेणैव वसन्तेनाश्रमं गतः ॥ ७
 ततो माधवकन्दर्पी ताक्षैवाप्सरसो वराः ।
 बदर्याश्रममागम्य विचित्रौदुर्यधेच्छया ॥ ८
 ततो वसन्ते संप्राप्ते किंशुका ज्वलनप्रभाः ।
 निष्पन्नाः सततं रेजुः शोभयन्तो घरातलम् ॥ ९
 शिशिरं नाम मातङ्गं विदार्य नखैरिव ।
 वसन्तकेसरीं प्राप्य पलाशकुसुमैर्मुने ॥ १०
 मया तुषारीयकरी निर्जितः स्वेन तेजसा ।
 तमेव इमतेषुष्वैः वसन्तः कुन्दकुङ्कुमैः ॥ ११
 वनानि कर्णिकाराणां पुष्पितानि विरेजिते ।
 यथा नरेन्द्रपुत्राणि कनकाभरणानि हि ॥ १२

पुलस्त्यजी बोले—मुने! ब्रह्माजीके हृदयसे जो दिव्यदेहधारी धर्म प्रकट हुआ था, उसने दक्षकी पुत्री 'मूर्ति' नामकी भार्ग्यसे हरि, कृष्ण, नर और नारायण नामक चार पुत्रोंको उत्पन्न किया।^१ देवर्षे। इनमें हरि और कृष्ण ये दो तो नित्य योगाभ्यासमें निरत हो गये और पुरातन ऋषि ज्ञानमन्या नर तथा नारायण संसारके कल्याणके लिये हिमालय पर्वतपर जाकर बदरिकाश्रम तीर्थमें गङ्गाके विपुल तटपर (परब्रह्मका नाम उच्चारणका जप करते हुए) तप करने लगे ॥ १—४ ॥

ब्रह्मन्! नर-नारायणकी दुष्कर तपस्यासे साय स्वावर जंगमहत्पक यह जगत् परितप्त हो गया इससे इन्द्र विशुद्ध हो उठे। उन दोनोंकी तपस्यासे अत्यन्त व्याध इन्द्रने उन्हें मोहित करनेके लिये रम्भा आदि श्रेष्ठ अप्सराओंको उनके विशाल आश्रममें भेजा। कामदेवके आयुधोंमें अशोक, आम्रादिकी मञ्जरियाँ विशेष प्रभावक हैं इन्हें तथा अपने सहयोगी वसन्त ऋतुको साथ लेकर वह भी उस आश्रममें गया। अब वे वसन्त, कामदेव तथा श्रेष्ठ अप्सराएँ ये सब बदरिकाश्रममें जाकर निर्बाध क्रोड़ा करने लग गये ॥ ५—८ ॥

तब वसन्त ऋतुके आ जानेपर अग्नि-शिखाके सदृश कान्तिवाले पलाश पत्रहीन होकर रात-दिन पृथ्वीकी शोभा बढ़ाते हुए सुशोभित होने लगे मुने। वसन्तरूपी सिंह मन्त्रो पलाश-पुष्परूपी नखाँसे शिशिररूपी गजराजको विदीर्ण कर वहाँ अपना साम्राज्य जमा चुका था। यह सोचने लगा—मैंने अपने तेजसे जीतसमूहरूपी हाथीको जीत लिया है और यह कुन्दकी कलियोंके बहाने उसका उपहास भी करने लगा है। इधर सुवर्णक अलंकारोंसे मण्डित राजकुमारोंके सपान पुष्पित कचनार अमलतासेके वन सुशोभित होने लगे ॥ ९—१२ ॥

तेषामनु तेषा नीपाः किङ्करा इव रेजिरे ।
स्वामिसंलब्धसंयमा भूया राजसुतागिव ॥ १३

रत्ताशोकवना भङ्गति पुष्पितः सहस्रोन्मला ।
भूया वसन्तः तेः संग्रामे सुवपुता इव ॥ १४

पुगवन्दाः पिङ्गरिता राजने गहने वने ।
पुलकाभिर्वृता वदत् सञ्जनाः सुहृदाममे ॥ १५

मञ्जरीभिर्विराजन्ते नदीकूलेषु वेतसाः ।
वक्तुकामा इव वृत्त्याकोऽस्माकं सद्गुणो नगः ॥ १६

रत्ताशोककरा तन्वी देवर्षे किंशुकाद्विषकाः ।
नीलाशोककक्षा श्रवामा विकासिकमलसनना ॥ १७

नीलेन्द्रीवरनेत्रा च ब्रह्मन् विल्वफलस्तनी ।
प्रफुल्लकुन्ददशाना मञ्जरीकरशोभिता ॥ १८

कन्युजीवाधरा शुभा सिन्दुवारमल्लज्जिता ।
पुष्कोकिलस्वना दिव्या अङ्गोलवसना शुभा ॥ १९

बर्हिबृन्दकलापा च स्वरसस्वरनूपरा ।
प्राग्वेशरसना ब्रह्मन् मत्तहंसगतस्तथा ॥ २०

पुत्रजीवांशुका भृङ्गरोमरजिविराजिता ।
वसन्तलक्ष्मीः सम्प्राप्ता ब्रह्मन् बदरिकाश्रमे ॥ २१

ततो नारायणो दृष्ट्वा आश्रमस्थानवद्वताम् ।
समीक्ष्य च दिशः सर्वास्ततोऽनङ्गमपश्यत् ॥ २२

कोऽसाधनज्ञो ब्रह्मर्षे तस्मिन् बदरिकाश्रमे ।
यं ददर्श जगन्नाथो हेयो नारायणोऽध्वयः ॥ २३

पुनस्तत्र उवाच

कन्दर्पो हर्षतनयो योऽस्ती कामो निगद्यते ।
स शंकरेण संदग्धो ह्यनङ्गत्वमुपागतः ॥ २४

किमर्थं कामदेवोऽस्ती देवदेवेन शंभुना ।
दग्धस्तु कारणे कस्मिन्नेतदध्याख्यतुमर्हसि ॥ २५

पुनस्तत्र उवाच

यदा दृक्क्षुता ब्रह्मन् सती यातां घमस्तयम् ।
विनाश्य दक्षयज्ञं तं विचचार त्रिलोक्यः ॥ २६

ततो मुचध्वजं दृष्ट्वा कन्दर्पः कुसुमापुधः ।
अपवीकं तदाऽस्थेन उन्मादेनाध्यताइवत् ॥ २७

जैसे राजपुत्रोंके पीछे उनके द्वारा सम्मानित सेवक खड़े रहते हैं, वैसे ही उन (वर्षित-वर्षों)-के पीछे-पीछे कदम्बपुष्प सुशोभित हो रहे थे। इसी प्रकार लाख अशोक आदिके समूह भी सहस्र पुष्पित एवं उन्मत्त हो सुशोभित होने लगे। शङ्करा या मानो शत्रुराज वसन्तके अनुयायी युद्धमें रक्तसे लथपथ हो रहे हों। घने वनमें पीले रंगके हरिय इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार सुहृदके आनेसे सञ्जना (आनन्दसे) पुलकित होकर सुशोभित होते हैं। नदीके तटोंपर अपनी मञ्जरियोंके द्वारा वेतस ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो वे अङ्गुलियोंके द्वारा यह कहना चाहते हैं कि हमारे सद्गुण अन्य कौन वृक्ष हैं ॥ १३—१६ ॥

देवर्षे। जो दिव्य फलही एवं बौवन्से भरी वसन्त-लक्ष्मी उस बदरिकाश्रममें प्रकट हुई थी, उसके मानो रत्ताशोक ही डाय, फलही चरम, नीलाशोक केसर-फल, विकसित कमल ही मुख और नीलकंठ ही नेत्र थे। उसके विल्वफल मानों स्तन, कुन्दपुष्प दन्त, मञ्जरी हृत्, दुपहरिणपूल अधर, सिन्दुवार नख, नर कोवमकी ककली (गोली) स्वर, अङ्गोल वस्त्र, मयूरमुख आभूषण, सरस नूपुरस्वरूप और अङ्गप्रके सिद्धर करधनी थे। उसके मत हंस गति, पुत्रजीव ऊर्ध्व वस्त्र और प्रमद मानो रोमाकलोरूपमें विराजित थे। तब नारायणने अङ्गनाकी अद्भुत रमणीयता देखकर सभी दिशाओंकी ओर देखा और फिर कामदेवको भी देखा ॥ १७—२२ ॥

नारदजीने पूछा—ब्रह्मर्षे जिसे अजब जगन्नाथ नारायणने बदरिकाश्रममें देखा था, वह अनङ्ग (काम) कौन है ? ॥ २३ ॥

पुनस्तत्रजीने कहा—वह कन्दर्प हर्षक पुत्र है, इसे ही काम कहा जाता है। शंकर-(की नेत्राग्नि-) द्वारा भस्म होकर वह 'अनङ्ग' हो गया ॥ २४ ॥

नारदजीने पूछा—पुनस्तत्रजी आप यह कतलार्थ कि देवाधिदेव शंकरने कामदेवकी किस कारणसे भस्म किया ? ॥ २५ ॥

पुनस्तत्रजीने कहा—ब्रह्मन् दक्ष-पुत्री सतीके प्राण त्याग करनेपर शिवजी दक्ष-यज्ञका ध्वंस कर (वही-तही) विचार करने लगे तब शिवजीको स्वी-रहित देखकर पुष्पास्त्रवाले कामदेवने उनपर अपना 'उन्मादन' नामक अस्त्र छोड़ा इस उन्मादन-वाणसे

ततो हरः श्रेण्याश्च उन्मादेनाशु ताडितः ।
विचचार भदोन्मत्तः काननानि सरांसि च ॥ २८
स्मरन् सती महादेवस्तथोन्मादेन ताडितः ।
न शर्म लेभे देवर्षे वाणविद्ध इव द्विपः ॥ २९
ततः पपात देवेशः कालिन्दीसरितं पुने ।
निमग्नं शंकरे आपो दग्धा कृष्णत्वसागता ॥ ३०

तदाप्रभृति कालिन्द्या भृङ्गाञ्जननिर्भं जलम् ।
आस्यन्दत् पुण्यतीर्था सरा केशपाशमिवावने ॥ ३१

ततो नदीषु पुण्यासु सरस्सु च नदेषु च ।
पुलिनेषु च रम्येषु वापीषु नलिनीषु च ॥ ३२
पर्वतेषु च रम्येषु काननेषु च सानुषु ।
विचरन् स्वेच्छया नैव शर्म लेभे महेश्वरः ॥ ३३

क्षणं गायति देवर्षे क्षणं रोदिति शंकरः ।
क्षणं ध्यायति तन्वङ्गीं दक्षकन्यां मनोरमाम् ॥ ३४
ध्यात्वा क्षणं प्रस्वपिति क्षणं स्वप्नायते हरः ।

स्वप्ने तथेदं गदति तां दृष्ट्वा दक्षकन्यकाम् ॥ ३५

निर्वृणे तिष्ठ किं मूढे त्वजसे मामनिन्दिते ।
मुग्धे त्वया विरहितो दग्धोऽस्मि यदनाग्निना ॥ ३६
सति सत्यं प्रकुपिता भा कोपं कुरु सुन्दरि ।
पादप्रणामावनतमभिभाषितुमर्हसि ॥ ३७

श्रूयसे दृश्यसे नित्यं स्पर्श्यसे वन्द्यसे प्रिये ।
अलिङ्ग्यसे च सततं किमर्थं न्यभिभाषसे ॥ ३८

विलपन्तं अगं दृष्ट्वा कृपा कस्य न जायते ।
विशेषतः पतिं बाले ननु त्वमतिनिर्वृणत ॥ ३९

त्वयोक्ताणि वर्धास्येवं पूर्वं मम कुशोदरि ।
विना त्वया न जीवेयं तदसत्यं त्वया कृतम् ॥ ४०

एहोहि कामसंतप्तं परिष्वज सुलोचने ।
नान्यथा नश्यते तापः सत्येनापि ज्ञापे प्रिये ॥ ४१
इत्थं विलप्य स्वप्नान्ते प्रतिबुद्धस्तु तत्क्षणम् ।
उत्कृञ्जति तश्चारण्ये मुक्तकण्ठं पुनः पुनः ॥ ४२

आहत होकर शिवजी उन्मत्त होकर जनों और सरोवरोंमें घूमने लगे देवर्षी, वाणविद्ध गजके समान उन्मत्तदसे व्यथित महादेव सतीका स्मरण करते हुए बड़े अशान्त हो रहे थे—उन्हीं जैन नहीं था ॥ २६—२९ ॥

पुने। उसके बाद शिवजी यमुना नदीमें कूद पड़े। उनके जलमें निमग्नन करनेसे उस नदीका जल काला हो गया उस समयसे कालिन्दी नदीका जल भुंग और अंजनके सद्गुण कृष्णवर्णका हो गया एवं वह पवित्र तीर्थवाली नदी पृथ्वीके केशपाशके सद्गुण प्रवर्धित होने लगी। उसके बाद पवित्र नदियाँ, सरोवरों, नदी, रमणीय नदी तटों, वापियों, कमलघनों पर्वतों, मनोहर काननों तथा पर्वत शृङ्गोंपर स्वेच्छापूर्वक विचरण करते हुए भगवान् शिव कहीं भी शान्ति नहीं प्राप्त कर सके ॥ ३०—३३

देवर्षी। वे कभी गाते, कभी रोते और कभी कृशाङ्गी सुन्दरी सतीका ध्यान करते ध्यान करके कभी सोते और कभी स्वप्न देखने लगते थे; स्वप्नकालमें सतीको देखकर वे इस प्रकार कहते थे—निर्दये स्त्री, हे मूढे! मुझे क्यों छोड़ रही हो? हे अनिन्दिते हे मुग्धे तुम्हारे विरहमें मैं कापाग्रिम दर्श हो रहा हूँ। हे सति! क्या तुम वस्तुतः क्रुद्ध हो? सुन्दरि क्रोध मत करो। मैं तुम्हारे चरणोंमें अवनत होकर प्रणाम करता हूँ। तुम्हें मेरे साथ बात तो करनी ही चाहिये ॥ ३४—३७ ॥

प्रिये मैं सतत तुम्हारे ध्वनि सुनता हूँ, तुम्हें देखता हूँ, तुम्हारा स्पर्श करता हूँ, तुम्हारी वन्दना करता हूँ और तुम्हारा परिष्वज करता हूँ, तुम मुझसे बात क्यों नहीं कर रही हो? बाले! विलाप करनेवाले व्यक्तिको देखकर किसे दया नहीं उठपन्न होती? विशेषतः अपने पतिको विलाप करता देखकर तो किसे दया नहीं आती? निश्चय ही तुम अति निर्दयी हो सूक्ष्मकटिवासी! तुमने पहले मुझसे कहा था कि तुम्हारे बिना मैं जीवित नहीं रहूँगी उसे तुमने असत्य कर दिया। सुलोचने! आओ, आओ, कामसन्तप्त मुझे आलिङ्गित करो। प्रिये! मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि अन्य किसी प्रकार मेरा ताप नहीं शान्त होगा ॥ ३८—४१ ॥

इस प्रकार वे विलाप कर स्वप्नके अन्तमें उठकर वनमें बार-बार रोने लगे। इस प्रकार मुक्तकण्ठसे

तं कूजमानं विलपन्तमागतं
समीक्ष्य कामो वृषकेतनं हि ।
विख्याध चापं तरसा विनाप्य
संतापनाम्ना तु शरेण भूयः ॥ ४३
संतापनस्त्रेण तदा स विद्धो
भूयः स संतप्ततरो बभूव ।
संतापव्यंश्चापि जगत्समग्रं
फूत्कृत्य फूत्कृत्य विवासते स्म ॥ ४४
तं चापि भूयो मदनो जघान
विजृम्भणास्त्रेण ततो विजृम्भे ।
ततो भृशं कामशरैर्वितुनो
विजृम्भणाः परितो भ्रमंश्च ॥ ४५
ददर्श यक्षाधिपतेस्तनूर्जं
पाञ्चालिकं नाम जगत्प्रधानम् ।
वृष्टा त्रिनेत्रो धनदस्य पुत्रं
पार्श्वं समध्येत्य वक्षो बभाषे ।
भ्रातृव्य वक्ष्यामि वक्षो यद्वत्
तत् त्वं कुरुष्वामितविक्रमोऽसि ॥ ४६

पाञ्चालिक उवाच

यन्नाथ मां वक्ष्यसि तत्करिष्ये
सुदुष्करं यद्यपि देवसंघैः ।
आज्ञापयस्वानुलवीर्यं शंभो
दासोऽस्मि ते भक्तियुतस्तपेश ॥ ४७

शंभो उवाच

नार्शं गतायां वरदाम्बिकायां
कामाग्निना स्नुहसुविग्रहोऽस्मि ।
विजृम्भणोन्मादशरैर्विभिन्नो
धृतिं न विन्दामि रतिं सुखं वा ॥ ४८

विजृम्भणं पुत्र तक्षिव ताप-
मुन्मादमुग्रं मदनप्रणुनम् ।
नान्यः पुमान् धारयितुं हि शक्नो
भुक्त्वा भवन्तं हि ततः प्रतीच्छ ॥ ४९

पुरुषस्य उवाच

इत्येवमुक्तो वृषभध्वजेन
यक्षः प्रतीच्छत् स विजृम्भणादीन् ।
तोषं जगमाशु ततस्त्रिशूली
तुष्टस्तदैवं वचनं बभाषे ॥ ५०

शर उवाच

यस्मान्मया पुत्र सुदुर्धराणि
विजृम्भणादीनि प्रतीच्छितानि ।

विलाप करते हुए भगवान् शंकरको दूरसे देखकर कामने अपना घनुष झुका (चढ़ा) कर पुनः वेगसे उन्हें संतापक अस्त्रसे वेध डाला अब वे इससे विद्ध होकर और भी अधिक संतप्त हो गये एवं मुखसे बारंबार (विलख) फूत्कार कर सम्पूर्ण विश्वको दुःखी करते हुए जैसे-जैसे समय बिताने लगे। फिर कामने उनपर विजृम्भण नामक अस्त्रसे प्रहार किया। इससे उन्हें जँभाई आने लगी अब कामके बाणोंसे विशेष पीड़ित होकर जँभाई लेते हुए वे चारों ओर घूमने लगे इसी समय उन्होंने कुन्बरेके पुत्र पाञ्चालिकको देखा और उसको देखकर उसके पास जाकर त्रिनेत्र शंकरने यह बात कही—भ्रातृव्य तुम अमित विक्रमशाली हो, मैं जो आज बात कहता हूँ तुम उसे करो ॥ ४३—४६ ॥

पाञ्चालिकने कहा—स्वामिन् आप जो कहेंगे, देवताओंद्वारा सुदुष्कर होनेपर भी उसे मैं करूँगा हे अतुल बलशाली शिव आप आज्ञा करें इस मैं आपका श्रद्धालु भक्त एवं दास हूँ ॥ ४७ ॥

भगवान् शिव बोले—वरदायिनी अम्बिका (सती) के नष्ट होनेसे मेरा सुन्दर शरीर कामाग्निसे आपन्न दग्ध हो रहा है। कामके विजृम्भण और उन्माद शरोंसे विद्ध होनेसे मुझे धैर्य, रति या सुख नहीं प्राप्त हो रहा है। पुत्र! तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई पुरुष, कामदेवसे प्रेरित विजृम्भण, संतापन और उन्माद नामक उग्र अस्त्र सहन करनेमें समर्थ नहीं है। अतः तुम इन्हें ग्रहण करो ॥ ४८-४९ ॥

पुरुषस्यजी बोले—भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर उस यक्ष (कुन्बरे पुत्र पाञ्चालिक) ने विजृम्भण आदि सभी अस्त्रोंको उनके ले लिया इससे विश्वलीको तत्काल संतोष प्राप्त हो गया और प्रसन्न होकर उन्होंने उससे ये वचन कहे— ॥ ५० ॥

भगवान् महादेवजी बोले—पुत्र! तुमने अति भयंकर विजृम्भण आदि अस्त्रोंको ग्रहण कर लिया,

तस्माद्देवं त्वां प्रतिपूजनाय
 दास्यामि लोकस्य च हास्यकरि ॥ ५१
 यस्त्वां यदा पश्यति ईश्वरमासे
 स्मृशेन्नरो वार्यते च भक्त्या ।
 वृद्धोऽथ बालोऽथ युवाथ योषित्
 सर्वे तदोन्मादधरा भवन्ति ॥ ५२
 गावन्ति नृत्यन्ति रमन्ति यक्ष
 आरानि यत्रादपि वादयन्ति ।
 तवाग्रतो हास्ययक्षोऽभिरक्ता
 भवन्ति ते योगयुतास्तु ते स्युः ॥ ५३
 ययैव नाम्ना भविताऽसि पूज्यः
 पाञ्चालिकेशः प्रथितः पृथिव्याम् ।
 मम प्रसादाद् वरदो मराणां
 भविष्यसे पूज्यतमोऽभिगच्छ ॥ ५४
 इत्येवमुक्तो विभुना स यक्षो
 जगाम देशान् सहसैव सर्वान् ।
 कालञ्जरस्योत्तरतः सुपुण्यो
 देशो हिमाद्रेरपि दक्षिणस्थः ॥ ५५
 तस्मिन् सुपुण्ये विषये निविष्टो
 रुद्रप्रसादादभिपूज्यतेऽसौ ।
 तस्मिन् प्रयाते भगवांस्त्रिनेत्रो
 देवोऽपि सिन्धुं गिरिमभ्यगच्छत् ॥ ५६
 तत्रापि मदो गत्वा ददर्श वृषकेतनम् ।
 दुष्टा प्रहर्षुकामं च ततः प्रदुर्बलम् ॥ ५७
 ततो दारुवनं घोरं मदनाभिसुतो हरः ।
 विवेश ऋषयो यत्र सपत्नीका व्यवस्थिताः ॥ ५८
 ते चापि ऋषयः सर्वे वृष्टा मूर्धा नताभयम् ।
 ततस्तान् प्राह भगवान् भिक्षा मे प्रतिदीयताम् ॥ ५९
 ततस्ते मौनिनस्तस्युः सर्वे एव महर्षयः ।
 तदाश्रमाणि सर्वाणि परिचक्राम नारदः ॥ ६०
 तं प्रविष्टं तदा दुष्टा भार्गवात्रेययोधितः ।
 प्रक्षोभमगमन् सर्वा हीनसत्त्वाः समन्ततः ॥ ६१
 श्रुते त्वरुन्धतीमेकामनसूयां च भामिनीम् ।
 एताभ्यां भर्तृपूजासु तच्चिन्तासु स्थितं मनः ॥ ६२
 ततः संक्षुभिता सर्वा यत्र याति महेश्वरः ।
 तत्र प्रयान्ति कामार्तरं मदविह्वलितेन्द्रिया ॥ ६३
 त्यक्त्वाश्रमाणि शून्यानि स्थानि ता मुनियोधितः ।
 अनुजगमुर्वया मर्तं करिष्य इव कुञ्जरम् ॥ ६४

अतः प्रत्युत्कारमे तुम्हें सब लोगोके लिये अन्नन्ददायक
 कर दूंगा। चैत्रमासमें जो वृद्ध, बालक, युवा या स्त्री
 तुम्हारा स्पर्श करेंगे या भक्तिपूर्वक तुम्हारी पूजा करेंगे
 वे सभी उन्मत्त हो जायेंगे यक्ष! फिर वे मार्गों, नारों
 आनन्दित होंगे और निपुणताके साथ माजे बजायेंगे
 किन्तु तुम्हारे सम्मुख हँसीकी बात करते
 हुए भी वे योगयुक्त रहेंगे मेरे ही नामसे तुम पूज्य
 होगे। विश्वमें तुम्हारा पाञ्चालिकेश नाम प्रसिद्ध होगा।
 मेरे आशीर्वादसे तुम लोगोके वरदाता और पूज्यतम
 होगे; काओ ॥ ५१—५४ ॥

भगवान् तिवके ऐसा कहनेपर वह यक्ष तुरंत सब
 देशोंमें घूमने लगा। फिर वह कालंजरके उत्तर
 और हिमालयके दक्षिण परम पवित्र स्थानमें स्थिर हो
 गया। वह शिवजीकी कृपासे पूजित हुआ। उसके चले
 जानेपर भगवान् त्रिनेत्र भी विन्ध्यपर्वतपर आ गये। वहाँ
 भी कामने उन्हें देखा उसे पुनः प्रहारकी चेष्टा करते
 देख शिवजी भागने लगे। उसके बाद कामदेवके
 द्वारा पीछा किये जानेपर महादेवजी घोर दारुवनमें
 चले गये, जहाँ ऋषिगण अपनी पत्नियोंके साथ निवास
 करते थे ॥ ५५—५८ ॥

उन ऋषियोंने भी उन्हें देखकर तिर झुकाकर
 प्रणाम किया फिर भगवान्ने उनसे कहा आप लोग
 मुझे भिक्षा दीजिये इसपर सभी महर्षि मौन रह गये।
 नारदजी इसपर महादेवजी सभी आश्रमोंमें घूमने लगे।
 उस समय उन्हें आश्रममें आना हुआ देख पतिव्रता
 अरुन्धती और अनुसूयाको छोड़कर ऋषियोंकी समस्त
 पत्नियाँ प्रक्षुब्ध एवं सन्ध्याहीन हो गयीं पर अरुन्धती और
 अनुसूया पतिसेवामें ही लगी रहीं ॥ ५९—६२ ॥

अब शिवजी जहाँ जहाँ जाते थे, वहाँ वहाँ संशुभित,
 कामार्तर एवं मदसे विकल इन्द्रियोवाली स्त्रियाँ भी जाने
 लगीं। मुनियोंकी वे स्त्रियाँ अपने आश्रमोंको सूना छोड़
 उनका इस प्रकार अनुसरण करने लगीं, जैसे करेणु
 मदमत राजकी अनुसरण करने घुने। यह देखकर

ततस्तु ऋषयो दृष्ट्वा भार्गवाङ्गिरस्ये भुने ।
 क्रोधान्वितासुवन्सर्वे लिङ्गोऽस्य पततां भुवि ॥ ६५
 ततः पपात देवस्य लिङ्गं पृथ्वीं विदारयन् ।
 अन्तर्द्धानि जगामाश्च त्रिशूली नीललोहितः ॥ ६६
 ततः स पतितो लिङ्गो विभिद्य वसुधातलम् ।
 रसातलं विवेशाशु ब्रह्माण्डं चोर्ध्वतोऽभिनत् ॥ ६७
 ततश्चाल पृथिवी गिरयः सरितो नगाः ।
 पातालभुवना सर्वे जङ्गमाजङ्गमैर्वृताः ॥ ६८
 संक्षुब्धान् भुवनान् दृष्ट्वा भूर्लोकानीन् पितृमहः ।
 जगाम माधवं इष्टुं क्षीरोदं नाम सागरम् ॥ ६९
 तत्र दृष्ट्वा हृषीकेशं प्रणिपत्य च भक्तितः ।
 उवाच देव भुवनाः किमर्थं मुविता विभो ॥ ७०
 अघोवाच हरिर्ब्रह्मन् श्राव्यो लिङ्गो महर्षिभिः ।
 पातितस्तस्य भारतां संचाल वसुधरा ॥ ७१
 ततस्तदद्भुततमं भुत्वा देवः पितामहः ।
 तत्र गच्छाम देवेश एवमाह पुनः पुनः ॥ ७२
 ततः पितामहो देवः केशवश्च जगत्पतिः ।
 आजगमतुस्तमुद्देशं यत्र लिङ्गं भवस्य तत् ॥ ७३
 ततोऽनन्तं हरिर्लिङ्गं दृष्ट्वा रुद्ध खगेश्वरम् ।
 पततालं प्रविवेशाश्च विस्मयान्तरितो विभुः ॥ ७४
 ब्रह्मा यद्यस्मिन्नेन ऊर्ध्वमाक्रम्य सर्वतः ।
 नैवान्तमलभद् ब्रह्मन् विस्मितः पुनरागतः ॥ ७५
 विष्णुर्गत्वाऽथ पातालान् सप्त लोकमरायणः ।
 चक्रपाणिर्विनिष्क्रान्तो लेभेऽन्तं न महामुने ॥ ७६
 विष्णुः पितामहश्चोभी हरिर्लिङ्गं समेत्य हि ।
 कृताञ्जलिपुटी भूत्वा स्तोत्रं देवं प्रचक्रतुः ॥ ७७

हरिर्ब्रह्मणाचतुः

नमोऽस्तु ते शूलपाणे नमोऽस्तु वृषभध्वज ।
 जीमूतवाहन कवे शर्व श्रम्यक शंकर ॥ ७८
 महेश्वर महेशान सुवर्णाक्ष वृषाकपे ।
 दक्षयज्ञक्षयकर कालरूप नमोऽस्तु ते ॥ ७९
 त्वमादिरस्य जगतस्त्वं मध्यं परमेश्वर ।
 भवानन्तश्च भगवान् सर्वगस्त्वं नमोऽस्तु ते ॥ ८०

ऋषिगण क्रुद्ध हो गये एवं कहा कि इनका लिङ्ग भूमिपर गिर जाय। फिर तो महादेवका लिङ्ग पृथ्वीको विदीर्ण करता हुआ गिर गया एवं तब नीललोहित त्रिशूली अन्तर्धान हो गये ॥ ६३—६६ ॥

वह पृथ्वीपर गिरा लिंग उसका भेदन कर तुरंत रसातलमें प्रविष्ट हो गया एवं ऊपरकी ओर भी उसने विश्वब्रह्माण्डका भेदन कर दिया। इसके बाद पृथ्वी, पर्वत, नदियाँ, पादप तथा चराचरसे पूर्ण समस्त पाताललोक काँप उठे पितामह ब्रह्मा भूर्लोक आदि भुवनोंको संक्षुब्ध देखकर श्रीविष्णुसे मिलने क्षीरसागर पहुँचे वहाँ उन्हें देख भक्तिपूर्वक प्रणाम कर ब्रह्माने कहा—देव समस्त भुवन विक्षुब्ध कैसे हो गये हैं? ॥ ६७—७० ॥

इसपर ब्रौहरिने कहा 'ब्रह्मन्! महर्षियोंने शिवके लिङ्गको गिरा दिया है। उसके भारसे कष्टमें पड़ी आत पृथ्वी विचलित हो रही है इसके बाद ब्रह्माजी उस अद्भुत बातको सुनकर देवेश हम लोग यहाँ चले— ऐसा बार बार कहने लगे। फिर ब्रह्मा और जगत्पति विष्णु वहाँ पहुँचे, वहाँ शंकरका लिङ्ग गिरा था वहाँ उस अनन्त लिङ्गको देखकर आश्चर्यचकित होकर हरि गरुड़पर सवार हो उसका पता लगानेके लिये पातालमें प्रविष्ट हुए ॥ ७१—७४ ॥

नारदजी! ब्रह्माजी अपने पद्ययानके द्वारा सम्पूर्ण ऊर्ध्वाकाशको लौंघ गये, पर उस लिङ्गका अन्त नहीं पा सके और आश्चर्यचकित होकर वे लौट आये। भूने' इसी प्रकार जब चक्रपाणि भगवान् विष्णु भी समों पातालमें प्रवेश कर उस लिङ्गका बिना अन्त पाये ही वहाँसे बाहर आये तब ब्रह्मा, विष्णु दोनों शिवलिङ्गके पास जाकर हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे ॥ ७५—७७ ॥

ब्रह्मा-विष्णु बोले— शूलपाणिजी! आपको प्रणाम है। वृषभध्वज! जीमूतवाहन! कवि! सर्व! श्रम्यक! शंकर! आपको प्रणाम है। महेश्वर महेशान! सुवर्णाक्ष वृषाकप! दक्ष-यज्ञ-विध्वंसक! कालरूप शिव! आपको प्रणाम है। परमेश्वर! आप इस जगत्के आदि, मध्य एवं अन्त हैं। आप भईश्वर्यपूर्ण भगवान् सर्वप्रणामी या सर्वत्रव्याप्त हैं। आपको प्रणाम है ॥ ७८—८० ॥

पुनस्तप उवाच

एवं संस्तूयमानस्तु तस्मिन् दारुवने हरः ।
स्वरूपी ताविदं वाक्यमुवाच यदतां वरः ॥ ८१ ॥

हर उवाच

किमर्थं देवतानाथी परिभूतक्रमं त्विह ।
मम स्तुवाते भृशास्वस्थं कामतापितविग्रहम् ॥ ८२ ॥

देवमुवाच

भवतः पातितं लिङ्गं यदेतद् भुवि शंकर ।
एतत् प्रगृह्णातां भूय अतो देव स्तुवावहे ॥ ८३ ॥

हर उवाच

यद्यर्चयन्ति त्रिदशा मम लिङ्गं सुरोत्तमैः ।
तदेतत्प्रतिगृह्णीयां नान्यथेति कथंचन ॥ ८४ ॥

ततः प्रोवाच भगवानेवमस्त्विति केशवः ।
ब्रह्मा स्वयं च जग्राह लिङ्गं कनकपिङ्गलम् ॥ ८५ ॥

ततश्चकार भगवांश्चातुर्वर्ण्यं हरार्चने ।
ज्ञात्वाणि चैर्षा मुख्यानि नानोक्तिं विदितानि च ॥ ८६ ॥

आद्यं शैवं परिख्यातमन्यत्पाशुपतं मुने ।
तृतीयं कालवदनं चतुर्थं च कपालिनम् ॥ ८७ ॥

शैवश्चासीत्स्वयं शक्तिर्वसिष्ठस्य प्रियः सुतः ।
तस्य शिष्यो बभूवाथ गोपायन इति श्रुतः ॥ ८८ ॥

महापाशुपतश्चासीद्भरद्वाजस्तपोधनः ।
तस्य शिष्योऽप्यभूद्राजा श्रद्धाधः सोमकेश्वरः ॥ ८९ ॥

कालास्थो भगवानासीदापस्ताम्बस्तपोधनः ।
तस्य शिष्यो भवद्विश्यो नाम्ना क्राशेश्वरो मुने ॥ ९० ॥

पुनस्तप्यधी बोले— वस दारुवनमें इस प्रकार स्तुति किये जानेपर वक्षाओंमें श्रेष्ठ हरने अपने स्वरूपमें प्रकट होकर (अर्थात् मूर्तिमान् होकर) उन दोनोंसे इस प्रकार कहा— ॥ ८१ ॥

भगवान् शंकर बोले— आप दोनों सभी देवताओंके स्वामी हैं आप लोग चलते-चलते बके हुए तथा कामाग्निसे दग्ध और मुझ सब प्रकारसे अस्वस्थ व्यक्तिकी क्यों स्तुति कर रहे हैं ? ॥ ८२ ॥

इसपर ब्रह्मा-विष्णु दोनों बोले— शिवजी ! पृथ्वीपर आपका जो यह लिङ्ग गिराया गया है, उसे पुनः आप ग्रहण करें। इसीलिये हम आपकी स्तुति कर रहे हैं ॥ ८३ ॥

शिवजीने कहा— श्रेष्ठ देवो ! यदि सभी देवता मेरे लिङ्गकी पूजा करना स्वीकार करें, तभी मैं इसे पुनः ग्रहण करूँगा, अन्यथा किसी प्रकार भी इसे नहीं धारण करूँगा तब भगवान् विष्णु बोले— ऐसा ही होगा फिर ब्रह्माजीने स्वयं उस स्वर्णके सदृश पिंगल लिङ्गको ग्रहण किया। तब भगवान् ने चारों वर्णोंको हर लिङ्गकी अर्चनाका अधिकारी बनाया। इनके मुख्य शास्त्र नामा प्रकारके वचनोंसे प्रख्यात हैं मुने ! उन शिव-भक्तोंका प्रथम सम्प्रदाय शैव द्वितीय पाशुपत, तृतीय कालमुख^१ और चतुर्थ सम्प्रदाय कापालिक या भैरवनामसे विख्यात है^२ ॥ ८४—८७ ॥

महर्षि वसिष्ठके प्रियपुत्र शक्ति श्रद्धि स्वयं शैव थे। उनके एक शिष्य गोपायन नामसे प्रसिद्ध हुए। उन्होंने शैव सम्प्रदायको दूरतक फैलाया। तपोधन भरद्वाज महापाशुपत थे और सोमकेश्वर राजा श्रद्धाध उनके शिष्य हुए, जिनसे पाशुपत सम्प्रदाय विशेषरूपसे परिवर्तित हुआ। मुने ! ऐश्वर्य एवं तपस्याके धनी महर्षि आपस्वम्ब, कालमुख सम्प्रदायके आचार्य थे क्राशेश्वर नामके उनके वैश्य शिष्यने इस सम्प्रदायका विशेष रूपसे प्रचार

१ गणेशसहस्रनामके 'अष्टाध्याय' भाष्यमें कालमुखसम्प्रदाय विशेष परिचय है।

२—शैव चतुर्णाम् कालमुखं भैरवज्ञानम् । (गणेशसहस्रनाम १२९)

महाश्रुती च धनदस्तस्य शिष्यश्च वीर्यवान् ।
कर्णोदर इति ख्यातो ज्ञात्वा शूरो महातपाः ॥ ९१

एवं स भगवान् ब्रह्मा पूजनाय शिवस्य तु ।
कृत्वा तु चातुराश्रम्य स्वमेव भवनं गतः ॥ ९२

गते ब्रह्मणि शर्वोऽपि उपसंहृत्य तं तदा ।
लिङ्गं चित्रवने सूक्ष्मं प्रतिष्ठाप्य चचार ह ॥ ९३

विचरन्तं तदा भूयो मोहं कुसुमायुधः ।
आरात्स्थित्वाऽग्रतो धन्वी संतापयितुमुद्यतः ॥ ९४

ततस्तमग्रतो दृष्ट्वा क्रोधाध्माहदृशा हरः ।
स्मरमालोकयामास शिखाग्राध्वरणान्तिकम् ॥ ९५

आलोकितस्त्रिनेत्रेण मदनो द्युतिमानपि ।
प्रादहृत तदा ब्रह्मन् पादादारभ्य कक्षवत् ॥ ९६

प्रदह्यग्रनीं चरणौ दृष्ट्वाऽसी कुसुमायुधः ।
उत्सर्ज्य यनुः श्रेष्ठं तन्मगामाद्य पञ्चधा ॥ ९७

यदासीन्मुष्टिवन्धं तु रुक्मपृष्ठं महाप्रभम् ।
स त्र्यम्बकतरुजातः सुगन्धाढ्यो गुणकृतिः ॥ ९८

नाहस्थानं शुभाकारं यदासीद्द्वजभूषितम् ।
तज्जातं केसरारण्यं बकुलं नामतो मुने ॥ ९९

या च कोटी शुभा ह्यासीदिन्द्रनीलविभूषिता ।
जाता सा पाटल्य रम्या भृङ्गराजिविभूषिता ॥ १००

नाहोपरि तत्रा मुष्टौ स्थानं शशिभण्डप्रभम् ।
पद्मगुल्माऽभ्यञ्ज्यजाती शशाङ्ककिरणोज्ज्वला ॥ १०१

ऊर्ध्वं मुष्ट्य अष्ट कोट्योः स्थानं विद्रुमभूषितम् ।
तस्माद्दुपुटा पल्लवी संजाता विविधत मुने ॥ १०२

पुष्पोत्तमानि रम्याणि सुरभीणि च नारद ।
जातियुक्तानि देवेन स्वयमाचरितानि च ॥ १०३

मुखे च मार्गणान् भूष्यां शरीरं दह्यति स्मरः ।
फल्लोषणानि वृक्षाणि संभूतानि सहस्रशः ॥ १०४

किया। महाश्रुती साक्षात् कुंभे प्रथम कापालिक या
धैरवः सम्प्रदायके आचार्य हुए थे। शूद्रजातिके महातपस्वी
कर्णोदर नामक उनके एक प्रसिद्ध शिष्य हुए। इन्होंने
इस मतका विशेष प्रचार किया^१ ॥ ८८—९१ ॥

इस प्रकार ब्रह्माजी शिवकी उपासनाके लिये चार
सम्प्रदायोंका विधान कर ब्रह्मलोकको चले गये।
ब्रह्मजीके जानेपर महादेवने उस लिङ्गको उपसंहृत कर
लिपा—समेट लिया एवं वे विचरनमें सूक्ष्म लिङ्ग
प्रतिष्ठापित कर विचरण करने लगे यहाँ भी शिवजीको
घूमते देख पुष्पधनुष कामदेव पुनः उनके सामने सहसा
बहुत निकट आकर उन्हें संतापन भावसे बंधनेको
उद्यत हुआ। तब उसे इस प्रकार सामने खड़ा देखकर
शिवजीने उस कामदेवकी सिरसे चरणगत क्रोधभी
दृष्टिसे देखा ॥ ९२—९५ ॥

ब्रह्मन्! वह कामदेव अत्यन्त तेजस्वी था। फिर भी
भगवान्द्वारा इस प्रकार दृष्ट होनेपर वह पैरसे लेकर
कटिपयन्त दग्न हो गया अपने चरणोंको जलते हुए
देखकर पुष्पायुध कामने अपने श्रेष्ठ धनुषको दूर फेंक
दिया। इससे उसके पाँच टुकड़े हो गये। उस धनुषका
जो चमकमत्ता हुआ सुवर्णयुक्त मुठबन्ध था, वह सुगन्धपूर्ण
सुन्दर चम्पक वृक्ष हो गया। मुने उस धनुषका जो हीय
जड़ा हुआ सुन्दर कृतिवाला नाहस्थान था, वह केसरवनमें
बकुल (पीलेसरी) नामक वृक्ष बना। इन्द्रनीलसे सुशोभित
उसकी सुन्दर कोटि भृङ्गोंसे विभूषित सुन्दर पाटला
(गुलाब)—के रूपमें परिणत हो गयी ॥ ९६ १०० ॥

धनुषनाहके ऊपर मुष्टिमें स्थित चन्द्रकान्तमणिकी
प्रभासे युक्त स्थान चन्द्रकिरणके सम्मान उज्ज्वल पाँच
गुल्लवल्ली जाती (चमेली पुष्प) बन गया। मुने!
मुष्टिके ऊपर खीर दोनों कोटियोंके नीचेवाले विद्रुममणि-
विभूषित स्थानसे अनेक पुटोंवाली मल्लिका (मालती)
हो गयी नारदजी। देवके द्वारा जातीके साथ अन्य
सुन्दर तथा सुगन्धित पुष्पोंकी सृष्टि हुई। ऊर्ध्व शरीरके
दग्ध होनेके समय कामदेवने अपने भाणोंको भी
पृथ्वीपर फेंका था, इससे हजारों प्रकारके फलवृक्ष वृक्ष

चूतादीनि सुगन्धीनि स्वादूनि विविधानि च ।
हरप्रसादाज्जातानि भोग्यान्यपि सुरोत्तमैः ॥ १०५
एवं दग्ध्वा स्पर्शं रुद्रः संयम्य स्वतनुं विभुः ।
पुण्यार्थी शिशिरार्द्रिं स जगाम तपसेऽव्ययः ॥ १०६
एवं पुरा देववरेण शम्भुना
कामस्तु दग्धः सशरः सचापः ।
ततस्त्वनङ्गेति महाधनुर्धरो
देवैस्तु गीतः सुरपूर्वपूजितः ॥ १०७

उत्पन्न हो गये। शिवजीकी कृपासे श्रेष्ठ देवताओंद्वारा भी अनेक प्रकारके सुगन्धित एवं स्वादिष्ट आन्न आदि फल उत्पन्न हुए, जो खानेमें स्वादुयुक्त हैं इस प्रकार कामदेवको भस्म कर एवं अपने शरीरको संयतकर समर्थ, अधिनाशी शिव पुण्यकी कामनासे हिमालयपर तपस्या करने चले गये इस प्रकार प्राचीन समयमें देवश्रेष्ठ शिवजीद्वारा धनुषबाणसहित काम दग्ध किया गया था। तबसे देवताओंमें प्रथम पूजित यह महाधनुर्धर देवोंद्वारा 'अनङ्ग' कहा गया ॥ १०१ १०७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें छठा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

सातवाँ अध्याय

वर्षाकी उत्पत्ति-कथा, प्रह्लाद-प्रसंग—नरनारायणसे संवाद एवं युद्धोपक्रम

पुनस्तत्र उवाच

ततोऽनङ्गं विभुर्दृष्ट्वा ब्रह्मन् नारायणो मुनिः ।
प्रहस्यैव वचः प्राह कन्दर्प इह आस्यताम् ॥ १
तदक्षुब्धत्वमीक्ष्यास्य कामो विस्मयमागतः ।
वसन्तोऽपि महाचिन्तां जगामाशु महामुने ॥ २
ततश्चाप्सरसो दृष्ट्वा स्वागतेनाभिपूज्य च ।
वसन्तमाह भगवानेहोहि स्वीयतामिति ॥ ३
ततो विहस्य भगवान् मञ्जरीं कुसुमावृताम् ।
आदाय प्राक्सुवर्णाङ्गीमूर्खोर्वालां विनिर्ममे ॥ ४
ऊरुद्ध्वा स कन्दर्पो दृष्ट्वा सर्वाङ्गसुन्दरीम् ।
अमन्यत तदाऽनङ्गः किमियं सा प्रिया रतिः ॥ ५
तदेव घटनं चारु स्वाक्षिभुकुटिलाकम् ।
सुनासावशाधरोष्ठमालोकनपरायणम् ॥ ६

पुनस्तत्र बोले—नारदजी उसके बाद तपस्य नारायण ऋषि कामदेवको हैंसते हुए देखकर यों बोले—
काम तुम यहाँ बैठो। काम उनकी इस अक्षुब्धता (स्थिरता) को देखकर चकित हो गये। महामुने! वसन्तको भी उस समय बड़ी चिन्ता हुई फिर अप्सराओंकी ओर देखकर स्वागतके द्वारा उनकी पूजा कर भगवान् नारायणने वसन्तसे कहा—आओ बैठो। उसके पश्चात् भगवान् नारायण मुनिने हैंसकर एक पृष्ठसे परो मञ्जरी ली और अपने ऊपर एक सुवर्ण अङ्गवाली तरुणीका चित्र लिखकर उसकी सजीव रचना कर दी। नारायणकी ओंछसे उत्पन्न उस सर्वाङ्ग सुन्दरीको देखकर कामदेव मनमें सोचने लगा—क्या यह सुन्दरी मेरी पत्नी रति है! ॥ १—५ ॥

इसकी वैसी ही सुन्दर आँखें, भौंह एवं फुटिल अलंके हैं इसका वैसा ही मुखमण्डल, वैसी सुन्दर नासिका, वैसा वंश और वैसा ही इसका अधरोष्ठ भी सुन्दर है इसे देखनेसे तृप्ति नहीं होती है। रतिके समान ही मनोहर तथा अत्यन्त मग्न चूसकवाली स्थूल (मांसल) स्तन दो सज्जन पुरुषोंके सहित परस्पर मिले हैं। इस

तावेधाहार्यविरली पीवरी यम्यचुचुकी।
राजेतेऽस्याः कुची पीनी रुग्णनाविव संहती ॥ ७

तदेव तनु चार्वङ्ग्या बलित्रयविभूषितम् ।
उदरं राजते श्लक्ष्णं रोमावलिबिभूषितम् ॥ ८

रोमावली च जघनाद् यान्ती स्तनतटं त्वियम् ।
राजते भङ्गमालेव पुलिनात् कमलाकरम् ॥ ९
जघनं त्वतिविस्तीर्णं भात्यस्या रशनावृतम् ।
क्षीरोदमघने नद्धं भुजङ्गेनेव मन्दरम् ॥ १०

कदलीस्तम्भसदृशीरुर्ध्वमूलैरथोरुभिः ।
विभाति सा सुचार्वङ्गी पथकिञ्जल्कसंनिधा ॥ ११

जानुनी गूढगुल्फे च शुभे जङ्गे त्वरोमशे ।
विभातोऽस्यस्तथा पादावलक्तकसमत्पिबौ ॥ १२

इति संचिन्तयन् कामस्तामनिन्दितलोचनाम् ।
कामातुरोऽसी संजातः किमुतान्यो जनो मुने ॥ १३

माधवोऽप्युर्वशीं दृष्ट्वा संचिन्तयत नारद ।
किंस्थित् कामनरेन्द्रस्य राजधानी स्वयं स्थिता ॥ १४

आयाता शशिनो नूनमियं कान्तिर्निशाक्षये ।
रविरश्मिप्रतापार्तिभीता शरणमागतः ॥ १५

इत्थं संचिन्तयन्नेव अवहृभ्याप्सरोगणम् ।
तस्यौ मुनिरिव व्यापमास्थितः स तु माधवः ॥ १६

ततः स विस्मितान् सर्वान् कन्दर्पादीन् महामुने ।
दृष्ट्वा प्रोवाच वचनं स्मितं कृत्वा शुभ्रवतः ॥ १७

इयं ममोरुस्मभूता कामाप्सरस माधव ।
नीयतां सुरलोकाय दीयतां वासवाय च ॥ १८

इत्युक्ताः कम्पमानास्ते जग्मुर्गङ्गोर्वशीं दिवम् ।
सहस्राक्षाय तां प्रादाद् रूपयौवनशालिनीम् ॥ १९

आचक्षुश्चरितं ताभ्यां धर्मजाभ्यां महामुने ।
देवराजाय कामाद्यास्ततोऽभूद् विस्मयः परः ॥ २०

एतादृशं हि चरितं ख्यातिमय्यां जगताम् ह ।
पातालेषु तथा भर्त्ये दिक्ष्वष्टासु जगाम च ॥ २१

एकदा निहते रौद्रे हिरण्यकशिपी मुने ।
अभिधितस्तदा राज्ये प्रह्लादो नाम दानवः ॥ २२

सुन्दरीका वैया ही कुरा, त्रिकलीयुक्त, कोमल तथा रोमावलिवाला उदर भी शोभित हो रहा है। उदरपर नीचेसे ऊपरकी ओर स्तनतटतक जाती हुई इसकी रोमराशि सरोवर आदिके तटसे कमलवृन्दकी ओर जाती हुई भ्रमर मण्डलीके समान सुशोभित हो रही है ॥ ६-९ ॥

इसका करधनीसे मण्डित स्थूल जघन-प्रदेश और सागरके मन्थनके समयमें वास्तुकि नागसे वेदित मन्दरपर्वतके समान सुशोभित हो रहा है कदली स्तम्भके समान ऊर्ध्वमूल ऊर्ध्वोवासी कमलके केसरके समान गौरवर्णकी यह सुन्दरी है। इसके दोनों घुटने, गूढगुल्फ, रोमरहित सुन्दर अंग तथा अत्यन्तके समान कान्तिवाले दोनों पैर अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं मुने इस प्रकार उस सुन्दरीके विषयमें सोचते हुए जब यह कामदेव स्वयमेव कामातुर हो गया तो फिर अन्य पुरुषोंकी तो बात ही क्या थी ॥ १०-१३ ॥

नारदजी! अब वसन्त भी उस उर्वशीको देखकर सोचने लगा कि क्या वह राजा कामकी राजधानी ही स्वयं आकर उपस्थित हो गयी है? अथवा रात्रिका अन्त होनेपर सूर्यकी किरणोंके तापके भयसे स्वयं चन्द्रिका ही शरणमें आ गयी है। इस प्रकार सोचते हुए अप्सराओंको रोककर वसन्त मुनिके सदृश ध्यानस्थ हो गया महामुने। उसके बाद शुभ्रवत नारायण मुनिने कामादि सभीको चकित देखकर हैसते हुए कहा—हे काम, हे अप्सराओ, हे वसन्त। यह अप्सरा मेरी जाँघसे उत्पन्न हुई है इसे तुम लोग देवलोकमें ले जाओ और इनको दे दो उनके ऐसा कहनेपर ये सभी भयसे काँपते हुए उर्वशीको लेकर स्वर्गमें चले गये और उस रूप-यौवनशालिनी अप्सराको इन्द्रको दे दिया, महामुने। उन कामादिने इन्द्रसे उन दोनों कर्मके पुत्रों (नर-नारायण) के चरित्रको कहा, जिससे इन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ। नर और नारायणके इस चरित्रकी चर्चा आगे सर्वत्र बढ़ती गयी तथा वह पाताल, मत्स्यलोक एवं सभी दिशाओंमें व्याप्त हो गयी ॥ १४-२१ ॥

मुने। एक बातकी बात है। जब भयंकर हिरण्यकशिपु मारा गया तब प्रह्लाद नामक दानव राजगद्दोपर बैठा।

तस्मिञ्ज्ञासति दैत्येन्द्रे देवब्राह्मणपूजके ।
मस्त्रानि भुवि राजानो यजन्ते विधिवत्तदा ॥ २२

ब्राह्मणाश्च तपो धर्मं तीर्थयात्राश्च कुर्वते ।
वैश्याश्च पशुवृत्तिस्थाः शूद्राः शुश्रूषणे रताः ॥ २४
चातुर्वर्ण्यं ततः स्वे स्वे आश्रमे धर्मकर्मणि ।
आवर्त्तत ततो देवा वृत्त्या युक्ताभवन् मुने ॥ २५

ततस्तु च्यवनो नाम भार्गवेन्द्रो महातपाः ।
जगाम नर्मदां स्नातुं तीर्थं च नकुलीश्वरम् ॥ २६

तत्र दृष्ट्वा महादेवं नदीं स्नातुमवातरत् ।
अवतीर्णं प्रजग्राह नागः केकरलोहितः ॥ २७

गृहीतस्तेन नागेन सस्मार मनसा हरिम् ।
संस्पृते पुण्डरीकाक्षे निर्विषोऽभून्महोरगः ॥ २८
नीतस्तेनातिरोद्रेण पन्नगेन रसातलम्
निर्विषश्चापि तत्याज च्यवनं भुजगोत्तम ॥ २९
संत्यक्तमात्रो नागेन च्यवनो भार्गवोत्तमः ।

अचार नागकन्याभिः पृथ्यमानः समन्ततः ॥ ३०
विचान् प्रविवेशाथ दानवार्णा महत् पुरम् ।
संपृथ्वमानो दैत्येन्द्रैः प्रह्लादोऽथ ददर्श तम् ॥ ३१
भृगुपुत्रे महातेजाः पूजां चक्रे यच्चाहृतः ।
संपूजितोपविष्टश्च पृष्टश्चागमनं प्रति ॥ ३२

स चोवाच महाराज महातीर्थं महाफलम् ।
स्नातुमेवागतोऽस्म्यद्य द्रष्टुं च नकुलीश्वरम् ॥ ३३

नद्यामेवावतीर्णोऽस्मि गृहीतश्चाहिना बलात् ।
समानीतोऽस्मि पाताले दृष्टश्चात्र भवानपि ॥ ३४

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं च्यवनस्य दितीश्वर ।
प्रोवाच धर्मसंयुक्तं स वाक्यं वाक्यकोविदः ॥ ३५

प्रह्लाद उवाच

भगवन् कानि तीर्थानि पृथिव्यां कानि चाम्बरे ।
रसातले च कानि स्युरेतद् वक्तुं त्वमर्हसि ॥ ३६

वह देवता और ब्राह्मणोंका पूजक था। उसके शासनकालमें पृथ्वीपर राजा लोग विधिपूर्वक यज्ञाहुति करते थे। ब्राह्मण लोग तपस्या, धर्म-कार्य और तीर्थयात्रा, वैश्य लोग पशुपालन तथा शूद्र लोग सवकी सेवा प्रेमसे करते थे ॥ २२—२४ ॥

मुने। इस प्रकार चारों वर्ण अपने आश्रममें स्थित रहकर धर्म कार्योंमें लगे रहते थे। इससे देवता भी अपने कर्षमें संलग्न हो गये। उसी समय ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ भार्गववंशी महातपस्वी च्यवन नामक ऋषि नर्मदाके नकुलीश्वर तीर्थमें स्नान करने गये। वहाँ वे महादेवका दर्शनकर नदीमें स्नान करनेके लिये उतरे जलमें उतरते ही ऋषिको एक भूरे वर्णके साँपने पकड़ लिया उस साँपद्वारा पकड़े जानेपर ऋषिने अपने मनमें विष्णु भगवान्का स्मरण किया कमलनयन भगवान् श्रीहरिको स्मरण करनेपर यह महान् सर्प विषहीन हो गया ॥ २५ २६ ॥

फिर उस भयंकर विषरहित सर्पने च्यवन मुनिको रसातलमें ले जाकर छोड़ दिया सर्पने भार्गवश्रेष्ठ च्यवनको मुक्त कर दिया। फिर वे नागकन्याओंसे पूजित होते हुए चारों ओर विचरण करने लगे वहाँ घूमते हुए वे दानवोंके विशाल नगरमें प्रविष्ट हुए इसके बाद श्रेष्ठ दैत्याँद्वारा पूजित प्रह्लादने उन्हें देखा। महातेजस्वी प्रह्लादने भृगुपुत्रकी यथायोग्य पूजा की पूजाके बाद उनके बैठनेपर प्रह्लादने उनसे उनके आगमनका कारण पूछा ॥ २९—३२ ॥

उन्होंने कहा—महाराज! आज मैं महाफलदायक महातीर्थमें स्नान एवं नकुलीश्वरका दर्शन करने आया था। वहाँ नदीमें उतरते ही एक नागेने मुझे बलात् पकड़ लिया। वही मुझे पातालमें लाया और मैंने वहाँ आपको भी देखा। च्यवनकी इस बातको सुनकर सुन्दर वचन बोलनेवाले दैत्योंके ईश्वर (प्रह्लाद)-ने धर्मसंयुक्त यह वाक्य कहा ॥ ३३—३५ ॥

प्रह्लादने पूछा—भगवन्! कृपा करके मुझे बतलाइये कि पृथ्वी आकाश और पातालमें कौन-कौनसे (महान्) तीर्थ हैं? ॥ ३६ ॥

व्यवसाय उवाच

पृथिव्यां नैमिषं तीर्थमन्तरिक्षे च पुष्करम् ।
चक्रतीर्थं महाबाहो रसातलतले विदुः ॥ ३७

पुलस्त्य उवाच

श्रुत्वा तद्भार्गववचो दैत्यराजो महामुने ।
नैमिषं गन्तुकामस्तु दानवानिदमब्रवीत् ॥ ३८

प्रह्लाद उवाच

उत्तिष्ठत्वं गमिष्यामः स्नातुं तीर्थं हि नैमिषम् ।
द्रक्ष्यामः पुण्डरीकाक्षं पीतवाससमच्युतम् ॥ ३९

पुलस्त्य उवाच

इत्युक्ता दानवेन्द्रेण सर्वे ते दैत्यदानवाः ।
चक्रुरुद्योगमतुलं निर्जग्मुश्च रसातलात् ॥ ४०

ते समध्येत्य दैतेया दानवाश्च महाबलाः ।
नैमिषारण्यमागत्य स्नानं चक्रुर्मुदान्विताः ॥ ४१

ततो दितीश्वरः श्रीमान् मृगव्यां स चत्वार ह ।
चरन् सरस्वतीं पुण्यां ददर्श विमलोदकाम् ॥ ४२

तस्यादूरे महाशाखं शालवृक्षं शरैश्चितम् ।
ददर्श बाणानपरां मुखे लग्नान् परस्परम् ॥ ४३

ततस्तान्द्रुताकारान् बाणान् नागोपवीतकान् ।
दृष्ट्वाऽतुलं तदा चक्रे क्रोधं दैत्येश्वरः किल ॥ ४४

स ददर्श ततो दूरात्कृष्णाजिनधरो भुनी ।
समुन्नतजटाधरो तपस्यासक्तमानसौ ॥ ४५

तथोश्च पार्श्वयोर्दिष्ये धनुषी लहृणान्विते ।
शार्ङ्गमाजगत् खेव अक्षय्यौ च महेषुधी ॥ ४६

तौ दृष्ट्वाऽमन्यत तदा दाभिकगविति दानवः ।
ततः प्रोवाच वचनं तादृशी पुरुषोत्तमी ॥ ४७

किं भवद्भ्यां समारब्धं दम्भं धर्मविनाशनम् ।
ऋ तपः ऋ जटाभारः ऋ चेमी प्रवरायुधौ ॥ ४८

अथोवाच नरो दैत्यं का ते चिन्ता दितीश्वर ।
सामर्थ्यं सति यः कुर्यात् तत्संपद्येत तस्य हि ॥ ४९

(प्रह्लादके वचनको सुनकर) व्यवसायजीने कहा—
महाबाहो! पृथ्वीमें नैमिषारण्यतीर्थ, अन्तरिक्षमें पुष्कर,
और पातालमें चक्रतीर्थ प्रसिद्ध हैं ॥ ३७ ॥

पुलस्त्यजीने कहा—महामुने! भार्गवकी इसी
भातको सुनकर दैत्यराज प्रह्लादने नैमिषतीर्थमें जानेके
लिये इच्छा प्रकट की और दानवोंसे यह बात कही ॥ ३८ ॥

प्रह्लाद बोले—ठो हम सभी नैमिष-
तीर्थमें स्नान करने जायेंगे तथा वहाँ पीताम्बरधारी एवं
कमलके समान नेत्रोंवाले भगवान् अच्युत (विष्णु)-के
दर्शन करेंगे ॥ ३९ ॥

पुलस्त्यजीने कहा—दैत्यराज प्रह्लादके ऐसा कहनेपर
वे सभी दैत्य और दानव रसातलसे बाहर निकले एवं
अतुलनीय उद्योगमें लग गये। उन महाबलवान् दितिपुत्रों
एवं दानवोंने नैमिषारण्यमें आकर आनन्दपूर्वक स्नान
किया। इसके बाद श्रीमान् दैत्यश्रेष्ठ प्रह्लाद मृगया
(आछेट या शिकार) के लिये दानवों में घूमने लगे।
वहाँ घूमते हुए उन्होंने पवित्र एवं निर्मल जलवाली
सरस्वती नदीको देखा। वहाँ समीप ही बाणोंसे
खचाखच बिंधे बड़ी बड़ी शाखाओंवाले एक शाल
वृक्षको देखा। वे सभी बाण एक-दूसरेके मुखसे लगे
हुए थे ॥ ४०—४३ ॥

तब उन अद्भुत आकारवाले नागोपवीत (सर्पोंसे
लिपटे) बाणोंको देखकर दैत्येश्वरको बड़ा क्रोध हुआ।
फिर उन्होंने दूरसे ही काले मृगचर्मको धारण किये हुए
बड़ी-बड़ी जटाओंवाले तथा तपस्यामें लगे दो मुनियोंको
देखा। उन दोनोंके बगलमें सुलक्षण शार्ङ्ग और आजगव
नामक दो दिव्य धनुष एवं दो अक्षय तथा बड़े-बड़े
तरकस वर्तमान थे। उन दोनोंको इस प्रकार देखकर
दानवराज प्रह्लादने उन्हें दम्भसे युक्त समझा। फिर उन्होंने
उन दोनों श्रेष्ठ पुरुषोंसे कहा ॥ ४४—४७ ॥

आप दोनों यह धर्मविनाशक दम्भपूर्ण कार्य क्यों
कर रहे हैं? कहाँ तो आपकी यह तपस्या और जटाभार,
कहाँ ये दोनों श्रेष्ठ अस्त्र? इसपर नरने उनसे कहा—
दैत्येश्वर! तुम उसकी चिन्ता क्यों कर रहे हो? सामर्थ्य
रहनेपर कोई भी व्यक्ति जो कर्म करता है, उसे वही

अथोवाच दितीशस्ती का शक्तिर्युवयोरिह ।
पयि तिष्ठति दैत्येन्द्रे धर्मसेतुप्रवर्तके ॥ ५०

नरस्तं प्रत्युवाचाञ्च आवाभ्यां शक्तिरुज्जिता ।
न कश्चिच्छक्नुयाद् योद्धुं नरनारायणौ युधि ॥ ५१
दैत्येश्वरस्ततः क्रुद्धः प्रतिज्ञामारुरोह च ।
यथा कर्धचिञ्चिष्यामि नरनारायणौ रणे ॥ ५२
इत्येवमुक्त्वा यचने महात्मा

द्वितीयः स्थाप्य बलं वनान्ते ।
वितत्य चापं गुणमाधिकृष्य
तलध्वनिं घोरतरं चकार ॥ ५३

ततो नरस्त्वाजगवं हि चाप-
मानस्य बाणान् सुबहुञ्जिताग्रान् ।

मुमोच तानप्रतिमैः पृथक्कै-
श्चिच्छेद दैत्यस्तपनीयपुङ्खैः ॥ ५४

छिन्नान् समीक्ष्यार्थं नरः पृथक्कान्
दैत्यश्रेणाप्रतिमेन संख्ये ।

क्रुद्धः समानस्य महाधनुस्ततो
मुमोच चान्यान् विविधान् पृथक्कान् ॥ ५५

एकं नरो द्वौ दितिजेश्वरश्च
त्रीन् धर्मसूनुश्चतुरो द्वितीयः ।

नरस्तु बाणान् प्रमुमोच पञ्च
षड् दैत्यनाथो निशितान् पृथक्कान् ॥ ५६

सप्तर्षिमुख्यो द्विचतुश्च दैत्यो
नरस्तु षट् त्रीणि च दैत्यमुख्ये ।

षट् त्रीणि चैकं च द्वितीयश्रेण
मुक्तानि बाणानि नराय विप्र ॥ ५७

एकं च षट् पञ्च नरेण मुक्ता-
स्त्वहो शराः सप्त च दानवेन ।

षट् सप्त चाष्टौ नव षण्णरेण
द्विसप्ततिं दैत्यपतिः संसर्ज ॥ ५८

शतं नरस्त्रीणि शतानि दैत्यः
षड् धर्मपुत्रो दश दैत्यराजः ।

सतोऽप्यसंख्येयतरान् हि बाणान्
मुमोचतुस्ती सुभृशं हि कोपात् ॥ ५९

ततो नरो बाणगणैरसंख्यै-
रवास्तरद्भूमिषथो दिशः खम् ।

स चापि दैत्यप्रवरः पृथक्कै-
श्चिच्छेद वेणुघ्नं तपनीयपुङ्खैः ॥ ६०

शेभा देता है। तब द्वितीय प्रह्लादने उन दोनोंसे कहा
धर्मसेतुके स्थापित करनेवाले मुझ दैत्येन्द्रके रहते यहाँ
आप लोग (सामर्थ्य-करसे) क्या कर सकते हैं? इसपर
नरने उन्हें उत्तर दिया—हमने पर्याप्त शक्ति प्राप्त कर ली
है। हम नर और नारायण—दोनोंसे कोई भी युद्ध नहीं
कर सकता ॥ ४८—५१ ॥

इसपर दैत्येश्वरने क्रुद्ध होकर प्रतिज्ञा कर दी कि
मैं युद्धमें जिस किसी भी प्रकार आप नर और नारायण
दोनोंको जीतूँगा। ऐसी प्रतिज्ञाकर दैत्येश्वर प्रह्लादने
वनकी सीमापर अपनी सेना खड़ी कर दी और
धनुषको फैलाकर उसपर घेरी चढ़ायी तथा घोरतर
करतलध्वनि को ताल ठोंकी। इसपर नरने भी
आजगव धनुषको बढाकर बहुत-से तेज बाण छोड़े।
परंतु प्रह्लादने अनेक स्वर्ण-पुंखवाले अप्रतिम बाणोंसे
उन बाणोंको काट डाला। फिर नरने युद्धमें अप्रतिम
दैत्येश्वरके द्वारा बाणोंको पहँ हुआ देख क्रुद्ध होकर
अपने महान् धनुषको षड्बाण पुनः अन्य अनेक वीक्षण
बाण छोड़े ॥ ५२—५५ ॥

नरके एक बाण छोड़नेपर प्रह्लादने दो बाण छोड़े;
नरके तीन बाण छोड़नेपर प्रह्लादने चार बाण छोड़े
इसके बाद पुन नरने पाँच बाण और फिर दैत्यश्रेष्ठ
प्रह्लादने छः तेज बाण छोड़े। विप्र नरके सात बाण
छोड़नेपर दैत्यने आठ बाण छोड़े। नरके नव बाण
छोड़नेपर प्रह्लादने उनपर दस बाण छोड़े। नरके बारह
बाण छोड़नेपर दानवने पंद्रह बाण छोड़े। नरके छत्तीस
बाण छोड़नेपर दैत्यपतिने बहतर बाण चलाये नरके सौ
बाणोंपर दैत्यने तीन सौ बाण चलाये धर्मपुत्रके छः
सौ बाणोंपर दैत्यराजने एक हजार बाण छोड़े फिर तो
उन दोनोंने अत्यन्त क्रोधसे (एक दूसरेपर) असंख्य
बाण छोड़े ॥ ५६—५९ ॥

उसके बाद नरने असंख्य बाणोंसे पृथ्वी, आकाश
और दिशाओंको ढक दिया। फिर दैत्यप्रवर प्रह्लादने
स्वर्णपुंखवाले बाणोंको बड़े वेगसे छोड़कर उनके
बाणोंको काट दिया। तब नर और दानव दोनों वीर बाणों

ततः पतत्रिभिर्वीरैः सुभृशं नरदानवी ।
 युद्धे वरास्त्रैर्युध्येतां चोररूपैः परस्परम् ॥ ६१
 ततस्तु दैत्येन वरास्त्रपाणिना
 चापे नियुक्तं तु पितामहास्त्रम् ।
 महेश्वरास्त्रं पुरुषोत्तमेन
 समं समाहत्य निपेततुस्ती ॥ ६२
 ब्रह्मास्त्रे तु प्रशमिते प्रह्लादः क्रोधमूर्च्छितः ।
 गर्वा प्रगृह्य तरसा प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ॥ ६३
 गदापाणिं समाचान्तं दैत्यं नारायणस्तदा ।
 दृष्ट्वाऽथ पृष्ठतश्चक्रे नरं योजुमना स्वयम् ॥ ६४
 ततो दितीशः सगदः सभाद्रवत्
 सशार्ङ्गपाणिं तपसां निधानम् ।
 ख्यन्तं पुराणार्थमुदारविक्रमं
 नारायणं नारद लोकपालम् ॥ ६५

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें सातवीं अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७ ॥

~~~~~

## आठवाँ अध्याय

प्रह्लाद और नारायणका तुमुल युद्ध, भक्तिसे विजय

पुलस्त्य उवाच

शार्ङ्गपाणिनमायान्तं दृष्ट्वाऽग्रे दानवेश्वरः ।  
 परिभ्राम्य गदां वेगान्मूर्ध्नि साध्यमताडयत् ॥ १  
 ताडितस्याथ गदया धर्मपुत्रस्य नारद ।  
 नेत्राभ्यामपतद् वारि वह्निवर्षनिभं भुवि ॥ २  
 मूर्ध्नि नारायणस्यापि सा गदा दामवर्षिता ।  
 अगाम शतधा ब्रह्मज्जलभृङ्गे यथाऽशनिः ॥ ३  
 ततो निवृत्य दैत्येन्द्रः समास्थाय रथं हुतम् ।  
 आदाय कार्मुकं घोरस्तूणाद् बाणं समाददे ॥ ४  
 आगम्य चापं वेगेन गार्दपत्राज्जिह्वामुखान् ।  
 मुमोक्ष साध्याय वदा क्रोधान्धकारिताननः ॥ ५  
 तानापतत एवाशु क्षणश्चन्द्रार्द्धसन्निभान् ।  
 विच्छेद बाणैरपरिनिर्विभेदं च दानवम् ॥ ६

तथा भयंकर श्रेष्ठ अस्त्रोंसे परस्पर युद्ध करने लगे। इसके बाद दैत्यने हाथमें ब्रह्मास्त्र लेकर उस धनुषपर नियोजित कर चला दिया एवं उन पुरुषोत्तमने भी महेश्वरास्त्रका प्रयोग कर दिया। वे दोनों अस्त्र परस्पर एक-दूसरेसे टक्कर खाकर गिर गये। ब्रह्मास्त्रके व्यर्थ होनेपर क्रोधसे मूर्च्छित हुए प्रह्लाद वेगसे गदा लेकर उत्तम रथसे कूद पड़े ॥ ६०—६३ ॥

अपि नारायणने उस समय दैत्यको हाथमें गदा लिये अपनी ओर आते देखकर स्वयं युद्ध करनेकी इच्छासे नरको पीछे हटा दिया। नारदजी! तब प्रह्लादजी गदा लेकर तपोनिधान, शार्ङ्गधनुषको धारण करनेवाले, प्रसिद्ध पुरातन ऋषि, महापराक्रमशाली, लोकपति नारायणकी ओर दौड़ पड़े ॥ ६४—६५ ॥

पुलस्त्यजी बोले— प्रह्लादने जब हाथमें शार्ङ्गधनुष लिये भगवान् नारायणको सामनेसे आते देखे वो अपनी गदा घुमाकर वेगसे उनके सिरपर प्रहार कर दिया। नारदजी! गदासे प्रताडित होनेपर नारायणके नेत्रोंसे आगके स्फुलिंगके समान आँसू पृथ्वीपर गिरने लगे। ब्रह्मन्! पर्वतको चोटीपर गिरकर जैसे वज्र टूट जाता है, उसी प्रकार दानवद्वारा नारायणके सिरपर चलायी गयी वह गदा भी सैकड़ों टुकड़े हो गयी। उसके बाद शीघ्रतापूर्वक लौटकर वीर दैत्येन्द्रने रथपर आरुढ़ हो धनुष लेकर अपनी तरफसे बाण निकाल लिया ॥ १ ४ ॥

फिर क्रोधान्ध प्रह्लादने शीघ्रतासे धनुषको खड़ाकर गुधके पंखवाले अनेक बाणोंको नारायणकी ओर चलाया। नारायणने भी बड़ी शीघ्रतासे अपनी ओर आ रहे उन अध्वन्द्र तुल्य बाणोंको अपने बाणोंसे काट डाला और कुछ दूसरे बाणोंसे प्रह्लादको विद्ध कर दिया। तब दैत्यने

ततो नारायणं दैत्यो दैत्यं नारायणः शरिः ।  
आविध्योतां तदाऽन्योन्यं भर्मीभिर्द्विरजिह्वागैः ॥ ७

ततोऽम्बरे संनिपातो देवानामभवन्मुने ।  
दिदक्षुणां तदा युद्धं लघु चित्रं च सुहृ च ॥ ८

ततः सुराणां दुन्दुभ्यस्त्ववाद्यन्त महास्वना ।  
पुष्पवर्षमनीपम्यं मुमुक्षुः साध्यदैत्यये ॥ ९

ततः पश्यत्सु देवेषु गगनस्थेषु तावुभी ।  
अयुध्येतां महेश्वासी प्रेक्षकप्रीतिवर्द्धनम् ॥ १०

बबन्धतुस्तदाकाशं तावुभी शरवृष्टिभिः ।  
दिशश्च विदिशश्चैव छादयेतां शरोत्करैः ॥ ११

ततो नारायणश्चापं समाकृष्य महामुने ।  
विभेद मार्गणैस्तीक्ष्णैः प्रह्लादं सर्वमर्पसु ॥ १२

तथा दैत्येश्वरः कुन्धश्चापमानम्य वेगवान् ।  
विभेद इदये बाह्वोर्वदने च जलेत्तमम् ॥ १३

ततोऽस्यतो दैत्यपतेः कार्मुकं भुष्टिवन्धनात् ।  
चिच्छेदैकेन चाणेन चन्द्रार्धाकारवर्चमा ॥ १४

अपास्यत धनुश्छिन्नं चापमादाय चापसम् ।  
अधिन्यं लाघवात् कृत्वा ध्वर्षं निशिताव्यसरान् ॥ १५

तन्नप्यस्य शरान् साध्यश्छिन्त्वा बाणैरवारयत् ।  
कार्मुकं च क्षुरप्रेण चिच्छेद पुरुषोत्तमः ॥ १६

छिन्नं छिन्नं धनुर्दैत्यस्त्वन्यदन्यत्समाददे ।  
समादत्ते तदा साध्यो मुने चिच्छेद लाघवान् ॥ १७

संछिन्नेष्वथ चापेषु जरागहं दिनिजेश्वरः ।  
परिधं दारुणं दीर्घं सर्वलोहमयं दुहम् ॥ १८

परिगृह्णाथ परिधं धामयामास दाम्बवः ।  
धाम्यमाणं स चिच्छेद नाराधेन महामुनिः ॥ १९

छिन्ने तु परिधे श्रीपान् प्रह्लादो दानवेश्वरः ।  
मुद्गरं धाम्य वेगेन प्रच्छिषेध नराग्रजे ॥ २०

तमापतन्तं बलवान् मार्गरीर्दशभिर्मुने ।  
चिच्छेद दशधा साध्यः स छिन्नो न्यपतद् भुवि ॥ २१

नारायणको और नारायणने दैत्यको—एक-दूसरेको—  
मर्मभेदी एवं सीधे चलनेवाले बाणोंसे वेध दिया। मुने।  
उस समय शीघ्रतापूर्वक हो रहे इस कौशलयुक्त विचित्र  
एवं सुन्दर युद्धको देखनेकी इच्छावाले देवताओंका समूह  
आकाशमें एकत्र हो गया ॥ ५—८ ॥

उसके बाद बड़े जोरसे बजनेवाले नगाड़ोंकी बजाकर  
देवताओंने भगवान् नारायणके और दैत्यके ऊपर अनुपमरूपमें  
पुष्पोंकी वर्षा की। फिर उन दोनों धनुर्धारियोंने आकाशमें  
स्थित देवताओंके सामने दर्शकोंको आनन्द देनेवाला  
(दिलचस्प) अनूठा युद्ध किया। उस समय उन दोनोंने  
बाणोंकी वृष्टिसे आकाशको मानी बाँध दिया और बाणवृष्टिसे  
दिशाओं एवं विदिशाओंको ढक दिया। महामुनि नारदजी  
तब नारायणने धनुषको खींचकर तेज बाणोंसे प्रह्लादके सभी  
मर्मस्थलोंमें प्रहार किया और फुटाँवाले दैत्येश्वरने क्रोधपूर्वक  
धनुषको चढ़ाकर नरोत्तमके हृदय, दोनों भुजाओं और मुँहको  
भी (बाणोंसे) वेध दिया ॥ ९—१३ ॥

उसके बाद नारायणने बाण चला रहे प्रह्लादके  
धनुषके मुष्टिवन्धकी अर्धचन्द्रके आकारवाले एक तेजस्वी  
बाणसे काट दिया। प्रह्लादने भी कटे धनुषको झट  
फेंककर दूसरा धनुष हाथमें ले लिया और शीघ्र ही  
उसको प्रत्यक्षा (जोरी) चढ़ाकर तेज बाणोंकी वर्षा  
प्रारम्भ कर दी। पर उसके उन शरोंकी भी नारायणने  
बाणोंसे काटकर निवारित कर दिया और उन पुत्तुचोत्तमने  
तीक्ष्ण बाणसे उसके धनुषको भी काट डाला। नारदजी।  
एक धनुषके छिन्न होनेपर दैत्यराजने कारम्बार दूसरा  
धनुष ग्रहण किया, किंतु नारायणने रिये हुए उन उन  
धनुषोंकी भी तुरंत काटकर गिरा दिया ॥ १४—१७ ॥

फिर धनुषोंके कट जानेपर दैत्यपति प्रह्लादने एक  
भयंकर मजबूत और लौह (फौलाद) से बने 'परिध'  
नामक अवस्त्रको उठा लिया। उसे लेकर ये दानव  
(प्रह्लाद) चारों ओर घुमाने लगे। उस घुमावे जाते हुए  
परिधको भी महामुनि नारायणने बाणसे काट दिया।  
उसके कट जानेपर श्रीमान् दनुजेश्वर प्रह्लादने पुनः एक  
मुद्गरको वेगसे घुमाकर उसे नारायणके ऊपर फेंका  
नारदजी! उस आते हुए मुद्गरको भी बलवान् नारायणने  
दस क्षणोंसे दस भागोंमें काट दिया; वह नष्ट होकर  
पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १८—२१ ॥

मुद्गरं वितर्क्षे जाते प्रासमाविध्य वेगवान् ।  
 प्रचिक्षेप नराग्र्याय तं च चिच्छेद धर्मजः ॥ २२

प्राप्ते छिन्ने ततो दैत्यः शक्तिमादाय चिक्षिपे ।  
 तां च चिच्छेद बलवान् क्षुरप्रेषा महातपाः ॥ २३

छिन्नेषु तेषु शस्त्रेषु दानवोऽन्यन्महद्भुतः ।  
 समादाय ततो आर्णवतस्तार नारदः ॥ २४

ततो नारायणो देवो दैत्यनाशं जगद्गुरुः ।  
 नाराचेन जघानाद्य हृदये सुरतापसः ॥ २५

संभिन्नाहृदयो ब्रह्मन् देवेनाद्भुतकर्मणा ।  
 निपपात रथोपस्थे तमपोवाह सारथिः ॥ २६

स संज्ञां सुचिरेणैव प्रतिलभ्य दितीश्वरः ।  
 सुदृढं चापमादाय भूयो योद्धुमुपागतः ॥ २७

तमागतं संनिरीक्ष्य प्रत्युवाच नराग्रजः ।  
 गच्छ दैत्येन्द्र योत्स्यामः प्रानस्त्वाह्निकमाचर ॥ २८

एवमुक्तो दितीशस्तु साध्येनाद्भुतकर्मणा ।  
 जगाम नैमिषारण्यं क्रियां चक्रे तदाह्निकीम् ॥ २९

एवं युध्यति देवे च प्रह्लादो ह्यसुरो मुने ।  
 रात्री चिन्तयते युद्धे कथं जेष्यामि दाम्भिकम् ॥ ३०

एवं नारायणोनाऽसी सहायुध्यत नारदः ।  
 दिव्यं वर्षसहस्रं तु दैत्ये देवं न चाडयत् ॥ ३१

ततो वर्षसहस्रान्ते ह्यजिते पुरुषोत्तमे ।  
 पीतवाससमभ्येत्य दानवो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३२

किमर्थं देवदेवेश साध्यं नारायणं हरिम् ।  
 विजेतुं नाऽह्य शक्नोमि एतन्मे कारणं वद ॥ ३३

सौमित्राणां उवाच

दुर्जयोऽसी महाबाहुस्त्वया प्रह्लाद धर्मजः ।  
 साध्यो विप्रवरो धीमान् मृधे देवासुरैरपि ॥ ३४

प्रह्लादने मुद्गरके विफल हो जानेपर 'प्राज्ञ' नामक अस्त्र लेकर बड़े बोरसे नरके बड़े भाई नारायणके ऊपर चला दिया; पर उन्होंने उसे भी काट डाला। प्राज्ञके नष्ट हो जानेपर दैत्यने तेज 'शक्ति' कैंकी, पर बलवान् महातपा नारायणने उसे भी अपने क्षुरप्रेके द्वारा काट डाला। नारदजी। उन सभी अस्त्रोंके नष्ट हो जानेपर प्रह्लाद दूसरे विशाल धनुषको लेकर बाणोंकी वर्षा करने लगे। तब परम तपस्वी जगद्गुरु नारायणदेवने प्रह्लादके हृदयमें नाराचसे प्रहार किया ॥ २२—२५ ॥

नारदजी अद्भुत पराक्रमी नारायणके प्रहारसे प्रह्लादका हृदय बिंध गया, फलतः वे बेहोश होकर रथके पिछले भागमें गिर पड़े। यह देखकर सरथी उन्हें वहाँसे हटाकर दूर ले गया बहुत देरके बाद जब उन्हें चेतना प्राप्त हुई होश आया, तब वे पुनः सुदृढ़ धनुष लेकर नर-नारायणसे युद्ध करनेके लिये संग्रामभूमिमें आ गये। उन्हें आया देख नारायणने कहा 'दैत्येन्द्र अब हम कल प्रातः युद्ध करेंगे; तुम भी जाओ, इस समय अपना नित्य कर्म करो। अद्भुत पराक्रमी श्रीनारायणके ऐसा कहनेपर प्रह्लाद नैमिषारण्य चले गये और वहाँ अपने नित्य कर्म सम्पन्न किये ॥ २६ २७ ॥

नारदजी! इस प्रकार भगवान् नारायण एवं दानवेन्द्र प्रह्लाद दोनोंमें युद्ध चलता रहा रात्रिमें प्रह्लाद यह विचार किया करते थे कि मैं युद्धमें इन दम्भ करनेवाले ऋषिको कैसे जीतूँगा? नारदजी इस प्रकार प्रह्लादने भगवान् नारायणके साथ एक हजार दिव्य वर्षोंतक युद्ध किया, परंतु वे उन्हें (नारायणकी) जीत न पाये फिर हजार दिव्य वर्षोंके बीत जानेपर भी पुरुषोत्तम नारायणको न जीत सकनेपर प्रह्लादने वैकुण्ठमें जाकर पीतवस्त्रधारी भगवान् विष्णुसे कहा—देवेश! मैं (सरलतासे) साध्य नारायणको आजतक क्यों न जीत पाया, आप मुझे इसका कारण बतायें ॥ ३० ३३ ॥

इसपर पीतवस्त्रधारी भगवान् विष्णु बोले— प्रह्लाद महाबाहु धर्मपुत्र नारायण तुम्हारे द्वारा दुर्जेय है वे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ऋषि परम ज्ञानी हैं। वे सभी देवताओं एवं असुरोंसे भी युद्धमें नहीं जीते जा सकते ॥ ३४ ॥

प्रह्लाद उवाच

यद्यसौ दुर्जयो देव मया साध्यो रणाजिरे ।  
तत्कथं यत्प्रतिज्ञातं तदसत्यं भविष्यति ॥ ३५

हीनप्रतिज्ञो देवेश कथं जीवेत मादृशः ।  
तस्मान्नवाग्रतो विष्णो करिष्ये कायशोधनम् ॥ ३६

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्त्वा वचनं देवाग्रे दानवेश्वरः ।  
शिरःस्नातस्तदा तस्थौ गुणान् ब्रह्म सनातनम् ॥ ३७  
ततो दैत्यपतिं विष्णुः पीतवासाऽब्रवीद्वचः ।  
गच्छ जेष्यसि भवत्यः तं न युद्धेन कथंचन ॥ ३८

प्रह्लाद उवाच

मया जितं देवदेव त्रैलोक्यमपि सुव्रत ।  
जितोऽयं त्वत्प्रसादेन शक्रः किमुत धर्मजः ॥ ३९

असौ यद्यजयो देव त्रैलोक्येनापि सुव्रतः ।  
न स्वातुं त्वत्प्रसादेन शक्यं किमु करोम्यज ॥ ४०

श्रीवासा उवाच

सोऽहं दानवशार्दूल लोकानां हितकाम्यया ।  
धर्मं प्रवर्त्तापयितुं तपश्चर्या समास्थितः ॥ ४१

तस्माद्यदिच्छसि जयं तमाराधय दानव ।  
तं पराजेष्यसे भक्त्या तस्माच्छुश्रूष धर्मजम् ॥ ४२

पुलस्त्य उवाच

इत्युक्तः पीतवासेन दानवेन्द्रो महात्मना ।  
अब्रवीद्वचनं इष्टः समाह्वयाऽन्धकं मुने ॥ ४३

प्रह्लाद उवाच

दैत्याश्च दानवाश्चैव परिपाल्यास्तन्यान्यक ।  
मयोत्सृष्टमिदं राज्यं प्रतीच्छस्व महाभुज ॥ ४४

इत्येवमुक्तो जग्राह राज्यं हैरण्यलोचनिः ।  
प्रह्लादोऽपि तदाऽगच्छत् पुण्यं बदरिकाश्रमम् ॥ ४५

दृष्ट्वा नारायणं देवं परं च दितिजेश्वरः ।  
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा चतस्रे चरणौ तयो ॥ ४६

तमुवाच महातेजा वाक्यं नारायणोऽव्ययः ।  
किमर्थं प्रणतोऽसीह मामजित्वा महासुर ॥ ४७

प्रह्लादने कहा— देव। यदि ये साध्यदेव (नारायण) युद्धभूमिमें मुझसे जीते नहीं जा सकते हैं तो मैंने जो प्रतिज्ञा की है, उसका क्या होगा? वह तो मिथ्या हो जायगी। देवेश। मुझ-जैसा व्यक्ति हीनप्रतिज्ञ होकर कैसे जीवित रह सकेगा? इसलिये हे विष्णु! अब मैं आपके सामने अपने सरोरकी शक्ति करूँगा ॥ ३५-३६ ॥

पुलस्त्यजी बोले— भगवान्से ऐसा कहकर दानवेश्वर प्रह्लाद सिरसे पैरतक स्नानकर वहाँ बैठ गये और 'ब्रह्मायजी' का जप करने लगे उसके बाद पीताम्बरधारी विष्णुने प्रह्लादसे कहा—हाँ, तुम जजो, तुम उन्हें भक्तिसे जीत सकोगे, युद्धसे कथमपि नहीं ॥ ३७-३८ ॥

प्रह्लादजी बोले—देवाधिदेव! सुकृत! आपको कृपासे मैंने तीनों लोकों तथा इन्द्रको भी जीत लिया है; इन धर्मपुत्रकी बात ही क्या है? हे अज! यदि ये सद्यतो त्रिलोकोसे भी अजेय हैं तथा आपके प्रसादसे भी मैं उनके सामने नहीं डहर सकता तो फिर मैं क्या करूँ? ॥ ३९-४० ॥

(इसपर) भगवान् विष्णु बोले—दानवश्रेष्ठ! वस्तुतः नारायणरूपमें वहाँ मैं ही हूँ मैं ही जगत्की भलाईकी इच्छासे धर्मप्रवर्तनके लिये उस रूपमें तप कर रहा हूँ। इसलिये प्रह्लाद! यदि तुम विजय चाहते हो तो मेरे उस रूपकी आराधना करो। तुम नारायणको भक्तिद्वारा ही पराजित कर सकोगे। इसलिये धर्मपुत्र नारायणकी आराधना करो—इसी अर्थमें ये सुसाध्य हैं ॥ ४१-४२ ॥

पुलस्त्यजी बोले—मुने! भगवान् विष्णुके ऐसे कहनेपर प्रह्लाद प्रसन्न हो गये, उन्होंने फिर अन्धकको बुलाकर इस प्रकार कहा ॥ ४३ ॥

प्रह्लादजी बोले—अन्धक! तुम दैत्यों और दानवोंका प्रतिपालन करो महत्माहो! मैं यह राज्य छोड़ रहा हूँ इसे तुम ग्रहण करो इस प्रकार कहनेपर जब हिरण्याक्षके पुत्रने राज्यको स्वीकार कर लिया, तब प्रह्लाद पवित्र बदरिकाश्रम चले गये। वहाँ उन्होंने भगवान् नारायण तथा परको देखकर हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। महातेजस्वी भगवान् नारायणने उनसे कहा महासुर! मुझे बिना जीते ही अब तुम क्यों प्रणाम कर रहे हो? ॥ ४४-४७ ॥

प्रह्लाद उवाच

कस्त्वा जेतुं प्रभो शक्तः कस्तस्मिन् पुरुषोऽधिकः ।  
 त्वं हि नारायणोऽनन्तः पीतभासा जनार्दनः ॥ ४८  
 त्वं देवः पुण्डरीकशस्त्रं धिष्णुः शार्ङ्गचापधृक् ।  
 त्वमव्ययो महेशानः श्लाघ्यतः पुरुषोत्तमः ॥ ४९  
 त्वां योगिनाश्चिन्तयन्ति चार्चयन्ति मनीषिणः ।  
 जपन्ति स्नातवन्तस्त्वं च यजन्ति त्वां च योश्चिवः ॥ ५०  
 त्वमच्युतो हृषीकेशश्चक्रपाणिर्धराधरः ।  
 महामीनो हयशिरास्त्वमेव वरकच्छपः ॥ ५१  
 हिरण्यक्षरिपुः श्रीमान् भगवानथ सुकरः ।  
 मत्पितुर्नशनकरो भवानपि नृकेसरी ॥ ५२  
 ब्रह्मा त्रिनेत्रोऽम्बरराट् हुताशः  
 प्रेताधिपो नीरपतिः समीरः ।  
 सूर्यो मृगशृङ्गलज्जमृगशो  
 भवान् विभो नाथ खगेन्द्रकेतो ॥ ५३  
 त्वं पृथ्वी ज्योतिराकाशं जलं भूत्वा सहस्वशः ।  
 त्वय्य द्याप्तं जगत्सर्वं कस्त्वं जेष्यति माधव ॥ ५४  
 भक्त्या यदि हृषीकेश तोषमेवि जगद्गुरो ।  
 नान्यथा त्वं प्रशक्योऽसि जेतुं सर्वगताव्यय ॥ ५५

भगवन् उवाच

परितुष्टोऽस्मि ते दैन्यं स्तनेनानेन सुखतः ।  
 भक्त्या त्वनन्यया चाहं त्वया दैत्य पराजितः ॥ ५६  
 पराजितश्च पुरुषो दैत्य दण्डं प्रयच्छति ।  
 दण्डार्थं ते प्रदास्यामि वरं कृणु यमिच्छसि ॥ ५७

नारायणं वरं याचे यं त्वं मे दातुमर्हसि ।  
 तन्ये पापं त्वयं यातुं शरीरं मानसं तथा ॥ ५८  
 वाञ्छिकं च जगन्नाथ यन्त्वय्य सङ्गं युष्यतः ।  
 मेरेण यद्याप्यभवद् वरमेतत्प्रयच्छ मे ॥ ५९

नारायण उवाच

एवं भवतु दैत्येन्द्र पापं ते यातु संक्षयम् ।  
 द्वितीयं प्रार्थय वरं तं ददामि तवासुर ॥ ६०

प्रह्लाद उवाच

या या जायेत मे बुद्धिः सा सा विष्णो त्वदाग्नताः ।  
 देवार्चने च निरता त्वच्चिता त्वत्परायणा ॥ ६१

प्रह्लाद बोले— प्रभो आपको भला कौन जीत सकता है ? आपसे बड़कर कौन हो सकता है ? आप ही अनन्त नारायण पीतान्तरधारी जनार्दन हैं। आप ही कमलनयन शार्ङ्गधनुषधारी विष्णु हैं। आप अव्यय, महेश्वर तथा शाश्वत परम पुरुषोत्तम हैं योगिजन आपके ही ध्यान करते हैं। विद्वान् पुरुष आपको ही पूजा करते हैं। वेदज्ञ आपके नामका जप करते हैं तथा याज्ञिकजन आपका यजन करते हैं। आप ही अच्युत, हृषीकेश, चक्रपाणि, धराधर, महामत्स्य, हयग्रीव तथा श्रेष्ठ कच्छप (कूर्म) अवतारी हैं ॥ ४८—५१ ॥

आप हिरण्याक्ष दैत्यका वध करनेवाले ऐश्वर्य-युक्त और भगवान् आदि वाराह हैं। आप ही मेरे पिताको मारनेवाले भगवान् नृसिंह हैं। आप ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण और वायु हैं। हे स्वामिन् हे खगेन्द्रकेतु (शरद्विजय) आप सूर्य, चन्द्र तथा स्वावर और जंगमके आदि हैं। पृथ्वी अग्नि, आकाश और जल आप ही हैं। सहस्रों रूपोंसे आपने समस्त जगत्को व्याप्त किया है। माधव! आपको कौन जीत सकेगा ? जगद्गुरो हृषीकेश! आप भक्तिके ही संतुष्ट हो सकते हैं हे सर्वगत्! हे अविनाशिन आप दूसरे किसी भी अन्य प्रकारसे नहीं जीते जा सकते ॥ ५२—५५ ॥

श्रीभगवान् बोले— सुखतः दैत्य! तुम्हारी इस स्तुतिके मैं अत्यन्त संतुष्ट हूँ। दैत्य अनन्य भक्तिके तुमने मुझे जीत लिया है, प्रह्लाद पराजित पुरुष विजैताको दण्ड (के रूपमें कुछ) देता है। परंतु मैं तुम्हारे दण्डके बदले तुम्हें वर दूँगा तुम इच्छित वर माँगे ॥ ५६—५७ ॥

प्रह्लादजी बोले— हे नारायण मैं आपसे वर माँग रहा हूँ आप उसे देनेकी कृपा करें हे जगन्नाथ आपके तथा नरके साथ युद्ध करनेमें मेरे शरीर, मन और वाणोंसे जो भी पाप (अपकर्म) हुआ हो वह सब नष्ट हो जाय आप मुझे यही वर दें ॥ ५८—५९ ॥

नारायणने कहा— दैत्येन्द्र! ऐसा ही होगा तुम्हारा पाप नष्ट हो जाय अब प्रह्लाद तुम दूसरा एक वर और माँग लो मैं उसे भी तुम्हें दूँगा ॥ ६० ॥

प्रह्लादजी बोले— हे भगवन्! मेरी जो भी बुद्धि हो, वह आपसे ही सम्बद्ध हो, वह देवपूजामें लगी रहे मेरी बुद्धि, आपका ही ध्यान करे और आपके चिन्तनमें लगी रहे ॥ ६१ ॥

नारायण उवाच

एवं भविष्यत्यसुर वरमन्यं यमिच्छसि।  
तं वृणीष्व महाबाहो प्रदास्याम्यविचारयन् ॥ ६२

ब्रह्मा उवाच

सर्वमेव मया तर्धं त्वत्प्रसादादधोक्षज।  
त्वत्पादपङ्कजाभ्यां हि ख्यातिरस्तु सदा मम ॥ ६३

नारायण उवाच

एवमस्तवपरं चास्तु नित्यमेवाक्षयोऽव्यय।  
अजरश्चापरश्चापि मत्प्रसादाद् भविष्यसि ॥ ६४

गच्छस्व दैत्यशार्दूल स्वपावासं क्रियारतः।  
न कर्मबन्धो भवतो मत्त्वित्तस्य भविष्यति ॥ ६५

प्रशासवदभून् दैत्यान् राज्यं पालय शाश्वतम्।  
स्वजातिसदृशं दैत्य कुरु धर्ममनुत्तमम् ॥ ६६

पुलस्त्य उवाच

इत्युक्तो लोकनाथेन प्रह्लादो देवमब्रवीत्।  
कथं राज्यं समादास्ये परित्यक्तं जगद्गुरो ॥ ६७

तमुवाच जगत्सामी गच्छ त्वं निजमाश्रयम्।  
हितोपदेष्टा दैत्यानां दानवानां तथा भव ॥ ६८

नारायणेनैवमुक्तः स तदा दैत्यनायकः।  
प्रणिपत्य विभुं सुष्टो जगाम नगरं निजम् ॥ ६९

दृष्ट्वा सभाजितश्चापि दानवीर्यकेन च।  
निमन्त्रितश्च राज्याय न प्रत्यैच्छत्त नारद ॥ ७०

राज्यं परित्यज्य महाऽसुरेन्द्रो  
नियोजयन् सत्यधि दानवेन्द्रान्।

ध्यायन् स्मरन् केशवमप्रमेयं  
तस्थी तदा योगविशुद्धदेहः ॥ ७१

एवं पुरा नारद दानवेन्द्रो  
नारायणेनोत्तमपुरुषेण ।

पराजितश्चापि विमुच्य राज्यं  
तस्थी मनो घातरि सन्निवेश्य ॥ ७२

नारायणेने कहा—प्रह्लाद! ऐसा ही होगा। पर दे  
महाबाहो। तुम एक और अन्य कर भी जो तुम चाहो  
मांगो मैं बिना विचारे ही—बिना देय-अदेयका विचार  
किये ही—वह भी तुम्हें दूँगा ॥ ६२ ॥

ब्रह्मादने कहा—अधोक्षज! आपके अनुग्रहसे  
मुझे सब कुछ प्राप्त हो गया। आपके चरणकमलोंसे मैं  
सदा लगा रहूँ और ऐसी ही मेरी प्रसिद्धि भी हो अर्थात्  
मैं आपके भक्तके रूपमें ही चर्चित होऊँ ॥ ६३ ॥

नारायणेने कहा—ऐसा ही होगा। इसके अतिरिक्त  
मेरे प्रसादसे तुम अक्षय, अविनाशी, अजर और अमर  
होगे। दैत्यक्षेत्र अब तुम अपने घर जाओ और सदा  
(धर्म) कार्यमें रत रहो। मुझमें मन लगाये रखनेसे  
तुम्हें कर्मबन्धन नहीं होगा इन दैत्योंपर शासन करते  
हुए तुम शाश्वत (सदा बने रहनेवाले) राज्यका पालन  
करो दैत्य। अपनी जातिके अनुकूल श्रेष्ठ धर्मोंका  
अनुष्ठान करो ॥ ६४—६६ ॥

पुलस्त्यजी बोले लोकनाथके ऐसा कहनेपर  
प्रह्लादने भगवान्से कहा—जगद्गुरो! अब मैं छोड़े हुए  
राज्यको कैसे ग्रहण करूँ? इसपर भगवान्ने उनसे  
कहा—तुम अपने घर जाओ तथा दैत्यों एवं दानवोंको  
कल्याणकारी बातोंका उपदेश करो। नारायणके ऐसा  
कहनेपर वे दैत्यनायक (प्रह्लाद) परमेश्वरको प्रणाम कर  
प्रसन्नतापूर्वक अपने नगर निवास-स्थानको चले गये।  
नारदजी! अन्धक तथा दानवोंने प्रह्लादको देखा एवं  
उनका सम्मान किया और उन्हें राज्य स्वीकार करनेके  
लिये अनुरोधित किया; किन्तु उन्होंने राज्य स्वीकार नहीं  
किया। दैत्येश्वर प्रह्लाद राज्यको छोड़ अपने उपदेशोंसे  
दानव श्रेष्ठोंको शुभ मार्गमें नियोजित तथा भगवान्  
नारायणका ध्यान और स्मरण करते हुए योगके द्वारा शुद्ध  
शरीर होकर विराजित हुए नारदजी। इस प्रकार पहले  
पुरुषोत्तम नारायणद्वारा पराजित दानवेन्द्र प्रह्लाद राज्य  
छोड़कर भगवान् नारायणके ध्यानमें लीन होकर शान्त  
एवं सुखी हुए थे ॥ ६७—७२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें अष्टमोऽध्याय समाप्त हुआ ॥ ८ ॥



## नवाँ अध्याय

अन्धकासुरकी विजिगीषा, देवों और असुरोंके बाहुनों एवं युद्धका वर्णन

नारद उवाच

नेत्रहीनः कथं राज्ये प्रह्लादेनान्धको मुने ।  
अभिषिक्तो जायताऽपि राजधर्मं सनातनम् ॥ १

पुलस्त्य उवाच

लब्धचक्षुरसौ भूयो हिरण्याक्षेऽपि जीवति ।  
ततोऽभिषिक्तो दैत्येन प्रह्लादेन निजे पदे ॥ २

नारद उवाच

राज्येऽन्धकोऽभिषिक्तस्तु किमाचरत सुव्रत ।  
देवादिभिः सह कथं समास्ते तद् वदस्व मे ॥ ३

पुलस्त्य उवाच

राज्येऽभिषिक्तो दैत्येन्द्रो हिरण्याक्षस्तोऽन्धकः ।  
तपसाराध्य देवेशं शूलपाणिं त्रिलोचनम् ॥ ४

अजेयत्वमवध्यत्वं सुरसिद्धिर्षिपन्नगैः ।  
अदाह्यत्वं हुताशेन अवलेद्यत्वं जलेन च ॥ ५

एवं स बरलब्धस्तु दैत्यो राज्यमपालयत् ।  
शुक्रं पुरोहितं कृत्वा समध्यास्ते ततोऽन्धकः ॥ ६

ततश्चक्रे समुद्योगं देवानामन्धकोऽसुरः ।  
आक्रम्य वसुधां सर्वां मनुजेन्द्रान् पराजयत् ॥ ७  
पराजित्य भूमीपालान् सहायार्थे नियोज्य च ।  
तैः समं मेरुशिखरं जगामाद्भुतदर्शनम् ॥ ८

शक्रोऽपि सुरसैन्यानि समुद्योज्य महागजम् ।  
समारुह्यामरावत्यां गुपितं कृत्वा विनिर्ययौ ॥ ९

शक्रस्यानु सशैवान्ये लोकपाला महीजसः ।  
आरुह्य वाहनं स्वं स्वं सायुधा निर्ययुर्वहिः ॥ १०

देवसेनाऽपि च समं शक्रेणाद्भुतकर्मणा ।  
निर्जगामातिवेगेन गजबाजिरथादिभिः ॥ ११

नारदजीने कहा— मुने प्रह्लादजी सनातन राजधर्मको भलीभाँति जानते थे ऐसे दशमे उन्होंने नेत्रहीन अन्धकको राजगद्दीपर कैसे बैठाया ? ॥ १ ॥

पुलस्त्यजी बोले— हिरण्याक्षके जीवनकालमें ही अन्धकको पुन दृष्टि प्राप्त हो गयी थी, अतः दैत्यवर्ग प्रह्लादने उसे अपने पदपर अभिषिक्त किया था ॥ २ ॥

नारदजीने पूछा— सुव्रत ! मुझे यह बतलाइये कि अन्धकने राज्यपर अभिषिक्त होनेपर क्या-क्या किया तथा वह देवताओं आदिके साथ कैसा व्यवहार करता था ॥ ३ ॥

पुलस्त्यजी बोले हिरण्याक्षके पुत्र दैत्यराज अन्धकने राज्य प्राप्त करके तपस्याद्वारा शूलपाणि भगवान् शंकरजी आराधना की और उनसे देवता, सिद्ध, ऋषि एवं नागोंद्वारा नहीं जीते जाने और नहीं मारे जानेका वर प्राप्त कर लिया इसी प्रकार वह अग्निके द्वारा न जलने जलसे न भीगने आदिका भी वरदान प्राप्त कर राज्यका संचालन कर रहा था। उसने शुक्राचार्यको अपना पुरोहित बना लिया था। फिर अन्धकासुरने देवताओंको जीतनेका उपक्रम (आक्रम) किया और उन्हें जीतकर सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने वशमें कर लिया—सभी श्रेष्ठ राजाओंको परास्त कर दिया ॥ ४—७ ॥

उसने सभी राजाओंको पराजित कर उन्हें (सामन्त बनकर) अपनी सहायतामें नियुक्त कर दिया। फिर उनके साथ वह सुमेरुगिरि पर्वतको देखनेके लिये उसके अद्भुत शिखरपर गया इधर इन्द्र भी देवसेनाको तैयारकर और अमरावतीमें सुरक्षाकी व्यवस्था कर अपने ऐरावत हाथीपर सवार होकर युद्धके लिये बाहर निकले। इसी प्रकार दूसरे तेजस्वी लोकपालगण भी अपने-अपने वाहनपर सवार होकर तथा अपने-अपने अस्त्र लेकर इन्द्रके पीछे पीछे चल पड़े। हाथी, घोड़े, रथ आदिसे युक्त देवसेना भी बड़े अद्भुत पराक्रमी इन्द्रके साथ तेजीसे निकल पड़ी। सेनाके आगे आगे सारही आदित्य और

अग्रतो द्वादशादित्याः पृष्ठतश्च त्रिलोचनाः ।  
मध्येऽष्टौ वसवो विश्वे साध्याधिमरुता गणाः ।  
यक्षाविद्याधराद्याश्च स्वं स्वं वाहनमास्थिताः ॥ १२

नारद उवाच

रुद्रादीनां वदस्वेह वाहनानि च सर्वशः ।  
एकैकस्यापि धर्मज्ञ परं कौतूहलं मम ॥ १३

पुलस्त्य उवाच

भृगुष्व कथयिष्यामि सर्वेषामपि नारद ।  
वाहनानि समासेन एकैकस्यानुपूर्वशः ॥ १४  
रुद्रहस्ततलोत्पन्नो महावीर्यो महाजवः ।  
श्वेतवर्णो यज्ञपतिर्देवराजस्य वाहनम् ॥ १५  
रुद्रोरुसंभवो भीमः कृष्णवर्णो मनोजवः ।  
पौण्ड्रको नाम महिषो धर्मराजस्य नारद ॥ १६  
रुद्रकर्णमलोद्भूतः श्यामो जलधिसंज्ञकः ।  
शिशुमारो दिव्यगतिः वाहनं वरुणस्य च ॥ १७  
रीडः शकटचक्राक्षः शीतराकारो नरोत्तमः ।  
अम्बिकापदसंभूतो वाहनं धनदस्य तु ॥ १८

एकादशानां रुद्राणां वाहनानि महामुने ।  
गन्धर्वश्च महावीर्यो भुजगेन्द्राश्च हरुणाः ।  
श्वेतानि सौरभेयाणि वृषाण्युग्रजवानि च ॥ १९  
रघं चन्द्रमसश्चार्द्धसहस्रं हंसवाहनम् ।  
इरयो रघवाहश्च आदित्या मुनिसत्तम ॥ २०  
कुम्भरस्याश्च वसवो यक्षाश्च नरवाहनाः ।  
किन्नरा भुजगारूढा ह्यारूढौ तच्छक्षिणौ ॥ २१  
सारङ्गाधिष्ठिता ग्रहान् मरुतो घोरदर्शनाः ।  
शुकारूढाश्च कश्यपो गन्धर्वाश्च पदातिनः ॥ २२  
आरुश्च वाहनान्येवं स्वानि स्वान्यमरोत्तमाः ।  
संनष्टा निर्वधुर्दृष्टा युद्धाय सुमहीजसः ॥ २३

नारद उवाच

गदितानि सुरादीनां वाहनानि त्वया मुने ।  
दैत्यानां वाहनान्येवं यथावद् वक्तुमर्हसि ॥ २४

पुलस्त्य उवाच

भृगुष्व दासवादीनां वाहनानि द्विजोत्तम ।  
कथयिष्यामि तत्त्वेन यथावच्छ्रोतुमर्हसि ॥ २५

उनके पृष्ठभागमें ग्यारह रुद्रगण थे। उसके मध्यमें आठों वसु, तेरहों विश्वेदेव, साध्य, अश्विनो कुमार, मरुद्गण, यक्ष, विद्याधर आदि अपने-अपने वाहनपर सवार होकर चल रहे थे ॥ ८—१२ ॥

नारदजीने पूछा—धर्मज्ञ! रुद्र आदिके वाहनोंके एक-एक कर पूरी तरह वर्णन कीजिये। इस विषयमें मुझे बड़ी उत्सुकता हो रही है ॥ १३ ॥

पुलस्त्यजी बोले—नारदजी सुनिये; मैं एक-एक करके क्रमशः सभी देवताओंके वाहनोंका संक्षेपमें वर्णन करता हूँ रुद्रके करतलसे उत्पन्न अति परक्रमवाला, अति तीव्रगतिवाला, श्वेतवर्णका ऐरावत हाथी देवराज (इन्द्र) का वाहन है। हे नारद! रुद्रके उरुसे उत्पन्न भयंकर कृष्णवर्णवाला एवं मनके सदृश गतिमान् पौण्ड्रक नामक महिष धर्मराजका वाहन है रुद्रके कर्ण-मलसे उत्पन्न श्यामवर्णवाला दिव्यगतिशील जलधि नामक शिशुमार (सूँस) चरुण्णका वाहन है। अम्बिकाके चरणोंसे उत्पन्न गाड़ीके चक्केके समान भयंकर आँखवाला, पर्वतकार नरोत्तम कुम्भरका वाहन है ॥ १४—१८ ॥

हे महामुने! एकादश रुद्रोंके वाहन महापराक्रमवाले गन्धर्वगण, भयंकर सर्पराजगण तथा सुराधिके अंशसे उत्पन्न तीव्रगतिवाले सफेद बैल हैं। मुनिज्रेष्ठ! चन्द्रमाके रथको खींचनेवाले आधे हज्जर (पाँच सौ) हंस हैं। आदित्योंके रथके वाहन घोड़े हैं। वसुओंके वाहन हाथी, यक्षोंके वाहन नर, किन्नरोंके वाहन सर्प एवं अश्विनो कुमारोंके वाहन घोड़े हैं। ग्रहान् भयंकर दीखनेवाले मरुद्गणोंके वाहन हरिण हैं, भृगुओंके वाहन शुक हैं और गन्धर्वलोग पैदल ही चलते हैं ॥ १९—२२ ॥

इस प्रकार बड़े तेजस्वी ब्रह्म देवगण अपने-अपने वाहनोंपर आरुढ़ एवं सन्नद्ध (तैयार) होकर प्रसन्नचर्चक बुद्धिके लिये निकल पड़े ॥ २३ ॥

नारदने कहा—मुने आपने देवादिकोंके वाहनोंका वर्णन किया इसी प्रकार अब असुरोंके वाहनोंका भी यथावत् वर्णन करें ॥ २४ ॥

पुलस्त्यजी बोले—द्विजोत्तम (अब) दानवोंके वाहनको सुनो मैं तत्त्वतः उनका ठीक-ठीक वर्णन करता हूँ अन्यथाका अलौकिक रथ कृष्णवर्णके ब्रह्म

अन्धकस्य रथो दिव्यो युक्तः परमवाजिभिः ।  
 कृष्णवर्णः सहस्रारस्त्रिंशत्परिमाणवान् ॥ २६  
 प्रह्लादस्य रथो दिव्यश्चन्द्रवर्णहंयोनयै ।  
 दशमानस्तथाऽष्टाभिः श्वैतरुक्मयैः शुभः ॥ २७  
 विरोचनस्य च गजः कुजम्भस्य तुरंगमः ।  
 जम्भस्य तु रथो दिव्यो हयैः काञ्चनसन्निभैः ॥ २८  
 शङ्कुकर्णस्य तुरगो हयग्रीवस्य कुञ्जरः ।  
 रथो मयस्य विख्यातो दुन्दुभेष्ट महोरगः ।  
 शम्बरस्य विमानोऽभूदयःशङ्कोर्मणाधिपः ॥ २९  
 बलवृत्री च बलिनी गदामुसलधारिणी ।  
 पद्भ्यां दैवतसैन्यानि अभिव्रधितुमुद्यती ॥ ३०  
 ततो रणोऽभूत् तुमुलः संकुलोऽतिभयंकरः ।  
 रजसा संवृते लोको पिङ्गवर्णेन भारत ॥ ३१  
 नाज्ञामीच्च पिता पुत्रं न पुत्रः पितरं तथा ।  
 स्थानेनान्ये निजघ्नूर्वै परानन्ये च सुव्रत ॥ ३२  
 अभिद्रुतो महावेगो रथोपरि रथस्तदा ।  
 गजो घत्तगजेन्द्रं च सादी सादिनमभ्यगान् ॥ ३३  
 पदातिरपि संकुलः पदातिनमबोत्खणम् ।  
 परस्परं तु प्रत्यञ्जनन्योन्यजयकाङ्क्षिणः ॥ ३४  
 ततस्तु संकुले तस्मिन् युद्धे दैवासुरे मुने ।  
 प्रावर्तत नदी घोरा शमयन्ती रणाद्रजः ॥ ३५  
 शोणितोदा रथावता योधसंघदुवाहिनीः ।  
 गजकुम्भमहाकूर्मा शरमीना दुरत्यया ॥ ३६  
 तीक्ष्णाग्रप्रासयकरा महासिंघादुवाहिनी ।  
 अन्धशैवालसंकीर्णा पताकाफेनमासिनी ॥ ३७  
 गृध्रकङ्कमहाईसा जयेनचक्राङ्गमण्डिता ।  
 वधवायसकादम्भा गोमायुधापदाकुला ॥ ३८  
 पिशाचमुनिसंकीर्णा दुस्तरा प्राकृतैर्जनैः ।  
 रथप्लवैः संतरन्तः शूरास्तां प्रजगाहिरे ॥ ३९  
 अगुत्पन्नदवमण्डन्तः सुदयन्तः परस्परम् ।  
 समुनरन्तो वेगेन योधा जयघनेप्सवः ॥ ४०

अश्वोंसे परिचालित होना था। वह हजार अश्वों —  
 पहियेकी नाभि और नेमिके बीचकी लकड़ियोंसे युक्त  
 और सौ हाथोंका परिमाणवाला था। प्रह्लादका दिव्य रथ  
 सुन्दर एवं सुवर्ण-रजत मण्डित था। उसमें चन्द्रवर्णवाले  
 आठ उत्तम घोड़े जुते हुए थे। विरोचनका वाहन हाथी  
 था एवं कुजम्भ घोड़ेपर सवार था। जम्भका दिव्य रथ  
 स्वर्णवर्णके घोड़ोंसे युक्त था ॥ २५ २८ ॥

इसी प्रकार शङ्कुकर्णका वाहन घोड़ा, हयग्रीवका  
 हाथी और मय दानवका वाहन दिव्य रथ था दुन्दुभिका  
 वाहन विशाल नाग था। शम्बर विमानपर चढ़ा हुआ था  
 तथा अयःशङ्कु सिंहपर सवार था गदा और मुसलधारी  
 बलवान् बल और वृत्र पैदल थे; पर देवताओंकी सेनापर  
 चढ़ाई करनेके लिये उद्यत थे। फिर अति भयङ्कर  
 घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। नारदजी, समस्त लोक  
 पीली भूलसे डक गया, जिससे पिता पुत्रको और पुत्र  
 पिताको भी परस्पर एक-दूसरेको पहचान नहीं पाते थे।  
 सुव्रत! कुछ लोग अपने ही पक्षके लोगोंको तथा कुछ  
 लोग विरोधी पक्षके लोगोंको मारने लगे ॥ २९ ३२ ॥

उस युद्धमें रथके ऊपर रथ और हाथीके ऊपर  
 हाथी टूट पड़े तथा घुड़सवार घुड़सवारोंकी ओर वेगसे  
 आक्रमण करने लगे इसी प्रकार पादचारी (पैदल)  
 सैनिक कुछ होकर अन्य बलशाली पैदलोंपर चढ़ बैठे।  
 इस प्रकार एक-दूसरेको जोतनेकी इच्छासे सभी परस्पर  
 प्रहार करने लगे। मुने! उसके बाद देवताओं और  
 असुरोंके उस घोर संग्राममें युद्धसे उत्पन्न धूलिकी शान्त  
 करती हुई रथरूपी जलधारवासी एवं रथरूपी भँवरवाली  
 और योद्धाओंके समूहकी बड़ा ले जानेवाली एवं  
 गजकुम्भरूपी महान् फूँव तथा तररूपी मीनसे युक्त बड़ी  
 भारी नदी बह चली ॥ ३३-३६ ॥

उस नदीमें तोख धारवाले प्रास (एक प्रकारका  
 अस्त्र) ही मकर थे, बड़ी-बड़ी तलवारें ही प्राद थीं,  
 उसमें अति ही शैवाल, पत्रका ही फेन, गुध्र एवं कङ्क  
 पक्षी महाशंख, बाज ही चक्रवाक और जंगली जँवे ही  
 मानो कलहंस थे। वह नदी शृगालरूपी मूँस एवं पिशाचरूपी  
 मुनियोंसे संकीर्ण थी और साधारण मनुष्योंसे दुस्तर थी।  
 जयरूप धनकी इच्छावाले शूर योद्धा लोग घुटनेतक  
 झुकते और एक-दूसरेको मारते हुए रथरूपी नीकाओंद्वारा  
 उस नदीको वेगसे पार कर रहे थे ॥ ३७-४० ॥

स्तस्तु रौद्रे सुरदैत्यसादने  
महाहवे भीरुभयंकरेऽथ ।  
रक्षांसि यक्षाश्च सुसंग्रह्याः  
पिशाचयुधास्त्वभिरेमिरे ॥ ४१

पित्रन्यसुगाढतरं भटानाः  
मालिङ्ग्य मांसानि च भक्षयन्ति ।  
वसां वितुष्पन्ति च विस्फुरन्ति  
गर्जन्यधान्योन्यमथो वयांसि ॥ ४२

मुखानि फेत्काररवाञ्जिवाश्च  
क्रन्दन्ति योधा भुवि वेदनात्ताः ।  
शस्त्रप्रतप्ता निपतन्ति चान्ये  
युद्धं श्मशानप्रतिभं बभूवुः ॥ ४३

तस्मिञ्जिवाघोररवे प्रवृत्ते  
सुरासुराणां सुभयंकरे ह ।  
युद्धं बभी प्राणपणोपविद्धं  
हृन्हेऽतिशस्त्राक्षगतो दुरोदरः ॥ ४४

हिरण्यचक्षुस्तनयो रणेऽन्धको  
रथे स्थितो चाङ्गिमहस्त्रयोजिते ।  
भक्तेभपृष्ठस्थितमुग्रतेजसं  
समेधिवान् देवपतिं शतक्रतुम् ॥ ४५

समापतन्तं महिषाधिरूढं  
यमं प्रतीच्छद् बलवान् दितीशः ।  
प्रह्लादनामा तुरगाष्टयुक्ते  
रथं समास्थाय समुद्यतास्त्रः ॥ ४६

विरोचनश्चापि जलेश्वरं त्वगा-  
न्धम्भस्त्वधागाद् धनदं बलाढ्याम् ।  
वायुं समध्येत्य च शम्भरोऽथ  
मयो हुताशं युयुधे मुनीन्द्र ॥ ४७

अन्ये हयग्रीवपुङ्खा महाबला  
दितेस्तनूजा वनुपुङ्गवाश्च ।  
सुरान् हुताशार्कजसुरेणुस्रान्  
हृन्द् सप्तसाक्ष महाबलान्विताः ॥ ४८

गर्जन्यधान्योन्यमुपेत्य युद्धे  
घापानि कर्षन्त्यतिवेगिताश्च ।  
मुखानि नाराघगणान् सहस्रं  
आगच्छ हे तिष्ठसि किं सुखतः ॥ ४९

भरैस्तु तीक्ष्णैरतितापयन्तः  
शस्त्रैरमोघैरभिताडयन्तः ।

वह युद्ध करणोंके लिये मयाजना, देवों एवं  
दैत्योंका संहार करनेवाला तथा वस्तुतः अत्यन्त भयंकर  
था ॥ इसमें यक्ष और राक्षस लोग अत्यन्त आनन्दित  
हो रहे थे। पिशाचोंका समूह भी प्रसन्न था वे  
भीरोके गाढ़े रुखिरका पान करते थे तथा (उनके  
शर्बोंका) आलिंगन कर मांसका भक्षण करते थे।  
पक्षी चर्बीको नोचते और उछलते थे एवं एक-  
दूसरेके प्रति गर्जन करते थे। सियारिने 'फेत्कार'  
शब्द कर रही थीं, भूमिपर पड़े हुए वेदनासे दुःखी  
योद्धा पड़ाह रहे थे कुछ लोग शस्त्रसे उत्तप्त होकर  
गिर रहे थे युद्धभूमि मरभटके समान हो गयी  
थी। सियारिनांकि भयंकर शब्दसे युक्त देवासुर-संग्राम  
ऐसा लगता था, मानो युद्धमें निपुण योद्धा लोग  
शस्त्ररूपी पाशा लेकर अपने प्राणोंकी बाजी लगाते  
हुए जुआ खेल रहे हैं ॥ ४१-४८ ॥

हिरण्याक्षका पुत्र अन्धक हजारों योद्धोंसे  
युक्त रथपर आरुढ़ होकर मत्तवाले हाथीकी पीठपर  
विद्यत महतेजस्वी देवराज इन्द्रके साथ जा भिड़ा  
इधर आठ योद्धोंसे युक्त रथपर आरुढ़ अस्त्र  
ठठाये बलवान् दैत्यराज प्रह्लादने भद्रिषपर सवार  
यमराजका सामना किया। नारदजी! उधर विरोचन  
वरुणदेवसे युद्ध करनेके लिये आगे बढ़ा तथा  
जम्भ बलशाली कुबेरकी ओर चला। शम्भर  
वायुदेवताके सामने जा खड़ा हुआ एवं मथ अग्निके  
साथ युद्ध करने लगा। हयग्रीव आदि अन्यान्य  
महाबलवान् दैत्य तथा दानव अग्नि, सूर्य, अष्ट  
वसुओं तथा शेषनाग आदि देवताओंके साथ इन्द्रयुद्ध  
करने लगे ॥ ४५-४८ ॥

वे एक-दूसरेके साथ युद्ध करते हुए भीषण  
गर्जन कर रहे थे वे वे वेगपूर्वक धनुष चढ़ा करके  
हजारों बाणोंकी हड़दी लगाकर कहने लगे—अरे!  
आओ, आओ रुक क्यों गये! तेज बाणोंको चला  
करते हुए तथा अमोघ शस्त्रोंसे प्रहार करते हुए

मन्दाकिनीवेगनिर्भा वहन्ती  
प्रवर्तयन्तो भयदां नदीं च ॥ ५०

त्रैलोक्यमाकांक्षिभिरुप्रवेगैः  
सुरासुरैर्नारद संप्रयुद्धे ।  
पिशाचरक्षोगणपुष्टिवर्धनी-  
मुत्तर्तुमिच्छद्विरसृग्गदी बभी ॥ ५१

वाञ्छन्ति तुर्याणि सुरासुराणां  
पश्यन्ति खस्था मुनिमिद्धसंघाः ।  
नयन्ति तानप्सरसां गणाध्या  
हता रणे येऽभियुक्तास्तु शूराः ॥ ५२

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें नवौ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

~~~~~

दसवाँ अध्याय

अन्धकके साथ देवताओंका युद्ध और अन्धककी विजय

पुलस्त्य उवाच

ततः प्रवृत्ते संग्रामे भीरुणां भयवर्धने ।
सहस्राक्षो महाचापमादाय व्यसृजच्छरान् ॥ १
अन्धकोऽपि महावेगे धनुराकृष्य भास्वरम् ।
पुरंदराय चिक्षेप शरान् बर्हिणवाससं ॥ २
तावन्त्योन्यं सुतीक्ष्णाग्रैः शरैः संनतपर्वभिः ।
रुक्मपुङ्गवमहावेगैराजघ्नतुरुभावपि ॥ ३
ततः क्रुद्धः शतमखः कुलिशं भ्राम्य पाणिना ।
चिक्षेप दैत्यराजाय तं ददर्श तथान्धकः ॥ ४
आजघात च चाणोघैरस्त्रैः शस्त्रैः स नारद ।
तान् भस्मसात्तदा चक्रे नगानिव हुताशनं ॥ ५
ततोऽतिवेगिनं वज्रं मृष्टा बलवत्तं वरः ।
समाप्लुत्य रथात्तस्थी भुवि बाहुसहायवान् ॥ ६
रथं सारथिनं सार्धं साश्वध्वजसकृबरम् ।
भस्म कृत्वाथ कुलिशमन्धकं समुपाधयी ॥ ७
तमापतन्तो वेगेन मुष्टिनाहत्य भूतले ।
पातयामास बलवाद्गर्जं च तदाऽन्धकः ॥ ८

उन लोगोंने गङ्गाके समान तीव्र वेगसे प्रवाहित होनेवाली, (किंतु) भयंकर नदीको प्रवर्तित कर दिया। नारदजी! उस युद्धमें तीनों लोकोंको चाहनेवाले दृष्टवेगशाली देवता एवं असुरगण पिशाचों एवं राक्षसोंकी पुष्टि बढ़ानेवाली शोणित सरिताको पार करनेकी इच्छा कर रहे थे उस समय देवता और दानवोंके बाजे बज रहे थे। आकाशमें स्थित मुनियों और सिद्धोंके समूह उस युद्धको देख रहे थे। जो वीर उस युद्धमें सम्मुख मारे गये थे, उन्हें अम्भराएँ सीधे स्वर्गमें लिये चली जा रही थीं ॥ ४९, ५२ ॥

पुलस्त्यजी बोले—तापश्चात् भीरुओंके लिये भय बढ़ानेवाला समर आरम्भ हो गया। हजार नेत्रोंवाले इन्द्र अपने विशाल धनुषको लेकर बाणोंकी वर्षा करने लगे। अन्धक भी अपने दीप्तिमान् धनुषको लेकर बड़े वेगसे मयूररथ लगे बाणोंको इन्द्रपर छोड़ने लगा। वे दोनों एक-दूसरेको झुके हुए पर्वोंवाले स्वर्णपंखयुक्त तथा महावेगवान् तीक्ष्ण बाणोंसे आहत कर दिये। फिर इन्द्रने क्रुद्ध होकर वज्रको अपने हाथसे घुमाकर उसे अन्धकके ऊपर फेंका। नारदजी! अंधकने उसे आले देखा। उसने बाणों, अस्त्रों और शस्त्रोंसे उसपर प्रहार किया; पर क्षत्रिय जिस प्रकार वनों, पर्वतों (या वृक्षों) को भस्म कर देती है, उसी प्रकार उस वज्रने उन सभी अस्त्रोंको भस्म कर डाला ॥ १—५ ॥

तब बलवानोंमें श्रेष्ठ अन्धक अति वेगवान् वज्रको आले देखकर रथसे कूदकर बाहुबलकी अग्रय लेकर पृथ्वीपर खड़ा हो गया। वह वज्र, सारथि, अश्व, ध्वज एवं कूबरके साथ रथको भस्मकर इन्द्रके पास पहुँच गया। उस (वज्र) को वेगपूर्वक आले देख बलवान् अन्धकने मुष्टिसे मारकर उसे भूमिपर गिरा दिया और गर्जन करने लगा ॥ ६, ८ ॥

तं गर्जयान् बीडवाच वासवः सायकैर्दृढम् ।
 वर्षर्षं तान् वारयन् स समभ्यासाच्छतक्रतुम् ॥ १
 आनघान् तलेनेभं कुम्भमध्ये पदा करे ।
 जानुना च समाहृत्य विषाणं प्रबभूव च ॥ १०
 आभयमुद्रा तथा पादौ समाहृत्यान्धकस्तथान् ।
 गजेन्द्रं पातयामास ग्रहरिर्जंजीकृतम् ॥ ११
 गजेन्द्रान् पतमानाञ्च अवप्सुत्य शतक्रतुः ।
 पाणिना वज्रपादाद्य प्रविवेशामरावतीम् ॥ १२
 पराङ्मुख्ये सहस्राक्षे तद् दैवतबालं गृहत् ।
 पातयामास दैत्येन्द्रः पादमुष्टिनादिभिः ॥ १३
 कृतो वैवस्वतो दण्डं परिधाम्य द्विजोत्तम ।
 समभ्यासावत् प्रह्लादं हन्तुकामः सुरोत्तमः ॥ १४
 समापतन्तं जानीष्ववर्षं रक्षिणन्दनम् ।
 हिरण्यकशिपोः पुत्रक्षायमाणम्ब वेगवान् ॥ १५
 तां जानवृष्टिपतुल्यं दण्डेनहृत्य भास्करि ।
 शातयित्वा प्रविक्षेय दण्डं लोकभयंकरम् ॥ १६
 स जायुष्यमास्त्राद्य धर्मराजकरे स्थितः ।
 जम्बूलकास्त्रग्निनिधौ गृह्णद् दग्धुं जगत्यम् ॥ १७
 जाज्वल्यमानमापानं दण्डं दृष्ट्वा दितेः सुतः ।
 प्राक्कोशानि हतः कष्टं प्रह्लादोऽयं वयेन हि ॥ १८
 तमाकन्दितपाकवर्षं हिरण्यगङ्गसुतोऽन्धकः ।
 प्रोवाच मा धीह मयि स्थिते कोऽयं सुराध्यः ॥ १९
 इत्येवमुक्त्व चक्षुर्न वेगेनाभिससार च ।
 जग्राह पाणिना दण्डं हसन् सख्येन नारदः ॥ २०
 तमादाद्य ततो वेगाद् धामवापास जाज्वलः ।
 जगर्ज च महानादं यथा प्रावृषि त्रैलोक्यः ॥ २१
 प्रह्लादं रक्षितं दृष्ट्वा दण्डाद् दैत्येक्षणेन हि ।
 साधुवादं ददुर्दृष्टा दैत्यराजवपुश्चरः ॥ २२
 धामधनं महादण्डं दृष्ट्वा धानुसुतो मुने ।
 दुःसहं दुर्धनं मत्वा अन्तर्धानमगाद् वयः ॥ २३
 अन्तर्हिते धर्मराजे प्रह्लादोऽपि महामुने ।
 दारयामास वसवान् देवसीन्धुं समन्ततः ॥ २४
 वरुणः शिशुमारश्चो बद्ध्वा पाशैर्महासुरान् ।
 गदया दारयामास तपध्वगाद् विरोचनः ॥ २५

इसे इस प्रकार गाजते देखकर इन्द्रने उसके ऊपर जोरसे बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी। अन्धक भी उनको निवारित करते हुए इन्द्रके पास पहुँच गया। उसने अपने हाथसे ऐरावत हाथीके सिरपर एवं अपने पैरसे सुँडपर प्रहार कर और कुटनोंसे दाँतोंपर प्रहार कर उन्हें थोड़-हाला किम अन्धकने बाबाँ मुट्ठीसे ऐरावतको कमरपर सीझापूर्वक चोट मारकर उसे जर्जर कर गिरा दिया। इन्द्र भी हाथीसे नीचे गिरे जा रहा थे। वे जटसे कूदकर एवं हाथमें वज्र लेकर अमरावतीमें प्रविष्ट हो गये ॥ १. १२ ॥

इन्द्रके रणसे विमुक्त हो जानेपर अन्धकने उस विशाल देव-सेनाको पैर, मुट्ठी एवं भुप्यहाँ आदिसे मारकर गिरा दिया। नारदजी! इसके बाद देवदेव कमराब अपना इन्द्र चुपको हुए प्रह्लादको मारनेकी इच्छासे दीढ़ पड़े। वम्भाजको अपनी ओर आते देख प्रह्लादने भी अपने धनुषको चढ़कर चुत्तीसे बाण-समूहोंको झड़ो लगा दी। वमराजने अपने दण्डके प्रहारसे उस अतुलनीय बाण वृष्टिको बर्ष कर लोकभयकारी दण्ड चला दिया ॥ १३ - २६ ॥

धर्मराजके हाथमें स्थित वह दण्ड हवामें ऊपर घूम रहा था वह ऐसा लगता था मानो तोनों लोकोंको जलानेके लिये कालाग्नि प्रज्वलित हो रही हो उस प्रज्वलित दण्डकी अपनी ओर आते देखकर दैत्यलोक चिल्लाने लगे—हाय! हाय! वमराजने प्रह्लादको मार दिया उस आकन्दनको चुपकर हिरण्यकक्षके पुत्र अन्धकने कहा— डरो मत भरे रहते थे वमराज क्या बलु ॥ १? नारदजी! ऐसा कहकर वह वेगसे दीढ़ पड़ा और हैसते हुए उस दण्डको बाबाँ हाथसे चकड़ लिया ॥ १७—२० ॥

फिर अन्धक उसे लेकर घुमाने लगा और सब ही वर्षाकालिक मेघके तुल्य वह महानाद करते हुए गर्जन करने लगा। अन्धकके द्वारा वज्र-दण्डसे प्रह्लादको सुरभित देखकर दैत्यों एवं दानवोंके सेनानायक उत्पन्न होकर उसे वज्रवाद देने लगे मुने! अपने महादण्डको अन्धकद्वारा चुपको देख सूर्यतपस्व वज्र दैत्यको दुःख और दुर्धर समझकर अन्तर्धान हो गये। महामुने! धर्मराजके अन्तर्हित होनेपर जब कलौ प्रह्लाद भी सभी ओरसे देवसेनाको गट करन लगे ॥ २१—२४ ॥

वज्रदेव सुँडपर स्थित थे वे वज्रल असुरोंको अपने पाशोंसे बाँधकर गदाद्वारा विदीर्न करने लगे इसपर विरोचनने उनका सामना किया। उसने वज्रतुल्य

तोमरैर्वत्तसंस्पर्शः शक्तिभिर्मार्गणीरपि ।
जलेशं ताडयामास मुद्गरैः कणपैरपि ॥ २६

ततस्तं मृदाभ्येत्य पातयित्वा घरातले ।
अभिद्रुत्य बलवद्वाद्यं पाशैर्मत्तगजं बली ॥ २७

तान् पाशशतधा चक्रे वेगाच्च दनुजेश्वरः ।
वरुणं च समभ्येत्य मध्ये जग्राह नारद ॥ २८

ततो दन्ती च भृङ्गाभ्यां प्रविक्षेप तदाऽव्ययः ।
ममर्द च तथा पद्भ्यां सबाहं सलिलेश्वरम् ॥ २९

तं मर्दमानं वीक्ष्याद्य शशाङ्कः शिशिरांशुमान् ।
अभ्येत्य ताडयामास मार्गणैः कायदारणैः ॥ ३०

स ताड्यमानः शिशिरांशुकाणै-
रत्वाप पीडां परमां गजेन्द्रः ।

दुष्टश्च वेगान् पयसापधीशं
मुहूर्तं पादतलैर्ममर्द ॥ ३१

स मृष्टमानो वरुणो गजेन्द्रं
पद्भ्यां सुगाढं अगृहं महर्षे ।

पादेषु भूमिं करयोः स्पृशंश्च
मूर्ध्ना नमुल्लास्य बलान्महात्मा ॥ ३२

गृह्णाहुस्तोभिश्च गजस्य पुच्छं
कृत्तेह बन्धं भुजगेश्वरेण ।

उत्पाद्य चिक्षेप विरोचनं हि
सकुञ्जरं खे सनियन्तुवाहम् ॥ ३३

क्षिप्तो जलेशेन विरोचनस्तु
सकुञ्जरो भूमितले पपात ।

साह्रं सन्यत्राग्लहर्ष्यभूमिं
पुरं सुकेशेरिव भास्करेण ॥ ३४

ततो जलेशः सगदः सपाशः
समभ्यध्वजद् दित्तिजं निहन्तुम् ।

ततः समाक्रन्दमनुत्तमं हि
मुक्तं तु दैत्यैर्वनरावतुल्यम् ॥ ३५

हा हा हुतोऽसी वरुणेन वीरः
विरोचनो दानवसैन्यपालः ।

प्रह्लाद हे जम्भकुञ्जम्भकाद्या
रक्षध्वजभ्येत्य सहान्धकेन ॥ ३६

अहो महात्मा बलवाञ्जनेशः
संचूर्णयन् दैत्यभटं सबाहम् ।

पाशेन बद्ध्वा गदया निहन्ति
यथा पशुं वाजिमखे महेन्द्रः ॥ ३७

तोमर, शक्ति, बाण, मुद्गर और कणपर्षी (भस्त्रों) से वरुणदेवपर प्रहार किया इसपर वरुणने उसके निकट आकर गदासं मारकर उन्हें पृथ्वीपर गिरा दिया। फिर दौड़कर उन्होंने पाशोंसे उसके मतवाले हाथीको बाँध लिया। पर अन्धकने तुरन्त ही उन पाशोंके सैकड़ों टुकड़े कर दिये। नारदजी! इतना ही नहीं, उसने वरुणके निकट जाकर उनकी कमर भी पकड़ ली ॥ २५-२८ ॥

उस हाथीने भी अपने प्रयत्न दौँतोंसे वरुणको उठाकर फेंक दिया। साथ ही वह बाहनसहित वरुणको अपने पैरोंसे कुचलने लगा। यह देख सीतकिरण चन्द्रमाने हाथीके पास पहुँचकर अपने तेज बुकोले थाणोंसे उसके शरीरको विदीर्ण कर दिया। चन्द्रमाके बाणोंसे चिढ़ होनेपर अन्धकके हाथीको अत्यधिक पीड़ा हुई। वह अपने पैरोंसे वरुणको तेजीसे बार बार कुचलने लगा। नारदजी! वरुणदेवने भी हाथीके दोनों पैरोंको दृढ़तापूर्वक पकड़ लिया एवं अपने हाथों तथा पैरोंसे भूमिका स्पर्श करते हुए मस्तक उठाकर बलपूर्वक अङ्गुलिदोनोंसे उस हाथीको पूँछ पकड़ ली और सर्पराज वासुकिसे विरोचनको बाँधकर उसे हाथी और पिलवानके सहित उठाकर आकाशमें फेंक दिया ॥ २९-३३ ॥

वरुणद्वारा फेंका गया विरोचन आकाशसे हाथीसहित पृथ्वीपर इस प्रकार आ गिरा, जैसे सूर्यद्वारा भटले सुकेरी दैत्यका नगर अट्टालिकाओं, चन्नी अर्गलाओं एवं महलंकि सहित पृथ्वीपर गिराया गया था। उसके बाद वरुण गदा और पाश लेकर दैत्यको मारनेके लिये दौड़े अन्ध दैत्यलोग मेष गर्जन जैसे जोर जोरसे रोने लगे हाय हाय! रक्षक-सेनके रक्षक वीर विरोचन वरुणद्वारा मारे जा रहे हैं। हे प्रह्लाद, हे जम्भ! हे कुजम्भ! तुम सभी अन्धकके साथ आकर (उन्हें) सबाहो हाय! बलवान् वरुण दैत्यवीर विरोचनको बाहनसहित चूर्ण करते हुए उन्हें पशुमें बाँधकर गदासे इस प्रकार मार रहे हैं जैसे अश्वमेध यज्ञमें इन्द्र पशुको

श्रुत्वाथ शब्दं दितिजैः समीरितं
जम्भप्रधाना दितिजेश्वरास्ततः ।
समभ्यधावन्स्वरिता जलेश्वरी
यथा पतङ्गा ज्वलितं हुताशनम् ॥ ३८

तन्नागान् च प्रसमीक्ष्य देवः
प्राङ्गादिमुत्सृज्य वितत्य पाशम् ।
गदां समुद्भाष्य जलेश्वरास्तु
बुझाव ताञ्जम्भमुखानरातीन् ॥ ३९

जम्भं च पाशेन तथा निहत्य
तारं तलेनाशनिसंनिधेन ।
पादेन धृत्वा तरसा कुजम्भं
निपातयामास बलं च मुक्षुषा ॥ ४०

तेनार्दिता देववरेण दैत्याः
संग्राह्यन् दिक्षु विमुक्तशस्त्राः ।
ततोऽन्धकः स त्वरितोऽभ्युपेयाद्
रणाय योद्धुं जलनायकेन ॥ ४१

तमापतन्तं गदय्य जम्भान
पाशेन बद्ध्वा वरुणो सुरेशम् ।
तं पाशमाविध्य गदां प्रगृह्य
बिक्षेप्य दैत्यः स जलेश्वराय ॥ ४२

तमापतन्तं प्रसमीक्ष्य पाशं
गदां च दाक्षायणिनन्दनस्तु ।
विवेश वेगात् मयसां निधानं
ततोऽन्धको देवबलं ममर्द ॥ ४३

ततो हुताशः सुरशत्रुसैन्यं
ददाह रोषात् पयनावधूतः ।
तमभ्यधाद् दानवसिञ्चकर्मा
मयो महाबाहुरुदग्रवीर्यः ॥ ४४

तमापतन्तं सह शम्भरेण
समीक्ष्य बद्धिः पवनेन सार्धम् ।
शक्त्या मयं शम्भरमेत्य कण्ठे
सन्ताड्य जग्राह बलान्महर्षे ॥ ४५

शक्त्या स कायावरणे विदारिते
संभिन्नदेहो न्यपतत् पृथिव्याम् ।
मयः प्रज्ज्वाल च शम्भरोऽपि
कण्ठावलग्नने ज्वलने प्रदीप्ते ॥ ४६

स दह्यामनो दितिजोऽग्निनाथ
सुविस्वारं धरेतरं कुराव ।
सिंहाभिपन्नो विपिने यथैव
भक्तो गजः क्रन्दति वेदनार्तः ॥ ४७

भारते हैं। दैत्योंके रुदनको सुनकर जम्भ आदि प्रमुख
दैत्यगण वरुणकी ओर शीघ्रतासे ऐसे दौड़े जैसे भतङ्ग
प्रज्वलित अग्निकी ओर दौड़ते हैं ॥ ३४-३८ ॥

उन दैत्योंको आया देख वरुण प्रह्लाद-पु
(विरोचन)-को छोड़ करके पाश फैलाकर और गदा
घुमाकर उन जम्भप्रभृति शत्रुओंकी ओर दौड़े उन्होंने
जम्भको पाशसे, तार दैत्यको वज्र-तुल्य करतलके
प्रहारसे, वृत्रासुरको पैरोंसे, कुजजम्भको अपने वेगसे
और बल नामक असुरको मुखेक्रेसे मारकर गिरा दिया।
देवप्रभर। वरुणद्वारा मर्दित दैत्य अपने अस्त्र-शस्त्रोंको
छोड़कर दसों दिशाओंमें भागने लगे, उसके बाद
अन्धक वरुणदेवके साथ युद्ध करनेके लिये बड़ी
तेजीसे उनके पास पहुँचा। अपनी ओर आते देख
वरुणने उस दैत्यनायक अन्धकको अपने पाशसे
बाँधकर गदासे मारा, किन्तु दैत्यने उस पाश और
गदाको खीनकर चरणपर ही फेंक दिया ॥ ३९, ४० ॥

उस पाश और गदाको अपनी ओर आते
देखकर दाक्षायणीके पुत्र वरुण शीघ्रतासे समुद्रमें पैठ
गये तब अन्धक देवसेनाका मर्दन करने लगा उसके
बाद पवनद्वारा प्रज्वलित अग्निदेव क्रोधपूर्वक असुरोंकी
सेनाको दग्ध करने लगे तब दानवोंका 'विश्वकर्मा'
(शिल्पिराज) प्रचण्ड प्रतापी महाबाहु मय उनके
सामने आया। नारदजी शम्बरके साथ उसे आते
देख अग्निदेवने वायुदेवताके साथ शक्तिके प्रहारसे
मय और शम्बरके कण्ठमें चोट पहुँचाकर उन दोनोंको
ही जोरसे धक्का दिया। शक्तिसे कवचके फट जानेपर
छिन्न भिन्न शरीरवाला मय पृथ्वीपर गिर पड़ा और
शम्भरामुस कण्ठमें प्रदीप्त अग्निके लग जानेसे दग्ध
होने लगा। अग्निद्वारा जलते दैत्यने उस समय मुक्त
कण्ठसे इस प्रकार रोदन किया, जैसे वनमें सिंहसे
आक्रमण मतवाला हाथी वेदनासे दुःखी होकर वरुण
धिग्बाह करता है ॥ ४३-४७ ॥

तं शब्दमाकर्ण्य च शम्बरस्य
 दैत्येश्वरः क्रोधविरक्तदृष्टिः ।
 आ किं किमेतन्ननु केन युद्धे
 जितो मयः शम्बरदानवश्च ॥ ४८
 ततोऽमुक्त्वा दैत्यभट्टा दितीशं
 प्रदह्यते श्लोष हुताशनेन ।
 रक्षस्व चाभ्येत्य न शक्यतेऽन्यैः
 हुताशनो वारयितुं रणाग्रे ॥ ४९
 इत्थं स दैत्यैरभिर्नोदितस्तु
 हिरण्यधक्षुस्तनयो महर्षे ।
 उद्यम्य वेगात् परिधं हुताशं
 समाव्रवत् तिष्ठ तिष्ठ सुवन् हि ॥ ५०
 श्रुत्वाऽन्धकस्यापि पत्नो व्ययात्मा
 संकुद्धचित्तस्त्वरितो हि दैत्यम् ।
 उत्पाद्य भूम्यां च विनिष्पिपेष
 ततोऽन्धकः पावकमामसाद ॥ ५१
 समाजघानाथ हुताशनं हि
 वरायुधेनाथ वराङ्गमध्ये ।
 समाहतोऽग्निः परिमुच्य शम्बरं
 तथाऽन्धकं स त्वरितोऽभ्यधावत् ॥ ५२
 तमापतन्तं परिघेण भूयः
 समाहनन्मुष्टिं तदान्यकोऽपि ।
 स तादितोऽग्निर्दितिवेगश्रेण
 भयात् प्रदुःखाव रणाजिराद्धि ॥ ५३
 ततोऽन्धको मारुतचन्द्रभास्कसान्
 साध्यान् स रुद्राश्विसून् महोरगान् ।
 यान् या शरेण स्पृशते पराक्रमी
 पराङ्मुखांस्तान् कृतवान् रणाजिरात् ॥ ५४
 ततो धिजित्यामरसीन्यमुग्रं
 सैन्द्रं सरुद्रं सयमं ससोमम् ।
 संपूज्यमानो दनुर्पुंगवैस्तु
 तदाऽन्धको भूमिमुपाजगाम ॥ ५५
 आसाद्य भूमिं करद्वान् नरेन्द्रान्
 कृत्वा वशे स्थाप्य चराचरं च ।
 जगत्समग्रं प्रविवेश धीमान्
 पातालमग्र्यं पुरमश्मकाङ्कम् ॥ ५६
 तत्र स्थितस्यापि महासुरस्य
 गन्धर्वविद्याधरसिद्धसंघाः ।
 सहाप्सरोभिः परिचारणाय
 पातालमभ्येत्य समावसन्त ॥ ५७

शम्बरके उस शब्दको सुनकर क्रोधसे लाल
 नेत्रोंवाले दैत्येश्वरने कहा ओरे यह क्या है? युद्धमें
 मय और शम्बरको किसने जीता है? इसपर
 दैत्ययोद्धाओंने अन्धकसे कहा—अग्निदेव इनको जला
 रहे हैं आप जाकर उनकी रक्ष करे। आपके
 अतिरिक्त दूसरा कोई भी अग्निको नहीं रोक सकता।
 नारदजी! दैत्योंने ऐसा कहनेपर हिरण्यधक्षु स्वर्गप्रतासे
 परिध वंशकर 'ठहरो-ठहरो' कहता हुआ अग्निकी
 ओर दौड़ पड़ा। अन्धकके चचनको सुनकर
 व्ययात्मा अग्निदेवने अत्यन्त क्रोधसे उस दैत्यको
 शीघ्र हो उठाकर पृथ्वीपर फटक दिया। उसके बाद
 अन्धक अग्निके पास पहुँचा ॥ ४८—५१ ॥

उसने श्रेष्ठ अस्त्रके द्वारा अग्निके सिरपर प्रहार
 किया इस प्रकार आहत अग्निदेव शम्बरको छोड़कर
 तत्काल अन्धककी ओर दौड़े। अन्धकने आते हुए
 अग्निदेवके सिरपर पुनः परिघसे प्रहार किया।
 अन्धकहारा ताड़ित अग्निदेव भयभीत हो रणाक्षेत्रसे
 भाग गये उसके बाद पराक्रमी अन्धक वायु, चन्द्र,
 सूर्य, साध्य, रुद्र, अश्विनीकुमार, वसु और मरुतागणोंमें
 जिन-जिनको चाणसे स्पर्श करता था, वे सभी
 युद्धभूमिसे पराङ्मुख हो जाते थे इस प्रकार इन्द्र,
 रुद्र, यम, सोमसहित देवताओंकी उग्र सेनाको जीतकर
 अन्धक श्रेष्ठ दानवोंके द्वारा पूजित होकर पृथ्वीपर
 आ गया। वहाँ वह मुद्रिमान् दैत्य सभी राजाओंको
 अपना करद (सामन्त) बना करके तथा समस्त
 चराचर जगत्को वशमें कर पातालमें स्थित अपने
 मशमक नामक उत्तम नगरमें चला गया वहाँ उस
 महासुर अन्धककी सेवा करनेके लिये अप्सराओंके
 साथ सभी प्रमुख गन्धर्व, विद्याधर एवं सिद्धोंके समूह
 पातालमें आकर निवास करने लगे ॥ ५२-५७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीकामनपुराणमें दसवीं अध्याय समाप्त हुआ ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

सुकेशिकी कथा, भगधारण्यमें ऋषियोंसे प्रश्न करना, ऋषियोंका धर्मोपदेश,
देवादिके धर्म, भुवनकोश एवं इक्कीस नरकोंका वर्णन

नारद उवाच

यदेतद् भवत् प्रोक्तं सुकेशिनगरोऽम्बरात् ।
पातितो भुवि सूर्येण तत्कदा कुत्र कुत्र च ॥ १

सुकेशीति च कश्चासी केन दत्तः पुरोऽस्य च ।
किमर्थं पातितो भूम्यमाकाशाद् भास्करेण हि ॥ २

पुलस्त्य उवाच

भृगुष्वावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम् ।
यथोक्तवान् स्वयम्भूर्मा कथ्यमानां भयाऽनघ ॥ ३

आसीन्निशाचरपतिर्विद्युत्केशीति विश्रुतः ।
तस्य पुत्रो गुणज्येष्ठः सुकेशिरभवत्ततः ॥ ४

तस्य तुष्टस्तवेशानः पुरमाकाशाचारिणम् ।
प्रादादजेयत्वमपि शत्रुभिश्चाप्यवध्यताम् ॥ ५

स चापि शंकरात् प्राप्य वरं गगनं पुरम् ।
रेमे निशाचरैः स्मद्धं सदा धर्मपथि स्थितः ॥ ६

स कदाचिद् गतोऽरण्यं मागधं राक्षसंशरम् ।
तत्राश्रमास्तु ददृशे ऋषीणां भावितृत्वेनाम् ॥ ७

महर्षीन् स तदा दृष्ट्वा प्रणिपत्याभिवाद्य च ।
प्रत्युवाच ऋषीन् सर्वान् कृतासन्नपरिग्रहः ॥ ८

सुकेशित्वान्न

प्रष्टुमिच्छामि भवतः संशयोऽयं हृदि स्थितः ।
कथयन्तु भवन्तो मे न चैवाज्ञापयाम्यहम् ॥ ९

किंस्विच्छ्रेयः परे लोके किमु चेह द्विजोत्तमाः ।
केन पूज्यस्तथा सत्सु केनासी सुखमेधते ॥ १०

पुलस्त्य उवाच

इत्थं सुकेशिवचनं निशम्य परमर्षयः ।
प्रोद्युर्मिश्रं श्रेयोऽर्थमिह लोके परत्र च ॥ ११

ऋषय उवाचः

श्रूयतां कथयिष्यामस्तव राक्षसपुंगव ।
यद्धि श्रेयो भवेद् वीर इह चामुत्र चाव्ययम् ॥ १२

नारदजीने (पुलस्त्यजीसे) पूछा—आपने जो यह कहा है कि सूर्यने सुकेशीके नगरको आकाशसे पृथ्वीपर गिरा दिया था तो यह घटना कब और कहाँ हुई थी ? सुकेशी नामका यह कौन व्यक्ति था ? उसे यह नगर किसने दिया था और भगवान् सूर्यने उसे आकाशसे पृथ्वीपर क्यों गिरा दिया ? ॥ १-२ ॥

पुलस्त्यजी बोले—निष्पाप नारदजी ! यह कथा बहुत पुरानी है आप इसे सावधानीसे सुनिये ब्रह्माजीने जैसे यह कथा मुझे सुनायी थी, वैसे ही इसे मैं आपको सुना रहा हूँ । पहले विद्युत्केशी नामसे प्रसिद्ध राक्षसोंका एक राजा था। उसका पुत्र सुकेशी गुणोंमें वससे भी बढ़कर था उसपर प्रसन्न होकर शिवजीने उसे एक आकाशचारी नगर और शत्रुओंसे अजेय एवं अवध्य होनेका वर भी दिया। यह शंकरसे आकाशचारी श्रेष्ठ नगर पाकर राक्षसोंके साथ सदा धर्मपथपर रहते हुए विचरने लगा। एक समय भगधारण्यमें जाकर उस राक्षसराजने वहाँ ध्यान-परायण ऋषियोंके आश्रमोंको देखा। उस समय महर्षियोंको देखकर अभिवादन और प्रणाम किया। फिर एक जगह बैठकर उसने समस्त ऋषियोंसे कहा— ॥ ३-८ ॥

सुकेशी बोला—मैं आप लोगोंको आदेश नहीं दे रहा हूँ, बल्कि मैंरे हृदयमें एक संदेह है, उसे मैं आपसे पूछना चाहता हूँ। आप मुझको उसे बतलाइये। द्विजोत्तमो इस लोक और परलोकमें कल्याणकारी क्या है ? मनुष्य सज्जनोंमें कैसे पूज्य होता है और उसे सुखकी प्राप्ति कैसे होती है ? ॥ ९-१० ॥

पुलस्त्यजी बोले—सुकेशीके इस प्रकारके वचनको सुनकर श्रेष्ठ ऋषियोंने विचारकर उससे इस लोक और परलोकमें कल्याणकारी बातें कहीं ॥ ११ ॥

ऋषिगण बोले—वीर राक्षस-श्रेष्ठ ! इस लोक और परलोकमें जो अक्षय श्रेयस्कर वस्तु है, उसे हम तुमसे कहते हैं, उसे सुनो। निशाचर इस लोक और परलोकमें

श्रेयो धर्मः परे लोके इह च क्षणदाचर ।
तस्मिन् समाभितः सत्सु पुण्यस्तेन सुखी भवेत् ॥ १३

सुकेशिकाच

किं लक्षणो भवेद् धर्मः किमाचरणसत्क्रियः ।
समाभित्य न स्रीदन्ति देवाद्यास्तु तदुच्यताम् ॥ १४

अथ च कथुः

देवानां परमो धर्मः सदा यज्ञादिकाः क्रियाः ।
स्वाध्यायवेदवेतुत्वं विष्णुपूजारतिः स्मृतः ॥ १५
दैत्याणां बाहुशालित्वं मातस्यै युद्धमत्क्रिया ।
वेदं नीतिज्ञास्राणां हरभक्तिरुदाहृता ॥ १६
सिद्धानामुदितो धर्मो योगयुक्तिरनुसमा ।
स्वाध्यायं ब्रह्मविज्ञानं भक्तिर्द्वाभ्यामपि स्थिरा ॥ १७
उत्कृष्टोपासनं ज्ञेयं नृन्यबाह्येषु वेदिता ।
सरस्वत्यां स्थिरा भक्तिर्गन्धर्वो धर्म उच्यते ॥ १८

विद्याधरत्वमतुलं विज्ञानं पीरुचे मतिः ।
विद्याधरणां धर्मोऽयं भवान्या भक्तिरेव च ॥ १९
गन्धर्वविद्यावेदित्वं भक्तिर्भानौ तथा स्थिरा ।
कौशल्यं सर्वशिल्पानां धर्मः किम्पुरुषः स्मृतः ॥ २०
ब्रह्मचर्यममानित्वं योगाभ्यासरतिर्दृढा ।
सर्वत्र कामचारित्वं धर्मोऽयं पैतृकः स्मृतः ॥ २१
ब्रह्मचर्यं यताशित्वं जप्यं ज्ञानं च राक्षस ।
नियमाद्धर्मवेदित्वमार्धो धर्मः प्रचक्ष्यते ॥ २२
स्वाध्यायं ब्रह्मचर्यं च दानं यजनमेव च ।
अकार्पण्यमनायासं दया हिंसा क्षमा दमः ॥ २३
जितेन्द्रियत्वं शीघ्रं च माङ्गल्यं भक्तिरच्युते ।
हंकरे भास्करे देव्या धर्मोऽयं मानवः स्मृतः ॥ २४
धनाधिपत्यं भोगानि स्वाध्यायं शंकरार्चनम् ।
अहंकारमशीणरीर्यं धर्मोऽयं गुह्यकेश्विति ॥ २५
परदारावर्षित्वं पारक्येऽर्थे च लोलता ।
स्वाध्यायं प्रमत्तके भक्तिर्धर्मोऽयं राक्षसः स्मृतः ॥ २६
अविवेकमथाज्ञानं शीघ्रहानिरसत्यता ।
पिशाचानामयं धर्मः सदा आभिषगृह्यता ॥ २७
योनयो द्वादशीवैतास्तासु धर्माश्च राक्षस ।
ब्रह्मणा कथिताः पुण्या द्वादशीव गतिप्रदाः ॥ २८

धर्म ही कल्याणकारी है उसमें स्थिर रहकर व्यक्ति सन्धनेमें आदरणीय एवं सुखी होता है ॥ १२-१३ ॥

सुकेशि बोला- धर्मका लक्षण (परिचय) क्या है? उसमें कौन से आचरण एवं सत्कर्म होते हैं जिनका आश्रय लेकर देवादि कभी दुःखी नहीं होते आप उसका वर्णन करें ॥ १४ ॥

ऋषियोंने कहा- सदा यज्ञादि कार्य, स्वाध्याय, वेदज्ञान और विष्णुपूजामें रति ये देवताओंके साक्षात् परम धर्म हैं बाहुकुल, ईर्ष्याभाव, युद्धकार्य, नीतिशास्त्रका ज्ञान और हर भक्ति ये दैत्योंके धर्म कहे गये हैं श्रेष्ठ योगसूत्रधन, वेदाध्ययन, ब्रह्मविज्ञान तथा विष्णु और शिव—इन दोनोंमें अचल भक्ति—ये सब सिद्धोंके धर्म कहे गये हैं ऊँची उपासना, नृत्प और वाद्यका ज्ञान तथा सरस्वतीके प्रति निश्चल भक्ति—ये गन्धर्वोंके धर्म कहे जाते हैं ॥ १५—१८ ॥

अद्भुत विद्याका धामन करना, विज्ञान, पुरुषार्थकी बुद्धि और भवानोंके प्रति भक्ति—ये विद्याधरोंके धर्म हैं। गन्धर्वविद्याका ज्ञान, सूर्यके प्रति अटल भक्ति और सभी शिल्प-कलाओंमें कुशलता—ये किम्पुरुषोंके धर्म माने जाते हैं। ब्रह्मचर्य, अमानित्व (अभिमानसे बचना) योगाभ्यासमें दृढ़ प्रीति एवं सर्वत्र इच्छानुसार भ्रमण—ये पितारोंके धर्म कहलाते हैं। राक्षस। ब्रह्मचर्य, नियमाहार, जप, आत्मज्ञान और नियमनुसार धर्मज्ञान—ये ऋषियोंके धर्म कहे जाते हैं। स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य, दान, यज्ञ, उदारता, विश्रान्ति, दया, अहिंसा, क्षमा, दम, जितेन्द्रियता, शीघ्र, माङ्गल्य तथा विष्णु, शिव, सूर्य और दुर्गादेवीमें भक्ति—ये मानवोंके (सामान्य) धर्म हैं ॥ १९—२४ ॥

धनका स्वाभित्य, भोग, स्वाध्याय, शिवजीकी पूजा, अहंकार और सीम्यता ये गुह्योंके धर्म हैं। परस्त्रीगमन, दूसरेके धनमें लोत्पता, वेदाध्ययन और शिवभक्ति—ये राक्षसोंके धर्म कहे गये हैं। अविवेक, अज्ञान, अपवित्रता, असत्यता एवं सदा मांस-भक्षणकी प्रवृत्ति—ये पिशाचोंके धर्म हैं। राक्षस। ये ही बारह योनियों हैं पितामह ब्रह्मने उनके ये बारह गति देनेवाले धर्म कहे हैं ॥ २५—२८ ॥

भुवनेतिव्याज

भवद्विरुक्ता ये धर्माः शाश्वता द्वादशाक्षयाः ।

तत्र ये मानवा धर्मास्तान् भूयो अकुमर्हथ ॥ २९

अथ ब्रुवः

भृगुष्व मनुजादीनां धर्मोऽस्तु क्षणदाक्षर ।

ये वसन्ति यहीपुष्टे नरा द्वीपेषु सप्तसु ॥ ३०

योजनानां प्रमाणेन पञ्चाशत्कोटिराम्यता ।

जस्तोपरि यहीयं द्वि नौरिकास्ते सरिज्जले ॥ ३१

तस्योपरि च देवलो ब्रह्मा शैलेन्द्रमुत्तमम् ।

कर्णिकाकारम्यत्पुल्लं स्थापयामास सप्तम ॥ ३२

तस्येयं निर्णये पुण्यां प्रजां देवक्षतुर्दिशम् ।

स्थानानि द्वीपसंज्ञानि कृतवांश्च प्रजापतिः ॥ ३३

तत्र मध्ये च कृतवाञ्छम्बद्वीपमिति श्रुतम् ।

तत्पुल्लं योजनानां च प्रमाणेन विगच्छते ॥ ३४

तत्ते जस्तनिधी रीदो बाह्यतो द्विगुणः स्थितः ।

तस्याधि द्विगुणः स्पक्षो बाह्यतः संप्रतिष्ठितः ॥ ३५

ततस्त्रिभुरसोदक्ष बाह्यतो बलयाकृतिः ।

द्विगुणः शात्मलिद्वीपे द्विगुणोऽस्य महोदधेः ॥ ३६

सुरोदो द्विगुणस्तस्य तस्मान् द्विगुणः कुशः ।

वृतोदो द्विगुणश्चैव कुशद्वीपात् प्रकीर्तितः ॥ ३७

वृतोदाद द्विगुणः प्रोक्तः कौञ्चद्वीपे निशाचर ।

ततोऽपि द्विगुणः प्रोक्तः समुद्रो दधिसंज्ञितः ॥ ३८

समुद्राद् द्विगुणः शाकः शाकाद् दग्धाब्धिरुत्तमः ।

द्विगुणः संस्थितो यत्र शेषधर्मद्वीगो हरिः ।

एते च द्विगुणाः सर्वे परस्परमपि स्थिताः ॥ ३९

चत्वारिंशदिमाः कोट्यो लक्षाश्च गच्छति स्मृताः ।

योजनानां राक्षसेन्द्र पञ्च जातिसुविस्तृताः ।

जम्बूद्वीपात् समारभ्य पावत्क्षीराब्धिरन्ततः ॥ ४०

तस्माच्च पुष्करद्वीपः स्वादुदस्तवन्तरम् ।

कोट्यश्चतस्रो लक्षाणां द्विपञ्चाशच्च राक्षस ॥ ४१

पुष्करद्वीपमानोऽयं तावदेव तथोदधिः ।

लक्षमण्डकटाहेन समन्तादभिपूरितम् ॥ ४२

एवं द्विपास्त्रिमे सप्त पृथग्धर्माः पृथक्क्रियाः ।

गदिष्यामस्तव वयं भृगुष्व त्वं निशाचर ॥ ४३ ॥

प्लक्ष्वादिषु नरा वीर ये वसन्ति सनातनः ।

शाकानेषु न तेजस्ति युगावस्था कवचघन ॥ ४४

सुकेशिने कहा— आप लोगोंने जो साक्षात् एवं
अप्यय बारह धर्म बताये हैं, उनमें भृगुओंके धर्मोंको
एक बार पुनः कहनेकी कृपा करें ॥ २९ ॥

श्रुतिधोने कहा— निशाचर। पृथ्वीके मात द्वीपोंमें
निवास करनेवाले भृगुष्व आदिके धर्मोंको सुनो। यह
पृथ्वी पचास करोड़ योजन विस्तारवाली है और यह
नदीयें तावके समान कलपर स्थित हैं सप्जनश्रेष्ठ
उसके ऊपर देवैश ब्रह्माने कर्णिकाके आकारवाले आयन्त
ऊँचे सुमेरुगिरिको स्थापित किया है। फिर उसपर ब्रह्माने
चारों दिशाओंमें पवित्र प्रजाका निर्माण किया और द्वीप
नामवाले अनेक स्थानोंकी भी रचना की है ॥ ३०-३३ ॥

उनके मध्यमें उन्होंने जम्बूद्वीपकी रचना की।
इसका प्रमाण एक लक्ष योजनका कहा जाता है उसके
बाहर दुगुना परिमाणमें लवण समुद्र है तथा उसके बाद
उसका दुगुना प्लक्षद्वीप है। उसके बाहर दुगुने प्रमाणवाला
बलयाकार ईश्वरस सागर है इस महोदधिका दुगुना
शात्मलिद्वीप है। उसके बाहर उससे दुगुना सुरासागर है
तथा उससे दुगुना कुशद्वीप है। कुशद्वीपसे दुगुना वृत्तसागर
है ॥ ३४-३७ ॥

निशाचर। वृत्तसागरसे दुगुना कौंचद्वीप कहा गया
है तथा उससे दुगुना दधिसमुद्र है। दधिसागरसे दुगुना
शाकद्वीप है और शाकद्वीपसे द्विगुण उत्तम क्षीरसागर है
जिसमें शेषशय्यापर सोये क्रीडरि स्थित हैं। ये सभी
परस्पर एक-दूसरेसे द्विगुण प्रमाणमें स्थित हैं। राक्षसेन्द्र।
जम्बूद्वीपसे लेकर क्षीरसागरके अन्ततकका विस्तार
चालीस करोड़ गज्जे लक्ष पाँच योजन है ॥ ३८-४० ॥

राक्षस। उसके बाद पुष्करद्वीप एवं लवणसागर
स्वादु जलका समुद्र है। पुष्करद्वीपका परिमाण चार
करोड़ योजन लक्ष योजन है। उसके चारों ओर उतने
ही परिमाणका समुद्र है। उसके चारों ओर लक्ष
योजनका अण्डकटार है। इस प्रकार ये सातों द्वीप
भिन्न धर्मों और क्रियावाले हैं। निशाचर। हम उनका
वर्णन करते हैं तुम इसे सुनो। वीर। प्लक्षसे लक्षतकके
द्वीपोंमें जो सनातन (नित्य) पुरुष निवास करते हैं,
उनमें किसी प्रकारकी युग व्यवस्था नहीं है।

मोदन्ते देववनेषां धर्मो दिव्य उदाहृतः ।
कल्पान्तं प्रलयस्तेषां निगद्येत महाभुजः ॥ ४५ ॥

ये जनाः पुष्करद्वीपे बसन्ते रौद्रदर्शने ।
पैशाचमाश्रिता धर्मं कर्मान्ते ते विनाशितः ॥ ४६ ॥

सुकेशिकथा

किमर्थं पुष्करद्वीपे भवद्भिः समुदाहृतः ।
दुर्दर्शः शौचरहितो घोरः कर्माननाशकृत् ॥ ४७ ॥

ऋषय ऊचुः

तस्मिन् निशाचर द्वीपे नरकाः सन्ति तारुणाः ।
रौरवाद्यास्ततो रौद्रः पुष्करो घोरदर्शनः ॥ ४८ ॥

सुकेशिकथा

किञ्चन्येतावि रौद्राणि नरकाणि तपोधनाः ।
किञ्चन्मात्राणि मार्गेण का च तेषु स्वरूपता ॥ ४९ ॥

ऋषय ऊचुः

शृणुष्व राक्षसश्रेष्ठ प्रमाणं लक्षणं तथा ।
सर्वेषां रौरवादीनां संख्या या त्वेकविंशतिः ॥ ५० ॥

द्वे सहस्रे योजनानां चलिताङ्गारविस्तृते ।
रौरवो नाम नरकः प्रथमः परिकीर्तितः ॥ ५१ ॥

तप्तनाभमयी धूमिरधस्ताद्द्विज्ञाप्तिता ।
द्वितीयो द्विगुणस्तस्यान्यहारौरव उच्यते ॥ ५२ ॥

ततोऽपि द्विःस्थितश्चान्यस्तामिस्रो नरकः स्मृतः ।
अन्धतामिस्रको नाम चतुर्थो द्विगुणः परः ॥ ५३ ॥

ततस्तु कालचक्रेति षष्ठमः परिगीयते ।
अप्रतिष्ठं च नरकं घटीघनं च सप्तमम् ॥ ५४ ॥

असिपत्रवनं चान्यत्सहस्राणि द्विसप्ततिः ।
योजनानां परिख्यातमष्टमं नरकोत्तमम् ॥ ५५ ॥

नवमं तप्तकुम्भं च दशमं कूटशाल्मलिः ।
करपत्रस्तप्तैवोक्तस्तथाऽन्यः क्षानभोजनः ॥ ५६ ॥

संदंशो लोहपिण्डश्च करम्भसिकता तथा ।
घोरा क्षारनदी चान्वा तथान्यः कृमिभोजनः ।

तथाऽष्टादशमी प्रोक्ता घोरा वीतरणी नदी ॥ ५७ ॥
तथा धरः शोणितपूयभोजनः
क्षुराग्रधारो निशितश्च चक्रकः ।

संशोषणो नाम तथाप्यनः ।
प्रोक्तास्तदैते नरकाः सुकेशिन् ॥ ५८ ॥

महाबाहो ये देवताओंके समान सुखभोग करते हैं ।
उनका धर्म दिव्य कहा जाता है कल्पके अन्तमें उनका
प्रलयमात्र होना वर्णित है । पुष्करद्वीप देखनेमें भयंकर है
वहकि निवासो पैशाच-धर्मोक्त कल्पन करते हैं । कर्मके
अन्तमें उनका नाश होता है ॥ ४९ - ४६ ॥

सुकेशिने कहा — आप लोगोंने पुष्करद्वीपके भयंकर,
पवित्ररहित, घोर एवं कर्मके अन्तमें नाश करनेवाला
क्यों बताया? कृपाकर यह बात हमें समझावें ॥ ४७ ॥

ऋषियोंने कहा — निशाचर इस द्वीपमें रौरव
आदि भयानक नरक हैं इसीसे पुष्करद्वीप देखनेमें बड़ा
भयंकर है ॥ ४८ ॥

सुकेशिने पूछा — तपस्विगण! ये रौद्र नरक
कितने हैं? उनका मार्ग कितना है? उनका स्वरूप
कैसा है? ॥ ४९ ॥

ऋषियोंने कहा — राक्षसश्रेष्ठ! इन समस्त रौरव
आदि नरकोंका लक्षण और प्रमाण सुनो, जिन (मुख्य
नरकों)-को संख्या इक्कीस है उनमें प्रथम रौरव नरक
कहा जाता है यह दो हजार योजन विस्तृत एवं प्रचलित
अङ्गारमय है उससे द्विगुणित महारौरव नामक द्वितीय
नरक है। इसकी भूमि जलते हुए तारोंसे बनी है, जो
नीचेसे अग्निद्वारा तापित होती रहती है। उससे द्विगुणित
विस्तृत तीसरा तामिस्र नामक नरक कहा जाता है। उससे
द्विगुणित अन्धतामिस्र नामक चतुर्थ नरक है उसके बाद
षष्ठम नरकको कालचक्र कहते हैं अप्रतिष्ठ नामक नरक
षष्ठ और घटीघन सप्तम है ॥ ५०—५४ ॥

नरकोंमें श्रेष्ठ असिपत्रवन नामक आठवीं नरक
बहुतर हजार योजन विस्तृत कहा जाता है नवीं तप्तकुम्भ,
दसवीं कूटशाल्मलि, ग्यारहवीं करपत्र और बारहवीं नरक
क्षानभोजन है उसके बाद क्रमस्तः संदंश, लोहपिण्ड,
करम्भसिकता, भयंकर क्षार नदी कृमिभोजन और
अठारहवेंको घोर वीतरणी नदी कहा जाता है। उनके
अतिरिक्त शोणित-पूयभोजन, क्षुराग्रधार, निशितचक्रक
तथा संशोषण नामक अन्तरहित नरक हैं सुकेशिन्! हम
लोगोंने तुमसे इन नरकोंका वर्णन कर दिया ॥ ५५—५८ ॥

बारहवीं अध्याय

**सुकेशिका नरक देनेवाले कर्मोंके सम्बन्धमें प्रश्न, प्रवृत्तियोंका
उत्तर और नरकोंका वर्णन**

मुक्तिकण्ठः

कर्मणा भरकानेतान् केन गच्छन्ति वै कथम् ।
एतद् वदन्तु विप्रेन्द्राः परं कौतूहलं मम ॥ १

श्रवणः कण्ठः

कर्मणा येन येनेह यान्ति शालकटकट^१ ।
स्वकर्मफलभोगार्थं नरकान् मे शृणुष्व तान् ॥ २

प्रेददेवद्विजातीनां घनिन्दा सततं कृता ।
ये पुराणेतिहासार्थान् नाभिनन्दन्ति पापिनः ॥ ३

गुरुनिन्दाकरा ये च मखविघ्नकराश्च ये ।
दातुर्मिक्कारका ये च तेषु से निपतन्ति हि ॥ ४

सुहृद्भयतिस्त्रीदर्यस्वामिभृत्यपितासुतान् ।
यान्योपाध्याययोर्वैश्च कृता भेदोऽधर्ममिथः ॥ ५

कन्यामेकस्य दत्त्वा च ददत्यन्यस्य येऽधमाः ।
करपत्रेण पाट्यन्ते ते द्विधा यमकिंकरैः ॥ ६

परोपतापजनकाश्चन्दनोशीरहारिणः ।
बालव्यजनहर्तारः करम्भसिकताश्रिताः ॥ ७

निमन्त्रितोऽन्यतो भुङ्क्ते आन्दे देवे सपतुके ।
स द्विधा कृष्यते मूढस्तीक्ष्णतुण्डैः खागोत्तमैः ॥ ८

ममणि यस्तु साधूनां तुदन् वाग्भिर्निकृन्तति ।
तस्योपरि तुदन्तस्तु तुण्डैस्तिष्ठन्ति पतन्निभः ॥ ९

यः करोति च पैशुन्यं साधूनामन्यधामति ।
यत्रतुण्डनखा जिह्वाभ्यामर्चन्तेऽस्य त्रायसाः ॥ १०

मातापितृगुरुणां च येऽवज्ञां चकुरुद्धताः ।
मण्डनो पूयविण्मृत्रे त्वप्रतिष्ठे ह्यधोमुखः ॥ ११

सुकेशिने पूछा है ब्राह्मणश्रेष्ठ इन नरकोंमें लोग किस कर्मसे और कैसे जाते हैं, यह आप लोग बतलायें । इस विषयको जाननेकी मेरी बड़ी उत्सुकता है ॥ १ ॥

प्रवृत्तिजन बोले—सुकेशिन् मनुष्य अपने जिन-जिन कर्मोंके फल भोग करनेके लिये इन नरकोंमें जाते हैं उन्हें हमसे सुनो । जिन लोगोंने वेद, देवता एवं द्विजातियोंकी सदा निन्दा की है, जो पुराण एवं इतिहासके अधोमें आदरबुद्धि या श्रद्धा नहीं रखते और जो गुरुओंकी निन्दा करते हैं तथा यज्ञोंमें विघ्न डालते हैं जो दाताको दान देनेसे रोकते हैं, वे सभी उन (वर्णित हो रहे) नरकोंमें गिरते हैं । जो अधम व्यक्ति मित्र, स्त्री-पुरुष, सहोदर भाई, स्वामी सेवक, पिता-पुत्र एवं माचार्य तथा यजमानोंमें परस्पर झगड़ा लगाते हैं तथा जो अधम व्यक्ति एकको कन्या देकर पुनः दूसरेको दे देते हैं, वे सभी यमदूतोंद्वारा नरकोंमें आगसे दो भागोंमें चीरे जाते हैं ॥ २-६ ॥

(इसी प्रकार) जो दूसरोंको संताप देते, चन्दन और खसकी चोरी करते और बालोंसे बने व्यजनों - चैवनोंको चुराते हैं, वे करम्भसिकता नामक नरकमें जाते हैं । जो देव या पितृश्राद्धमें निमन्त्रित होकर अन्यत्र भोजन करता है, उस मूर्खको नरकमें तीक्ष्ण चोंचवाले बड़े-बड़े नरकपक्षी फकाड़कर दोनों ओर खींचते हैं । जो तीक्ष्ण वक्त्रोंके द्वारा चोट करते हुए साधुओंके हृदयको दुखाता है, उसके ऊपर भयंकर पक्षी अपने चोंचोंसे कठोर प्रहार करते हैं । जो दुष्टबुद्धि मनुष्य साधुओंकी चुगली निन्दा करता है, उसकी जीभको चत्रतुल्य चोंच और नखवाले कौए खींच लेते हैं ॥ ७-१० ॥

जो उद्धत लड़के अपने माता-पिता एवं गुरुकी आज्ञाका उल्लङ्घन करते हैं, वे पीय, विड्डा एवं मूत्रसे पूर्ण अप्रतिष्ठ नामक नरकमें नीचेकी ओर मुँह कर झुकाये जाते हैं ।

देवमतिविभूतेषु भुक्तेष्वध्यागतेषु च ।
 अभुक्तवन्तु ये उज्जति क्षान्तिप्रज्ञियातुषु ॥ १२
 दृष्टासुक्तपुत्रविर्पातं भुङ्गते त्वद्यत्न इमे ।
 सूचीपुत्राश्च जायन्ते क्षुध्यन्ति गिरिकिप्रहा ॥ १३
 एकपदवस्तुपविष्टान् विचरन् भोजयन्ति ये ।
 विहभोजनं राक्षसेन्द्र नरकं ते उज्जति च ॥ १४
 एकस्तोत्रप्रपाठं ये पश्यन्तश्चास्मिन् पराः ।
 अस्तविध्वंस्य भुङ्गन्ति ते यानि ज्ञेयभोजनम् ॥ १५
 मोक्षाद्यानाद्यप्यं स्पृष्टा वीरुषिष्टैः क्षपाचर ।
 क्षिप्यन्ते हि करास्तेषां तप्तकुम्भे सुदातके ॥ १६
 सूर्यन्दुनारका दृष्टा वीरुषिष्टैः कामिनः ।
 तेषां वेदग्रन्थे चतुर्विधमस्ते धर्मिकं करी ॥ १७
 मित्रजायका जननी ज्येष्ठो भ्राता पितृ स्वस्त ।
 जपको गुरुको बृद्धा वीः संस्पृष्टाः पदानुधि ॥ १८
 ब्रह्माह्वयस्ते पिण्डैर्लोहिर्बिभ्रन्तापिनी ।
 क्षिप्यन्ते रीरवे शीरे द्वाजानुपरिदाहिनः ॥ १९
 कचरं कुजं चरं वृक्ष भुञ्जानि वीनी ।
 तेषामप्योगुहामपन्नः क्षिप्यन्ते चट्वेऽद्भुत ॥ २०
 गुरुदेवद्विजतीर्णं वेदान्तं च नराधमैः ।
 पिन्दा पिनापित्तं वीर्यं पावनमपि कुर्वताम् ॥ २१
 तेषां लोहमयः कोम्प चतुर्वर्णाः पुनः पुनः ।
 भ्रमणेषु पित्र्यन्ते धर्मराजस्य किं करी ॥ २२
 जपादेवकुम्भारामान् विप्रकेश्यस्यभामठान् ।
 कृपकापीतहागंश्च धृष्टका विज्जम्बन्ति ये ॥ २३
 तेषां विलचतां चरं देहलः क्षिप्यते वृक्षक ।
 कनिकाभिः सुग्रीवजाभिः सुरीद्विर्वधिकं करी ॥ २४
 मोक्षाद्यावार्कमहिं च ये हि वेदन्ति धामका ।
 तेषां गुदेन चान्वाणि विनिष्कृन्तानि कायसः ॥ २५
 स्वजेवजापरो वस्तु चरित्यजति कायसः ।
 पुत्रभृत्यकलजादिबभुवर्गपकिचनम् ।
 दुर्भिष्टो संधने जाति स क्षभेज्ये पिपात्यते ॥ २६
 शरणागतं ये त्वजन्ति ये च बन्धनवालकाः ।
 कर्तन्ति बन्धवीहे ते तद्व्यस्यकास्तु किं करी ॥ २७

ये देवान्, मतिवि, अन्य प्राणी, जेवक, वाहारे आये व्यक्ति
 नामक पितृ, अग्नि एवं माताओंको विना भोजन कराये
 करने ही तज लेते हैं ये अधम पुत्र पर्वतपुत्र सगी एवं
 सूची मनुष्य भुङ्गने होकर भुङ्गने ज्ञानपुत्र रहते हुए दुर्लभ
 राक्ष एवं वीरुषा सर भक्षण करते हैं । हे राजराज एक
 ही वर्ण्यमें बैठे हुए लोगोंको जो सम्पन्नकपले भोजन नहीं
 कराते, ये विहभोजन नामक नरकमें जाते हैं ॥ १२ १४५

जो लोग एक क्षण चलनेवाले किसी बहुत लीज
 पात्रवालेको देखते हुए भी इसे ज्ञान नहीं देते - अकेले
 भोजन करते हैं, ये ज्ञेयभोजन नामक नरकमें जाते हैं । हे
 राजा । जो दक्षिष्टवस्त्रावें (बूटे रहते हुए) गन्, साधन
 और अग्निको त्वस्तं करते हैं उनके इत्य भक्षक तप्तकुम्भमें
 डाले जाते हैं । जो दक्षिष्टवस्त्रावें स्वेच्छाले सूर्य, चन्द्र
 और पञ्चमको देखते हैं उनके वेदोंमें सम्पन्न अग्नि जलते
 हैं । जो मित्रकी पत्नी, स्वतः, वेद चर्य, पितृ, बहन्, पुत्री
 गुरु और बृद्धोंको वीरसे बूते हैं उन मनुष्योंके वीर क्षुब्ध
 जलने हुए वेदीसे भीषकर उन्हें रीरव नरकमें डाला जाता
 है, जहाँ वे पुटनोतक जलते रहते हैं ॥ १५ १९६

जो विश्व विवेक प्रयोजनके ली, विप्रकी एवं संनम्य
 भोजन करते हैं उनके मुँहमें जलता हुआ लोहेका पिण्ड
 डाला जाता है । जो चरितोद्गायी की गयी गुरु, देवान्, साधन
 और वेदोंको पिन्दाको मुत्ते हैं उन वीर मनुष्योंके कालोंमें
 धर्मराजके किंकर अविचर लोहेकी कीलें बन् कर लोंकते
 रहते हैं । जो प्याऊ (पीसर), देवमन्दिर, वीर्य, साधनगुह
 सभा, गठ, कुर्मी, चवत्तरी एवं तद्व्यस्यको तोड़कर नष्ट करते
 हैं उन मनुष्योंके विलम्ब करते रहनेपर भी भक्षक वर्धिककर
 सुगीर्य सुरिकाओंद्वारा उनकी चवड़ी टकेबूते हैं । उनकी
 देहसे चरमको काटकर वृक्षक करते रहते हैं ॥ २०—२४ ॥

जो गन्, साधन, सूर्य और अग्निके सम्पन्न मन-
 मृजदिका त्वान करते हैं, उनकी मुदासे भीर उनकी
 आँतोंको मोच-मोचकर काटते हैं । जो दुर्भिष्ट (अकलन)
 एवं विचलनके समक अकिंचन्, पुनः, भुञ्ज एवं कनन
 (स्त्री) अग्नि सम्पन्नको छोड़कर आत्म-मोचन करता है
 वह सम्पन्नद्वारा सम्भोजन नामक नरकमें डाला जाता है ।
 जो रक्षाके लिये सरणमें आये व्यक्तिका चरित्वान कात्त
 है, वह मनुष्य बन्दीगुह रक्षक सम्पन्नको द्वारा पीरे जाने
 हुए चवत्तरी नामक नरकमें गिरते हैं । जो लोग

क्लेशयन्ति हि विप्रादीन् ये ह्यकर्मसु पापिनः ।
ते पिब्यन्ते शिलापेवे शोष्यन्तेऽपि च शोषकैः ॥ २८

न्यासापहारिणः पापाः वध्यन्ते निगडैरपि ।
क्षुक्षामाः शुष्कनाल्बोष्ठाः पत्यन्ते वृश्चिकाशने ॥ २९

पर्वपैथुनिनः पापाः परदारताश्च ये ।
ते वह्नितर्पा कूटाग्रामालिङ्गन्ते च शाल्मलीम् ॥ ३०

उपाध्यायमधःकृत्य वैरधीतं द्विजाधमैः ।
तेषामध्यापको यश्च स शिलां शिरसा कहेत् ॥ ३१

मूत्रश्लेष्मपुरीषाणि वैरुत्सृष्टानि वारिणिः ।
ते पात्यन्ते च विष्णुमूत्रे दुर्गन्धे घृण्यपूरिते ॥ ३२

श्राद्धातिथिपमन्योन्यं वैर्युक्तं भुवि मानवैः ।
परस्परं भक्षयन्ते मांसानि स्वानि बालिशाः ॥ ३३

षेदवह्निगुक्तस्यगी भार्यापिश्रोस्तथैव च ।
गिरिभृङ्गादधःपातं पात्यन्ते यमकिंकरैः ॥ ३४

पुनर्भूपतयो ये च कन्धविध्वंसकाश्च ये ।
तद्गर्भश्चाद्भुग्यश्च कृमीन्भक्षेत्पिपीलिकाः ॥ ३५

छाण्डालादन्यजाद्वापि प्रतिगृह्णाति दक्षिणाम् ।
याजको यजमानश्च सोऽश्मान्तः स्थूलकीटकः ॥ ३६

पृष्ठमांसाशिनो मूढास्तथैवोत्कोचजीविनः ।
क्षिप्यन्ते वृकभक्षे ते नरके रजनीचर ॥ ३७

स्वर्णस्तेयी च ब्रह्मघ्नः सुरापी गुरुतल्पगः ।
तथा गोभूमिहर्तारो गोस्त्रीबालहनाश्च ये ॥ ३८

एते नरा द्विजा ये च गोषु विक्रयिणस्तथा ।
सोमविक्रयिणो ये च वेदविक्रयिणस्तथा ॥ ३९

कूटसध्यासवशीचाश्च नित्यनैमिषनाशकाः ।
कूटसाक्ष्यप्रदा ये च ते महारौरवे स्थिताः ॥ ४०

दशवर्षसहस्राणि तावत् तामिस्रके स्थिताः ।
तावच्चैवान्यतामिस्रे असिपत्रवने ततः ॥ ४१

तावच्चैव घटीयन्त्रे तप्तकुम्भे ततः परम् ।
प्रपातो भवते तेषां वैरिदं दुष्कृतं कुतम् ॥ ४२

ब्राह्मणोंको कुकर्मोंमें लगाकर उन्हें क्लेश देते हैं वे पापी मनुष्य शिलाओंपर पीसे जाते हैं और अग्नि सूय आदिद्वारा शोषित भी किये जाते हैं ॥ २५-२८ ॥

जो धरोहरको चुरा लेते हैं, उन्हें बेड़ी लगाकर भूखसे पीड़ित एवं सूखे तात्तु और ओठकी अवस्थामें वृश्चिकाशन नामक नरकमें गिराया जाता है जो पर्वोंमें मैथुन करते तथा परस्त्री संग करते हैं, उन पापियोंको वह्नितपा कोलोंवाले शाल्मलिका (विषज्जातसे) आलिङ्गन करना पड़ता है । जो द्विज उपाध्यायको स्वयंकी अपेक्षा निम्नासनपर बैठाकर अध्यापन करता है, उन अधम द्विजों एवं उनके अध्यापकको सिरपर शिला वहन करनी पड़ती है जो जलमें मूत्र, कफ एवं मलका त्याग करते हैं उन्हें दुर्गन्धयुक्त मिट्टा और पीससे पूर्ण विष्णुमूत्रनामक नरकमें गिराया जाता है ॥ २९-३२ ॥

जो इस संसारमें श्राद्धके अवसरपर अतिथिके निमित्त तैयार किये गये पदार्थको परस्पर भक्षण कर लेते हैं, उन मूर्खोंको परलोकमें एक दूसरेका मांस खाना पड़ता है । जो वेद, अग्नि गुरु, भार्या, पिता एवं माताका त्याग करते हैं उन्हें यमदूत गिरिशिखरके ऊपरसे गोचे गिराते हैं । जो विधवासे विवाह करते, अविवाहित कन्याको दुषित करते एवं उक्त प्रकारसे उत्पन्न प्लवित्तियोंकी सन्तानके यहाँ श्राद्धमें भोजन करते हैं, उन्हें कृमि तथा पिपीलिकाका भक्षण करना पड़ता है जो ब्राह्मण छाण्डाल और अन्यजनोंसे दक्षिणा लेते हैं उन्हें तथा उनके यजमानको पत्थरोंमें रहनेवाला स्थूल कीट बनना पड़ता है ॥ ३३-३६ ॥

राक्षस जो पीठपोछे शिकायत करते हैं चुगलों करते एवं घूस लेते हैं उन्हें वृकभक्ष नामक नरकमें डाला जाता है इसी प्रकार सोना चुरानेवाले, ब्रह्महत्यारे, मद्यपी, गुरुपत्नीगामी, गाय तथा भूमिकी खोरी करनेवाले एवं स्त्री तथा बालकको मारनेवाले मनुष्यों तथा गो, सोम एवं वेदका विक्रय करनेवाले, दम्भी, टेढ़ी भाषामें झूठी गवाही देनेवाले तथा पवित्रताके आचरणको छोड़ देनेवाले और नित्य एवं नैमित्तिक कर्मोंके नाश करनेवाले द्विजोंको महारौरव नामक नरकमें रहना पड़ता है ॥ ३७-४० ॥

उपर्युक्त प्रकारके पापियोंको इस हजार वर्ष तामिस्र नरकमें तथा दाने ही बघौतक अन्धतामिस्र और असिपत्र-घन नामक नरकमें रहनेके बादमें भी—उसने ही बघौतक घटीयन्त्र और तप्तकुम्भमें रहना पड़ता है जिन भयंकर

ये त्वेते नरका रीरा रीरवाद्यास्तबोदिताः ।
ते सर्वे क्रमशः प्रोक्ताः कृतज्ञे लोकनिन्दिते ॥ ४३

यथा सुराणां प्रवरो अनार्दने
यथा गिरीणामपि शैशिरात्रिः ।
यथायुधानां प्रवरं सुदर्शनं
यथा खगानां विनतातनुजः ।
महोरगाणां प्रवरोऽप्यनन्तो
यथा च भूतेषु माही प्रधाना ॥ ४४
नदीषु गङ्गा जलजेषु पद्मं
सुरारिमुख्येषु हराद्विभक्तः ।
क्षेत्रेषु यद्वत्कुरुजाङ्गलं वरं
तैर्येषु यद्वत् प्रवरं पृथूदकम् ॥ ४५
सरस्सु चैवोत्तरमानसं यथा
वनेषु पुण्येषु हि नन्दनं यथा ।
लोकेषु यद्वत्सदनं विरिञ्चोः
सत्यं यथा धर्मविधिक्रियासु ॥ ४६
यथाश्वमेधः प्रवरः क्रतूनां
पुत्रो यथा स्पर्शवतां वरिष्ठः ।
तपोधनामपि कुम्भयोगिः
श्रुतिर्वरा यद्वदिहागमेषु ॥ ४७
मुख्यः पुराणेषु यथैव
मातस्य स्वायंभुवोक्तिस्त्वपि संहितासु ।
मनुः स्मृतीनां प्रवरो यथैव
तिथीषु दर्शो विषुवेषु दानम् ॥ ४८
तेजस्विनां यद्वदिहार्क उक्तो
ऋक्षेषु चन्द्रो जलधिर्हृदेषु ।
भवान् तथा राक्षससत्तमेषु
पाशेषु नागस्तिभितेषु वन्यः ॥ ४९
यान्येषु शालिर्द्विपदेषु विप्रः
चतुष्पदे गोः क्षपदं मुनेन्द्रः ।
पुण्येषु जाती नगरेषु काञ्ची
नारीषु रम्भाश्रमिणां गृहस्थः ॥ ५०
कुशस्थली श्रेष्ठतमा पुरेषु
देशेषु सर्वेषु च मध्यदेशः ।
फलैषु क्षुतो मुकुलेष्वशीकः
सर्वोषधीनां प्रवरा च पथ्यः ॥ ५१
मूलेषु कन्दः प्रवरो यक्षोक्तो
व्याधिष्वजीर्णं क्षणदाचरेन्द्रः ।
क्षेत्रेषु दुग्धं प्रवरं यक्षैव
कार्पासिकं प्रावरणेषु यद्वत् ॥ ५२

रीरव आदि नरकोंका हमने तुमसे वर्णन किया है वे सभी लोक-निन्दित कृतघ्नोंको भारी-भारीसे प्राप्त होते रहते हैं ॥ ४३—४३ ॥

जैसे देवताओंमें श्रीविष्णु, पर्वतोंमें हिमालय, अश्वोंमें सुदर्शन, पक्षियोंमें गरुड़, महान् सर्पोंमें अनन्तनाग तथा भूतोंमें पृथ्वी श्रेष्ठ है, नदियोंमें गङ्गा, जलमें उत्पन्न होनेवालोंमें कमल, देव-शत्रु-दैत्योंमें महादेवके चरणोंका भक्त और क्षेत्रोंमें जैसे कुरु-जांगल और तीर्थोंमें पृथूदक है, जलाशयोंमें उत्तर-मानस, पवित्र वनोंमें नन्दनवन, लोकोंमें ब्रह्मलोक, धर्म-कार्योंमें सत्य प्रधान है तथा जैसे यज्ञोंमें अध्वमेध, छूनेयोग्य (स्पर्शसुखवाले) पदार्थोंमें पुत्र सुखदायक है, तपस्वियोंमें अगस्त्य, आगम शास्त्रोंमें वेद श्रेष्ठ है, जैसे पुराणोंमें भक्त्यपुराण, संहिताओंमें स्वयम्भूसंहिता, स्मृतियोंमें मनुस्मृति, तिथियोंमें अमावास्या और विषुवों अर्थात् मेघ और तुला राशिमें सूर्यके संक्रमण संक्रान्तिके अवसरपर किया गया दान श्रेष्ठ होता है ॥ ४४—४८ ॥

जैसे तेजस्वियोंमें सूर्य, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, जलाशयोंमें समुद्र, अच्छे राक्षसोंमें आप और निषेध करनेवाले पाशोंमें नागपाश श्रेष्ठ है एवं जैसे धानोंमें शालि, दो पैरवालोंमें ब्राह्मण, चौपायोंमें गाय, जंगली जानवरोंमें सिंह, फूलोंमें जाती (चमेली), नगरोंमें काञ्ची, नारियोंमें रम्भा और आश्रमियोंमें गृहस्थ श्रेष्ठ है; जैसे सप्तपुरियोंमें हारका, समस्त देशोंमें मध्यदेश, फलोंमें आम, मुकुलोंमें अशोक और जड़ी-बूटियोंमें हरीतकी सर्वश्रेष्ठ है, हे निशाचर जैसे मूलोंमें कन्द, रोगोंमें अपच, घेत वस्तुओंमें दुग्ध और वस्त्रोंमें रुईके कपड़े श्रेष्ठ हैं ॥ ४९—५२ ॥

कलासु मुख्या गणितज्ञता च
 विज्ञानमुख्येषु यथेन्द्रजालम् ।
 शाकेषु मुख्या त्वपि काकभाची
 रसेषु मुख्या लक्षणं यथैव ॥ ५३ ॥
 तुङ्गेषु तालो नलिनीषु पद्मा
 वनीकसेष्वेव च ऋक्षराजः ।
 महीरुहेष्वेव यथा वटश्च
 यथा हरो ज्ञानवतां वरिष्ठः ॥ ५४ ॥
 यथा सतीनां हिमवत्सुता हि
 यथार्जुनीनां कपिला वरिष्ठा ।
 यथा वृषाणामपि नीलवर्णा
 यथैव सर्वेष्वपि दुःसहेषु ।
 दुर्गेषु रीद्रेषु निशाचरेश
 नृपातनं वैतरणी प्रध्वजः ॥ ५५ ॥
 पापीयसां तद्गदिह कृतज्ञः
 सर्वेषु पापेषु निशाचरेन्द्र ।
 ब्रह्मजगोघ्नादिषु निष्कृतिर्हि
 विद्येत वैवास्य तु दुहचारिणः ।
 न निष्कृतिश्चास्ति कृतज्ञवृत्तैः
 सुहृत्कृतं नाशयतोऽव्यकोटिभिः ॥ ५६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवायनपुराणमें बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

सुकेशिके प्रश्नके उत्तरमें ऋषियोंका जम्बू-द्वीपकी स्थिति और उनमें स्थित
 पर्वत तथा नदियोंका वर्णन

सुकेशिरुक्ता

भवद्विरुदिता घोरा पुष्करद्वीपसंस्थितिः ।
 जम्बूद्वीपस्य तु संस्थानं कथयन्तु महर्षयः ॥ १ ॥

ऋषय उचुः

जम्बूद्वीपस्य संस्थानं कथ्यमाणं निशमय ।
 नवभेदं सुविस्तीर्णं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ॥ २ ॥
 मध्ये त्विलावृतो वर्षो भद्राश्वः पूर्वतोऽद्भुतः ।
 पूर्व उत्तरतश्चापि हिरण्यो राक्षसेश्वरः ॥ ३ ॥
 पूर्वदक्षिणतश्चापि किंभरो वर्ष उच्यते ।
 भारतो दक्षिणे प्रोक्तो हरिर्दक्षिणपश्चिमे ॥ ४ ॥
 पश्चिमे केतुमालश्च रम्यकः पश्चिमोत्तरे ।
 उत्तरे च कुरुवर्षः कल्पवृक्षसमावृतः ॥ ५ ॥

निशाचर! जैसे कलाओंमें गणितका ज्ञान, विज्ञानोंमें इन्द्रजाल, शाकोंमें मकोय, रसोंमें नमक, ऊँचे पेड़ोंमें ताड़, कमल-सरोवरोंमें पंफासर, वनैली जीवोंमें भालू, वृक्षोंमें बट, ज्ञानियोंमें महादेव वरिष्ठ हैं, जैसे सतियोंमें हिमालयकी पुत्री पार्वती, गौओंमें काली गाय, बैलोंमें नील रंगका बैल, सभी दुःसह कठिन एवं भयंकर नरकोंमें नृपातन वैतरणी प्रधान है उसी प्रकार हे निशाचरेन्द्र! पापियोंमें कृतज्ञ प्रधानतम पापी होता है। ब्रह्म-हत्या एवं गोहत्या आदि पापोंकी निष्कृति होती जाती है पर दुराचारी पापी एवं मित्र-द्रोही कृतघ्नका करोड़ों वर्षोंमें भी निस्तार नहीं होता ॥ ५३-५६ ॥

सुकेशीने कहा - आदरणीय ऋषियो! आप लोगोंमें पुष्करद्वीपके भयंकर अवस्थानका वर्णन किया, अब आप लोग (कृपाकर) जम्बूद्वीपकी स्थितिका वर्णन करें ॥ १ ॥
 ऋषियोंने कहा—रक्षसेश्वर! (अन्त) तुम हम लोगोंमें जम्बूद्वीपकी स्थितिका वर्णन सुनो। यह द्वीप अत्यन्त विशाल है और नव भागोंमें विभक्त है। यह स्वर्ग एवं मोक्ष-फलको देनेवाला है, जम्बूद्वीपके बीचमें इन्द्रमृतवर्ष, पूर्वमें अद्भुत भद्राश्ववर्ष तथा पूर्वोत्तरमें हिरण्यकवर्ष है। पूर्व-दक्षिणमें किन्नरवर्ष, दक्षिणमें भारतवर्ष तथा दक्षिण-पश्चिममें हरिवर्ष बताया गया है इसके पश्चिममें केतुमलवर्ष, पश्चिमोत्तरमें रम्यकवर्ष और उत्तरमें कल्पवृक्षसे समाप्त कुरुवर्ष है ॥ २-५ ॥

पुण्या रम्या नदीवैने वर्षाः शालकटंकट ।
 इलावृताद्या ये चाह्वी वर्षमुकसैव भरतम् ॥ १
 न तेष्वस्ति युग्वन्मया जराभ्युपभयं न च ।
 तेषां स्वाभाविकं सिद्धिः सुखप्राप्य ह्यप्यन्तः ।
 विपर्ययो न तेष्वस्ति नीलमाधममध्यमाः ॥ ७
 घटेतद् भारतं वर्षं नवद्वीपं निशाचर ।
 सागरान्तरिताः सर्वे अगम्याश्च परस्परम् ॥ ८
 इन्द्रद्वीपः कसेरुमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ।
 नागद्वीपः कटाहश्च सिंहलो चाठणस्तथा ॥ ९
 अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।
 कुमाराख्यः परित्यातो द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः ॥ १०
 पूर्वं किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनः रिक्ता ।
 आन्धा दक्षिणतो वीर तुरुष्कास्त्वपि चोत्तरे ॥ ११
 ब्राह्मणाः क्षत्रिय वैश्याः शूद्राश्चान्तरवासिनः ।
 इत्यापुद्गवणिन्याद्यैः कर्मभिः कृतपावनाः ॥ १२
 तेषां संख्यङ्कारश्च एभिः कर्मभिरिष्यते ।
 भवगापवर्णप्राप्तिश्च पुण्यं पापं तथैव च ॥ १३
 महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋक्षपर्वतः ।
 विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वतः ॥ १४
 तथान्ये शतस्रहस्ता भूधरा मध्यवासिनः ।
 विस्तारोच्छ्रायिणो रम्या विपुलाः शुभसागवः ॥ १५
 कोस्तहस्तः स वै धाजो मन्दरो दर्दुराक्षलः ।
 कालधम्बो वैद्युतश्च मैत्राकः सरसस्तथा ॥ १६
 तुङ्गप्रश्नो नागगिरिस्तश्च गोवर्धनाक्षलः ।
 उज्ज्यायनः पुष्यगिरिरर्बुदो रैवतस्तथा ॥ १७
 ऋष्यमूकः सणोपन्तश्चित्रकूटः कृतस्मरः ।
 शीपर्वतः कोङ्कणश्च शतशोऽन्येऽपि पर्वताः ॥ १८
 तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छा आर्याश्च भागवतः ।
 तैः पीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठा यास्त्राः सम्यङ्निशामय ॥ १९
 सरस्वती पञ्चरूपा कालिन्दी सहिरण्वती ।
 शतशुक्लान्निका नीला वितस्नीरावती कुङ्कुः ॥ २०
 मधुरा देविका चैव बह्वीरा भातकी रसा ।
 गोमती धृतपापा च बाहुदा मदुबद्धती ॥ २१
 निक्षीरा गण्डकी चित्रा कीशिकी च यधूसरा ।
 सरयुश्च सलीहिन्या हिमवत्पदनिःसृताः ॥ २२
 वेदस्मृतिर्वेदवती वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च ।
 धर्माशा नन्दिनी चैव पावनी च यही तथा ॥ २३

सुकेति । ये नव पवित्र और रमणीय वर्ष हैं ।
 भारतवर्षके अतिरिक्त इलावृतादि अष्ट वर्षोंमें युगावस्था
 तथा जराभ्युपका भव नहीं होता । उन वर्षोंमें बिना
 प्रयत्नके स्वभावतः बड़ी बड़ी सिद्धियाँ मिलती हैं । इनमें
 उत्तम, मध्यम, अधम आदिका किसी प्रकारका कोई भेद
 नहीं है । निशाचर इस भारतवर्षके भी नव उपद्वीप हैं ।
 ये सभी द्वीप समुद्रोंसे घिरे हैं और परस्पर अगम्य हैं ।
 भारतवर्षके नव उपद्वीपोंके नाम इस प्रकार हैं—इन्द्रद्वीप,
 कसेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, कटाह, सिंहल
 और चारुण नवीं मुख्य यह कुमारद्वीप भारत-सागरसे
 लगा हुआ दक्षिणसे उत्तरकी ओर फैला है ॥ ६—१० ॥
 वीर । भारतवर्षके पूर्वकी सीमापर किरात, पश्चिममें
 यवन, दक्षिणमें आन्ध तथा उत्तरमें तुरुष्कलोग निवास
 करते हैं । इसके बीचमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं
 शूद्रलोग रहते हैं । यज्ञ, मुद्र एवं नाणिज्य आदि कर्मोंके
 द्वारा ये सभी पवित्र हो गये हैं । उनका व्यवहार, स्वर्ग
 और अपवर्ण (मोक्ष) की प्राप्ति तथा पाप एवं पुण्य
 इन्हीं (यज्ञादि) कर्मोंद्वारा होते हैं । इस वर्णमें महेन्द्र,
 मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य एवं पारियात्र
 नामवाले सप्त मुख्य कुल पर्वत हैं ॥ ११—१५ ॥
 इसके मध्यमें अन्य शालों पर्वत हैं जो आपन्न
 विम्बुत, उतुङ्ग (कैले) रम्य एवं सुन्दर शिखरोंसे
 सुशोभित हैं । यहाँ कोस्तहस्त, वैधाज, मन्दारगिरि, दर्दुर,
 बालधम, वैद्युत, मैत्राक, सरस, तुङ्गप्रश्न, नागगिरि,
 गोवर्धन, उज्ज्यायन (गिरिनार) पुष्यगिरि, अर्बुद (आबु),
 रैवत, ऋष्यमूक, गोमन्त (गोवाक्ष पर्वत) चित्रकूट,
 कृतस्मर, शीपर्वत, कोङ्कण तथा अन्य सैकड़ों पर्वत भी
 विराज रहे हैं ॥ १५—१८ ॥
 उनसे संयुक्त आर्यों और म्लेच्छोंके विभागोंके
 अनुसार जनपद हैं । यहाँके निवासों जिन उत्तम नदियोंके
 जल पीते हैं उनका वर्णन भलीभाँति सुनो । पाँच रूपकी
 सरस्वती, यमुना, हिरण्यती, सतलज, चन्द्रिका, नील,
 वितस्ता, ऐरावती, कुङ्कु, मधुरा, देविका, ठसीरा, घातकी
 रसा, गोमती, धृतपाप, बाहुदा, दुबद्धती, निक्षीरा, गण्डकी,
 चित्रा, कीशिकी, यधूसरा, सरयू तथा सलीहिन्या—ये
 नदियाँ हिमालयकी तलहटीसे निकली हैं ॥ १९—२२ ॥
 वेदस्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु, वर्णासा,
 नन्दिनी, पावनी, मही, पारा, चामण्वती, हृषी, विदिता,

पारा चर्मण्वती सूर्यो विदिशा वेणुमत्पथि ।
 सिन्धु झवन्ती च तथा पारियात्राभयाः स्मृताः ॥ २४
 शोणो महानदश्चैव नर्मदा सुरसा कृष्ण ।
 मन्दाकिनी दशापर्णी च चित्रकूटाफवाहिका ॥ २५
 चित्रोत्पला चैव तप्तसा कर्मोदा पिशाचिका ।
 तप्तान्या पिप्पलश्रोणी विपाशा वज्रुलावती ॥ २६
 सत्सन्तजा शुक्तिमती मञ्जिष्ठा कुन्तिमा वसुः ।
 शङ्खपादप्रसूता च तप्तान्या बालुवाहिनी ॥ २७
 शिवा पयोष्णी निर्विन्ध्य तपी सनिष्ठावती ।
 वेणा वैतरणी चैव सिनीवाहुः कुमुद्वती ॥ २८
 तोया चैव महागौरी दुर्गन्धा काशिला तप्त ।
 विन्ध्यपादप्रसूताश्च नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ॥ २९
 गोदावरी भीमरथी कृष्णा वेणा सरस्वती ।
 तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा बाह्या कावेरिरेव च ॥ ३०
 दुग्धोदा मलिनी रेवा वारिसेना कलस्वना ।
 एतास्त्वपि महानद्यः सङ्घपादविनिर्गताः ॥ ३१
 कृतमाला ताम्रपर्णी वज्रुला चोत्पलावती ।
 सिनी चैव मुदाया च शुक्तिमत्प्रभास्त्रिमाः ॥ ३२
 सर्वाः पुण्याः सरस्वत्यः पापप्रशमनास्तथा ।
 जगतो मातरः सर्वाः सर्वाः सागरयोधिताः ॥ ३३
 अन्याः सहस्रशश्चात्र भूद्रनद्यो हि राक्षसाः ।
 सदाकललवहाश्चान्याः प्रावृत्कालवहास्तथा ॥ ३४
 उद्भ्रमध्योद्भव देशाः पिबन्ति स्वेच्छया शुभाः ॥ ३५
 भस्त्र्याः कुशङ्काः कुणिकुण्डलाश्च ।
 पाङ्कजकाश्याः सह कोसलाभिः ॥ ३६
 वृकाः जम्बरकौवीराः सभूलिङ्गा जनास्त्रिमे ।
 शकाश्चैव समशका मध्यदेश्या जनास्त्रिमे ॥ ३७
 बाह्लीका वाटधनाश्च आभीराः कालतोषकाः ।
 अपरान्तास्तथा शूद्राः पङ्कवाश्च सखेटकाः ॥ ३८
 गान्धारा घवनाश्चैव सिन्धुलौवीरमद्रकाः ।
 ज्ञातद्रवा ललिन्धाश्च पारावतसमूषकाः ॥ ३९
 माठरोदकधाराश्च कैकेया दशमास्तथा ।
 क्षत्रियाः प्रान्तिवेश्याश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ॥ ४०
 काय्बोज दण्डाश्चैव बर्बरा ह्यङ्गस्त्रीकिकाः ।
 चीनाश्चैव तुबाराश्च बहुधा बाह्यतोदराः ॥ ४१
 आग्नेयाः सभरद्वाजाः प्रस्वलाश्च दशेरकाः ।
 सप्तकास्तावका रामाः शूलिस्वस्तङ्गणीः सह ॥ ४२

वेणुमती सिन्धु तप्त अवन्ती — ये नदियाँ पारियात्र
 पर्वतसे निकली हुई हैं । महानद, शोण, पयसा, सुरसा,
 कृष्ण, मन्दाकिनी, दशापर्णी, चित्रकूट, अपवाहिका,
 चित्रोत्पला, तप्तसा, कर्मोदा, पिशाचिका, पिप्पलश्रोणी,
 विपाशा, वज्रुलावती, सत्सन्तजा, शुक्तिमती मञ्जिष्ठा,
 कुन्तिमा, वसु और बालुवाहिनी — ये नदियाँ तथा दूसरी
 जो बालुका बहानेवाली हैं श्रद्धापूर्वककी ललटटीसे
 निकली हुई हैं ॥ २३—२७ ॥

सिन्धु, पयोष्णी (पैनगंग), निर्विन्ध्य (कलसीसिंध)
 तपी, निष्ठावती, वेणा, वैतरणी, सिनीवाहु, कुमुद्वती,
 तोया, महगौरी, दुर्गन्धा तथा काशिला — ये पवित्र जलवाली
 कल्याणकारिणी नदियाँ विन्ध्यपर्वतसे निकली हुई हैं
 गोदावरी, भीमरथी कृष्णा, वेणा, सरस्वती, तुङ्गभद्रा,
 सुप्रयोगा, बाह्या, कावेरी, दुग्धोदा, मलिनी, रेवा (नर्मदा)
 वारिसेना तथा कलस्वना ये महानदियाँ सङ्घपर्वतके
 पाद (नीचे, से) निकलती हैं ॥ २८—३१ ॥

कृतमाला, ताम्रपर्णी, वज्रुला, उत्पलावती सिनी
 तथा मुदाया — ये नदियाँ शुक्तिमान् पर्वतसे निकली हुई
 हैं ये सभी नदियाँ पवित्र, पार्थक्य प्रशमन करनेवाली,
 जगत्की माताएँ तथा सागरकी पत्नियाँ हैं । राक्षस ।
 इनके अतिरिक्त भारतमें अन्य हजारों छोटी नदियाँ भी
 बहती हैं । इनमें कुछ तो सदैव प्रवाहित होनेवाली हैं
 उत्तर एवं मध्यके देशोंके निवासो इन पवित्र नदियोंके
 जलको स्वेच्छया पान करते हैं । मत्स्य, कुशट्ट, कुणि,
 कुण्डल, पाङ्कज, काशी, कोसल, वृक, शबर, कौबीर,
 भूलिङ्ग, शक तथा मल्लक जातियोंके मनुष्य मध्यदेशमें
 रहते हैं ॥ ३२—३६ ॥

बाह्लीक, वाटधन, आभीर, कालतोषक, अपरान्त,
 शूद्र, पङ्कव, खेटक, गान्धार, घवन, सिन्धु, सीवीर,
 मदक, ज्ञातद्रव, ललिन्ध, पारावत, मूषक, मातर,
 उदकधार, कैकेय, दशम, क्षत्रिय, प्रान्तिवैश्य तथा वैश्य
 एवं शूद्रोंके कुल, काय्बोज, दण्ड, बर्बर, अङ्गलौकिक,
 चीन, तुकार, बहुधा, बाह्यतोदर, आग्नेय, पराहज,
 प्रस्थल, दशेरक, लम्पक, तवक, राम, शूलिक, वङ्गण,
 औरस, अलिभद्र, किरतोंकी जातियाँ, ताम्रस, क्रममास,

औरसाक्षालिभद्राक्ष किराताणां च जातयः ।
तामसाः कम्पसाक्ष सुपाशाः पुण्ड्रकास्तथा ॥ ४२
कुलूताः कुतुका ऊर्णास्तुणीपादाः सकृत्कुटा ।
माण्डव्या मालवीयाश्च उत्तरायणकाभिः ॥ ४३
भङ्गा चङ्गा मुद्गरास्त्वन्तगिरिचहिर्गिराः ।
तथा प्रजङ्गा वाङ्मेया पांसादा बलदनिकाः ॥ ४४
ब्रह्मोत्तरा प्राविज्या भार्गवाः केशवर्धरा ।
प्राग्ज्योतिषाश्च शुभाश्च विदेहास्तान्प्रतिपत्का ॥ ४५
माला मागधगोमन्दाः प्राच्या जनपदास्त्रिवे ।
पुण्ड्राश्च केरलाश्चैव जीडाः कुल्याश्च राक्षसाः ॥ ४६
जानुषा मूषिकादाश्च कुमारादा महाशकाः ।
महाराष्ट्रा माहिषिकाः कालिङ्गाश्चैव सर्वशः ॥ ४७
आभीराः सह नैषीका आरण्याः शबराश्च ये ।
बलिन्दा चिन्मामीलेच वीतर्था दण्डकैः सह ॥ ४८
वीरिकाः सीशिकाश्चैव अहमका भोगवर्द्धनाः ।
वैषिकाः कुन्दला आन्धा उद्भिदा नसकारकाः ।
दाक्षिणात्या जनपदास्त्रिवे शालकटङ्कट ॥ ४९
शूर्पाका कारिवन् दुर्गास्तालीकटैः सह ।
पुन्रीषाः ससिनीलाश्च तापमास्तामसास्तथा ॥ ५०
कारस्करास्तु रमिषो नासिक्यान्तरनर्मदा ।
भारकच्छा समाहेयाः सह सारस्वतीरपि ॥ ५१
वात्सेयाश्च सुराष्ट्राश्च आवन्त्याश्चार्बुदः सह ।
इत्येते पश्चिमामाशां स्थिता जनपदा जनाः ॥ ५२
काकबाहीकलप्याश्च येकलाद्योत्कलैः सह ।
उत्तमर्णा दशावांश्च भोजाः किंकरीः सह ॥ ५३
तोशलाः कोशलाश्चैव त्रैपुराश्चैस्त्रिक्रमस्तथा ।
गुरुसास्तुम्बराश्चैव बहगाः नैषधैः सह ॥ ५४
अनुपास्तुण्डिकेराश्च वीतहोत्रास्त्वन्तयः ।
सुकेशो विन्ध्यामूलस्थान्त्रिवे जनपदाः स्मृताः ॥ ५५
अथो देशान् प्रवक्ष्यामः पर्वताभ्युपगन्तु ये ।
गिराङ्गारा हंसवर्गाः कुपयास्तङ्गणाः खशरः ॥ ५६
कुम्भप्रत्वरणाश्चैव ऊर्णाः पुण्याः सहकुकाः ।
त्रिफलाश्च किराताश्च तोमराः शिशिराद्रिकाः ॥ ५७
इमे तवोक्ता विन्ध्याः सुविस्तराद्
हिमे कुमारे रजनीचरेण ।
एतेषु देशेषु च देशधर्मान्
संकीर्त्यमानाभ्युपगन्तु तत्त्वतो हि ॥ ५८

सुपाशं, पुण्ड्रक, कुलूत, कुतुक, ऊर्ण, तुणीपद, कुम्भकुट, माण्डव्य एवं मालवीय—ये अतिपर्व उत्तर भारतमें निवास करती हैं ॥ ४३—४७ ॥

भङ्ग (भागलपुर) वंग एवं मुद्गर (मुंगेर) अन्तर्गिरि, चहिर्गिरि, प्रवङ्ग वाङ्मेव, मालादि, बलदनिक, ब्रह्मोत्तर, प्राविज्य, भार्गव, केशवर्धर, प्राग्ज्योतिष, सूद, विदेह, साप्रतिपत्क, माला, भगव एवं गोमन्—ये पूर्वके जनपद हैं हे राक्षस! शालकटङ्कट पुण्ड्र, काल, जीड, कुल्या, जानुष, मूषिकाद, कुमाराद, महाशक, महाराष्ट्र, माहिषिक, कालिङ्ग (उड़ीसा), आभीर, नैषीक, आरण्य, शबर, बलिन्दा चिन्मामीलेव, वीतर्ध, दण्डक, पौरिक, सीसिक अहमक, भोगवर्द्धन, वैषिक, कुन्दल, अन्ध, उद्भिद एवं नसकारक—ये दक्षिणके जनपद हैं ॥ ४४—४९ ॥

सुकेशि शूर्पाक (बम्बईका क्षेत्र) कारिवन्, दुर्ग, तालीकट, पुनरीय, ससिनील, तापस, तामस, कारस्कर, रमी, नासिक्य, अन्तर, नर्मद, भारकच्छ, माईय, सारस्वत, वात्सेय, सुराष्ट्र, आवन्त्य एवं अर्बुद—ये पश्चिम दिशामें स्थित जनपदोंके निवासी हैं। कालव, एकलव्य, मेकल, उत्कल, इत्तमर्ण, दशार्ण, भोज, किंकवर, तोमर, कोशल, त्रैपुर, ऐस्त्रिक, गुरुस, पुम्बर, घहन, नैषध, अनुष, तुण्डिकेर, वीतहोत्र एवं अवन्ती—ये सभी जनपद विन्ध्याचलके मूलमें (उपत्यका—दरार्ममें) स्थित हैं ॥ ५०—५५ ॥

अच्छा, अब हम पर्वताभिन्न प्रदेशोंके नामोंका वर्णन करेंगे। उनके नाम इस प्रकार हैं—गिराहार, हंसवर्ण, कुपध, तंगण, खश, कुपप्रत्वरण, ऊर्ण, पुण्य, कुतुक, त्रिफला, किरात, तोमर एवं शिशिराद्रिक निशाचर। तुम्हें कुमारद्वीपके इन देशोंका विस्तारसे हम लोगोंने वर्णन किया। अब हम इन देशोंमें वर्तमान देश धर्मोंका यथार्थतः वर्णन करेंगे इसे सुनो ॥ ५६—५८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें तेरावें अध्याय समाप्त हुआ ॥ १३ ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

१ अनुसूचि (८।४१) में भी जाति जनपदादि धर्म वर्णन हैं। इनके विस्तारसे ग्रन्थकर्ताके दिने 'जातिधर्म' आदि देखना चाहिये।

चौदहवाँ अध्याय

दशाङ्ग-धर्म, आश्रम-धर्म और सदाचार-स्वरूपका वर्णन

श्रवण ऊचुः

अहिंसा सत्यमस्तेयं दानं क्षान्तिर्दमः शमः ।
अकार्पण्यं च शौचं च तपश्च रजनीचर ॥ १

दशाङ्गो राक्षसश्रेष्ठ धर्मोऽसी सार्ववर्णिकः ।
ब्राह्मणस्यापि विहिता चातुराश्रम्यकल्पना ॥ २

सुकेशिस्तु

विप्राणां चातुराश्रम्यं विस्तरान्मे तपोधना ।
आचक्षध्वं न मे तृप्तिः शृण्वतः प्रतिपद्यते ॥ ३

श्रवण ऊचुः

कृतोपनयनः सम्यग् ब्रह्मचारी गुरौ वसेत् ।
तत्र धर्मोऽस्य यस्तं च कथ्यमानं निश्रमय ॥ ४

स्वाध्यायोऽद्याग्निरुश्रूषा स्नानं भिक्षाटनं तथा ।
गुरोर्निवेद्य तच्छास्त्रमनुज्ञातेन सर्वदा ॥ ५

गुरोः कर्माणि सोद्योगः सम्यक्क्रीत्युपपादनम् ।
तेनाहूतः पठेच्चैव तत्परो नान्यमानसः ॥ ६

एकं द्वौ सकलान् वापि वेदान् प्राप्य गुरोर्मुखात् ।
अनुज्ञातो वरं वत्सा गुरवे दक्षिणां ततः ॥ ७

गार्हस्थ्यश्रमकामस्तु गार्हस्थ्यश्रमभावसेत् ।
वनप्रस्थाश्रमं वाऽपि चतुर्थं स्वेच्छयात्मनः ॥ ८

तत्रैव वा गुरोर्गृहे द्विजो निष्णामवाप्नुयात् ।
गुरोरभावे तत्पुत्रे सच्छिष्ये तत्सुतं विना ॥ ९

शुश्रूषन् निरभिमानो ब्रह्मचर्याश्रमं वसेत् ।
एवं जयति मृत्युं स द्विजः शालकटङ्कट ॥ १०

ब्रह्मिणो बोले राक्षसश्रेष्ठ! अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), दान, शम, दम (इन्द्रिय-निग्रह), तप, अकार्पण्य, शौच एवं तप धर्मके ये दसों अङ्ग सभी वर्णोंके लिये उपदिष्ट हैं; ब्राह्मणोंके लिये तो चार आश्रमोंका और भी विधान विहित किया गया है ॥ १-२ ॥

सुकेशि बोला—तपोधनो! ब्राह्मणोंके लिये विहित चारों आश्रमोंके नियम आदिको आप लोग विस्तारसे कहें। मुझे उसे सुनते हुए तृप्ति नहीं हो रही है—मैं और भी सुनना चाहता हूँ ॥ ३ ॥

ब्रह्मिणो बोले—सुकेशि ब्रह्मचारी ब्राह्मण भस्तीभोजन उपनयन-संस्कार कराकर गुरुके गृहपर निवास करे। कहीं ओ कर्तव्य है, उन्हें बतलाया जा रहा है, तुम उन्हें सुनो। उनके कर्तव्य हैं स्वाध्याय, दैनिक इष्य, स्नान भिक्षा माँगना और उसे गुरुको निवेदित करके तथा उनसे आज्ञा प्राप्त कर भोजन करना, गुरुके कार्य हेतु उद्यत रहना, सम्यक् रूपसे गुरुमें भक्ति रखना, उनके बुलानेपर उत्तर एवं एकान्तरित होकर पढ़ना (—ये ब्राह्मण ब्रह्मचारीके धर्म हैं)। गुरुके मुखसे एक, दो या सभी वेदोंका अध्ययन कर गुरुको धन तथा दक्षिणा दे करके उनसे आज्ञा प्राप्त कर गृहस्थाश्रममें जानेका इच्छुक (शिष्य) गृहस्थ आश्रममें प्रवेश करे अथवा अपनी इच्छाके अनुसार वनप्रस्थ या संन्यासका अवलम्बन करे ॥ ४-८ ॥

अथवा ब्राह्मण ब्रह्मचारी यहाँ गुरुके धर्ममें ब्रह्मचर्यकी निष्ठा प्राप्त करे अर्थात् जीवनपर्यन्त ब्रह्मचारी रहे। गुरुके अभावमें उनके पुत्र एवं पुत्र न हो तो उनके शिष्यके समीप निवास करे। राक्षस सुकेशि! अभिमानरहित तथा शुश्रूषा करते हुए ब्रह्मचर्याश्रममें रहे इस प्रकार अनुष्ठान करनेवाला द्विज मृत्युको जीत लेता है। हे निशाचर!

उपावृत्तस्ततस्तस्माद् गृहस्थाश्रमकाम्यया ।
असमानर्षिकुलजां कन्यामुद्गृहेद् निशाचर ॥ ११

स्वकर्षणा धनं लब्ध्वा पितृदेवातिथीनपि ।
सम्यक् संप्रीणयेद् भक्त्या सदाचाररतो द्विजः ॥ १२

सुकेशिकथा

सदाचारो निगदितो युष्माभिर्मम सुव्रता ।
लक्षणं श्रोतुमिच्छामि कथयध्वं तमहा मे ॥ १३

श्रवण ऊचुः

सदाचारो निगदितस्तव योऽस्माभिरादरात् ।
लक्षणं तस्य वक्ष्यामस्तच्छृणुष्व निशाचर ॥ १४

गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिपालनम् ।
न ब्रह्मचारिविहीनस्य भद्रमत्र परत्र च ॥ १५

यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये ।
भवन्ति यः समुत्प्लव्य सदाचारं प्रवर्तते ॥ १६

दुराचारो हि पुरुषो नेह नाभुज भन्दते ।
कार्यो यत्र सदाचारे आचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ १७

तस्य स्वरूपं वक्ष्याम सदाचारस्य राक्षसः ।
शृणुष्वैकमनास्तच्च यदि श्रेयोऽभिधाञ्छसि ॥ १८

धर्मोऽस्य मूलं धनस्य शाखा
पुष्पं च कामः फलमस्य मोक्षः ।
असौ सदाचारतः सुकेशिन्

संसेवितो येन स पुण्यभोक्ता ॥ १९

ब्राह्मे मूर्तं प्रथमं विबुध्ये
दनुस्मरेत् देववान् महर्षीन् ।
प्राभातिकं मङ्गलमेव वाच्यं

चतुश्चान् देवपतिस्त्रिनेत्रः ॥ २०

सुकेशिकथा

किं तदुक्तं सुप्रभातं शंकरेण महात्मना ।
प्रभाते यत् पठन्मर्त्यो मुच्यते पापबन्धनात् ॥ २१

श्रवण ऊचुः

श्रूयतां राक्षसश्रेष्ठ सुप्रभातं इरोदितम् ।
श्रुत्वा स्मृत्वा यदित्था च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२

वहाँको अवधि समाप्त कर ब्रह्मचारी द्विज गृहस्थाश्रमकी कामनासे अपने गोत्रसे भिन्न गोत्रके श्रुतिवाले कुलमें उत्पन्न कन्यासे विवाह करे। सदाचारमें रत द्विज अपने नियत कर्मद्वारा धनोपार्जनकर पितरों, देवों एवं अतिथियोंको अपनी भक्तिसे अच्छी तरह तृप्त करे ॥ ९-१२ ॥

(ब्रह्मचारी ब्राह्मणके नियमोंको सुननेके बाद) सुकेशिने कहा— श्रेष्ठ व्रतवाले श्रुतियो! आप लोगोंने पूछने इसके पूर्व सदाचारका वर्णन किया है। सदाचारका लक्षण क्या है? अब मैं उसे सुनना चाहता हूँ। कृपया मुझसे अब उसका वर्णन करें ॥ १३ ॥

श्रुतियोनि कहा— राक्षस हम लोगोंने तुमसे श्रद्धापूर्वक जिस सदाचारका वर्णन किया है उसका (अब) लक्षण बतलाते हैं, तुम उसे सुनो। गृहस्थको आचारका सदा फलन करना चाहिये। आचारहीन व्यक्तिको इस लोक और परलोकमें कल्याण नहीं होता है। सदाचारका उत्प्लवृत्त कर लोक-व्यवहार तथा शास्त्र-व्यवहार करनेवाले पुरुषके यज्ञ, दान एवं तप कल्याणकर नहीं होते। दुराचारी पुरुष इस लोक तथा परलोकमें सुख नहीं पाता। अतः आचार पालनमें सदा तत्पर रहना चाहिये। आचार दुर्लक्षणोंको नष्ट कर देता है ॥ १४-१७ ॥

राक्षस हम उस (पृष्ठ) सदाचारका स्वरूप कहते हैं यदि तुम कल्याण चाहते हो तो एकाग्रचित्त होकर उसे सुनो। सुकेशिन् सदाचारका मूल धर्म है, धन इसकी शाखा है, काम (मनोरथ) इसका पुष्प है एवं मोक्ष इसका फल है। ऐसे सदाचाररूपी वृक्षका जो सेवन करता है वह पुण्यभोगी बन जाता है। मनुष्योंको ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर सर्वप्रथम श्रेष्ठ देवों एवं महर्षियोंका स्मरण करना चाहिये तथा देवाधिदेव महादेवद्वारा कथित प्रभातकास्तौन मङ्गलस्तोत्रका पाठ करना चाहिये ॥ १८-२० ॥

सुकेशिने पूछा— श्रुतियो महादेव संकरने कौन-सा 'सुप्रभात' कहा है कि जिसका प्रातःकाल पाठ करनेसे मनुष्य पाप-बन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ २१ ॥

श्रुतिगण बोले— राक्षसश्रेष्ठ महादेवश्रीद्वारा वर्णित 'सुप्रभात' स्तोत्रको सुनो। इसको सुनने, स्मरण करने और पढ़नेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है

ब्रह्मा भुरारिस्त्रिपुरान्तकारी
भानुः शशी भूमिस्तुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः सह भानुर्वेन
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥ २३
भृगुर्वसिष्ठः क्रतुराङ्गिराश्च
मनुः पुलस्त्यः पुलहः सगीतमः।
रैभ्यो मरीचिश्च्यवनो ऋभुश्च
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥ २४
सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः
सनातनोऽप्यासुरिपिङ्गलो च।
सप्त स्वराः सप्त रसातलाश्च
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥ २५
पृथ्वी सगन्धा सरसास्तथापः
स्पर्शश्च वायुर्वलनः सतेजः।
नभः सशब्दं महता सहैव
चच्छन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥ २६
सप्तार्णवाः सप्त कुलाजलाश्च
सप्तर्षयो द्वीपवराश्च सप्त।
भूरादि कृत्वा भुवनानि सप्त
ददन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥ २७
इत्थं प्रभाते परमं पवित्रं
पठेत् स्मरेद्वा ऋणुयच्च भक्त्या।
दुःस्वप्ननाशोऽनघ सुप्रभाते
भवेच्च सत्यं भगवत्प्रसादात् ॥ २८
ततः समुत्थाय विचिन्तयेत्
धर्मं तत्तार्थं च विहाय शय्याम्।
उत्थाय ध्यात्वाद्भिरित्युदीर्य
गच्छेत् ततोत्सर्गविधिं हि कर्तुम् ॥ २९
न देवगोब्राह्मणवह्निमार्गे
न राजमार्गे न जतुष्यधे च।
कुर्यादथोत्सर्गमपोह गोहे
पूर्वापरां चैव समाभ्रितो गाम् ॥ ३०
ततस्तु शौचार्थमुपाहरेन्मृदं
गुदे त्रयं पाणितले च सप्त।
तथोभयोः पञ्च चतुस्तथैकां
लिङ्गे तथैकां मृदमाहरेत् ॥ ३१
फन्तर्जलाशिक्षसं मुखिकस्थला-
च्छीचावशिष्टा शरणात् तथान्या।

(स्तुति इस प्रकार है) 'ब्रह्मा, विष्णु, शंकर ये देवता तथा सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनैश्च ग्रह—ये सभी मेरे प्रातःकालको मङ्गलमय बनायें भृगु, वसिष्ठ, क्रतु, अङ्गिरा, मनु पुलस्त्य, पुलह, गौतम, रैभ्य, मरीचि, च्यवन तथा ऋभु—ये सभी (ऋषि) मेरे प्रातःकालको मङ्गलमय बनायें सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन आसुरि, पिङ्गल, सप्तों स्वर एवं सप्तों रसातल—ये सभी मेरे प्रातःकालको मङ्गलमय बनायें' ॥ २३—२५ ॥

'गन्धगुणवाली पृथ्वी, रसगुणवाला जल, स्पर्शगुणवाली वायु, तेजोगुणवाली अग्नि, शब्दगुणवाला आकाश एवं महत्तत्त्व—ये सभी मेरे प्रातःकालको मङ्गलमय बनायें। सप्तों समुद्र, सप्तों कुलपर्वत, सप्तर्षि, सप्तों श्रेष्ठ द्वीप और भू आदि सप्तों लोक—ये सभी प्रभातकालमें मुझे मङ्गल प्रदान करें' इस प्रकार प्रातःकालमें परम पवित्र सुप्रभात-स्तोत्रको भक्तिपूर्वक पढ़े, स्मरण करे अथवा सुने। निष्पाप। ऐसा करनेसे भगवान्की कृपासे निश्चय ही उसके दुःस्वप्नको नाश होता है तथा सुन्दर प्रभात होता है। उसके बाद उठकर धर्म तथा अर्थके विषयमें चिन्तन करे और शय्या त्याग करनेके बाद 'हरि'का नाम लेकर उत्सर्ग विधि (शौच आदि) करनेके लिये जाय ॥ २६—२९ ॥

मल-त्याग देवता, गौ, ब्राह्मण और अग्निके मार्ग, राजपथ (सड़क) और चौखंडेपर, गोशालामें तथा पूर्व या पश्चिम दिशाकी ओर मुख करके न करे मलत्यागके बाद फिर शुद्धिके लिये मिट्टी ग्रहण करे और मलद्वारमें तीन बार, बाएँ हाथमें सात बार तथा दोनों हाथोंमें दस बार एवं लिङ्गमें एक बार मिट्टी लगाये राक्षस! सदाचार जाननेवाले मनुष्यको जलके भीतरसे, चूहेकी बिलसे, दूसरोंके शौचसे बची हुई एवं गृहसे मिट्टी नहीं लेनी

कल्पीकमुष्वापि हि शौचनाय
 ग्राह्या सदाचारविदा नरेण ॥ ३२
 उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वापि विद्वान्
 प्रक्षाल्य पादौ भुवि संनिविष्टः ।
 समाचमेद्दभिरफेनिलाभि-
 रादौ परिपूज्य मुखं द्विरद्भिः ॥ ३३
 स्पृशेत्त्राणि शिरः करेण
 संध्यामुपासीत ततः क्रमेण ।
 केशास्तु संशोध्य च दन्तधावनं
 कृत्वा तथा दर्पणदर्शनं च ॥ ३४
 कृत्वा शिरःस्नानमधाङ्गिकं वा
 संपूज्य तोरेण पितृन् सदेवान् ।
 होमं च कृत्वा लभनं शुभानां
 कृत्वा बहिर्निर्गमनं प्रशस्तम् ॥ ३५
 दूर्वादधिसर्पिरथोदकुम्भं
 धेनुं सवत्सा वृषभं सुवर्णम् ।
 मृदगोमयं स्वस्तिकमक्षतानि
 लाजामधु साष्टाणकन्यकां च ॥ ३६
 श्वेतानि पुष्पाप्यथ शोभनानि
 हुताशनं चन्दनमर्कबिम्बम् ।
 अश्वत्थवृक्षं च समालभेत
 ततस्तु कुर्यान्निजजातिधर्मम् ॥ ३७
 देशानुशिष्टं कुलधर्ममयं
 स्वगोत्रधर्मं न हि संत्यजेत ।
 तेनार्थसिद्धिं समुपाचरेत्
 नासत्प्रलापं न च सत्यहीनम् ॥ ३८
 न निष्ठुरं नागमशास्त्रहीनं
 वाक्यं वदेत्साधुजनेन येन ।
 निन्दो भवेन्नैव च धर्मभेदी
 सङ्गं न चासत्सु नरेषु कुर्यात् ॥ ३९
 संध्यासु जप्यं सुरतं दिवा च
 सर्वासु योनीषु पराबलासु ।
 आगारशून्येषु भहीतलेषु
 रजस्वलास्त्वेव जलेषु वीर ॥ ४०
 वृथाऽटनं वृथा दानं वृथा च पशुमारणम् ।
 न कर्त्तव्यं गृहस्थेन वृथा दारपरिग्रहम् ॥ ४१
 वृथाऽटनानित्यहानिर्वृथादानाङ्गनक्षयः ।
 वृथा पशुघ्नः प्राप्नोति पातकं नरकग्रहम् ॥ ४२

चाहिये दीमककी माँबीसे भी शुद्धिके लिये मिट्टी नहीं लेनी चाहिये। विद्वान् पुरुष पैर धोनेके पश्चात् उत्तर या पूर्वमुख बैठकर फेनरहित जलसे पहले मुखको दो बार धोये फिर धोनेके बाद आचमन करे ॥ ३०—३३ ॥

आचमन करनेके बाद अपनी इन्द्रियों तथा सिरको हथसे स्पर्शकर क्रमशः केश-संशोधन, दन्तधावन एवं दर्पण दर्शनकर संध्यापासन करे। शिर-स्नान (सिरसे पैरतक स्नान) अथवा अर्धस्नान कर पितरों एवं देवताओंका जलसे पूजन करनेके पश्चात् हवन एवं माङ्गलिक वस्तुओंका स्पर्श कर बाहर निकलना प्रशस्त होता है। दूर्वा, दधि, घृत, जलपूर्ण कलश, बछड़ेके साथ गाय, बैल, सुवर्ण, मिट्टी, गोबर, स्वस्तिक चिह्न (卐), अक्षत, लाजा, मधुका स्पर्श करे और ब्राह्मणकी कन्या एवं सूर्यविम्बका दर्शन करे तथा सुन्दर श्वेतपुष्प, अग्नि, चन्दनका दर्शन कर अश्वत्थ (घोपल) वृक्षका स्पर्श करनेके बाद अपने जाति-धर्म (अपने वर्णके लिये नियतकर्म) का पालन करे ॥ ३४—३७ ॥

देश-विहित धर्म, श्रेष्ठ कुलधर्म और गोत्रधर्मका त्याग नहीं करना चाहिये, उसीसे अर्थकी सिद्धि करनी चाहिये असत्प्रलाप, सत्परहित, निष्ठुर और वेद-आगमशास्त्रसे असंगत वाक्य कभी न कहे, जिससे साधुजनोंद्वारा निन्दित होना पड़े। किसीके धर्मको हानि न पहुँचाये एवं बुरे लोगोंका सङ्ग भी न करे वीर! सन्ध्या एवं दिनके समय रति नहीं करनी चाहिये। सभी योनियोंकी परस्त्रियोंमें, गृहहीन पृथ्वीपर, रजस्वला स्त्रीमें तथा जलमें मुरतव्यापार वर्जित है गृहस्थको व्यर्थ भ्रमण, व्यर्थ दान, व्यर्थ पशुवध तथा व्यर्थ दार-परिग्रह नहीं करना चाहिये ॥ ३८—४१ ॥

व्यर्थ धूमनेसे नित्यकर्मकी हानि होती है तथा वृथा दानसे धनकी हानि होती है और वृथा पशुवध करनेवाला नरक प्राप्त करनेवाले फलको प्राप्त होता है अवैध

संतत्या हानिरश्लाघ्या वर्णसंकरतो भयम् ।
 भेतव्यं च भवेत्लोकैः कथादारपरिग्राहत् ॥ ४३
 परस्वे परदारे च न कार्या बुद्धिरुत्तमैः ।
 परस्वं नरकायैव परदाराश्च मृत्यवे ॥ ४४
 नैक्षेत् परस्त्रियं नग्रां न सम्भाषेत तत्करान् ।
 उदक्यादर्शनं स्पर्शं संभाषं च विवर्जयेत् ॥ ४५
 नैकासने तथा स्वेयं सोदर्या परजायया ।
 तथैव स्थान्न मातुश्च तथा स्वदुहितुस्तपि ॥ ४६
 न च स्मायीत वै नग्नो न ज्ञयीत कदाचन ।
 दिग्वाससोऽपि न तथा परिभ्रमणमिष्यते ।
 भिन्नासनभाजनादीन् दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ४७
 नन्दासु नाभ्यङ्गमुपाचरेत्
 क्षीरं च रिक्तासु जयासु मांसम् ।
 पूर्णासु योधित्परिवर्जयेत्
 भद्रासु सर्वाणि समाचरेत् ॥ ४८
 नाभ्यङ्गमर्कं न च भूमिपुत्रे
 क्षीरं च शुक्रे रविजे च मांसम् ।
 बुधेषु योधिनः समाचरेत्
 शेषेषु सर्वाणि सदैव कुर्यात् ॥ ४९
 चित्रासु हस्ते श्रवणो न तैलं
 क्षीरं विशाखास्वभिजिस्तु वर्ज्यम् ।
 मूले मूले भाद्रपदासु मांसं
 योधिभद्राकृत्तिकयोत्तरासु ॥ ५०
 सदैव वर्ज्यं शयनमुद्विगरा-
 स्तथा प्रतीच्यां रजनीचरेण ।
 भुङ्गीत नैवेद्यं च दक्षिणामुखे
 न च प्रतीच्यामभिभोजनीयम् ॥ ५१
 देवालयं चैत्यतरुं चमुष्यधं
 विद्याधिकं चापि गुरुं प्रदक्षिणम् ।
 माल्यान्पानं वसनानि यज्ञतो
 नान्यर्थाश्चापि हि क्षरयेद् बुधः ॥ ५२
 स्नायाच्चिरःस्नानतया च नित्यं
 न कारणं चैव विना निज्ञासु ।
 ग्रहोपरागे स्वजनापयते
 मुक्त्वा च जन्यर्क्षगते शशाङ्के ॥ ५३

स्त्रीः संग्राहसे सन्तानकी निन्दनीय ज्ञानि, वर्णसांकर्यका भय तथा लोकमें भी भय होता है उत्तम व्यक्ति परधन तथा परस्त्रीमें बुद्धि न लगावे। परधन नरक देनेवाला और परस्त्री मृत्युका कारण होती है। परस्त्रीको नग्रावस्थामें न देखे, चोरोसे बातचीत न करे एवं रजस्वला स्त्रीको न तो देखे, न उसका स्पर्श ही करे और न उससे बातचीत ही करे ॥ ४२-४५ ॥

अपनी बहन तथा परस्त्रीके साथ एक आसनपर न बैठे इसी प्रकार अपनी माता तथा कन्याके साथ भी एक आसनपर न बैठे नग्न होकर स्नान और शयन न करे, वस्त्रहीन होकर श्वशुर-उधर न घूमे, टूटे आसन और बर्तन आदिको अलग रख दे। नन्दा (प्रतिपदा, पड़ो और एकादशी) तिथियोंमें तैलसे मालिश न करे, रिक्ता (चतुर्थी, नवमी और अतुर्दशी) तिथियोंमें और कय न करे (न कराये) तथा जया (रवैया, अष्टमी और अयोदशी) तिथियोंमें फलका गूदा नहीं खाना चाहिये। पूर्णा (पञ्चमी, दशमी और पूणिमा) तिथियोंमें स्त्रीका सम्पर्क न करे तथा भद्रा (द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी) तिथियोंमें सभी कार्य करे। रविवार एवं मङ्गलवारको तैलकी मालिश, शुक्रावको क्षौरकर्म नहीं करना चाहिये (न करना चाहिये)। शनिवारको फलका गूदा न खाये तथा बुधवारको स्त्री वर्ज्य है। शेष दिनोंमें सभी कार्य सदैव कर्तव्य हैं ॥ ४६-४९ ॥

चित्रा, हस्त और श्रवण नक्षत्रोंमें तैल तथा विशाखा और अभिजित् नक्षत्रोंमें क्षौर कार्य नहीं करना करना चाहिये। मूल, मृगशिरा, पूर्वाभाद्रपद और उत्तराभाद्रपदमें गूदा-भक्षण तथा मघा, कृत्तिका और तीनों उत्तरा (उत्तराफल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा)-में स्त्री-सहवास न करे। राक्षसराज। उत्तर एवं पश्चिमकी ओर सिर करके शयन नहीं करना चाहिये। दक्षिण एवं पश्चिममुख भोजन नहीं करना चाहिये। देवमन्दिर, चैत्य-वृक्ष, देवताके समान पूज्य पीपल आदिके वृक्ष, चौराहे, अपनेसे अधिक विद्वान् तथा गुरुकी प्रदक्षिणा करे। बुद्धिमान् व्यक्ति यज्ञपूर्वक दूसरेके द्वारा ध्यवहृत भाल्म, अन्न और वस्त्रका व्यवहार न करे नित्य स्नान करके कपड़ोंसे स्नान करे। ग्रहोपराग (ग्रहणके समय) और स्वजनको मृत्यु तथा जन्म-नक्षत्रमें अन्धमाके रहनेके अतिरिक्त समयमें रात्रिमें बिना विशेष कारण स्नान नहीं करना चाहिये ॥ ५०-५३ ॥

नाभ्याङ्गितं कायमपस्पृशेच्च
स्नानो न केशान् विधुनीत चापि।
गात्राणि चैवाम्बरपाणिना च
स्नाने विमुञ्चाद् रजनीचरेश ॥ ५४
वसेच्च देशेषु सुराजकेषु
सुसंहितेष्वेव जनेषु नित्यम्।
अक्रोधना न्यायपरा अमत्सरा
कृषीवला ह्येषधयश्च यत्र ॥ ५५
श्वापस्तु वैज्ञो धनिकश्च यत्र
सच्छ्रोत्रियस्तत्र वसेत नित्यम् ॥ ५६
न तेषु देशेषु वसेत बुद्धिमान्
सदा नृपो दण्डरुप्रिस्त्वशक्तः।
जनोऽपि नित्योत्सवबद्धवैरः
सदा जिगीवुश्च निशाचरेन्द्र ॥ ५७
अथ चतुः

यच्च सर्वं महाबाहो सदा धर्मस्थितैरैः।
यद् भोज्यं च समुत्तिष्ठं कथयिष्यामहे वयम् ॥ ५८

भोज्यमन्नं पर्युषितं स्नेहाक्तं चिरसंभृतम्।
अस्नेहा स्त्रीहयः श्लक्ष्णः विकारः पयसस्तथा ॥ ५९

तद्वद् द्विदलकादीनि भोज्यानि मनुरश्ववीत् ॥ ६०

मणिरत्नप्रवालानां तद्वन्मुक्ताफलस्य च।

शैलदारुमयानां च तृणमूलीषधान्यपि ॥ ६१

शूर्पधान्याजिनानां च संहतानां च वाससाम्।

वल्कलानामशेषाणामम्बुन शुद्धिरिष्यते ॥ ६२

सस्नेहानामथोष्णो न तिलकल्केन चारिणा।

कार्पासिकानां वस्त्राणां शुद्धिः स्यात्सह भस्मना ॥ ६३

नागदन्तास्थिभृङ्गाणां तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते।

पुनः पाकेन भाण्डानां मृण्मयानां च मेध्यता ॥ ६४

शुचि भैक्षं कारुहस्तः पण्यं चोषि-मुखं तथा।

रथ्यागतमभिज्ञातं दासवर्गेण यत्कृतम् ॥ ६५

वाक्प्रशस्तं धिरतीतमनेकान्तरितं लघु।

चेष्टितं बालवृद्धानां बालस्य च मुखं शुचि ॥ ६६

राक्षसेभ्यः। तेल-मालिश किये हुए किसीके शरीरका स्पर्श नहीं करना चाहिये। स्नानके बाद बालोंको ठसो समय कंघीसे न झाड़ें मनुष्यको वहाँ रहना चाहिये जहाँका राजा धर्मात्मा हो एवं जनवर्गमें समता हो लोकोपधी न हों, न्यायी हों परस्परमें डाह न हो, खेती करनेवाले किसान और ओषधीयाँ हों। ऊर्ध्वं चतुर वैद्य, धनो मानी दानो, श्रेष्ठ श्रोत्रिय विद्वान् हों वहाँ निवास करना चाहिये जिस देशका राजा प्रजाको मात्र दण्ड ही देना चाहता हो तथा ठसवर्गमें जन-समाजमें नित्य किसी न किसी प्रकारका वैर-विद्वेष हो एवं लड़ाई-झगडा करनेकी ही लालसा हो, निर्बल मनुष्यको ऐसे स्थानपर नहीं रहना चाहिये ॥ ५४—५७ ॥

अपियोने कहा—महाबाहो जो पदार्थ धर्मात्मा व्यक्तियोंके लिये सदैव त्याग्य है एवं जो भोग्य है हम उनका वर्णन कर रहे हैं। तैल, घी आदि स्निग्ध पदार्थोंसे पकाया गया अन्न बासी एवं बहुत पहलेका बने रहनेपर भी भोग्य (खानेयोग्य) है तथा सूखे भूने हुए चावल एवं दूधके विकार—दही, घी आदि भी बासी एवं पुराने होनेपर भी भक्ष्य खानेयोग्य हैं इसी प्रकार मनुने चने, अरहर, मसूर आदिके भूने (तले) हुए दालको भी अधिक कालतक भोजनके योग्य बतलाये हैं ॥ ५८—६० ॥

(यहाँसे आगे अब द्रव्य-शुद्धि बतलाते हैं।) मणि, रत्न, प्रवाल (मृगा), मोती, फत्तर और लकड़ीके बने बर्तन, तृण, मूल तथा ओषधीयाँ, सूप (दाल), धान्य, मृगचर्म, सिले हुए वस्त्र एवं चूर्णोंके सभी छल्लोंकी शुद्धि जलसे होती है। तैल-घृत आदिसे मलिन वस्त्रोंकी शुद्धि ठण्डा जल तथा तिल-कल्क (खाली)—से एवं फपासके वस्त्रोंकी शुद्धि भस्मसे (फत्तर कोयले आदिकी राखसे) होती है। हाथोंके दौल, हड्डी और सींगकी बनी चीजोंकी शुद्धि तराशनेसे (खरानेसे) होती है मिट्टीके बर्तन पुनः आगमें जलानेसे शुद्ध होते हैं। पिशान, कारीगरोंका हाथ, विक्रेय वस्तु, स्त्री मुख, अज्ञात वस्तु, ग्रामके मध्य मार्ग या चौराहेसे लायी जानेवाली तथा नीकतोंद्वारा निर्मित वस्तुएँ पवित्र मानी गयी हैं वचनद्वारा प्रशंसित, पुराना, अनेकानेक जनोंसे होती हुई लायी जानेवाली छोटी वस्तुएँ, बालकों और बूढ़ोंद्वारा किया गया कर्म तथा शिशुका मुख शुद्ध होता है ॥ ६१—६६ ॥

कर्मान्ताङ्गारशालासु स्तनंघयसुताः स्त्रियः ।
याग्विष्णुको द्विजेन्द्राणां संतप्ताश्चाम्बुविन्दवः ॥ ६३

भूमिर्विशुष्यते स्नातदाहमार्जनगोक्रयैः ।
लेपादुल्लेखनात् सेकाद् देशमसंमार्जनार्चनात् ॥ ६८

केशकीटावपनेऽने गोघ्राते मक्षिकान्विते ।
भृदम्बुभस्मक्षाराणि प्रक्षेप्तव्यानि शुद्धये ॥ ६९

औदुम्बराणां चाम्बुलेन क्षारेण त्रपुसीसयो ।
भस्माम्बुभिश्च कांस्यानां शुद्धिः प्लावो द्रवस्य च ॥ ७०
अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैर्गन्धापहरणेन च ।
अन्येषामपि द्रव्याणां शुद्धिर्गन्धापहारतः ॥ ७१

मातुः प्रस्रवणो वत्सः शकुनिः फलपातने ।
गर्दभो भारवाहित्वे च मृगग्रहणे शुचिः ॥ ७२

रथ्याकर्मतोयानि नावः पथि तृणानि च ।
मारुतेनैव शुद्ध्यन्ति पक्वेष्टकचितानि च ॥ ७३

मृतं श्लोणाढकस्यानममेध्याभिप्लुतं भवेत् ।
अग्रमुद्धृत्य संस्थाप्य शेषस्य प्रोक्षणं स्मृतम् ॥ ७४

उपवासं त्रिरात्रं वा दूषितान्नस्य भोजने ।
अज्ञाते ज्ञातपूर्वे च नैव शुद्धिर्विधीयते ॥ ७५
उदक्याश्चान्नग्रांश्च सूतिकांन्यावसाधिनः ।
स्पृष्टा स्नायीत स्त्रीचार्यं तथैव मृतहारिणः ॥ ७६

सस्नेहमस्थि संस्पृश्य सवासतः स्नानमाचरेत् ।
आत्सर्व्यैव तु निःस्नेहं मामालम्ब्यर्कमीक्ष्य च ॥ ७७

कर्मशला, अन्तर्गुह एवं अप्रिश्रलामें दुधमुँहें बच्चोंको ली हुई स्त्रियाँ, सम्भाषण करते हुए विद्वान् ब्राह्मणोंके मुखके छंटे तथा उष्ण जलके बिन्दु पवित्र होते हैं। पृथ्वीकी शुद्धि खाँदने, जलाने, झाड़ू देने, गौओंके चलने, लीपने, खरोंचने तथा सींचनेसे होती है और गृहको शुद्धि झाड़ू देने, जलके छिड़कने तथा पूजा आदिसे होती है केश, कीट पड़े हुए और मक्खोंके बैठ जानेपर तथा गायके द्वारा सूँभे जानेपर अन्नकी शुद्धिके लिये उसपर जल, भस्म, क्षार या मृत्तिका छिड़कनी चाहिये। ताम्रपात्रकी शुद्धि खटाईसे, जस्ते और शोशेकी क्षारके द्वारा, काँसेको वस्तुएँ भस्म और जलके द्वारा तथा तरल पदार्थ कुछ अंशको बहा देनेसे शुद्ध हो जाते हैं ॥ ६३—७० ॥

अपवित्र वस्तुसे मिले पदार्थ जल और मिट्टीसे धोने तथा दुर्गन्ध दूर कर देनेसे शुद्ध होते हैं अन्य (गन्धवाले) पदार्थोंकी शुद्धि भी गन्ध दूर करनेसे होती है, माताके स्तनको प्रस्तुत कराने (पेन्हाने) में मच्छा, वृषसे फस गिरानेमें पक्षी, बोल्ल डोनेमें गधा और शिकार पकड़नेमें कुत्ता शुद्ध (माना गया) है। मागकं कोबड़ और जल, नाव तथा रास्तेकी घास, वृण एवं पके हुए ईंटोंके समूह वायुके द्वारा ही शुद्ध हो जाते हैं। यदि एक द्रोण (ढाई सेरसे अधिक) पके अन्नके अपवित्र वस्तुसे सम्पर्क हो जाय तो उसके ऊपरकर अंश निकाल कर फेंक देना एवं सोपपर जल छिड़क देना चाहिये इससे उसकी शुद्धि हो जाती है। अज्ञातरूपसे दूषित अन्न खा लेनेपर तीन रात्रितक उपवास करनेसे शुद्धि हो जानेका विधान है, किंतु जान बूझकर दूषित अन्न खानेपर शुद्धि नहीं हो सकती ॥ ७१—७५ ॥

रजस्वला स्त्री, कुत्त, नग (दिगम्बर साधु), प्रसूता स्त्री, चाण्डाल और शववाहकोंका स्पर्श हो जानेपर अपवित्र हुए व्यक्तिको पवित्र होनेके लिये स्नान करना चाहिये यज्ञायुक्त हड्डीके छू जानेपर वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये, किंतु सूखी हड्डीका स्पर्श होनेपर आचमन करने, गो-स्पर्श तथा सूर्यदर्शन करनेमात्रसे ही शुद्धि हो जाती है। विष्टा, रक्त, धूक एवं डबटनका

१-अपवित्रशुद्धिका यह प्रकरण मनुस्मृति ५।११०-१४६ तथा याज्ञवल्क्यस्मृति १।१८२-१९७ आदिमें भी प्रायः इसी प्रकारका है।

२-पद्मपुराण अधीर्षे नग-धर्षित्वात्क व्रतनोत्तर इत्यस्य है।

न लङ्घयेत्पुरीषासृक्कृमिनोद्वर्तनानि च ।
गृहादुच्छिष्टविण्मूत्रे पादाभ्यांसि क्षिपेद बहिः ॥ ७८

पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात् परिवारिणि ।
स्नायीत देवस्त्रातेषु सरोहदसरिस्तु च ॥ ७९
मोक्षानादी विकालेषु प्राज्ञस्तिष्ठेत् कदाचन ।
मालयेज्जन्निवद्विष्टं वीरहीनां तथा स्त्रियम् ॥ ८०

देवतापितृसङ्घास्वयज्ञवेदादिनिन्दकैः ।
कृत्व तु स्पर्शमात्मापं शुद्ध्यते कर्मवस्तोकनात् ॥ ८१

अधोऽध्याः सूतिकाषण्डमार्जराखुश्वकुक्कुटाः ।
पतितापविद्धनगाश्चाण्डालाधमाश्च ये ॥ ८२

सुकेशिलजः

भवद्भिः कीर्तिताऽधोऽध्या य एते सूतिकादयः ।
अपीषां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतो लक्षणानि हि ॥ ८३

अथ उचुः

ब्राह्मणी ब्राह्मणस्यैव याऽवरोधस्त्वयागता ।
तावुषौ सूतिकेत्युक्तौ तयोरन्नं विगर्हितम् ॥ ८४

न जुहोत्युचिते काले न स्नाति न ददाति च ।
पितृदेवार्चनादीनः स षण्डः परिगीयते ॥ ८५

दम्भार्थं जपते यज्ञं तथ्यते भजते तथा ।
न परत्रार्थमुद्युक्तो स मार्जारः प्रकीर्तितः ॥ ८६

विधवे सति नैवास्ति न ददाति जुहोति च ।
तपाहुराखुं तस्यान् भुक्त्वा कृच्छ्रेण शुद्ध्यति ॥ ८७

उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये जूटे पदार्थ, पिण्ड, मूत्र एवं पौर धोनेके जलको घरसे बाहर फेंक देना चाहिये। दूसरेके द्वारा निर्मित बावली आदिमें मिट्टीके पाँच टुकड़ोंके निकाले बिना स्नान नहीं करना चाहिये। (मुख्यतः) देव-निर्मित झीलमें, ताल-तलैयाँ और नदियोंमें स्नान करना चाहिये ॥ ७८-७९ ॥

युद्धिमान् पुरुष याग-बगीचोंमें असमयमें कभी न उहरे। लोगोंसे द्वेष रखनेवाले व्यक्ति तथा पति-पुत्रसे रहित स्त्रीसे वार्तालाप नहीं करना चाहिये। देवता, पितरों भले शस्त्रों (पुराण, धर्मशास्त्र, रामायण आदि), यज्ञ एवं वेदादिके निन्दकोंका स्पर्श और उनके साथ वार्तालाप करनेपर मनुष्य अपवित्र हो जाता है, वह सूर्यदर्शन करनेपर शुद्ध होता है। उसकी शुद्धि भगवान् सूर्यके समक्ष उपस्थान करके अपने किये हुए स्पर्श और वार्तालाप कर्मके त्याग तथा पक्षात्ताप करनेसे होती है। सूतिक, नपुंसक, बिल्व, चूहा, कुत्ते, मुर्गे, पाँत, नग्न (विधर्मी) (इनके लक्षण आगे बतलाये जायेंगे) समाजसे बहिष्कृत और जो खाण्डाल आदि अधम प्राणी हैं उनके यहाँ भोजन नहीं करना चाहिये ॥ ८०-८२ ॥

सुकेशि ब्रौला—अपियो आप लोगोंने जिन सूतिक आदिका अन्न अभक्ष्य कहा है, मैं उनके लक्षण विस्तारसे सुनना चाहता हूँ ॥ ८३ ॥

अपियोने कहा—सुकेशि अन्य ब्राह्मणके साथ ब्राह्मणीके व्यवहारित होनेपर उन दोनोंको ही 'सूतिक' कहा जाता है उन दोनोंका अन्न निन्दित है उचित समयपर इवन, स्नान और दान न करनेवाला तथा पितरों एवं देवताओंकी पूजासे रहित व्यक्तिको ही यहाँ 'षण्ड' वा नपुंसक कहा गया है। दम्भके लिये जप, तप और व्रत करनेवाले तथा परलोकार्थ उद्योग न करनेवाले व्यक्तिको यहाँ 'मार्जार' य 'विल्व' कहा गया है। ऐश्वर्य रहते हुए भोग, दान एवं इवन न करनेवालेको 'आखु' (चूहा) कहते हैं उसका अन्न खानेपर मनुष्य कृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्ध होता है ॥ ८४-८७ ॥

यः परेषां हि मर्माणि निकृन्तन्निव भाषते ।
नित्यं परगुणद्वेषो स ज्ञान इति कथ्यते ॥ ८८

सभागतानां यः सभ्यः पक्षपातं समाश्रयेत् ।
तमाहुः कुक्कुटं देवास्तस्याप्यन्नं विगर्हितम् ॥ ८९

स्वधर्मं यः समुत्सृज्य परधर्मं समाश्रयेत् ।
अनरपदि स विद्वद्भिः पतितः परिकीर्त्यते ॥ ९०

देवत्यागी पितृत्यागी गुरुभक्त्यरतस्तथा ।
गोब्राह्मणस्त्रीवधकुटुम्बविद्भ्यः स कीर्त्यते ॥ ९१

येषां कुले न वेदोऽस्ति न ज्ञासं नैव च व्रतम् ।
ते मग्नाः कीर्तिताः सद्भिस्तेषामन्नं विगर्हितम् ॥ ९२

अज्ञातानामदाता च दातुश्च प्रतिषेधकः ।
शरणागतं यस्त्यजति स चाण्डालोऽधमो नरः ॥ ९३

यो बान्धवैः परित्यक्तः साधुभिर्बाह्यैरपि ।
कुण्डलाशीयश्च तस्यान्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ९४

ये नित्यकर्मणो हानिं कुर्यान्नैमित्तिकस्य च ।
भुक्त्वान्नं तस्य शुद्धयेत त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥ ९५

गणकस्य निषादस्य गणिकाभिषजोस्तथा ।
कदर्यस्यापि शुद्धयेत त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥ ९६

नित्यस्य कर्मणो हाणिः केवलं मृतजन्मसु ।
न तु नैमित्तिकोच्छेदः कर्तव्यो हि कथंचन ॥ ९७

जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलस्य विधीयते ।
मृते च सर्वबन्धुनामित्याह भगवान् भृगुः ॥ ९८

प्रेताय सलिलं देवं बहिर्दग्ध्वा तु गौप्रजैः ।
प्रथमेऽह्नि चतुर्थे वा सप्तमे वाऽस्थिसंचयम् ॥ ९९

ऊर्ध्वं संचयनात्तेषामङ्गस्पर्शो विधीयते ।
सोदकैस्तु क्रिया कार्या संशुद्धैस्तु सपिण्डजैः ॥ १००

दूसरोंका मर्म भेदन करते हुए बातचीत करनेवाले तथा दूसरेके गुणोंसे द्वेष करनेवालेको 'ज्ञान' या 'कुशा' कहा गया है; सभामें आगत व्यक्तियोंमें जो सभ्य व्यक्ति पक्षपात करता है, उसे देवताओंमें 'कुक्कुट' (मुर्गा) कहा है; उसका भी अन्न निन्दित है। विपत्तिकालमें अतिरिक्त अन्य समयमें अपना धर्म छोड़कर दूसरेका धर्म ग्रहण करनेवालेको विद्वानोंमें 'पतित' कहा है। देवत्यागी, पितृत्यागी, गुरुभक्तिसे विमुख तथा गो, ब्राह्मण एवं स्त्रीकी हत्या करनेवालेको 'अपविद्ध' कहल जाता है ॥ ८८—९१ ॥

जिनके कुलमें वेद, शास्त्र एवं व्रत नहीं हैं, उन्हें सज्जन लोग 'नग्न' कहते हैं। उनका अन्न निन्दित है अज्ञा रखनेवालोंको न देनेवाला, दाताको मना करनेवाला तथा शरणागतकर परिस्थाप करनेवाला अधम मनुष्य 'चाण्डाल' कहा जाता है। बान्धवों साधुओं एवं ब्राह्मणोंसे त्यागा गया तथा कुण्ड (पतितके अर्पित रहनेपर परपुरुषसे उत्पन्न पुत्र) के यहाँ अन्न खानेवालेको चान्द्रायण व्रत करना चाहिये; नित्य और नैमित्तिक कर्म न करनेवाले व्यक्तिका अन्न खानेपर मनुष्य तीन राततक उपवास करनेसे शुद्ध होता है ॥ ९२—९५ ॥

गणक (ज्योतिषी), निषाद (मल्लाह), वैष्णव, वैद्य तथा कृपणका अन्न खानेपर भी मनुष्य तीन दिन उपवास करनेपर शुद्ध होता है। भर्षे बन्धु या मृत्यु होनेपर नित्यकर्म रुक जाते हैं, किंतु नैमित्तिक कर्म कभी बंद नहीं करना चाहिये भगवान् भृगुने कहा है कि पुत्र उत्पन्न होनेपर पिताके लिये एवं मरणमें सभी बन्धुओंके लिये घरके साथ स्नान करना चाहिये ग्रामके बाहर शवदाह करना चाहिये। शवदाह करनेके बाद लगभग लोग प्रेतके उद्देश्यसे जलदान (तिलाञ्जलि) करें तथा पहले दिन या चौथे अथवा तीसरे दिन अस्थि-चयन करें ॥ ९६—९९ ॥

अस्थि-चयनके बाद अङ्ग-स्पर्शका विधान है। शुद्ध होकर सोदकों (चौदह पीढ़ीके अन्तर्गतके लोगों) एवं सपिण्डजों (सप्त पीढ़ीके अंदरके लोगों) को और्ध्वदैहिक क्रिया (मरनेके बाद की जानेवाली विहित क्रिया) करनी चाहिये हे वीर। विष, बन्धन, शस्त्र,

विषोद्वन्धनशस्त्राम्बुवह्निपातमृतेषु च ।
बाले प्रव्राजि संन्यासे देशान्तरमृते तथा ॥ १०१

सद्यः शौचं भवेद्वीर तच्चाप्युक्तं चतुर्विधम् ।
गर्भस्त्रावे तदेवोक्तं पूर्णकालेन चेतरे ॥ १०२

ब्राह्मणतानामहोरात्रं क्षत्रियणां दिनत्रयम् ।
धर्मात्रं चैव वैश्यानां शूद्राणां द्वादशाह्निकम् ॥ १०३

दशाह्नदशमासाह्माससंख्यैर्दिनैश्च तैः ।
स्वाः स्वाः कर्मक्रियाः कुर्युः सर्वे वर्णायकक्रमम् ॥ १०४

प्रेतमुद्दिश्य कर्त्तव्यमेकोद्दिष्टं विधत्ततः ।
सपिण्डीकरणं कार्यं प्रेते आवत्सरान्तरे ॥ १०५

ततः पितृत्वमापन्ने दर्शपूर्णदिभिः शुभैः ।
प्रोणनं तस्य कर्त्तव्यं यथा श्रुतिनिदर्शनात् ॥ १०६

पितुरर्थं समुद्दिश्य भूमिदानादिकं स्वयम् ।
कुर्यात्तेनास्य सुप्रीताः पितरो यान्ति राक्षस ॥ १०७

यद् यदिष्टतमं किञ्चिद् यच्चास्य दयितं गृहे ।
तत्तद् गुणयते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥ १०८

अध्येतव्यं त्रयी नित्यं भाव्यं च विदुषा सदा ।
धर्मतो धनमाहार्यं यष्टव्यं चापि शक्तितः ॥ १०९

यच्चापि कुर्वतो नात्मा जुगुप्सायेति राक्षस ।
तद् कर्त्तव्यमशङ्केन यन्न गोप्यं महाजने ॥ ११०

एवमाचरतो लोके युरुपस्य गृहे सतः ।
धर्मार्थकामसंप्राप्तिं परत्रेह च शोभनम् ॥ १११

एष तुद्देशतः प्रोक्तो गृहस्थाश्रम उक्तमः ।
आनप्रस्थाश्रमं धर्मं प्रवक्ष्यामोऽवधार्यताम् ॥ ११२

जल, अग्नि और गिरनेसे मृत्युके होनेपर तथा बालक, परिभ्राजक, संन्यासीकी एवं किसी व्यक्तिकी दूर देशमें मृत्यु होनेपर तत्काल शुद्धि हो जाती है। यह शुद्धि भी चार प्रकारकी कही गयी है। गर्भस्त्रावमें भी शीघ्र ही शुद्धि होती है अन्य अशौच पूरे समयपर ही दूर होते हैं (यह सद्यः शौच) ब्राह्मणोंका एक अहोरात्रका, क्षत्रियोंका तीन दिनोंका, वैश्योंका छः दिनोंका एवं शूद्रोंका बारह दिनोंका होता है ॥ १००—१०३ ॥

सभी वर्णोंके लोग (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) क्रमशः दस, बारह, पंद्रह दिन एवं एक मासके अन्तरपर अपनी-अपनी क्रियाएँ करें। प्रेतके तद्देशसे निधिके अनुसार एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये मरनेके एक वर्ष बीत जानेपर मनुष्यको सपिण्डीकरण श्राद्ध करना चाहिये। उसके बाद प्रेतके पितर हो जानेपर अमावास्या और पूर्णिमा तिथिके दिन वेदविहित विधिसे उनका तर्पण करना चाहिये। राक्षस! पिताके उद्देश्यसे स्वयं भूमिदान आदि करे, जिससे पितृगण इसके रूपर प्रसन्न हो जायें ॥ १०४—१०७ ॥

व्यक्तिकी जीवित अवस्थामें घरमें जो-जो पदार्थ उसको अत्यन्त अभिसन्धित एवं प्रिय रहा हो, उसकी अक्षयताकी कामना करते हुए गुणवान् पात्रको दान देना चाहिये। सदा त्रयी अर्थात् ऋक्, यजुः और सामवेदका अध्ययन करना चाहिये, विद्वान् बनना चाहिये, धर्मपूर्वक धनार्जन एवं यथाशक्ति यज्ञ करना चाहिये। राक्षस! मनुष्यको जिस कार्यके करनेसे कर्त्तव्यकी आत्मा निन्दित न हो एवं जो कार्य बड़े लोगोंसे छिपाने योग्य न हो ऐसी कार्य निःशङ्क (आसक्तिरहित) होकर करना चाहिये। इस प्रकारके आचरण करनेवाले पुरुषके गृहस्थ होनेपर भी उसे धर्म, अर्थ एवं कामकी प्राप्ति होती है तथा वह व्यक्ति इस लोक और परलोकमें कल्याणका भागी होता है ॥ १०८—११२ ॥

ऋषियोंने सुकेशिसे कहा—सुकेशि! अस्तक इमने संक्षेपसे उत्तम गृहस्थाश्रमका वर्णन किया है। अब हम वानप्रस्थ-आश्रमके धर्मका वर्णन करेंगे, उसे

अपत्यसंततिं बृष्टा प्राज्ञो देहस्य जानतिम् ।
वानप्रस्थाश्रमं गच्छेदात्मनः शुद्धिकारणम् ॥ ११३

तद्धारण्योपभोगैश्च तपोभिश्चात्मकवर्णम् ।
भूमी शय्या ब्रह्मचर्यं पितृदेवातिथिक्रिया ॥ ११४

होमस्त्रिवर्णं स्नानं जटावस्त्रकलधारणम् ।
वन्यस्नेहनिवेदित्वं वानप्रस्थविधिरुच्यम् ॥ ११५

सर्वसङ्गपरित्यागो ब्रह्मचर्यममानिता ।
जितेन्द्रियत्वमावासे नैकस्मिन् वसतिश्चिरम् ॥ ११६

अनारम्भस्तथाङ्गारो भैक्षान्नं नतिकोपिता ।
आत्मज्ञानावबोधेच्छा तथा चात्मावबोधनम् ॥ ११७

चतुर्थे त्वाग्रमे धर्मा अस्माधिस्ते प्रकीर्तिता ।
वर्णधर्माणि चान्यानि निशामय निशाचर ॥ ११८

गार्हस्थ्यं ब्रह्मचर्यं च वानप्रस्थं त्रयाग्रमा ।
क्षत्रियस्यपि कथिता ये चाचारा द्विजस्य हि ॥ ११९

वैखानसत्वं गार्हस्थ्यमाग्रमद्वितयं विश्वः ।
गार्हस्थ्यमुत्तमं त्वेकं शूद्रस्य क्षणदाचर ॥ १२०

स्नानि वर्णाश्रमोक्तानि धर्माणीह न ह्यप्येत ।
ये ह्यपयसि तस्यासी परिकुप्यति भास्कर ॥ १२१

कुपितः कुलनाशाय ईश्वरो रोगवृद्धये ।
भानुर्वै व्रतते तस्य नरस्य क्षणदाचर ॥ १२२

तस्मात् स्वधर्मं न हि संत्यजेत
न ह्यप्येच्चापि हि नात्मवशम् ।

यः संत्यजेच्चापि निजं हि धर्मं
तस्मै प्रकुप्येत दिवाकरस्तु ॥ १२३

पुलस्त्य उवाच

इत्येवमुक्तो मुनिभिः सुकेशी
प्रणम्य तान् ब्रह्मनिधीन् महर्षीन् ।

जगाम चोत्पत्य पुरं स्वकीयं
महर्षिर्मुहूर्धर्ममवेक्षमाणः ॥ १२४

ध्यानपूर्वक सुनो बुद्धिमान् पति पुत्रकी संतान (पौत्र)
और अपने शरीरकी गिरती अवस्था देखकर अपने
आत्माकी शुद्धिके लिये वानप्रस्थ-आश्रमको प्रहण करे।
वहाँ अरण्यमें वृत्पन्न मूल-फल आदिसे अपना जीवन-
यापन करते हुए तपद्मारा शरीर-शोधन करे इस आश्रममें
भूमिपर शयन, ब्रह्मचर्यका पालन एवं पितर, देवता तथा
अतिथियोंकी पूजा करे। हुक्म तीनो काल—प्रातः,
मध्याह्न, सन्ध्याकाल—स्नान, जटा और वस्त्रकलका धारण
तथा वन्य पक्षियोंसे निकाले रसका सेवन करे। यही
वानप्रस्थ-आश्रमकी विधि है ॥ ११२—११५ ॥

[चतुर्थ आश्रम (संन्यास) के धर्म ये हैं—] सभी
प्रकारकी आसक्तियोंका त्याग, ब्रह्मचर्य, अहंकारका
अभाव, जितेन्द्रियता, एक स्थानपर अधिक समयतक न
रहना, उद्योगका अभाव, भिक्षान्न-भोजन, क्रोधका
त्याग, अग्रतज्ज्ञानकी इच्छा तथा आत्मज्ञान निशाचरः
हमने तुमसे चतुर्थ-आश्रम (संन्यास)-के इन धर्मोंका
वर्णन किया। अब अन्य वर्ण-धर्मोंको सुनो क्षत्रियोंके
लिये भी गार्हस्थ्य, ब्रह्मचर्य एवं वानप्रस्थ—इन तीन
आश्रमों एवं ब्राह्मणोंके लिये विहित आचारोंका विधान
है ॥ ११६—११९ ॥

राक्षस! वैश्यजातिके लिये गार्हस्थ्य एवं वानप्रस्थ—
इन दो आश्रमोंका विधान है तथा शूद्रके लिये एकमात्र
उत्तम गृहस्थ-आश्रमका ही नियम है। अपने वर्ण और
आश्रमके लिये विहित धर्मोंका इस लोकमें त्याग नहीं
करना चाहिये जो इनका त्याग करता है, उसपर सूर्य
भगवान् क्रुद्ध होते हैं। निशाचर! भगवान् भास्कर क्रुद्ध
होकर उस मनुष्यकी रोगवृद्धि एवं उसके कुलका नाश
करनेके लिये प्रयत्न करते हैं। अतः मनुष्य स्वधर्मका
न तो त्याग करे और न अपने पंशकी हानि होने दे।
जो मनुष्य अपने धर्मका त्याग करता है, उसपर भगवान्
सूर्य क्रोध करते हैं ॥ १२०—१२३ ॥

पुलस्त्यजी बोले—मुनियोंके ऐसा कहनेके बाद
सुकेशी उन ब्रह्मज्ञानी महर्षियोंको चारभ्यार प्रणम्यकर
धर्मका चिन्तन करते हुए उठकर अपने पुरको चला
गया ॥ १२४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीरामनमपुराणमें चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १४ ॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

दैत्योंका धर्म एवं सदाचारका पालन, सुकेशीके नगरका उत्थान-पतन, वरुणा-असौकी महिमा, लोलाक-प्रसंग

पुलस्त्य उवाच

ततः सुकेशिर्देवर्षे गत्वा स्वपुरमुत्तमम् ।
समाहूयाश्रयीत् सर्वान् राक्षसान् धार्मिकं वचः ॥ १

अहिंसा सत्यमस्तेषु शीघ्रमिन्द्रियसंयमः ।
दानं दय्य च क्षान्तिश्च ब्रह्मचर्यममानिता ॥ २

शुभा सत्या च मधुरा कष्टं नित्यं सत्क्रियारतिः ।
सदाचारनिषेचितं परलोकप्रदायकाः ॥ ३

इत्युच्युर्मयो भद्रं धर्ममाद्यं पुरातनम् ।
सोऽहमाज्ञापये सर्वान् क्रियतामविकल्पतः ॥ ४

पुलस्त्य उवाच

ततः सुकेशिश्चक्रात् सर्व एव निशाश्वराः ।
त्रयोदशाङ्गं ते धर्मं चकुर्युर्दितमानसाः ॥ ५

ततः प्रवृद्धिं सुतरामगच्छन्त निशाश्वराः ।
पुत्रपौत्रार्थसंयुक्ताः सदाचारसमन्विताः ॥ ६

तज्जपोतिस्तेजसस्तेषां राक्षसानां महत्त्वनाम् ।
गन्तुं नाशक्नुवन् सूर्यो नक्षत्राणि न चन्द्रमाः ॥ ७

ततस्त्रिभुवने ब्रह्मन् निशाश्वरपुरोऽभवत् ।
दिक् चन्द्रस्य सदृशः क्षणद्वयां च सूर्यवत् ॥ ८

न ज्ञायते गतिर्व्योम्नि भास्करस्य ततोऽम्बरे ।
शशाङ्कमिति तेजस्त्वादध-न्यन्त पुरोत्तमम् ॥ ९

स्वं विकासं विमुञ्चन्ति निशामिति व्यचिन्तयन् ।
कमलाकरेषु कमला मित्रमित्यवगम्य हि ।

रात्री विकसिता ब्रह्मन् विभूतिं दातुमीप्सवः ॥ १०

कौशिका रात्रिसमयं बुद्ध्या निरगम्यन् किल ।
तान् वायसस्तद ज्ञात्वा दिवा निजनि कौशिकान् ॥ ११

स्नातकास्त्वापगस्त्वेव स्नानजप्यपरायणाः ।
आकण्ठमग्रास्तिष्ठन्ति रात्री ज्ञात्वाऽव वासरम् ॥ १२

पुलस्त्यजी बोले—देवर्षे। उसके बाद अपने

उत्तम नगरमें आकर सुकेशीने सभी राक्षसोंको बुलाकर उनसे धर्मकी बात बतलायी। (सुकेशिने कहा—) अहिंसा, सत्य, चोरीका सर्वथा त्याग, पवित्रता, इन्द्रियसंयम, दान, दया, क्षमा, ब्रह्मचर्य, अहंकारका न करना, प्रिय, सत्य और मधुर वाणी बोलना, सदा सत्कार्योंमें अनुराग रखना एवं सदाचारका पालन करना—ये सब धर्म परलोकमें सुख देनेवाले हैं। मुनियोंने इस प्रकारके आदिकालके पुरातन धर्मको मुझे बतलाया है मैं तुम लोगोंको आज्ञा देता हूँ कि तुम लोग बिना किसी हिचकके इन सभी धर्मोंका आचरण करो ॥ १—४

पुलस्त्यजीने कहा—उसके बाद सुकेशीके वचनसे सभी राक्षस प्रसन्न-चित्त होकर (अहिंसा आदि) गेरह अङ्गवाले धर्मका आचरण करने लगे। इससे राक्षसोंकी सभी प्रकारकी अच्छी उन्नति हुई। वे पुत्र-पौत्र तथा अर्थ-धर्म-सदाचार आदिसे सम्पन्न हो गये उन महान् राक्षसोंके तेजके सामने सूर्य, नक्षत्र और चन्द्रमाकी गति और कान्ति खोप-सी दीखने लगी। ब्रह्मन्! उसके बाद निशाचरोंकी नगरी तीनों लोकोंमें दिनमें चन्द्रमाके समान और रातमें सूर्यके समान चमकने लगी ॥ ५-८ ॥

(अन्वयः) जब अक्षयशर्मे सूर्यकी गतिक (चलनेका) पता नहीं लगता था। लोग उस श्रेष्ठ नगरको नगरके तेजके कारण आकाशमें चन्द्रमा समझने लग गये। ब्रह्मन्! सरोवरके कमल दिनकी रात्रि समझकर विकसित नहीं होते थे। पर वे रात्रिमें सुकेशीके पुरको सूर्य समझकर विभूति प्रदान करनेकी इच्छासे विकसित होने लगे। इसी प्रकार वल्लू भी दिनकी रात समझकर बाहर निकल आये और कौए दिनमें आये जानकर वन वल्लुओंको मारने लगे। स्नान करनेवाले लोग भी रात्रिको दिन समझकर गलेतक खुले कदन होकर स्नान करने लगे एवं जप करते हुए जलमें छड़े रहे ॥ ९—१२ ॥

न व्ययुज्यन्त चक्राश्च तदा वै पुरदर्शने ।
 मन्यमानास्तु दिक्सभिदमुज्ज्वैर्भुवन्ति च ॥ १३
 नूनं कान्ताविहीनेन केनचिज्जगत्पत्त्रिणा ।
 वत्सृष्टं जीवितं शून्ये फूत्कृत्य सरितस्तटे ॥ १४
 ततोऽनुफूपयाविष्टो विवस्वांस्तीव्ररश्मिभिः ।
 संतपयस्त्रयम् सर्वं नास्तमेति कर्षज्जन ॥ १५
 अन्ये वदन्ति चक्राह्वो नूनं कश्चिन्मृतो भवेत् ।
 तत्कान्तया तपस्तप्तं भर्तृशोकार्णया ज्ञत ॥ १६
 आराधितस्तु भगवांस्तपसा वै दिवाकरः ।
 तेनासी शशिनिर्येता नास्तमेति रविधुवम् ॥ १७
 यन्विनो होमशालासु सह ऋत्विग्भिर्धरधरे ।
 प्रावर्त्तयन्त कर्माणि सत्रावपि महामुने ॥ १८
 महाभगवताः पूजां विष्णोः कुर्वन्ति भरिततः ।
 रवी शशिनि चैवान्ये ब्रह्मणोऽन्ये हरस्य च ॥ १९
 कामिगृह्यध्वमन्यन्त साधु चन्द्रमसा कृतम् ।
 यदिवं रजनी रम्या कृता सततकीमुदी ॥ २०
 अन्ये ब्रुवन्त्येकगुरुरस्माभिश्चक्रभृद् वशी ।
 निष्वाजेन महागन्धैरर्चितः कुसुमैः शुभैः ॥ २१
 सह साक्ष्या महायोगी भभस्याद्रिचतुर्वर्षि ।
 अशून्यशायन नाम द्वितीया सर्वकामदा ॥ २२
 तेनासी भगवान् प्रीतः प्रादाच्छयनमुत्तमम् ।
 अशून्यं च महाभोगैरनस्तमितश्रेष्ठारम् ॥ २३
 अन्येऽमुषन् ध्रुवं देव्य रोहिण्या शशिनः क्षयम् ।
 दृष्ट्वा तप्तं तपो चोरं रुद्रराधनकाप्यया ॥ २४
 पुण्यायामक्षयाह्व्या वेदोक्तविधिना स्वयम् ।
 तुष्टेन शंभुना दर्शं वरं चासी यदुच्छया ॥ २५
 अन्येऽमुषन् चन्द्रमसा ध्रुवयाराधितो हरिः ।
 सतेनेह स्वस्वण्डेन तेनस्वण्डः शरी दिशि ॥ २६
 अन्ये ब्रुवन्त्यशङ्केन ध्रुवं रक्षा कृतात्मनः ।
 पदद्वयं समभ्यर्च्य विष्णोरपिततेजसः ॥ २७

उस समय सुकेसोके नगरके (सूर्यवत्) दर्शन होनेसे चक्रवाच चकई रात्रिको ही दिन मानकर परस्पर अलग नहीं होते थे। वे उषस्स्वरसे कहते निश्चय ही किसी पत्नीसे विहीन चक्रवाच पत्नीने एकजन्तमें नदीतटपर फूत्कार करके जीवन त्याग दिया है। इसीसे दवाई सूर्य अपनी तेज किरणोंसे जगत्को तपसे हुए किसी प्रकार अस्व नहीं हो रहे हैं। दूसरे कहते हैं—'निश्चय ही कोई चक्रवाच मर गया है और पत्तिके लोकमें उसकी दुःखिनी कान्ताने भारी तप किया है। इसीलिये निश्चय ही उसकी तपस्यासे प्रसन्न हुए एवं चन्द्रमाको जीत लेनेवाले भगवान् सूर्य अस्त नहीं हो रहे हैं' ॥ १३-१७ ॥

महामुने। उन दिनों यज्ञशालाओंमें ऋत्विजोंके साथ यजमान लोग रात्रिमें भी यज्ञकर्म करनेमें लगे रहते थे। विष्णुके भक्तलोग भक्तिपूर्वक सदा विष्णुकी पूजा करते रहते एवं दूसरे लोग सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा और शिवकी आराधनामें लगे रहते थे। कामी लोग यह मानने लगे कि चन्द्रमाने रात्रिको निरन्तरके लिये अपनी ज्योत्स्नामयी बना दिया, अच्छा हुआ ॥ १८-२० ॥

दूसरे लोग कहने लगे कि हम लोगोंने ब्राह्मण आदि चार महोगोंमें शुद्धभावसे अति सुगन्धित पवित्र पुष्पोंद्वारा महालक्ष्मीके साथ सुदर्शनचक्रको धारण करनेवाले भगवान् विष्णुकी पूजा की है। इसी अवधिमें सर्वकामदा असून्यशयना द्वितीया तिथि होती है। उसीसे प्रसन्न होकर भगवान्ने अशून्य तथा महाभोगोंसे परिपूर्ण उत्तम शयन प्रदान किया है। दूसरे कहते कि देवी रोहिणीने चन्द्रमाका ज्वर देखकर निश्चय ही रक्षकी आराधना करनेकी अपिलावासे परम पवित्र अक्षय अष्टमी तिथिमें वेदोक्त विधिसे कठिन तपस्या की है, जिससे सन्तुष्ट होकर भगवान् संकल्पने उसे अपनी इच्छासे घर दिया है ॥ २१-२५ ॥

दूसरे लोग कहते—चन्द्रमाने निश्चय ही अलम्ब-ग्रस्तका आचरण करके भगवान् हरिको आराधित किया है। उससे आकाशमें चन्द्रमा अलम्बरूपसे प्रकाशित हो रहा है। दूसरोंने कहा—चन्द्रमाने अत्यधिक तेजवाले श्रीविष्णुके चरणपुगलकी विधिपूर्व पूजा करके अपनी रक्षा की है उससे तेजस्वी चन्द्रमा सूर्यपर विजय प्राप्त

तेनासी दीप्तिमांश्चन्द्रः परिभूय दिक्काकरम् ।
अस्माकमानन्दकरो दिवा तपति सूर्यवत् ॥ २८

लक्ष्यते कारणैरन्यैर्बहुभिः सत्यमेव हि ।
शशाङ्कनिर्जितः सूर्यो न विभाति यथा पुरा ॥ २९
यधामी कमलाः स्तनक्षणा रणद्धङ्गणावृताः ।
विकचाः प्रतिभासन्ते जातः सूर्योदयो भुवम् ॥ ३०

यथा चामी विभासन्ति विकचाः कुमुदाकराः ।
अतो विज्ञायते चन्द्र उदितश्च प्रतापवान् ॥ ३१
एवं संभाषतां तत्र सूर्यो वाक्यानि नारद ।
अपन्यत किमेतद्भिर्लोको षक्ति शुभाशुभम् ॥ ३२

एवं संचिन्त्य भगवान् दृष्ट्वा ध्यानं दिवाकरः ।
आसमन्ताञ्चगद् प्रसृतं त्रैलोक्यं रजनीचरं ॥ ३३
ततस्तु भववाञ्छात्वा तेजसोऽप्यसहिष्णुताम् ।
निशाचरस्य वृद्धिं तामचिन्तयत योगवित् ॥ ३४

ततोऽज्ञास्त्रीञ्च तान् सर्वान् सदाचारताञ्छुचीन् ।
देवब्राह्मणपूजासु संसक्तान् धर्मसंयुतान् ॥ ३५

ततस्तु रक्षः क्षयकृत् तिमिरद्विपकेसरी ।
महाशुनखरः सूर्यस्तद्विघातमचिन्तयत् ॥ ३६

ज्ञात्वांश्च ततश्छिद्रं राक्षसानां दिवस्पतिः ।
स्वधर्मविध्युतिर्नाम सर्वधर्मविघातकृत् ॥ ३७

ततः क्रोधाभिभूतेन भानुना रिपुभेदिभिः ।
भानुभी राक्षसपुरं तद् दृष्टं च यत्नेच्छया ॥ ३८

स भानुना तदा दृष्ट क्रोधाध्मातेन चक्षुषा ।
निपपाताम्बराद् भट्टः क्षीणपुण्य इव ग्रहः ॥ ३९

पतमानं सम्प्रलोक्य पुरं शालकटङ्कटः ।
नमो भस्वाय शर्वाय इदमुज्ज्वरुदीरयत् ॥ ४०

तयाक्रन्दितपाकण्यं चारणा गगनेधरा ।
हा हेति मुकुशुः सर्वे हरभक्तः पतत्यसी ॥ ४१

तज्ज्वरणवधः शर्वः श्रुत्वान् सर्वगोऽव्ययः ।
श्रुत्वा संचिन्तयामास केनासी पात्सते भुवि ॥ ४२

कारके हमें आनन्द देते हुए दिनमें सूर्यकी भाँति दीप्तिमान् हो रहे हैं अन्य अनेक प्रकारके कारणोंसे सधमुच यह लक्षित हो रहा है कि चन्द्रमाके द्वारा पराजित हुए सूर्य पूर्ववत् दीप्तिवाले नहीं दीख रहे हैं ॥ २६—२९ ॥

इधर ये सुन्दर कमल खिले हैं और ठनपर भी गुंजार कर रहे हैं भ्रमर समूहसे आवृत्त ये सुन्दर कमल विकसित दिखलायी पड़ रहे हैं, अतः निश्चय ही सूर्योदय हुआ है। और इधर ये कुमुदकुन्द खिले हुए हैं, अतः लगता है कि प्रतापवान् चन्द्रमा उदित हुआ है। नारदजी! इस प्रकार यातां करनेवालोंके वाक्योंको सुनकर सूर्य सोचने लगे कि ये लोग इस प्रकार जुभाशुभ वचन क्यों बोल रहे हैं? भगवान् दिवाकर ऐसा विचारकर ध्यानमग्न हो गये और उन्होंने देखा कि समस्त त्रैलोक्य चारों ओरसे राक्षसोंद्वारा ग्रस्त हो गया है ॥ ३०—३३ ॥

तब योगी भगवान् भास्कर राक्षसोंकी वृद्धि तथा तेजकी असहनीयताकी जानकारी स्वयं चिन्तन करने लगे। उन्हें यह ज्ञात हुआ कि सभी राक्षस सदाचार परध्वज, पवित्र, देवता और ब्राह्मणोंकी पूजामें अनुरक्त तथा धार्मिक हैं। उसके बाद राक्षसोंको यह करनेवाले तथा अन्धकाररूपी हाथीके लिये तेज किरणरूपी मखवाले सिंहके समान सूर्य उनके विनाशके विषयमें चिन्तन करने लगे अन्तमें सूर्यको राक्षसोंके अपने धर्मसे गिरनेका मूल कारण मालूम हुआ, जो समस्त धर्मोंका विनाशक है ॥ ३४—३७ ॥

तब क्रोधसे अभिभूत सूर्यने सजुओंके भेदन करनेवाला अपनी किरणोंद्वारा भलीभाँति उस राक्षसको देखा। उस समय सूर्यद्वारा क्रोधधरी दृष्टिसे देखे जानेके कारण वह नगर नष्ट हुए पुण्यवाले ग्रहके समान अकाशसे नीचे गिर पड़ा अपने नगरके गिरे देखकर शालकटङ्कट (सुकेजी) ने ऊँचे स्वरसे चीखनेके स्वरमें 'नमो भस्वाय शर्वाय' यह कहा। उसको उस चीखको सुनकर गगनमें विचरण करनेवाले सभी चरण चिल्लाते लगे—हाय हाय! हाय हाय यह लिय-भक्त तो नीचे गिर रहा है ॥ ३८—४१ ॥

सर्वत्र व्याप्त और अविनाशी लिय शंकरने चारणोंके उस वचनको सुना और फिर सोचने लगे—यह नगर किसके द्वारा पृथ्वीपर गिराया जा रहा है। उन्होंने यह जान

ज्ञातवान् देवपतिना सहस्रकिरणेन तत् ।
 पतितं राक्षसपुरं ततः क्रुद्धस्त्रिलोचनः ॥ ४३
 क्रुद्धस्तु भगवन्तं तं भानुमन्तमपश्यत् ।
 दृष्ट्वाप्रस्त्रिनेत्रेण निपपात ततोऽम्बरात् ॥ ४४
 गगनात् स परिभृष्टः पथि वायुनिषेधिते ।
 यदृच्छया निपतितो यन्त्रमुक्तो यक्षोपलः ॥ ४५
 ततो वायुपथान्मुक्तः किंशुकोज्ज्वलविग्रहः ।
 निपपातान्तरिक्षात् स घृतः किन्नरचारणैः ॥ ४६

चारणैर्विहितो भानुः प्रविभात्यम्बरात् पतन् ।
 अर्द्धपङ्कं यथा तालात् फलं कपिभिरावृतम् ॥ ४७

ततस्तु ऋषयोऽभ्येत्य त्र्यम्बुर्भानुमालिनम् ।
 निपतस्य हरिक्षेत्रे यदि श्रेयोऽभिव्याज्यसि ॥ ४८

ततोऽब्रवीत् पतन्नेव विवस्वास्तांस्तपोधनान् ।
 किं तन् क्षेत्रं हरिः पुण्यं तदप्यं शीघ्रमेव मे ॥ ४९
 त्र्यम्बुर्भानुवः सूर्यं शृणु क्षेत्रं महाफलम् ।
 साम्प्रतं वासुदेवस्य भावि तच्छंकरस्य च ॥ ५०

योगशायिनमारभ्य यावत् केवलवर्धनम् ।
 एतत् क्षेत्रं हरिः पुण्यं नाम्ना वाराणसी पुरी ॥ ५१

तच्छ्रुत्वा भगवान् भानुर्भयनेत्राग्नितापितः ।
 वरणायास्तथैवास्यास्त्वन्तरे निपपात ह ॥ ५२

ततः प्रदहति तनीं निमग्न्यास्यां लुलब्धं रविः ।
 वरणायां समभ्येत्य न्यमग्नत्तं ध्वंशच्छय ॥ ५३
 भूयोऽसिं वरणां भूयो भूयोऽपि वरणात्मसिम् ।
 लुलस्त्रिनेत्रवह्न्यासीं भ्रमतेऽलातचक्रवत् ॥ ५४
 एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन् ऋषयो यक्षराक्षसाः ।
 नागा विद्याधराश्चापि पक्षिणोऽप्सरसस्तथा ॥ ५५
 यावन्तो भास्कररये भूतप्रेतादयः स्थिताः ।
 तावन्तो ब्रह्मसदनं गता वेदयितुं मुने ॥ ५६

रित्या कि देखेंकि पति सहस्रकिरणमाली सूर्यद्वारा राक्षसोंका यह पुर गिराया गया है इससे त्रिलोचन शंकर क्रुद्ध हो गये और उन्होंने भगवान् सूर्यको देखा । त्रिनेत्रधारो शंकरको देखते ही वे सूर्य आकाशसे नीचे आ गिरे । आकाशसे नीचे वायुमण्डलमार्गमें से इस प्रकार गिरे जैसे यन्त्रके द्वारा कोई पत्थर केंका गया हो ॥ ४३—४५ ।

फिर पलाश-पुष्पके समान आभावाले सूर्य वायुमण्डलसे अलग होकर किन्नरों एवं चारणोंसे भरे अन्तरिक्षसे नीचे गिर गये उस समय आकाशसे नीचे गिरते हुए सूर्य चारणोंसे घिरे हुए ऐसे लग रहे थे, जैसे तालवृक्षसे गिरनेवाला अधपका तालफल कपियोंसे घिरा हो तब मुनियोंने किरणमाली भगवान् सूर्यदेवके समीप आकर उनसे कहा कि यदि तुम कल्याण चाहते हो तो विष्णुके क्षेत्रमें गिरो गिरते हुए ही सूर्यने (ऐसा सुनकर) उन तपस्वियोंसे पूछा—विष्णुभगवान्का वह पवित्र क्षेत्र जौन-सा है? आप लोग उसे मुझे तोत्र बतलायें ॥ ४६—४९ ॥

इसपर मुनियोंने सूर्यसे बतलाया—सूर्यदेव । आप महाफल देनेवाले उस क्षेत्रका विवरण सुनिये इस समय वह क्षेत्र वासुदेवका क्षेत्र है, किंतु भविष्यमें वह शंकरका क्षेत्र होगा योगशायीसे प्रारम्भ कर केवलवर्धनचक्रका क्षेत्र हरिका पवित्र क्षेत्र है, इसका नाम वाराणसीपुरी है उसे सुनकर शिवजीकी नेत्राग्निसे संतप्त होते हुए भगवान् सूर्य वरुणा और असी^१ इन दोनों नदियोंके बीचमें गिरे । उसके बाद शरीरके जलते रहनेसे व्याकुल हुए सूर्य असी नदीमें स्नान करनेके बाद वरुणा नदीमें इच्छानुकूल स्नान किये ॥ ५०—५३ ॥

इस प्रकार शंकरके तीसरे नेत्रकी अग्निसे दग्ध होकर वे बारंबार अग्नि और वरुणा नदियोंकी ओर अलातचक्र (सूक्ष्मदेवके मण्डल) के समान चक्कर मारते लगे । मुने इस बीच ऋषि, यक्ष, राक्षस, नाग, विद्याधर, पक्षी, अप्सराएँ और भास्करके रयमें जितने भूत-प्रेत आदि थे, वे सभी इसे ज्ञाप्ति करनेके लिये ब्रह्मलोकमें गये

१. अब भी वरुणा और अस्सी नदियों वाराणसीको अपने अन्तर्गतमें किये हुए हैं । अस्सी वरसायें जलभरित होती हैं । पर वरुणा सदा जलपूर्ण रहती है ।

ततो ब्रह्मा सुरपतिः सुरैः सार्धं समभ्यगात् ।
रम्यं महेश्वरावासं मन्दरं रविकारणात् ॥ ५७

गत्वा दृष्ट्वा च देवेशं शंकरं शूलपाणिनम् ।
प्रसाद्य भास्करार्थाय वाराणस्यामुपानयत् ॥ ५८

ततो दिवाकरं भूयः पाणिनादाय शंकरः ।
कृत्वा नामास्य स्तोत्रेति रथमारोपयत् पुनः ॥ ५९

आरोपिते दिनकरे ब्रह्माऽभ्येत्य सुकेशिनम् ।
सबान्धर्धं सनारं पुनरारोपयद् दिवि ॥ ६०

समारोप्य सुकेशिं च परिष्वज्य च शंकरम् ।
प्रणम्य केशवं देवं वीराजं स्ववृहं गतः ॥ ६१

एवं पुरा नारद भास्करेण
पुरं सुकेशेर्भूवि सन्निपातितम् ।

दिवाकरो भूमितले भवेन
क्षिप्तस्तु दृष्ट्वा न च संप्रदग्धः ॥ ६२

आरोपिते भूमितलाद् भवेन
भूयोऽपि भानुः प्रतिभासनाय ।

स्वयंभुवा चाधि निजाचरेन्द्र
स्वारोपितः खे सपुरः सबन्धुः ॥ ६३

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १५ ॥



देवताओंका शयन— तिथियों और उनके अशून्यशयन आदि सतों
एवं शिव-पूजनका वर्णन

नारद उवाच

यानेतान् भगवान् ग्राह कायिभिः शशिनं प्रति ।
आराधनाय देवाभ्यां हरीशाभ्यां खदस्य तनू ॥ १

पुनस्तप उवाच

शृणुष्व कायिभिः प्रोक्तान् व्रतान् पुण्यान् कलिप्रिय ।
आराधनाय शर्वस्य केशवस्य च क्षीमतः ॥ २

तब सुरपति इन्द्र ब्रह्मा देवताओंके साथ सूर्यकी शान्तिके
लिये महेश्वरके आवास स्थान मन्दर पर्वतपर गये। वहाँ
जाकर तथा देवेश शूलपाणि भगवान् शिवका दर्शन
करनेके बाद भगवान् ब्रह्माजी भास्करके लिये उन्हें
(शिवजीको) प्रसन्न कर उन्हें (सूर्यको) वाराणसीमें
लाये ॥ ५७—५८ ॥

फिर भगवान् शंकरने सूर्य भगवान्को हाथमें लेकर
उनका नाम 'सोल' रख दिया और उन्हें पुनः उनके
रथपर स्थापित कर दिया दिनकरके अपने रथमें आरुढ़
हो जानेपर ब्रह्मा सुकेशीके पास गये एवं उसे भी पुनः
बान्धवों और नगरसहित आकाशमें पूर्ववत् स्थापित कर
दिया। सुकेशीको पुनः आकाशमें स्थापित करनेके बाद
ब्रह्माजी शंकरका आलिङ्गन एवं केशवदेवको प्रणाम
कर अपने वीराज नामक लोकमें चले गये नारदजी
प्राचीन समयमें इस प्रकार सूर्यने सुकेशीके नगरको
पृथ्वीपर गिराया एवं महादेवने भगवान् सूर्यको अपने
तृतीय नेत्रकी अग्निसे दग्ध न कर केवल भूमितलपर
गिरा ही दिया था। फिर शंकरने सूर्यको प्रतिभासित
होनेके लिये भूमितलसे आकाशमें स्थित किया और
ब्रह्माने मिशाघरराजको उसके पुर और बन्धुओंके साथ
आकाशमें फिर संस्थापित कर दिया ॥ ५९—६३ ॥

नारदजीने कहा—पुनस्तपजी! आपने चन्द्रमाके
प्रति कामियोंद्वारा वर्णित श्रीहरि और शंकरकी आराधनाके
लिये जिन व्रतोंका उल्लेख किया है उनका वर्णन करें ॥ १ ॥

पुनस्तपजी खेले—लोक-कल्याणके लिये कलहको
भी इष्ट माननेवाले कलि (कलह) प्रिय नारदजी, आप
महादेव और बुद्धिमान् श्रीहरिकी आराधनाके लिये
कामियोंद्वारा कहे गये पवित्र व्रतोंका वर्णन सुनें जब

कदा त्वावाही संयाति व्रजते चोत्तरायणम् ।
तदा स्वपिति देवेशो भोगिभोगे श्रियः पतिः ॥ ३

प्रतिसुप्ते विभी तस्मिन् देवगन्धर्वगुह्यकाः ।
देवानां मातरश्चापि प्रसुप्ताश्चाप्यनुक्रमात् ॥ ४

नारद उवाच

कथयस्व सुसादीनां शयने विधिमुत्तमम् ।
सर्वमनुक्रमेणैव पुरस्कृत्य जनार्दनम् ॥ ५

पुलस्त्य उवाच

मिथुनाभिगते सूर्ये शुक्लपक्षे तपोधन ।
एकादश्यां जगत्स्वामी शयनं परिकल्पयेत् ॥ ६

शेषाहिभोगपर्यङ्कं कृत्वा सम्पूज्य केशवम् ।
कृत्वोपवीतकं चैव सम्यक्सम्पूज्य वै द्विजान् ॥ ७

अनुज्ञां ब्राह्मणेभ्यश्च द्वादश्यां प्रयतः शुचिः ।
लब्ध्वा पीताम्बरधरः स्वस्तिनिद्रां समानयेत् ॥ ८

त्रयोदश्यां ततः कामः स्वपते शयने शुभे ।
कदम्बानां सुगन्धानां कुसुमैः परिकल्पिते ॥ ९

चतुर्दश्यां ततो यक्षाः स्वपन्ति सुखशीतले ।
सौवर्णपङ्कजकृते सुखास्तीर्णोपधानके ॥ १०

पौर्णमास्यामुमानाद्यः स्वपते चर्मसंस्तरे ।
वैद्याश्चे च जटाभारे समुद्रगन्ध्यान्यचर्मणा ॥ ११

ततो दिवाकरो राशिं संप्रयाति च कर्कटम् ।
ततोऽमराणां रजनी भवति दक्षिणायनम् ॥ १२

ब्रह्मा प्रतिपदि तथा नीलोत्पलपत्रेऽनघ ।
तल्पे स्वपिति लोकानां दर्शयन् मार्गमुत्तमम् ॥ १३

विश्वकर्मा द्वितीयायां तृतीयायां गिरेः सुता ।
विनायकश्चतुर्थ्यां तु पञ्चम्यामपि धर्मराट् ॥ १४

ब्रह्मा स्कन्दः प्रस्वपिति सप्तम्यां भगवान् रविः ।
कात्यायनी तथाष्टम्यां नवम्यां कमलालया ॥ १५

दशम्यां भुजगेन्द्राश्च स्वपन्ते चाधुभोजनाः ।
एकदश्यां तु कृष्णायां स्राव्या ब्रह्मन् स्वपन्ति च ॥ १६

एष क्रमस्ते यदितो नभादी स्वपने मुने ।
स्वपत्सु तत्र देवेषु प्रायुद्कालः समाचर्य ॥ १७

आषाढी पूर्णिमा बीत जाती है एवं उत्तरायण चलता रहता है, तब लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु भोगिभोग (शेषशय्या) पर सो जाते हैं उन विष्णुके सो जानेपर देवता, गन्धर्व, गुह्यक एवं देवमाताएँ भी क्रमशः सो जाती हैं ॥ २—४ ॥

नारदने कहा— जनार्दनसे लेकर अनुक्रमसे देवता आदिके शयनकी सब उत्तम विधि मुझे बतलाइये ॥ ५ ॥

पुलस्त्यजी बोले— तपोधन नारदजी आषाढके शुक्लपक्षमें सूर्यके मिथुन राशिये चले जानेपर एकादशी तिथिके दिन जगदीश्वर विष्णुकी शय्याकी परिकल्पना करनी चाहिये। उस शय्यापर शेषनागके शरीर और फणकी रचना कर यज्ञोपवीतयुक्त श्रीकेशव (की प्रतिमा) की पूजा कर ब्राह्मणोंकी आज्ञासे संयम एवं पवित्रतापूर्वक रहते हुए स्वयं भी पीताम्बर धारण कर द्वादशी तिथिमें सुखपूर्वक उन्हें सुलाना चाहिये ॥ ६—८ ॥

इसके बाद त्रयोदशी तिथिमें सुगन्धित कदम्बके पुष्पांसे बनी पवित्र शय्यापर कामदेव शयन करते हैं। फिर चतुर्दशीको मुशोतस स्वर्णपङ्कजसे निर्मित सुखदायकरूपमें बिछाये गये एवं तक्षियेवाली शय्यापर यक्षलोग शयन करते हैं। पूर्णमासी तिथिको चर्मबस्त्र धारणकर उमानाथ शंकर एक-दूसरे चर्मद्वारा जटाभार बाँधकर व्याघ्र चर्मकी शय्यापर सोते हैं। उसके बाद जब सूर्य कर्कराशिमें भग्न करते हैं तब देवताओंके लिये रात्रिस्वरूप दक्षिणायनका आरम्भ हो जाता है ॥ ९ ॥ १२ ॥

निष्पन्न नारदजी लोगोंको उत्तम मार्ग दिखाताते हुए ब्रह्माजी (ब्राह्मण कृष्ण) प्रतिपदाको नीले कमलकी शय्यापर सो जाते हैं। विश्वकर्मा द्वितीयाको, पार्वतीजी तृतीयाको, गणेशजी चतुर्थीको, धर्मराज पञ्चमीको, कार्तिकेयजी षष्ठीको, सूर्य भगवान् सप्तमीको, दुर्गादेवी अष्टमीको, लक्ष्मीजी नवमीको, वायु पौनवाले श्रेष्ठ सर्प दशमीको और साध्यगण कृष्णपक्षकी एकादशीको सो जाते हैं ॥ १३—१६ ॥

मुने! इस प्रकार हमने तुम्हें ब्राह्मण आदिके महीनोंमें देवताओंके सोनेका क्रम बतलाया। देवोंके सो जानेपर वर्षाकालका आगमन हो जाता है ऋषिग्रेह!

कङ्कतः समं बलाकाभिरारोहन्ति नभोत्तमान् ।
 वायसाश्चापि कुर्वन्ति नीडानि ऋषिपुंगव ।
 वायसाश्च स्वपन्थेते ऋती गर्भभगलसाः ॥ १८
 यस्यां तिथ्यां प्रस्वपिति विश्वकर्मा प्रजापतिः ।
 द्वितीया स शुभा पुण्या अशुभशयनोदिता ॥ १९
 तस्यां तिथावर्च्य हरिं श्रीवत्साङ्गं चतुर्भुजम् ।
 पर्यङ्कस्थं समं लक्ष्म्या गन्धपुष्पादिभिर्मुने ॥ २०
 ततो देवाय जस्यायां फलानि प्रक्षिपेत् क्रमात् ।
 सुरभीषि निवेद्येत्थं विज्ञाप्यो मधुसूदनः ॥ २१
 यथा हि लक्ष्म्या न विधुन्यसे त्वं
 त्रिविक्रमानन्त जगन्निवास ।
 तथा त्वशून्यं शयनं सदैव
 अस्माकमेवेह तव प्रसादात् ॥ २२
 यथा त्वशून्यं तव देव तत्त्वं
 समं हि लक्ष्म्या वरदाच्युतेश ।
 सत्येन तेनामितवीर्यं विष्णो
 गार्हस्थ्यनाशो मय नास्तु देव ॥ २३
 इत्युच्चार्य प्रणम्येशं प्रसाद्य च पुनः पुनः ।
 नक्तं भुङ्गीत देवर्षे तैलक्षारविर्वज्रितम् ॥ २४
 द्वितीयेऽह्नि द्विजाध्याय फलान् दद्याद् विचक्षणः ।
 लक्ष्मीधरः प्रीयतां मे इत्युच्चार्य निवेदयेत् ॥ २५
 अनेन तु विधानेन चातुर्मास्यव्रतं जरेत् ।
 यावद् षष्ठिकगशिस्थः प्रतिभाति दिवाकरः ॥ २६
 ततो विबुध्यान्ति सुराः क्रमशः क्रमशो मुने ।
 तुलास्थेऽर्के हरिः कामः शिवः पञ्चाद्विबुध्यते ॥ २७
 तत्र दानं द्वितीयायां भूर्तिर्लक्ष्मीधरस्य तु ।
 सशय्यास्तरणोपेता यथा विभवमात्मनः ॥ २८
 एष व्रतस्तु प्रथमः प्रोक्तस्तत्र स्मृता मुने ।
 यस्मिंश्चिज्जे विधोगास्तु न भवेदिह कस्यचित् ॥ २९
 नभस्ये मासि च तथा यः स्यात्कृष्णाष्टमी शुभः ।
 युक्ता मृगशिरैर्जैव सा तु कालाष्टमी स्मृता ॥ ३०
 तस्यां सर्वेषु लिङ्गेषु तिथौ स्वपिति शंकरः ।
 वसते संनिधाने तु तत्र पूजाऽक्षया स्मृता ॥ ३१

(तम) बलाकाओं (चगुलेंके मुंडों) के साथ कङ्क फसी ऊँचे पर्वतोंपर चढ़ जाते हैं तथा कौए घोंसले बनाने लगते हैं। इस ऋतुमें मादा कौए गर्भभारके कारण आलस्यसे सोती हैं। प्रजापति विश्वकर्मा जिस द्वितीया तिथिमें सोते हैं, वह कल्याणकारिणी पवित्र तिथि अशुभशयना द्वितीया तिथि कहली जाती है। मुने! उस तिथिमें लक्ष्मीके सम पर्यङ्कस्थ श्रीवत्सनामक चिह्न धारण करनेवाले चतुर्भुज विष्णुभगवान्की गन्ध पुष्पादिके द्वारा पूजाके हेतु शय्यापर क्रमशः फल तथा सुगन्ध द्रव्य निवेदित कर उनसे इस प्रकार प्रार्थना करे कि— ॥ १७—२१ ॥

हे त्रिविक्रम! हे अनन्त! हे जगन्निवास! जिस प्रकार आप लक्ष्मीसे कभी अलग नहीं होते, वसी प्रकार आपकी कृपासे हमारी शय्य भी कभी शून्य न हो हे देव! हे वरद! हे अभ्युक्त! हे ईश! हे अमितवीर्यशाली विष्णो! आपकी शय्या लक्ष्मीसे शून्य नहीं होती, वसी सत्यके प्रभावसे हमारी भी गृहस्त्रीके नाशका अवसर न आवे—पत्नीका वियोग न हो। देवर्षे! इस प्रकार स्तुति करनेके बाद भगवान् विष्णुको प्रणामद्वारा बार बार प्रसन्नकर रात्रिमें तैल एवं नमकसे रहित भोजन कर दूसरे दिन सुष्टिमान् व्यक्ति, भगवान् लक्ष्मीधर मेरे ऊपर प्रसन्न हों—यह वाक्य उच्चारण कर श्रेष्ठ ब्राह्मणको फलोंका दान दे ॥ २२—२५ ॥

जबतक सूर्य वृद्धिकर्ताशिर रहते हैं, तबतक इसी विधिसे चातुर्मास्य-व्रतका पालन किया जाना चाहिये। मुने इसके बाद क्रमशः देखा जागते हैं सूर्यके तुलाशिरमें स्थित होनेपर विष्णु जाग जाते हैं इसके बाद काम और शिव जागते हैं। उसके पश्चात् द्वितीयाके दिन अपने विभवके अनुसार बिलौनेवाली शय्याके साथ लक्ष्मीधरकी मूर्तिक दान करे महामुने। इस प्रकार मैंने आपको यह प्रथम व्रत बतलाया, जिसका आचरण करनेपर इस संस्कारमें किसीको वियोग नहीं होता ॥ २६—२९ ॥

इसी प्रकार भाद्रपद मासमें मृगशिर नक्षत्रसे युक्त जो पवित्र कृष्णाष्टमी होती है उसे कालाष्टमी माना गया है। उस तिथिमें भगवान् शंकर समस्त लिङ्गोंमें सोते एवं उनके संनिधानमें निवास करते हैं इस अवसरपर की गयी शंकरजीकी पूजा अक्षय्य मानी गयी है।

तत्र स्नायीत वै विद्वान् गोमूत्रेण जलेन च ।
स्नातः संपूजयेत् पुष्पैर्धनूरस्य त्रिलोचनम् ॥ ३२

धूपं केसरनिर्यासं नैवेद्यं मधुसर्पिणी ।
प्रीयतां मे विरूपाक्षस्त्वित्युच्छ्वार्यं च दक्षिणाम् ।
विप्राय दद्यान्नैवेद्यं सहिरण्यं द्विजोत्तम ॥ ३३

तद्गुदाश्चयुजे मासि उपवासी जितेन्द्रियः ।
नवम्यां गोमयस्नानं कुर्यात्पूजां तु पङ्कजैः ।
धूपयेत् सर्जनिर्यासं नैवेद्यं मधुमोदकैः ॥ ३४

कृतोपवासस्त्वष्टम्यां नवम्यां स्नानमाचरेत् ।
प्रीयतां मे हिरण्वाक्षो दक्षिणा सतिलम् स्मृता ॥ ३५

कार्तिके मयसा स्नानं करवीरिण चार्चनम् ।
धूपं श्रीवासनिर्यासं नैवेद्यं मधुपायसम् ॥ ३६

सनैवेद्यं च रजतं दातव्यं दानमग्रजे ।
प्रीयतां भगवान् स्थाणुरिति वाच्यमनिकुम् ॥ ३७

कृत्योपवासमष्टम्यां नवम्यां स्नानमाचरेत् ।
मासि मार्गशिरे स्नानं दध्नार्चा भद्रया स्मृता ॥ ३८

धूपं श्रीवृक्षनिर्यासं नैवेद्यं मधुनोदनम् ।
सनैवेद्या रक्तशालिर्दक्षिणा परिकीर्तिता ।
नमोऽस्तु प्रीयतां शर्वस्त्विति वाच्यं च पण्डितैः ॥ ३९

पौषे स्नानं च हविषा पूजा स्यात्तगैः शुभैः ।
धूपो मधुकनिर्यासो नैवेद्यं मधु ज्ञाकुली ॥ ४०

समुद्रा दक्षिणा प्रोक्ता प्रीणनाय जगद्गुरोः ।
वाच्यं नमस्ते देवेश त्र्यम्बकेति प्रकीर्तयेत् ॥ ४१

माघे कुशोदकस्नानं मुगमदेन चार्चनम् ।
धूपः कदम्बनिर्यासो नैवेद्यं सतिलोदनम् ॥ ४२

पयोभक्तं सनैवेद्यं सरुक्मं प्रतिपादयेत् ।
प्रीयतां मे महादेव उमापतिरितीरयेत् ॥ ४३

उस तिथिमें विद्वान् मनुष्यको चाहिये कि गोमूत्र और जलसे स्नान करे। स्नानके बाद धनूरके पुष्पोंसे शंकरकी पूजा करे। द्विजोत्तम! केसरके गोंदका घूप तथा मधु एवं घृतका नैवेद्य अर्पित करनेके बाद 'विरूपाक्ष (त्रिनेत्र) मेरे ऊपर प्रसन्न हों' यह कहकर ब्राह्मणको दक्षिणा तथा सुवर्णके साथ नैवेद्य प्रदान करे ॥ ३०—३३ ॥

इसी प्रकार आश्विन मासमें नवमी तिथिमें हिन्दियोंको वर्यमें करके उपवास रहकर गोबरसे स्नान करनेके पश्चात् कमलोंसे पूजन करे तथा सर्ज वृक्षके निर्यास (गोंद) का धूप एवं मधु और मोदकका नैवेद्य अर्पित करे अष्टमीको उपवास करके नवमीको स्नान करनेके बाद 'हिरण्वाक्ष मेरे ऊपर प्रसन्न हों'—यह कहते हुए तिलके साथ दक्षिणा प्रदान करे। कार्तिकमें दुग्धस्नान तथा कनेरके पुष्पसे पूजा करे और सरल वृक्षकी गोंदका धूप तथा मधु एवं खीर नैवेद्य अर्पितकर विनयपूर्वक 'भगवान् जित मेरे ऊपर प्रसन्न हों'—यह उच्चारण करते हुए ब्राह्मणको नैवेद्यके साथ रजतका दान करे ॥ ३४—३७ ॥

मार्गशीर्ष (अगहन) मासमें अष्टमी तिथिमें उपवास करके नवमी तिथिमें दधिसे स्नान करना चाहिये। इस समय 'भद्रा' औषधिके द्वारा पूजाका विधान है। पण्डित व्यक्ति श्रीवृक्षके गोंदका घूप एवं मधु और ओदनका नैवेद्य देकर 'शर्व (शिवजी)—को नमस्कार है, वे मेरे ऊपर प्रसन्न हों'—यह कहते हुए रक्तशालि (लाल चावल) को दक्षिणा प्रदान करे—ऐसा कहा गया है पौष मासमें घृतका स्नान तथा सुन्दर तगर-पुष्पोंद्वारा पूजा करनी चाहिये। फिर मधुएके वृक्षकी गोंदका घूप देकर मधु एवं पूड़ीका नैवेद्य अर्पित करे और हे देवेश त्र्यम्बक! आपको नमस्कार है—यह कहते हुए शंकरजीकी प्रसन्नताके लिये मृगसहित दक्षिणा प्रदान करे ॥ ३८—४१ ॥

माघमासमें कुशके जलसे स्नान करे और मृगमद (कस्तूरीसे) अर्चन करे। उसके बाद कदम्ब-वृक्षके गोंदका धूप देकर तिल एवं ओदन (भक्त)—का नैवेद्य अर्पित करनेके पश्चात् 'महादेव उमापति मेरे ऊपर प्रसन्न हों'—यह कहते हुए सुवर्णके साथ दूध एवं मातकी दक्षिणा

एवमेव समुद्रिष्टं बह्भिर्मासैस्तु पारणाम् ।
पारणान्ते त्रिनेत्रस्य स्नपनं कारयेत्कृपात् ॥ ४४

सोरोचनायाः सहिता गुडेन
देवं समालभ्य च पूजयेत् ।
प्रीयस्व दीनोऽस्मि भवन्तमीश
मच्छोकनाशं प्रकुरुष्व योग्यम् ॥ ४५

ततस्तु फलानुने मासि कृष्णाह्व्यां यतव्रत ।
उपवासं समुदितं कर्तव्यं द्विजसप्तम ॥ ४६
द्वितीयेऽङ्गि ततः स्नानं पञ्चगव्येन कारयेत् ।
पूजयेत्कुन्दकुसुमैर्धूपयेच्चन्दनं त्वयि ॥ ४७

नैवेद्यं सघृतं दद्यात् ताम्रपात्रे गुडोदनम् ।
दक्षिणां च द्विजातिभ्यो नैवेद्यसहितं धुने ।
वासोयुगं प्रीणयेच्च रुद्रमुख्यार्थं मामतः ॥ ४८
चैत्रे चोदुम्बरफलैः स्नानं मन्दारकार्चनम् ।
गुग्गुलं महिषाक्षं च घृतं कर्तुं धूपयेद् बुधः ॥ ४९

सयौदकं तथा सर्पिः प्रीणनं विनिवेदयेत् ।
दक्षिणां च सनैवेद्यं मृगाजिनमुदाहृतम् ॥ ५०
नाट्येश्वर नमस्तेऽस्तु इदमुच्चार्य नारद ।
प्रीणनं देवनाथाय कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः ॥ ५१
वैशाखे स्नानमुदितं सुगन्धकुसुमाभ्रसा ।
पूजनं शंकरस्योक्तं चूतमस्मरिभिर्विधौ ॥ ५२

धूपं सर्जाग्नयुक्तं च नैवेद्यं सफलं घृतम् ।
नामजप्यमपीशस्य कालधेति विप्रश्चिता ॥ ५३
जलकुम्भान् सनैवेद्यान् ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।
सोपवीतान् सहान्नाद्यास्तच्छिवसैस्तत्परायणैः ॥ ५४

ज्येष्ठे स्नानं चापलकैः पूजार्ककुसुमैस्तथा ।
धूपयेत्तन्निनेत्रं च आद्यत्यां पुष्टिकारकम् ॥ ५५
सर्कुंश्च सघृतान् देवे दद्यात्कान् विनिवेदयेत् ।
उपानद्युगलं च त्रं हानं दद्याच्च भक्तिमान् ॥ ५६

नामस्ते भगनेत्रज पूज्यो दक्षननाशन ।
इदमुच्चारयेद्भक्त्या प्रीणनाय जगत्पतेः ॥ ५७

प्रदान करनी चाहिये । इस प्रकार छः मासके बाद (प्रथम) पारणकी विधि कही गयी है । पारणके अन्तमें त्रिनेत्रधारी महादेवका कमसे स्नान कार्य सम्पन्न कराये । गोरोचनके सहित गुडद्वारा महादेवकी प्रतिमाका अनुलेपन कर उसकी पूजा करे तथा इस प्रकार प्रार्थना करे कि—‘हे ईश मैं दीन हूँ तथा आपको शरणमें हूँ, आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों तथा मेरे दुःख-शोकका नाश करें’ ॥ ४२—४५ ॥

व्रतधारी द्विजप्रेष्ठ । इसके बाद पञ्चलग्न मासकी कृष्णहमीको उपवास करना चाहिये । दूसरे दिन नवमीको पञ्चगव्यसे भगवान् शिवको स्नान कराये तथा कुन्दद्वारा अर्चनकर चन्दनका धूप और ताम्रपात्रमें घृतसहित गुह तथा ओदनका नैवेद्य प्रदान करे उसके बाद ‘रुद्र’ सन्दक उच्चारण कर ब्राह्मणोंको नैवेद्यके साथ दक्षिणा तथा दो घस्य प्रदान कर महादेवको प्रसन्न करे । चैत्र मासमें गुलरके फलके जलसे स्नान कराये और मदारके फूलोंसे पूजा करे । उसके बाद बुद्धिमान् व्यक्ति घृतमिश्रित ‘महिष’ नामक गुग्गुलसे धूप देकर मोदकके साथ घृत उनकी प्रसन्नताके लिये अर्पित करे एवं ‘नाट्येश्वर (भगवान्) । आपको नमस्कार है’—यह कहते हुए नैवेद्यसहित दक्षिणारूपमें भुगव्य प्रदान करे इस प्रकार पूर्ण ऋद्रायुक्त होकर महादेवजीको प्रसन्न करे ॥ ४६—५१ ॥

नारदजी वैशाख मासमें सुगन्धित पुष्पोंके जलसे स्नान तथा आमकी पञ्जरियोंसे शंकरके पूजनका विधान है । इस समय धी मिले सर्व-वृक्षके गोंदका धूप तथा फलसहित घृतका नैवेद्य अर्पित करना चाहिये । बुद्धिमान् व्यक्तिको इस समय श्रीशिवके ‘कालञ्ज’ नामका जप करना चाहिये और तल्लीनतपूर्वक ब्राह्मणको नैवेद्य, उपवीत (जनेऊ) एवं अन्न आदिके साथ पानीसे भरा बड़ा दक्षिण देनी चाहिये ज्येष्ठ मासमें औलके जलसे स्नान कराये तथा मन्दारके पुष्पोंसे उनकी पूजा करे । उसके बाद त्रिनेत्रधारी पुष्टि-कर्ता श्रीशिवको धूपदानमें धूप दिखलाये । फिर धी तथा दही मिला मसूका नैवेद्य अर्पित करे जगत्पतिके प्रीत्यर्थ ‘हे पूजाके दौल तोड़नेवाले, भगनेत्रज शिव आपको नमस्कार है’—यह कहकर भक्तिपूर्वक छत्र एवं उपानद्युगल (एक जोड़ा चूता) दक्षिणार्थ प्रदान करना चाहिये ॥ ५२—५७ ॥

आषाढे स्नानमुदितं श्रीफलैरर्चनं तथा ।
घनूरकुसुमैः शुक्लैर्धूपयेत् सिल्हकं तथा ॥ ५८

नैवेद्यः सघृताः पूपाः दक्षिणाः सघृता यवाः ।
नमस्ते दक्षयज्ञज्ञ इदमुज्जीरुदीरयेत् ॥ ५९

आखणो मृगभोज्येन स्नानं कृत्वाऽर्चयेद्भरम् ।
श्रीवृक्षपत्रैः सफलैर्यूपं दद्यात् तथागुप्तम् ॥ ६०

नैवेद्यं सघृतं दद्याद् दधि पूषान् समोदकान् ।
दध्योदनं सकृसरं माषधानाः सशष्कुलीः ॥ ६१

दक्षिणां श्वेतवृषभं धेनुं च कपिलां शुभाम् ।
कनकं रक्तवसनं प्रदद्याद् ब्राह्मणाय हि ।
गङ्गाधरोति जप्तव्यं नाम शंभोश्च पण्डितैः ॥ ६२

अयोधिः बड्भिरपरैर्मसैः पारणमुत्तमम् ।
एवं संवत्सरं पूर्णं सम्पूज्य वृषभध्वजम् ।
अक्षयौत्सभते कामान् महेश्वरवचो यथा ॥ ६३

इदमुक्तं व्रतं पुण्यं सर्वाक्षयकरं शुभम् ।
स्वयं रुद्रेण देवर्षे तत्तथा न तदन्यथा ॥ ६४

आषाढ मासमें बिल्हके जलसे भगवान् शिवको स्नान कराये तथा धतूरके उजले पुष्पोंसे उनको पूजा करे, सिल्हक (सिलारस वृक्षका गोंद)-का धूप दे और घृतके सहित मालपूएका नैवेद्य अर्पित करे एवं—हे दक्षके यज्ञका विनाश करनेवाले शंकर! आपके नमस्कार हैं—यह ऊँचे स्वरसे उच्चारण करे ब्राह्मण मासमें मृगभोज्य (जटामासी)-के जलसे स्नान कराकर फलयुक्त बिल्हपत्रोंसे महादेवकी पूजा करे तथा अगुरुका धूप दे। उसके बाद घृतयुक्त पूष, मोदक, दधि, दध्योदन, ठण्डको दाल, भुना हुआ जौ एवं कच्चीड़ोका नैवेद्य अर्पित करनेके बाद बुद्धिमान् व्यक्ति ब्राह्मणको श्वेत बैल, शुभा कपिला (काली) गौ, स्वर्ण एवं रक्तवस्त्रकी दक्षिणा दे पण्डितोंको चाहिये कि शिवजीके 'गङ्गाधर' इस नामका जप करें ॥ ५८—६२ ॥

इन दूसरे छः महीनोंके अनन्तर द्वितीय पात्रय होता है। इस प्रकार एक वर्षतक वृषभध्वज (शिवजी) का पूजन कर महेश्वरके वक्तानुसार मनुष्य अक्षय कामनाओंको प्राप्त करता है। स्वयं भगवान् शंकरने यह कल्याणकारी पत्रित्र एवं सभी पुण्योंको अक्षय करनेवाला व्रत बतलाया था यह जैसा कह गया है जैसा ही है यह कभी व्यर्थ नहीं जाता ॥ ६३—६४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १६ ॥



देवाङ्गोंसे तरुओंकी उत्पत्ति, अखण्डव्रत-विधान, विष्णु-पूजा,
विष्णुपञ्जरस्तोत्र और महिषका प्रसङ्ग

पुस्तक्य उवाच

मासि चाश्वयुजे ब्रह्मन् यदा पयं जगत्पते ।
नाभ्या निर्याति हि तदा देवेष्वेकन्यथोऽभवत् ॥ १

कंदर्पस्य कराग्रे तु कदम्बश्चाकृदर्शनः ।
तेन तस्य परा प्रीतिः कदम्बेन विवर्द्धते ॥ २

यक्षाणामधिपस्यापि मणिभद्रस्य नरदः ।
वटवृक्षः समभवत् तस्मिंस्तस्य रतिः सदा ॥ ३

पुस्तक्यजी बोले—नारदजी। आश्विन मासमें जब जगत्पति (विष्णु) की नाभिसे कमल निकला, तब अन्य देवताओंसे भी ये वस्तुएँ उत्पन्न हुईं कामदेवके करतलके आग्रभागमें सुन्दर कदम्ब वृक्ष उत्पन्न हुआ। इसीलिये कदम्बसे उसे बड़ी प्रीति रहती है। नारदजी क्योंकि राजा मणिभद्रसे वटवृक्ष उत्पन्न हुआ, अतः उन्हें उसके प्रति विशेष प्रेम है

महेश्वरस्य हृदये धातूरविटपः शुभः ।
संजातः स च शर्वस्य रतिकृत् तस्य नित्यशः ॥ ४
ब्रह्माणो मध्यतो देहाज्जातो भरकतप्रभः ।
खदिरः कण्टकी श्रेयानभवद्विश्वकर्मणः ॥ ५

गिरिजायाः करतले कुन्दगुल्मस्पृजायत ।
गणाधिपस्य कुम्भस्थो राजते सिन्धुवारकः ॥ ६

ययस्य दक्षिणे पार्श्वे पालाशो दक्षिणोत्तरे ।
कृष्णोदुम्बरको रुद्राज्जातः शोभकरो वृषः ॥ ७

स्कन्दस्य बन्धुजीवस्तु रवेरस्थ एव च ।
कात्यायन्याः शभी जातवित्त्वोल्बस्त्यः कन्दोभस्तु ॥ ८
नागनां पतये ब्रह्मञ्जरस्तम्बो ज्मजायत ।
वासुकेर्विस्तृते पुच्छे पृष्ठे दूर्वा सितासिता ॥ ९

साध्यानां हृदये जाते वृक्षो हरितचन्दनः ।
एवं जातेषु सर्वेषु तेन तत्र रतिर्भवेत् ॥ १०

तत्र रम्ये शुभे काले वा शुक्लीकादशी भवेत् ।
तस्यां सम्पूजयेद् विष्णुं तेन खण्डोऽस्य पूर्यते ॥ ११

पुष्पैः पत्रैः फलीर्वापि गन्धवर्णरसान्वितैः ।
ओषधीभिश्च मुख्यभिर्भावत्स्याच्छरदागमः ॥ १२
घृतं तिला स्त्रीद्वियथा हिरण्यकनकादि यत् ।
मणिमुक्ताप्रवासानि वस्त्राणि विविधानि च ॥ १३
रसानि स्वादुकदम्बलकषायलवणानि च ।
तित्तानि च निवेद्यानि तान्यस्त्रण्डानि यामि हि ॥ १४
तत्पूजार्थं प्रदातव्यं केशवाय महात्मने ।
यदा संवत्सरे पूर्णमाखण्डं भवते गृहे ॥ १५
कृतोपवासो देवर्षे द्वितीयेऽहनि संवतः ।
स्नानेन तेन स्नायीत येनाखण्डं हि वत्सरम् ॥ १६

सिद्धार्थकैस्तिलैर्वापि तैर्नवोद्वृतं स्मृतम् ।
हविषा पशुनाभस्य स्नानमेव समाचरेत् ।
होमे तदेव गदितं दाने शक्तिर्निजा द्विज ॥ १७

भगवान् शंकरके हृदयपर सुन्दर धतुर-वृक्ष उत्पन्न हुआ,
अतः वह शिवजीको सदा प्यारा है ॥ १-४ ॥

ब्रह्माजीके शरीरके बीचसे भरकतमणिके समान
खैरवृक्षकी उत्पत्ति हुई और विश्वकर्माके ज़रौरसे सुन्दर
कटैया उत्पन्न हुआ गिरिनन्दिनी पार्वतीके करतलपर
कुन्द लगा उत्पन्न हुई और गणपतिके कुम्भ-देजसे
सेंदुवारवृक्ष उत्पन्न हुआ; यमराजकी दाहिनी बगलसे
फलास तथा बायीं बगलसे गूलरका वृक्ष उत्पन्न हुआ
रुद्रसे उद्भिन्न करनेवाला वृष (ओषधि-विलेप) की
उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार स्कन्दसे बन्धुजीव, सूर्यसे
शीपल, कात्यायनी दुर्गासे सभी और लक्ष्मीजीके हाथसे
वित्त्ववृक्ष उत्पन्न हुआ ॥ ५-८ ॥

नागदजी इसी प्रकार शैवनागसे सरपट, वासुकिनागसे
पुच्छ और पीठपर छेत एवं कृष्ण दूर्वा उत्पन्न हुई
साध्योंके हृदयमें हरिषन्दनवृक्ष उत्पन्न हुआ इस प्रकार
उत्पन्न होनेसे उन सभी वृक्षोंमें उन-उन देवताओंका
प्रेम होता है

उस रमणीय सुन्दर समयमें शुक्लपक्षकी जो
एकादशी तिथि होती है, उसमें भगवान् विष्णुकी पूजा
करनी चाहिये। इससे पूजाकी म्यूनता दूर हो जाती है।
शराकालकी उपस्थितिकक गन्ध, वर्ण और रसपुष्ट पत्र,
पुष्प एवं फलों तथा मुख्य ओषधियोंसे भगवान्
विष्णुकी पूजा करनी चाहिये ॥ ९-१२ ॥

घी, तिल, चावल, जौ, चाँदी, सोना, मणि, मुक्ता,
मूँगा तथा नाना प्रकारके वस्त्र, स्वादु, कटु, अम्ल,
कषाय, लक्ष्ण और तिक्त रस आदि वस्तुओंको
अखण्डितरूपसे महात्मा केशवको पूजाके लिये अर्पित
करना चाहिये। इस प्रकार पूजा करते हुए वर्षको
बितानेपर चरमें पूर्ण समृद्धि होती है देवर्षे जितेन्द्रिय
होकर दूसरे दिन उपवास करके जिससे वर्ष अखण्डित
रहे इसलिये इस प्रकार स्नान करे— ॥ १३-१६ ॥

सफेद सरसों या तिलके द्वारा ठवटन
तैयार करना चाहिये ऐसा कहा गया है। उससे
या घीसे भगवान् विष्णुको स्नान कराना
चाहिये। होममें भी बौका ही विधान है
और दानमें भी यथाशक्ति उसीकी विधि है

पूजयेताथ कुसुमैः पादस्नानं केशवम् ।
धूपयेद् विविधं धूपं येन स्याद् वत्सरं परम् ॥ १८

हिरण्यरत्नवासोभिः पूजयेत् जगद्गुरुम् ।
रागखण्डवज्रोष्पाणि हविष्याणि निवेदयेत् ॥ १९

ततः संपूज्य देवेशं पद्मनाभं जगद्गुरुम् ।
विज्ञापयेन्पुनिश्रेष्ठ मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥ २०

नमोऽस्तु ते पद्मनाभ पद्माधव महाद्युते ।
धर्मार्थकाममोक्षाणि त्वखण्डानि भवन्तु मे ॥ २१

विकामिपद्मप्रारक्ष यथाऽखण्डोसि सर्वतः ।
तेन सत्येन धर्माद्या अखण्डाः सन्तु केशव ॥ २२

एवं संवत्सरं पूर्णं सोपवासो जितेन्द्रियः ।
अखण्डं पारयेद् ब्रह्मन् व्रतं वै सर्ववस्तुषु ॥ २३

अस्मिंश्चीर्णे स्यते व्यक्तं परितुष्यन्ति देवताः ।
धर्मार्थकाममोक्षाद्यास्त्विक्षयाः सम्भवन्ति हि ॥ २४

एतानि ते मयोक्तानि व्रतान्युक्तानि कामिभिः ।
प्रवक्ष्याम्यधुना त्वेतद्दृष्ट्वा च पञ्चरं शुभम् ॥ २५

नमो नमस्ते गोविन्द चक्रं गृह्य सुदर्शनम् ।
प्राच्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गत ॥ २६

गदां कौमोदकीं गृह्य पद्मनाभामितद्युते ।
याम्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः ॥ २७

हस्तादाय सौनन्दं नमस्ते पुरुषोत्तम ।
प्रतीच्यां रक्ष मे विष्णो भवन्तं शरणं गतः ॥ २८

मुसलं शासनं गृह्य पुण्डरीकाक्ष रक्ष माम् ।
उत्तरस्यां जगन्नाथ भवन्तं शरणं गतः ॥ २९

शार्ङ्गमादाय च धनुस्त्रं नारायणं हरे ।
नमस्ते रक्ष रक्षोघ्न ऐशान्यां शरणं गतः ॥ ३०

फिर पुष्पोंद्वारा चरणसे आरम्भकर (सिरवक) सभी अङ्गोंमें केशवकी पूजा करे एवं नाना प्रकारके धूपोंसे उन्हें सुवासित करे, जिससे संवत्सर पूर्ण हो सुवर्ण, रत्नों और वस्त्रोंद्वारा (उन) जगद्गुरुका पूजन करे तथा एग खंड, चोख्य एवं हविष्योंका नैवेद्य अर्पित करे। सुव्रत नारदजी! देवेश जगद्गुरु विष्णुकी पूजा करनेके बाद इस मन्त्रसे प्रार्थना करे — ॥ १७—२० ॥

हे महाकान्तिवाले पद्मनाभ लक्ष्मीपते! आपको प्रणाम है (आपकी कृपाके प्रसादसे) हमारे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अखण्ड हों विकसित कमलपत्रके समान नेत्रवाले। आप जिस प्रकार चारों ओरसे अखण्ड हैं, उसी रूपके प्रभावसे मेरे भी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष (पुरुषार्थ) अखण्डित रहें। ब्रह्मन्! इस प्रकार वर्षभर उपवास और जितेन्द्रिय रहते हुए सभी वस्तुओंके द्वारा व्रतको अखण्डरूपसे पूरा करे इस व्रतके करनेपर देवता निश्चितरूपसे प्रसन्न होते हैं एवं धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष सभी पूर्ण होते हैं ॥ २१ २४ ॥

नारद! यहाँतक मैंने तुमसे सकाम व्रतोंका वर्णन किया है अब मैं कल्याणकारी विष्णुपञ्चरत्नोक्तको कहूँगा। (यह इस प्रकार है—) गोविन्द आपको नमस्कार है। आप सुदर्शनचक्र लेकर मेरी पूर्व दिशामें रक्षा करें। विष्णो! मैं आपको शरणमें हूँ। अम्बितद्युते पद्मनाभ। आप कौमोदकी गदा धारणकर मेरी दक्षिण दिशामें रक्षा करें। विष्णो! मैं आपके शरण हूँ। पुरुषोत्तम। आपको नमस्कार है आप सौनन्द नामक हल लेकर मेरी पश्चिम दिशामें रक्षा करें। विष्णो मैं आपकी शरणमें हूँ ॥ २५—२८ ॥

पुण्डरीकाक्ष। आप 'शासन' नामके विनाशकारी मुसलको लेकर मेरी उत्तर दिशामें रक्ष करें। जगन्नाथ मैं आपकी शरणमें हूँ। हरे! शार्ङ्गधनुष एवं नासवणास्त्र लेकर मेरी ईशानकोणमें रक्ष करें। रक्षोघ्न! आपको नमस्कार है, मैं आपके शरण हूँ।

पाञ्चजन्यं महाशङ्खमन्तर्बोध्यं च पङ्कजम् ।
प्रगृह्य रक्ष मां विष्णो आग्नेय्यां यज्ञसूकरम् ॥ ३१

धर्मं सूर्यशतं गृह्य खड्गं चन्द्रमसं तथा ।
नैऋत्यां मां च रक्षस्व दिव्यमूर्ते नृकेसरिन् ॥ ३२
वैजयन्तीं प्रगृह्य त्वं श्रीवत्सं कण्ठभूषणम् ।
वायव्यां रक्ष मां देव अश्वशीर्षं नमोऽस्तु ते ॥ ३३

वैनतेयं समारुह्य अन्तरिक्षे जनार्दन ।
मां त्वं रक्षार्जित सदा नमस्ते त्वपराजित ॥ ३४

विशालाक्षं समारुह्य रक्ष मां त्वं रसातले ।
अकूपारं नमस्तुभ्यं महामोहं नमोऽस्तु ते ॥ ३५

करशीर्षाद्दक्षिणैव तथाऽष्टबाहुपञ्चरम् ।
कृत्वा रक्षस्व मां देव नमस्ते पुरुषोत्तम ॥ ३६
एतदुक्तं भगवता वैष्णवं पञ्चरं मङ्गलम् ।
पुरा रक्षार्थमीशेन कात्यायन्या द्विजोत्तम ॥ ३७

नाशयामास सा यत्र दानवं महिषासुरम् ।
नमरं रक्तबीजं च तद्यान्यान् सुरकण्ठकान् ॥ ३८

नारद उवाच

कश्चासीं कात्यायनी नाम या जज्ञे महिषासुरम् ।
नमरं रक्तबीजं च तद्यान्यान् सुरकण्ठकान् ॥ ३९
कश्चासीं महिषो नाम कुले जातश्च कस्य सः ।
कश्चासीं रक्तबीजाख्यो नमरः कस्य चात्मजः ।
एतद्विस्तरतस्तात यथावद् वक्तुमर्हसि ॥ ४०

पुनस्तत्र उवाच

श्रूयतां संप्रवक्ष्यामि कस्य पापप्रणाशिनीम् ।
सर्वदा वरदा दुर्गा येयं कात्यायनी मुने ॥ ४१
पुराऽसुरवरो रौद्री जगत्क्षोभकराबुभी ।
रम्भश्चैव करम्भश्च द्वावास्तां सुमहाबली ॥ ४२

तत्रपुत्री च देवर्षे पुत्रार्थं तेषुतुस्तपः ।
बहून् वर्षगणान् दैत्यौ स्थितौ पञ्चनदे जले ॥ ४३

तत्रैको जलमध्यस्थो द्वितीयोऽप्यग्निपञ्चमो ।
करम्भश्चैव रम्भश्च यक्षं मालवटं प्रति ॥ ४४

यज्ञवराहं विष्णो! आप पाञ्चजन्य नामक विशाल शङ्ख
तथा अन्तर्बोध्य पङ्कजको लेकर मेरी अग्निकोणमें रक्षा
करें। दिव्यमूर्ति नृसिंह, सूर्यशत नामकी छाल तथा
चन्द्रहास नामकी तलवार लेकर मेरी नैऋत्यकोणमें रक्षा
करें ॥ २९—३२ ॥

अथ वैजयन्ती नामकी माता तथा श्रीवत्स नामक
कण्ठभूषण धारणकर मेरी वायव्यकोणमें रक्षा करें।
देव हयग्रीव आपको नमस्कार है। जनार्दन! वैनतेय
(गरुड)—पर आरुढ़ होकर आप मेरी अन्तरिक्षमें रक्षा
करें। अजित अपराजित! आपको सदा नमस्कार है।
महाकण्ठप! आप विशालाक्षपर बद्धकर मेरी रसातलमें
रक्षा करें। महामोह! आपको नमस्कार है। पुरुषोत्तम!
अथ अष्ट हाथोंसे पञ्जर बनाकर हाथ सिर एवं सन्धि-
स्थलों (जोड़ों) आदिमें मेरी रक्षा करें देव, आपको
नमस्कार है ॥ ३३—३६ ॥

द्विजोत्तम! प्राचीन कालमें भगवान् शंकरने
कात्यायनी (दुर्गा)—की रक्षाके लिये इस महान् विष्णुपञ्चर-
त्नोत्रको उस स्थानपर कहा था, जहाँ उन्होंने महिषासुर,
नमर, रक्तबीज एवं अन्यान्य देव शत्रुओंका नाश
किया था ॥ ३७—३८ ॥

नारदजीने पूछा—अरे! महिषासुर, नमर, रक्तबीज
तथा अन्यान्य सुर कण्ठकोंका वध करनेवाली ये
भगवती कात्यायनी कौन हैं? तात! वह महिष कौन है?
तथा वह किसके कुलमें उत्पन्न हुआ था? वह रक्तबीज
कौन है? तब नमर किसका पुत्र है? आप इसका यथार्थ
रूपसे विस्तारपूर्वक वर्णन करें ॥ ३९—४० ॥

पुनस्तपजी बोले—नारदजी! सुनिये, मैं उस
पापनाशक कथाको कहता हूँ। मुने! सब कुछ देनेवाली
वरदायिनी भगवती दुर्गा ही ये कात्यायनी हैं। प्राचीन-
कालमें संसारमें तबल-पुयल मचानेवाले रम्भ और
करम्भ नामके दो भयंकर और महाबलवान् असुर
श्रेष्ठ थे। देवर्ष! वे दोनों पुत्रहीन थे उन दोनों
दैत्योंने पुत्रके लिये पञ्चनदके जलमें रहकर बहुत
वर्षोंतक तप किया। मालवट यक्षके प्रति एकग्र होकर
करम्भ और रम्भ—इन दोनोंमेंसे एक जलमें स्थित
होकर और दूसरा पञ्चाग्निके मध्य बैठकर तप कर
रहा था ॥ ४१—४४ ॥

एकं निमग्नं सलिले ग्राहस्त्रेण वासवः ।
चरणाभ्यां समादाय निजघान यथेच्छया ॥ ४५
ततो धातरि नष्टे च रम्भः कोपपरिप्लुतः ।

वह्नीं स्वशीर्षं संक्षिप्य होतुमैच्छन् महाबलः ॥ ४६

ततः प्रगृह्य केशेषु खड्गं च रविसप्रभम् ।
छेत्तुकामो निजं शीर्षं वह्निना प्रतिवेधितः ॥ ४७

उक्तञ्च मा दैत्यवर नाशयत्मानमात्मना ।
दुस्तरा परवध्याऽपि स्ववध्याऽप्यतिदुस्तरा ॥ ४८
यच्च प्रार्थयसे वीर तद्दामि यथोप्सितम् ।
मा प्रियस्य मृतस्येह नष्टा भवति वै कथा ॥ ४९

ततोऽश्ववीद् वधो रम्भो वरं चेन्मे ददासि हि ।
त्रैलोक्यविजयी पुत्रः स्यान्मे त्वत्तेजसाऽधिकः ॥ ५०

अजेयो दैवतैः सर्वैः पुंभिर्द्वितीयश्च पावकः ।
महाबलो वायुरिव कामरूपी कृतास्त्रवित् ॥ ५१

ते प्रोवाच कविर्ब्रह्मन् ब्रह्ममेवं भविष्यति ।
यस्यां धितं समालम्बि करिष्यसि ततः सुतः ॥ ५२
इत्येवमुक्तो देवेन वह्निना दानवो घब्रो ।
ब्रह्मं मालवटं यक्षं यक्षैश्च परिवारितम् ॥ ५३

तेषां पञ्चनिधिस्तत्र वसते नान्यचेतनः ।
गजाश्च महिषाश्चाश्च गावोऽजाविपरिप्लुताः ॥ ५४

तान् दृष्ट्वैव तदा चक्रे भावं दानवपाश्विजः ।
महिष्यां रूपयुक्तायां त्रिहायण्यां तपोधन ॥ ५५

सा समागाच्च दैत्येन्द्रं कामयन्ती तरस्विनी ।
स चापि गमनं चक्रे भवितव्यप्रद्योदितः ॥ ५६
तस्यां समभ्यवद् गर्भस्तां प्रगृह्णाव दानवः ।
पातालं प्रविवेशाथ ततः स्वभवनं गतः ॥ ५७

दृष्टञ्च दानवैः सर्वैः परित्यक्तञ्च जन्मुभिः ।
अकार्यकारकेत्येवं भूयो मालवटं गतः ॥ ५८

इन्द्रने ग्राहका रूप धारणकर इनमेंसे एकको जलमें निमग्न होनेपर फिर पकड़कर इच्छानुसार दूर ले जाकर भार डाला। उसके बाद भाईके नष्ट हो जानेपर क्रोधयुक्त महाबलशाली रम्भने अपने सिरको काटकर अग्निमें हवन करना चाहा। वह अपना केश पकड़कर हाथमें सूर्यके समान चमकनेवाली तलवार लेकर अपना सिर काटना ही चाहता था कि अग्निने उसे रोक दिया और कहा—दैत्यवर तुम स्वयं अपना नाश मत करो दूसरेका वध तो पाप होता ही है आत्महत्या भी भयानक पाप है ॥ ४५—४८ ॥

वीर! तुम जो माँगोगे, तुम्हारी इच्छाके अनुसार वह मैं तुम्हें दूंगा। तुम मरो मत इस संस्तरमें मृत व्यक्तिकी कथा नष्ट हो जाती है इसपर रम्भने कहा—यदि आप वर देते हैं तो वह वर दीजिये कि मुझे आपसे भी अधिक तेजस्वी त्रैलोक्यविजयी पुत्र उत्पन्न हो। अग्निदेव! समस्त देवताओं तथा मानवों और दैत्योंसे भी वह अजेय हो। वह पायुके समान महाबलवान् तथा कामरूपी एवं सर्वास्त्रवेत्ता हो। नारदजी! इसपर अग्निने उससे कहा—अच्छा, ऐसा ही होगा, जिस स्त्रीमें तुम्हारा चित्त लग जायगा उसीसे तुम पुत्र उत्पन्न करोगे ॥ ४९—५२ ॥

अग्निदेवके ऐसा कहनेपर रम्भ यक्षोंसे घिरा हुआ मालवट यक्षका दर्शन करने गया। वहाँ उन यक्षोंका एक पय नामकी निधि अवन्ध-स्थित होकर निवास करती थी वहाँ बहुत से बकरे, भैंसे, घोड़े, भैंसे तथा हाथी और गाय बैल थे। तपोधन! दानवरअग्निने उन्हें देखकर तीन वर्षोंवाली रूपवती एक महिषीमें प्रेम प्रकट किया (अर्थात् आसक्त हुआ)। कामपरायण होकर वह महिषी शीघ्र दैत्येन्द्रके समीप आ गयी तब भवितव्यतासे प्रेरित उसने (रम्भने) भी उस महिषीके साथ संगत किया ॥ ५३—५६ ॥

उसे गर्भ रह गया। उसके बाद उस महिषीको लेकर दानव पातालमें प्रविष्ट हुआ और अपने घर चला गया। उसके दानव बन्धुओंने उसे देख एवं 'अकार्यकारक' जानकर उसका परिष्ठाण कर दिया। फिर वह पुनः मालवटके निकट गया। वह सुन्दरी महिषी भी उसी

साऽपि तेनैव पतिना महिषी चारुदर्शना ।
 समं जगाम तत् पुण्यं यक्षमण्डलपुत्रसम् ॥ ५९ ॥
 ततस्तु कसतस्तस्य श्यामा सा सुषुप्ते मुने ।
 अजीवन्तु सुतं शुभं महिषं कामरूपिणाम् ॥ ६० ॥
 एतामुत्तमतीं जातां महिषोऽन्यो ददर्श ह ।
 सा चाभ्यगाद् दितिवरं रक्षन्ती शीलमात्मनः ॥ ६१ ॥
 तमुन्नामितनासं च महिषं वीक्ष्य दानवः ।
 खड्गं निष्कृष्य तरसा महिषं समुपाव्रवत् ॥ ६२ ॥
 तेनपि दैत्यस्तीक्ष्णाभ्यां शृङ्गाभ्यां हृदि त्वष्टितः ।
 निर्भिन्नहृदयो भूमी निपपात भमार ख ॥ ६३ ॥
 मृते भर्तारं सा श्यामा यक्षाणां शरणं गता ।
 रक्षिता गुह्यकैः साध्वी निवार्य महिषं ततः ॥ ६४ ॥
 ततो निवारितो यक्षैर्हयारिर्यदगातुर ।
 निपपात सरो दिव्यं ततो दैत्योऽभवन्मृतः ॥ ६५ ॥
 नमरो नाम विख्यातो महाबलपराक्रमः ।
 यक्षानाञ्चित्य तस्थी च कस्त्रयन् क्षाण्डान् मुने ॥ ६६ ॥
 स च दैत्येश्वरो यक्षमालवटपुरस्सीः ।
 चित्तमारोपितः स्त्र च श्यामा तं चारुहत् पतिम् ॥ ६७ ॥
 ततोऽग्निमध्यादुत्स्थी पुरुषो रौद्रदर्शनः ।
 व्यश्रवयत् स तान् यक्षान् खड्गपाणिर्भयंकरः ॥ ६८ ॥
 ततो हतास्तु महिषाः सर्व एव महात्मना ।
 ऋते संरक्षितारं हि महिषं रम्भनन्दन ॥ ६९ ॥
 स नामतः स्मृतो दैत्ये रक्तबीजो महामुने ।
 योऽजयत् सर्वतो देवान् सेनरुरार्कमाकृतान् ॥ ७० ॥
 एवं प्रभावा दनुपुंगवास्ते
 तेजोऽधिकस्तत्र बभौ ह्यारिः ।
 राज्येऽभिषिक्तश्च महोऽसुरेन्द्र-
 विनिर्जितैः शम्बरतारकाक्षैः ॥ ७१ ॥
 अशक्नुवद्भिः सहितैश्च देवैः
 सलोकपालैः सहताशभास्करीः ।
 स्थानाणि त्यक्तानि शशीन्द्रभास्करी-
 धर्मैश्च दूरे प्रतियोजितैश्च ॥ ७२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीकामनपुराणमें सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १७ ॥

पतिके साथ उसे पवित्र और उत्तम भक्षमण्डलमें गयी ।
 मुने । उसके वहीं निवास करते समय उस महिषीने सन्तान
 उत्पन्न की । उसने एक शुभ तथा इच्छाके अनुकूल रूप
 धारण करनेवाले महिष-पुत्रको जन्म दिया ॥ ५७—६० ॥

उसके पुनः प्रसूतगती होनेपर एक दूसरे महिषको
 उसे देखा । वह अपने शीलकी रक्षा करती हुई दैत्यश्रेष्ठके
 निकट गयी । नाकको ऊपर उठाये उस महिषको देखकर
 दानवने खड्ग निकालकर महिषपर वेगसे आक्रमण
 किया । उस महिषने भी तीक्ष्ण शृङ्गोंसे दैत्यके हृदयमें
 प्रहार किया । वह दैत्य हृदय फट जानेसे भूमिपर गिर
 पड़ा और मर गया । पतिके मर जानेपर वह महिषी
 यक्षोंकी शरणमें गयी । उसके बाद गुह्यकोंने महिषको
 हटाकर साध्वी महिषीकी रक्षा की ॥ ६१—६४ ॥

यक्षोंद्वारा हटाया गया कामातुर ह्यारि (महिष)
 एक दिव्य सरोवरमें गिर पड़ा । उसके बाद वह मरकर
 एक दैत्य हो गया मुने । अन्य पशुओंको मारते हुए
 यक्षोंके आश्रयमें रहनेवाला महान् बली तथा पराक्रमी
 वह दैत्य 'नभर' नामसे विख्यात हुआ फिर मालवट
 आदि यक्षोंने उस ह्यारि दैत्येश्वरको चित्तापर रखा ।
 वह श्यामा भी पतिके साथ चित्तापर चढ़ गयी तब
 अग्निके यक्षसे हाथमें खड्ग लिये निकलल कम्बाला
 भयंकर पुरुष प्रकट हुआ उसने सभी यक्षोंको
 भगा दिया ॥ ६५—६८ ॥

और फिर उस बलवान् दैत्यने रम्भनन्दन महिषको
 छोड़कर स्वरे महिषोंको मार डाला । महामुने वह दैत्य
 रक्तबीज नामसे विख्यात हुआ । उसने इन्द्र, रुद्र, सूर्य एवं
 मारुत आदिके साथ देवोंको जीत लिया । यद्यपि वे सभी
 दैत्य इस प्रकारके प्रभावसे मुक्त थे फिर भी उनमें
 महिष अधिक तेजस्वी था । उसके द्वारा विधित सम्बर,
 तारक आदि महान् असुरोंने उसका राज्यभिक्षेक किया ।
 लोकपालोंसहित अग्नि, सूर्य आदि देवोंके द्वारा एक साथ
 मिलकर जब वह जीता नहीं गया तब चन्द्र, इन्द्र एवं
 सूर्यने अपना-अपना स्वान छोड़ दिया तथा अर्मको भी
 दूर हटा दिया गया ॥ ६९—७२ ॥

अठारहवाँ अध्याय

महिषासुरका अतिचार, देवोंकी तेजोराशिसे भगवती कात्यायनीका प्रादुर्भाव,
विन्ध्यप्रसंग, दुर्गाकी अवस्थिति

पुलस्त्य उवाच

ततस्तु देवा महिषेण निजिताः
स्थानानि संत्यज्य सवाहनायुधाः ।
जग्मुः पुरस्कृत्य पितामहं ते
इष्टं तदा चक्रधरं श्रियः पतिम् ॥ १ ॥
गत्वा त्वपश्यंश्च भिक्षुः सुरोत्तमी
स्थितौ खगेन्द्रासनशङ्करी हि ।
दृष्ट्वा प्रणम्यैव च सिद्धिसाधकी
न्यवेदयंस्तन्महिषादिद्वेष्टितम् ॥ २ ॥
प्रभोजश्चसूर्येन्दुनिलाग्निबेधसां
जलेशशक्रादिषु चाधिकारान् ।
आक्रम्य नाकासु निराकृता वयं
कृतावनिस्था महिषासुरेण ॥ ३ ॥
एतद् भवन्ती शरणागतानां
श्रुत्वा वचो ब्रूत हितं सुराणाम् ।
न चेद् ब्रजामोऽद्य रसातलं हि
संकात्यमाना युधि दानवेन ॥ ४ ॥
इत्थं मुरारिः सह शङ्करेण
श्रुत्वा वचो विप्लुतचेतसस्तान् ।
दृष्ट्वाऽद्य चक्रे सहसैव क्रोधं
कालाग्रिकल्पो हरिरव्ययात्मा ॥ ५ ॥
ततोऽनुकोपान्धुसूदनस्य
सशङ्करस्यापि पितामहस्य ।
सद्यैव शक्रादिषु दैवतेषु
महर्षिर्तेजो वदनाद् विनिःसृतम् ॥ ६ ॥
तच्छैकतां पर्यतकूटसन्निभं
जगाम तेजः प्रवराश्रमे मुने ।
कात्यायनस्याप्रतिमस्य तेन
महर्षिणा तेज उपाकृतं च ॥ ७ ॥
तेनर्षिसुष्टेन च तेजसा युतं
ज्वलत्प्रकाशार्कसहस्रतुल्यम् ।
तस्माच्च जाता तरलायताक्षी
कात्यायनी योगविशुद्धदेहा ॥ ८ ॥

पुलस्त्यजी बोले— इसके बाद महिषद्वारा पराजित
देवता अपने-अपने स्थानको छोड़कर पितामहको आगे
कर चक्रधारी राक्षसीपति विष्णुके दर्शनार्थ अपने वाहनों
और आयुधोंको लेकर विष्णुलोक चले गये वहाँ
जाकर उन लोगोंने गरुड़वाहन विष्णु एवं सङ्कर—इन
दोनों देवश्रेष्ठोंको एक साथ बैठे देखा। उन दोनों
सिद्धि-साधकोंको देखनेके बाद उन लोगोंने उन्हें
प्रणामकर उनसे महिषासुरकी दुष्टता बतलायी। वे
बोले—प्रभो! महिषासुरने अश्विनीकुमार, सूर्य, चन्द्र,
वायु, अग्नि, ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र आदि सभी देवताओंके
अधिकारोंको छीनकर स्वर्गसे निकाल दिया है
और अब हमलोग भूलोकमें रहनेको विवश हो गये
हैं। हम शरणमें आये देवताओंकी यह बात सुनकर
आप दोनों हमारे हितकी बात बतसायें; अन्यथा
दानवद्वारा युद्धमें मारे जा रहे हमलोग अब रसातलमें
चले जायेंगे ॥ १-४ ॥

शिवजीके साथ ही विष्णुभगवान्ने (भी) उनके
इस प्रकारके वचनको सुना तथा दुःखसे व्याकुल
चित्तकाले उन देवताओंको देखा तो उनका क्रोध
कालाग्रिके समान प्रज्वलित हो गया। उसके बाद मधु
नामक राक्षसको मारनेवाले विष्णु, शङ्कर, पितामह
(ब्रह्मा) तथा इन्द्र आदि देवताओंके क्रोध करनेपर उन
सबके मुखसे महान् तेज प्रकट हुआ। मुने! फिर यह
तेजोराशि कात्यायन अधिके अनुपम आश्रममें पर्यतभृङ्गके
समान एकत्र हो गयी। उन महर्षिने भी उस तेजकी
और अभिवृद्धि की। उन महर्षिद्वारा उत्पन्न किये
गये तेजसे आवृत यह तेज हजारों सूर्योंके समान प्रदीप्त
हो गया। उसके योगसे विशुद्ध क्षीरवाली एवं चञ्चल
तथा विशाल नेत्रवाली कात्यायनी देवी प्रकट हो
गयी ॥ ५-८ ॥

माहेश्वराद् वक्रप्रमथो बभूव
नेत्रत्रयं पावकतेजसा च।
याम्येन केशा हरितेजसा च
भुजास्तथाष्टादश संप्रजज्ञिरे ॥ ९
सीम्येन सुगमं स्तनयोः सुसंहतं
मध्यं तथैन्द्रेण च तेजसाऽभवत्।
कुरु च जङ्घे च नितम्बसंयुते
जाते जलेशस्य तु तेजसा हि ॥ १०
पादौ च लोकप्रपितामहस्य
पद्माभिकोशप्रतिष्ठीं बभूवतुः।
दिवाकगणामपि तेजसाऽङ्गुलीः
कराङ्गुलीश्च वसुतेजसैव ॥ ११
प्रजापतीनां दशनाश्च तेजसा
याक्षेण नासा श्रवणी च भारुतात्।
साध्येन च भूयुगलं सुकान्तिमत्
कंदर्पश्वाणासनसन्निभं बभू ॥ १२

तथर्षितेजोत्तममुत्तमं मह-
नाम्ना पृथिव्यामभवत् प्रसिद्धम्।
कात्यायनीत्येव तदा बभौ सा
नाम्ना च तेनैव जगत्प्रसिद्धा ॥ १३
ददौ त्रिशूलं वरदस्त्रिशूलौ
चक्रं मुरारिर्वरुणाश्च शङ्खम्।
शक्तिं हुताशः शस्त्रं च चापं
तूणीं तथाक्षय्यशरीं विवस्वान् ॥ १४
वक्रं तथेन्द्रः सह घण्टया च
यमोऽश्च दण्डं धनदो गर्दा च।
ब्रह्माऽक्षमालां सक्कभण्डलं च
कालोऽग्निमुग्धं सह चर्मणा च ॥ १५
हारं च सोमः सह च्छमरोण
मालां समुद्रो हिमवान् मृगेन्द्रम्।
चूडामणिं कुण्डलमर्द्धचन्द्रं
घ्रादात् कुठारं वसु शिल्पकर्त्ता ॥ १६
गन्धर्वराजो रजतानुलिप्तं
पानस्य पूर्णं सद्गुणं च धाजनम्।
भुजंगहारं भुजगेश्वरोऽधि
अम्नानपुष्पामृतवः स्वजं च ॥ १७

महादेवजीके तेजसे कात्यायनीका मुख बन गया और अग्निके तेजसे उनके तीन नेत्र प्रकट हो गये। इसी प्रकार यमके तेजसे केत तथा हरिके तेजसे उनकी अष्टादश भुजाएँ, चन्द्रमाके तेजसे उनके सटे हुए स्तनयुगल, इन्द्रके तेजसे मध्यभाग तथा चरुणके तेजसे कुरु, जङ्घाएँ एवं नितम्बोंकी उत्पत्ति हुई। लोकपितामह ब्रह्माके तेजसे कमलकोशके समान उनके दोनों चरण, आदित्योंके तेजसे पैरोंकी अङ्गुलियाँ एवं वसुओंके तेजसे उनके हाथोंकी अङ्गुलियाँ उत्पन्न हुई। प्रजापतियोंके तेजसे उनके दाँत, यक्षाँके तेजसे नाक, वायुके तेजसे दोनों कान, साध्यके तेजसे कामदेवके धनुषके समान उनकी दोनों भीहें प्रकट हुई— ॥ ९—१२ ॥

इस प्रकार महर्षियोंका उत्तमोत्तम तथा महान् तेज पृथ्वीपर 'कात्यायनी' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ, तब वे उसी नामसे विश्वमें प्रसिद्ध हुई। वरदानी शङ्करजीने उन्हें त्रिशूल, मुरके मारनेवाले श्रोकण्ठले चक्र, चरुणने शङ्ख, अग्निने शक्ति, वायुने धनुष तथा सूर्यने आक्षय बाणोंवाले दो तूणीर (तारकस) प्रदान किये। इन्द्रने घण्टासहित वक्र, यमने दण्ड, कुबेरने गदा, ब्रह्माने कमण्डलुके साथ रुद्राक्षकी माला तथा कालने उन्हें छालसहित घनघण्ट छद्म प्रदान किया। चन्द्रमाने चँवरके साथ हार, समुद्रने माला, हिमालयने सिंह, विश्वकर्माने चूडामणि, कुण्डल, अर्धचन्द्र, कुठार तथा पर्वत ऐश्वर्य प्रदान किया ॥ १३—१६ ॥

गन्धर्वराजने उनके अनुरूप रजतकर पूर्ण पान (मद्य) पात्र, नागराजने भुजङ्गहार तथा ऋतुओंके कभी न कुटिलानेवाले पुष्पोंकी माला प्रदान की। उसके बाद

१. सभी पुराणों तथा सप्तस्त्रीकी व्यख्याओंमें विश्वकर्मादेवारा ही अभूषण बनाने देनेकी चर्चा है। कुछ प्रतियोंके अर्थमें ऋतुदेव देवकी बात रूप गयी है, जो मलत है।

तदाऽतितुष्टा सुरसत्तमाना
अट्टाट्टहासं मुमुचे त्रिनेत्रा ।
तां तुष्टुर्देववराः सहेन्द्राः
सखिष्णुरुद्रेन्दुनिलाग्निभास्करा ॥ १८
नमोऽस्तु देव्यै सुरपूजितायै
या संस्थिता योगविशुद्धदेहा ।
निद्रास्वरूपेण महीं वितत्य
तृष्णा प्रपा शुद् भयदाऽय कान्तिः ॥ १९
श्रद्धा स्मृतिः पुष्टिरथो क्षमा च
छाया च शक्तिः कम्पलालया च ।
वृत्तिर्दया भान्तिरथेह माया
नमोऽस्तु देव्यै भवरूपिकायै ॥ २०

ततः स्तुता देववर्गैर्मृगेन्द्र-
मारुह्य देवी प्रगताऽवनीधम् ।
विन्ध्यं महापर्वतमुच्चशृङ्गं
चकार यं निम्नतरं त्वगस्त्यः ॥ २१

मरुत उवाच

किमर्थमग्निं भगवानगस्त्य-
स्तं निम्नशृङ्गं कृतवान् महर्षिः ।
कस्मै कृते केन च कारणेन
एतत् पदस्थामलसम्भववृत्ते ॥ २२

पुलस्त्य उवाच

पुरा हि विन्ध्येन दिवाकरस्य
गतिर्निरुद्धा गगनेधरस्य ।
रविस्ततः कुम्भभवं समेत्य
होमायसाने वचनं बभाषे ॥ २३
समागतोऽहं द्विज दूरतस्त्वां
कुरुष्व मामुद्धरणं मुनीन्द्र ।
ददस्व दानं मम यन्मनीषितं
चरामि येन त्रिदिवेषु निर्वृतः ॥ २४
इत्थं दिवाकरवचो गुणसंप्रयोगि
श्रुत्वा तदा कलशजो वचनं बभाषे ।
दानं ददामि त्वं यन्मनसस्त्वभीष्टं
नार्थी प्रयाति विमुखो मम काश्चिदेव ॥ २५
श्रुत्वा वचोऽमृतमयं कलशोद्धवस्य
ग्रह प्रभुः करतले विनिधाय मूर्ध्नि ।
एषोऽद्य मे गिरिवरः प्ररुणद्धि मार्गं
विन्ध्यस्य निम्नकरणे भगवन् यतस्य ॥ २६

श्रेष्ठ देवताओंके ऊपर अत्यन्त प्रसन्न होकर
त्रिनेत्रा (कात्यायनी) ने उच्च अट्टहास किया। इन्द्र,
विष्णु, रुद्र, चन्द्रमा, वायु, अग्नि तथा सूर्य आदि श्रेष्ठ
देव उनकी स्तुति करने लगे। योगसे विशुद्ध देहवाले
देवोंसे पूजित देवोंको नमस्कार है। ये निद्रारूपसे
पृथ्वीमें व्याप्त हैं, वे ही तृष्णा, प्रपा, क्षुधा, भयदा,
कान्ति, श्रद्धा, स्मृति, पुष्टि, क्षमा, छाया, शक्ति, लक्ष्मी,
वृत्ति, दया, भ्रान्ति तथा माया हैं। ऐसी कल्याणमयी
देवीको नमस्कार है ॥ १७—२० ॥

फिर देववर्गोंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर वे देवों
सिंहपर आरुढ़ होकर विन्ध्य नामके उस ऊँचे शृङ्गवाले
महान् पर्वतपर गयीं जिसे अगस्त्य मुनिने अग्नि निम्न
कर दिया था ॥ २१ ॥

नारदजीने पूछा—शुद्धात्मन् (पुलस्त्यजी) आप
यह मतलब कि भगवान् अगस्त्यमहर्षिने उस पर्वतको
किसके लिये एवं किस कारणसे निम्न शृङ्गवाला
कर दिया? ॥ २२ ॥

पुलस्त्यजीने कहा—प्राचीनकालमें विन्ध्य-
पर्वतने (अपने ऊँचे शिखरोंसे) आकाशधारी सूर्यको
गतिको अवरुद्ध कर दिया था। तब सूर्यने महर्षि
अगस्त्यके पास जाकर होमके अन्तमें यह वचन कहा—
द्विज! मैं बहुत दूरसे आपके पास आया हूँ। मुनिश्रेष्ठ
आप मेरा उद्धार करें। मुझे अभीष्ट प्रदान करें, जिससे
मैं निश्चिन्त होकर आकाशमें विचरण कर सकूँ। इस
प्रकार सूर्यके नम्र वचनोंको सुनकर अगस्त्यजी बोले
मैं आपकी अभीष्ट वस्तु प्रदान करूँगा। मेरे पाससे कोई
भी याचक विमुख होकर नहीं जाता। अगस्त्यजीको
अमृतमयी वाणी सुन करके सिरपर दोनों हाथ जोड़कर
सूर्यने कहा—भगवन् यह पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्य आज मेरा
मार्ग रोक रहा है, अतः आप इसे नीचा करनेका
प्रयत्न करें ॥ २३—२६ ॥

इति रविचचनादथाह कुम्भजन्मा
 कृतमिति विद्धि मया हि नीचशृङ्गम् ।
 तब किरणजितो भविष्यते महीधो
 मम चरणसमाश्रितस्य कत्र व्यथा ते ॥ २७
 इत्येवमुक्त्वा कलशोद्धवस्तु
 सूर्यं हि संस्तुय विन्ध्य भक्त्या ।
 जगाम संत्यज्य हि दण्डकं हि
 विन्ध्याचलं बृद्धवर्षमहर्षिः ॥ २८
 गत्वा वनः प्राह मुनिर्महीध्रं
 यास्ये महातीर्थवरं सुपुण्यम् ।
 बृद्धोऽस्म्यशक्तश्च तवाधिरोहुं
 तस्माद् भवान् नीचतरोऽस्तु सद्यः ॥ २९
 इत्येवमुक्तो मुनिसप्तमेन
 स नीचशृङ्गस्त्वभवन्महीध्रः ।
 समाकमच्चापि महर्षिमुख्यः
 प्रोल्लङ्घ्य विन्ध्यं त्विदमाह शैलम् ॥ ३०

यावन् भूयो निजमाञ्जवाग्नि
 महाश्रमं धीतवपुः सुतीर्थान् ।
 त्वया न तावत्तिष्ठ यद्विधित्यं
 नो चेद् विशिष्येऽहमवज्ज्यस्ते ॥ ३१
 इत्येवमुक्त्वा भगवाञ्जगाम
 दिशं स यम्यां सहसान्तरिक्षम् ।
 आक्रम्य तस्थी स हि नां नदाशां
 काले व्रजाम्यत्र यदा मुनीन्द्रः ॥ ३२
 तत्राश्रमं रम्यतरं हि कृत्वा
 संशुद्धजम्बूनदतोरणान्तम् ।
 तत्राद्य निक्षिप्य विदर्भपुत्रीं
 स्वमाश्रमं सौम्यमुपाजगाम ॥ ३३
 ऋतावृत्ती पर्वकालेषु नित्यं
 तमम्बरे द्वाश्रममावसत् सः ।
 शेषं च कालं स हि दण्डकस्थ-
 स्तपश्चक्षारामितकान्तिमान् मुनिः ॥ ३४

विन्ध्योऽपि दृष्ट्वा गगने महाश्रमं
 खृष्टं न यात्येव भयान्महर्षेः ।
 नासी निवृत्तेति मतिं विधाय
 स संस्थितो नीचतराग्रशृङ्गः ॥ ३५

सूर्यकी बल सुनकर अगस्त्यजीने कहा सूर्यदेव !
 विन्ध्यको व्याप मेरे द्वारा नीचा किया हुआ ही समझें।
 यह पर्वत आपकी किरणोंसे पराजित हो जायगा। मेरे
 चरणोंके आश्रय लेनेपर आपको अब व्यथा कैसी ? बृद्ध
 शरीरवाले महर्षि अगस्त्यजी ऐसा कहकर विनम्रतापूर्वक
 भक्तिसे सूर्यको स्तुति करनेके बाद दण्डकको छोड़कर
 विन्ध्यपर्वतके निकट चले गये। वहाँ जाकर मुनिने
 पर्वतसे कहा—पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्य ! मैं अत्यन्त पवित्र
 महातीर्थको जा रहा हूँ। मैं बृद्ध होनेसे तुम्हारे ऊपर
 चढ़नेमें असमर्थ हूँ अतः तुम तत्काल नीचा हो जाओ
 मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यके ऐसा कहनेपर विन्ध्य पर्वत निम्न
 सिखरवाला हो गया। तब महर्षिश्रेष्ठ (अगस्त्यजी) ने
 विन्ध्यपर्वतपर चढ़कर विन्ध्यको पार कर लिया और तब
 उससे यह कहा— ॥ २७—३० ॥

मैं जबतक पवित्र तीर्थसे स्नान कर पुनः अपने
 महान् आश्रममें न लौटूँ, तबतक तुम्हें नहीं बचना
 चाहिये; अन्यथा अवज्ञा करनेके कारण मैं तुम्हें घोर श्राप
 दे दूँगा। 'मैं उचित समयपर फिर आऊँगा'—ऐसा
 कहकर भगवान् अगस्त्य सहसा दक्षिण दिशाकी ओर
 चले गये तथा वहीं रह गये। मुनिने वहाँ विशुद्ध स्वर्णिम
 तोरणोंवाले अति रमणीय आश्रमकी रचना की एवं
 उसमें विदर्भपुत्री लोषामुद्राको रखकर स्वयं अपने
 आश्रमको चले गये अत्यन्त प्रकाशमान मुनि (सरदसे
 वसन्ततक) विभिन्न श्रुतियोंमें पर्व (चतुर्दशी, अष्टमी,
 अमावास्या, पूर्णिमा तिथियों तथा रवि-संक्रान्ति, सूर्यग्रहण
 एवं चन्द्रग्रहण) के समय निज आकाशमें और शेष
 समय दण्डकवनमें अपने आश्रममें निवासकर तप करने
 लगे ॥ ३१—३४ ॥

विन्ध्यपर्वत भी आकाशमें महान् आश्रमको देखकर
 महर्षिके भयसे नहीं बढ़ा। वे नहीं लौटते हैं—ऐसा
 समझकर वह अपना सिखर नीचा किये हुए अब भी
 वैसे ही स्थित है। हे महर्षे ! इस प्रकार अगस्त्यने महान्

एवं त्वगस्त्येन महाचलेन्द्रः
स नीचशृङ्गो हि कृतो महर्षे।
तस्योर्ध्वशृङ्गे मुनिसंस्तुता सा
दुर्गा स्थिता दानवनाशनार्थम्॥ ३६
देवाश्च सिद्धाश्च महोरगाश्च
विद्याधरा भूतगणाश्च सर्वे।
सर्वाप्सरोभिः प्रतिराययन्तः
कान्त्यायनीं तस्थुरपेनशोका॥ ३७

पर्वतराज विन्ध्यको नीचा कर दिया। उसीके शिखरके ऊपर मुनियोंद्वारा संस्तुता दुर्गादेवी दानवोंके विनाशके लिये स्थित हुई और देवता, सिद्ध, महानाग, अप्सराओंके सहित विद्याधर एवं स्मस्त भूतगण इनके बदले कात्यायनीदेवीको प्रसन्न करते हुए निःशोक होकर उनके निकट रहने लगे॥ ३६ ३७॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें अठारहवाँ अध्याय सम्पन्न हुआ ॥ १८ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

चण्ड मुण्डद्वारा महिषासुरसे भगवती कात्यायनीके सौन्दर्यका वर्णन,
महिषासुरका संदेश और बुद्धोपक्रम

पुलस्त्य उवाच

ततस्तु तां तत्र तदा वसन्तीं
कात्यायनीं शैलवरस्य शृङ्गे।
अपश्यतां दानवसन्तमौ द्वौ
चण्डश्च मुण्डश्च तपस्विनीं ताम्॥ १
दृष्ट्वैव शैलादवतीर्थं शीघ्र-
माजग्मतुः स्वभवनं सुराणी।
दृष्टोच्चतुस्तौ महिषासुरस्य
दूताविदं चण्डमुण्डौ दितीशम्॥ २
स्वस्थो भवान् किं त्वसुरेन्द्र साम्प्रत-
मागच्छ पश्याम च तत्र विन्ध्यम्।
तत्रास्ति देवी सुमहानुभावा
कन्या सूरूपा सुरसुन्दरीणाम्॥ ३
जितास्तया सौमधराऽनर्कहिं
जितः शशाङ्को बद्धेन तन्व्याः
नेत्रैस्त्रिभिस्त्रीणि हुतशस्त्रनि
जितानि कण्ठेन जितस्तु शङ्खः॥ ४

स्तनी सुवृत्ताक्षश्च मग्नचूचुकौ
स्थितौ विजित्वेव गजस्य कुम्भी।
त्वां सर्वजेतारमिति प्रतर्क्य
कुचीं स्मरेणौघं कृतौ सुदुर्गा॥ ५

पुलस्त्यजीने कहा - उसके बाद उस श्रेष्ठ

पर्वतशिखरपर निवास करनेवाली उन तपस्विनी कात्यायनी (दुर्गा)-को चण्ड और मुण्ड नामके दो श्रेष्ठ दानवोंने देखा और देखते ही पर्वतसे उतरकर वे दोनों असुर अपने घर चले गये। फिर उन दोनों दूतोंने दैत्यराज महिषासुरके निकट जाकर कहा 'असुरेन्द्र! आप इस समय स्वस्थ तो हैं? आइये, हमलोग विन्ध्यपर्वतपर चलकर देखें, वहाँ सुर सुन्दरियोंमें अत्यन्त सुन्दर, श्रेष्ठ लक्ष्मणोंसे युक्त एक कन्या है। उस तन्वी (सूक्ष्म देहवाली) ने केशपाशके द्वारा मेघोंको, मुखके द्वारा चन्द्रमाको, तीन नेत्रोंद्वारा तीनों (गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय) अग्नियोंको और कण्ठके द्वारा शङ्खको जीत लिया है (उसकी सोभा और तेजसे ये फीके पड़ गये हैं)'॥ १-४॥

'उसके मग्न चूचुकवाले चूत (सुडौल गोले)-स्तन हाथीके गण्डस्थलोंको मार कर रहे हैं। मालूम होता है कि कामदेवने अपनेको सर्वविजयी समझकर आपको परास्त करनेके लिये उसके दो कुचरूपी दो

पीनाः सशस्त्राः परिघोपमाश्च
भुजास्तथाऽष्टादश भान्ति तस्याः ।
पराक्रमं वै भवतो विदित्वा
कामेन यन्त्रा इव ते कृतास्तु ॥ ६
मध्यं च तस्यास्त्रिवलीतरङ्गं
विभाति दैत्येन्द्र सुरोमराजि ।
भयातुरारोहणाकातरस्म
कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम् ॥ ७
सा रोमराजी सुतरां हि तस्या
विराजते पीनकुण्डलवला ।
आरोहणे त्वद्भयकातरस्य
स्वेदप्रवाहोऽसुर मन्मथस्य ॥ ८
नाभिर्गभीरा सुतरां विभाति
प्रदक्षिणाऽस्याः परिवर्तमाना ।
तस्यैव लावण्यगृहस्य मुञ्चा
कंदर्पराज्ञा स्वयमेव वृत्ता ॥ ९
विभाति रम्यं जघनं मृगाक्ष्याः
समंततो मेखलयाऽवजुष्टम् ।
मन्याम तं कामनराधिपस्य
प्राकारगुप्तं नगरं सुदुर्गम् ॥ १०
वृत्ताबरोमी च मूढ कुमार्थाः
शोभेत कुरु समनुत्तमी हि ।
अवासनायै मकरध्वजेन
जनस्य देशाविव संनिविष्टी ॥ ११
तज्जानुयुग्मं महिषासुरेन्द्र
अर्द्धोन्नतं भाति तस्यैव तस्याः ।
सुहृा विधाता हि निरुपणाय
श्रान्तस्तथा हस्ततले ददी हि ॥ १२

जङ्घे सुवृत्तेऽपि च रोमहीने
शोभेत दैत्येश्वर ते तदीये ।
आक्रम्य लोकानिव निर्मितया
रूपार्जितस्यैव कृताधरी हि ॥ १३

पादौ च तस्याः कमलोदराभी
प्रयत्नतस्तौ हि कृती विधात्रा ।
आज्ञापि ताभ्यां नखरत्नमाला
नक्षत्रमाला गगने यथैव ॥ १४

दुर्गोकी रचना की है। शस्त्रसहित उसकी मोटी परिमके समान अठारह भुजाएँ इस प्रकार सुशोभित हो रही हैं, मानो आपका पराक्रम जानकर कामदेवने यन्त्रके समान उसका निर्माण किया है दैत्येन्द्र त्रिवलीसे तरङ्गायमान उसकी कमर इस प्रकार सुशोभित हो रही है, मानो वह भयार्त तथा अधोर कामदेवका आरोहण करनेके लिये सोपान हो असुर! उसके पीन कुचोंतककी वह रोमावलि इस प्रकार सुशोभित हो रही है, मानो आरोहण करनेमें आपके भयसे कातर कामदेवका स्वेद प्रवाह हो ॥ ५—८ ॥

‘उसकी गम्भीर दक्षिणवर्त नाभि ऐसी लगती है, मानो कंदर्पने स्वयं ही उस सौन्दर्यगृहके ऊपर झुड़ लगा दी है मेखलासे चारों ओर आवेष्टित उस भृगनयनीका जघन बड़ा सुन्दर सुशोभित हो रहा है। उसे हम राजा कामका प्राकारसे (चहारदीवारियोंसे) गुप्त (सुरक्षित) दुर्गम नगर मानते हैं उस कुमारीके वृत्ताकार रोमरहित, कोमल तथा उत्तम ऊरु इस प्रकार शोभित हो रहे हैं मानो कामदेवने मनुष्योंके निवासके लिये दो रेखोंका संनिवेश किया है। महिषासुरेन्द्र उसके अर्द्धोन्नत जानुयुगल इस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं। मानो उसकी रचना करनेके बाद यके विधाताने निरुपण करनेके लिये अपना करतल ही स्थापित कर दिया हो’ ॥ ९—१२ ॥

‘दैत्येश्वर! उसकी सुवृत्त तथा रोमहीन दोनों जंघाएँ इस प्रकार सुशोभित हो रही हैं, मानो (दिव्य) निर्मित की गयी नायिकाके रूपके द्वारा सभी लोग परावित कर दिये गये हैं। विधाताने प्रयत्नपूर्वक उसके कमलोदरके समान कान्धिवले दोनों पैरोंका निर्माण किया है उन्होंने कात्यायनीके उन चरणोंके नखरूपी रत्नशृङ्खलाको इस प्रकार प्रकाशित किया है, मानो वह आकाशमें नक्षत्रोंकी माला हो।

एवंस्वरूपा दनुनाथ कन्या
महोग्रशस्त्राणि च धारयन्ती।
दृष्ट्वा यथेष्टं न च विन्द का स
सुतः। इयं कस्यचिदेव बाला ॥ १५

तद्भूतले रत्नयनुत्तमं स्थितं
स्वर्गं परित्यज्य महासुरेन्द्र।
गत्वाथ विन्ध्यं स्वयमेव पश्य
कुरुष्व यत् तेऽभिमतं क्षमं च ॥ १६

श्रुत्वा ताभ्यां महिषासुरस्तु
देव्या प्रवृत्तिं कमनीयरूपां।
चक्रे मतिं नात्र विचारमस्ति
इत्येवमुक्त्वा महिषोऽपि नास्ति ॥ १७

प्रागेव पुंसस्तु शुभाशुभानि
स्थाने विधात्रा प्रतिपादितानि।
अस्मिन् यथा यानि यतोऽथ विप्र
स भीयते वा द्रजति स्वयं वा ॥ १८

ततोऽनु मुण्डं नगरं सचण्डं
विह्वलनेत्रं सपिशङ्गवाष्कलम्।
उग्रायुधं चिक्षुररक्तबीजी
समादिदेशाथ महासुरेन्द्रः ॥ १९

आहत्य भेरी रणकर्कशास्ते
स्वर्गं परित्यज्य महीधरं तु।
आगम्य मूले शिविरं निवेश्य
तत्स्थुश्च सज्जा सनुनन्दनास्ते ॥ २०

ततस्तु दैत्यो महिषासुरेण
सम्प्रेषितो दानवयूयपासः।
मयस्य पुत्रो रिपुसेन्यमदीं
स दुन्दुभिर्दुन्दुभिनिःस्वनस्तु ॥ २१

अभ्येत्य देवीं गगनस्थितोऽपि
स दुन्दुभिर्वाक्यमुवाच विप्र।
कुमारि दूतोऽस्मि महासुरस्य
रम्भात्मजस्याप्रतिमस्य युद्धे ॥ २२

कात्यायनी दुन्दुभिर्मभ्युवाच
एहोहि दैत्येन्द्र भयं विमुष्य।
वाक्यं च यद्रम्भसुतो वभाषे
वदस्व तत्सत्यमपेतमोहः ॥ २३

दैत्येश्वर वह कन्या बड़े और भयानक शस्त्रोंको धारण
किये हुए हैं। उसे भलीभाँति देखकर भी हम वह न
जान सके कि वह कौन है तथा किसको पुत्री या स्त्री
है। महासुरेन्द्र! वह स्वर्गका परित्याग कर भूतलमें स्थित
श्रेष्ठरत्न है। आप स्वयं विन्ध्यपर्वतपर जाकर उसे देखें
और फिर जो आपकी इच्छा एवं सामर्थ्य हो वह
करें ॥ १६-१६ ॥

उन दोनों दूतोंसे कात्यायनीके आकर्षक सौन्दर्यकी
शत सुनकर महिषने इस विषयमें कुछ भी विचारना
नहीं है—यह कहकर जानेको निश्चय किया। इस प्रकार
मानो महिषका अन्त ही आ गया। मनुष्यके शुभाशुभको
ब्रह्मने पहलेसे ही निर्धारित कर रखा है जिस व्यक्तिको
जहाँपर या जहाँसे जिस प्रकार जो कुछ भी शुभाशुभ
परिणाम होनेवाला होता है, वह वहाँ से जाता है
या स्वयं चला जाता है फिर महिषने मुण्ड, नगर,
चण्ड, विह्वलनेत्र, पिशङ्गके साथ वाष्कल, उग्रायुध,
चिक्षुर और रक्तबीजको आज्ञा दी वे सभी दानव
रणकर्कश भेरियाँ बजाकर स्वर्गको छोड़कर उस पर्वतके
निकट आ गये और उसके मूलमें सेनाके दलोंका पड़ाव
डालकर युद्धके लिये तैयार हो गये ॥ १७-२० ॥

तत्पश्चात् महिषासुरने देवीके पास धौसेकी ध्वनिकी
भाँति उच्च और गम्भीर ध्वनिमें बोलनेवाले तथा
शत्रुओंकी सेनाओंके सम्पूर्णका मर्दन करनेवाले दानवोंके
सेनापति मयपुत्र दुन्दुभिको भेजा। ब्राह्मणदेवता नारदजी।
दुन्दुभिने देवीके पास पहुँचकर आकर्षणमें स्थित होकर
उन्से वह वाक्य कहा—हे कुमारि! मैं महान् असुर
रम्भके पुत्र महिषका दूत हूँ। वह युद्धमें अद्वितीय
वीर है इसपर कात्यायनीने दुन्दुभिसे कहा दैत्येन्द्र!
तुम निहार होकर इधर आओ और रम्भपुत्रने जो
वचन कहा है उसे स्वस्थ होकर ठीक-ठीक कहो।

तथोक्तवाक्ये दितिजः शिवायाः
 सत्यज्याम्बरं भूमितले निधपणः ।
 सुखोपविष्टः परमासने च
 रम्भात्मजेनोक्तमुवाच वाक्यम् ॥ २४

इन्द्रभिरुवाच
 एवं सपाज्ञापयते सुरारि-
 स्त्वां देवि दैत्यो महिषासुरस्तु ।
 यथापरा हीनबलः पृथिव्यां
 भ्रमन्ति युद्धे विजित्य मया ते ॥ २५
 स्वर्गं मही वायुपथाश्च जगत्याः
 पातालमन्ये च महेश्वराणां ।
 इन्द्रोऽस्मि रुद्रोऽस्मि दिवाकरोऽस्मि
 सर्वेषु लोकेष्वधिपोऽस्मि खले ॥ २६
 न खोऽस्ति नाके न महीतले वा
 रसातले देवभटोऽसुरो
 यो मां हि संग्राममुपयिवांस्तु
 भूतो न यक्षो न जिजीविषुर्यः ॥ २७
 यान्येव रत्नानि महीतले वा
 स्वर्गोऽपि पातालतलेऽथ मुग्धे ।
 सर्वाणि मामद्य समागतानि
 धीर्याभितानीह विशालनेत्रे ॥ २८
 स्त्रीरत्नमयं भवती च कन्या
 प्राप्नोऽस्मि शैलं तव कारणेन ।
 तस्माद् भजस्वेह जगत्पतिं मां
 पतिस्तवाहोऽस्मि विभुः प्रभुश्च ॥ २९

पुलस्त्य उवाच
 इत्येवमुक्ता दितिजेन दुर्गा
 कात्यायनी प्रह मयस्य पुत्रम् ।
 सत्यं प्रभुर्दान्वराद् पृथिव्यां
 सत्यं च युद्धे विजितामराश्च ॥ ३०
 किं त्वस्ति दैत्येश कुलेऽस्मदीये
 धर्मो हि शुल्काख्य इति प्रसिद्धः ।
 तं चेत् प्रदद्यान्महिषो ममाद्य
 भजामि सत्येन पतिं हयारिम् ॥ ३१
 श्रुत्वाऽथ वाक्यं मयजोऽन्वचीच्छ
 शुल्कं वदस्याम्बुजपत्रनेत्रे ।
 दद्यात्स्वमूर्धानमपि त्वदर्शं
 किं नाप शुल्कं यदिहैव लभ्यम् ॥ ३२

दुर्गाके इस प्रकार कहनेपर वह दैत्य आकाशसे
 उतरकर पृथ्वीपर आया और सुन्दर आसनपर
 सुखपूर्वक बैठकर महिषके वचनोंको इस प्रकार कहने
 लगा — ॥ २१— २४ ॥

इन्द्रुभि बोला— देवि : असुर महिषने तुम्हें यह
 अवगत कराया है कि मेरे द्वारा युद्धमें पराजित हुए
 निर्बल देवतालोग पृथ्वीपर भ्रमण कर रहे हैं : हे बाले !
 स्वर्ग, पृथ्वी, वायुमार्ग, पाताल और राक्षस आदि देवगण
 सभी मेरे वशमें हैं। मैं ही इन्द्र, रुद्र एवं सूर्य हूँ तथा
 सभी लोकोंका स्वामी हूँ। स्वर्ग, पृथ्वी या रसातलमें
 जीवित रहनेकी इच्छावाला ऐसा कोई देव, असुर, भूत
 या यक्ष योद्धा नहीं हुआ, जो युद्धमें मेरे सामने आ
 सकता हो। (और भी सुनो) पृथ्वी, स्वर्ग या पातालमें
 जितने भी रत्न हैं, उन सबको मैंने अपने पराक्रमसे जीत
 लिया है और अब वे मेरे पास आ गये हैं। अतः अयोध
 बालिके। तुम कन्या हो और स्त्रीरत्नोंमें श्रेष्ठ हो, मैं
 तुम्हारे लिये इस पर्वतपर आया हूँ। इसलिये मुझ
 अंगस्थितिको तुम स्वीकार करो। मैं तुम्हारे योग्य सर्वथा
 समर्थ पति हूँ ॥ २५— २९ ॥

पुलस्त्यजीने कहा उस दैत्यके ऐसा कहनेपर
 दुर्गाकीने इन्द्रुभिसे कहा—(असुरदूत) यह सत्य है कि
 दानवराट्ट महिष पृथ्वीमें समर्थ है एवं यह भी सत्य है
 कि उसने युद्धमें देवताओंको जीत लिया है, किंतु
 दैत्येश ! हमारे कुलमें (विनाहके विषयमें) शुल्क
 नामको एक प्रथा प्रचलित है। यदि महिष आज मुझे यह
 प्रदान करे तो सत्परूपमें (सचमुच) मैं उस (महिष)
 को पतिरूपमें स्वीकार कर लूंगी। इस वाक्यको सुनकर
 इन्द्रुभिने कहा—(अच्छा) कमलपत्राक्षि ! तुम यह शुल्क
 बतलाओ। महिष तो तुम्हारे लिये अपना सिर भी प्रदान
 कर सकता है शुल्ककी तो बात ही क्या, जो यहाँ हो
 मिला सकता है ॥ ३०— ३२ ॥

पुस्तक उक्ता

इत्येवमुक्ता दनुनायकेन
कात्यायनी संस्वनमुन्दित्वा ।
विहस्य चैतद्गुधं बभूवे
हिताय सर्वस्य चराचरस्य ॥ ३३ ॥

श्रीदेवीकथन

कुलेऽस्मदीये भृगु दैत्य शुल्कं
कृतं हि दत्तपूर्वतरः प्रसह्य ।
यो जेष्यतेऽस्मत्कुलजां रणाग्रे
तस्याः स भक्तोऽपि भविष्यतीति ॥ ३४ ॥

पुस्तक उक्ता

तच्छ्रुत्वा चचनं देव्या दुन्दुभिर्दानवेश्वरः ।
गत्वा भिवेदयामास महिषाय यथातथम् ॥ ३५ ॥

स चाभ्यगान्महातेजाः सर्वदैत्यपुरःसरः ।
आगत्य त्रिन्ध्यशिखरं योद्धुकामः सरस्वतीम् ॥ ३६ ॥

ततः सेनापतिर्दैत्यश्चिशुरो नाम नारदः ।
सेनाग्रगामिनं चक्रे नमः नाम दानवम् ॥ ३७ ॥

स चापि तेनाधिकृतश्चतुरङ्गं समूर्जितम् ।
बलैकदेशमादाय दुर्गां दुष्टालं वेगितः ॥ ३८ ॥

तमापतन्तं वीक्ष्याद्य देवा ब्रह्मपुरोगमाः ।
ऊर्चुर्वाक्यं महादेवीं यमं ह्याबन्ध चाम्बिके ॥ ३९ ॥

अथोवाच सुरान् दुर्गां नाहं बध्नामि देवताः ।
कवचं कोऽत्र संतिष्ठेत् ममाग्रे दानवाधमः ॥ ४० ॥

यदा न देव्या कवचं कृतं शस्त्रनिर्घर्षणम् ।
तदा रक्षार्थमस्मास्तु विष्णुपञ्जरमुक्त्वान् ॥ ४१ ॥

सा तेन रक्षिता ब्रह्मन् दुर्गां दानवसत्तमम् ।
अवध्यं दैवतैः सर्वैर्महिषं धन्वपीडयत् ॥ ४२ ॥

एवं पुरा देववरेण सम्भुना
तद्विष्णवं पञ्जरमायताक्ष्याः ।

प्रोक्तं तया चापि हि पादपातैः-
निधूदितोऽसौ महिषासुरेन्द्रः ॥ ४३ ॥

एवंप्रभावो द्विज विष्णुपञ्जरः
सर्वासु रक्षास्वधिको हि भीतः ।

कस्तस्य कुर्याद् युधि दर्पहानिं
यस्य स्थितश्चेतसि चक्रपाणिः ॥ ४४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें दन्वीसर्वो अध्याय समाप्त हुआ ॥ १९ ॥

पुस्तकजी बोले— दैत्यनायक दुन्दुभिके ऐसा कहनेपर दुर्गाजीने उष्ण स्वरसे गर्जन कर और हैसकर समस्त चराचरके कल्याणार्थ यह वचन कहा ॥ ३३ ॥

श्रीदेवीजीने कहा— दैत्य! पूर्वजोंने हमारे कुलमें जो शुल्क निर्धारित किया है, उसे सुनो। (वह यह है कि) हमारे कुलमें उत्पन्न कन्याको जो बलसे युद्धमें जीतेगा, वही उसका पति होगा ॥ ३४ ॥

पुस्तकजीने कहा— देवीकी यह बात सुनकर दुन्दुभिके जाकर महिषासुरसे इस बातको ज्यों का त्यों निवेदित कर दिया उस महातेजस्वी दैत्यने सभी दैत्योंके साथ (युद्धमें देवीकी पराजितकर उसका पति बननेके लिये) प्रयाण किया एवं सरस्वती (देवी)-से युद्ध करनेकी इच्छासे त्रिन्ध्याचल पर्वतपर पहुँच गया। तारदजी। उसके पश्चात् सेनापति विश्वर नामक दैत्यने नमर नामके दैत्यको सेनाके आगे चलनेका निर्देश दिया। और वह भी महान् बली असुर उससे निर्देश पाकर बलशाली चतुरंगिणी सेनाको एक लड़ाई दुर्गाकी लेंकार वेगपूर्वक दुर्गाजीपर धावा बोल दिया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

उसे आते देखकर ब्रह्मा आदि देवताओंने महादेवीसे कहा—अम्बिके आप कवच बाँध लें। उसके बाद देवीने देवताओंसे कहा देवगण मैं कवच नहीं बाँधूंगी, मेरे सामने ऐसा कौन अधम दानव है जो यहाँ युद्धमें ठहर सके? जब देवीने रास्त्र-निवातक कवच न पहना तो उनकी रक्षाके लिये देवताओंने (पूर्वज) विष्णुपञ्जरस्तोत्र पढ़ा। ब्रह्मन्! उससे रक्षित होकर दुर्गां समस्त देवताओंके द्वारा अवध्य दानव-श्रेष्ठ महिषासुरको खूब पीड़ित किया। इस प्रकार पहले देवश्रेष्ठ सम्भुने बड़े नेत्रोंवाली (कल्याणपी) से उस वैष्णव पञ्जरको कहा था, उसीके प्रभावसे उन्होंने (देवीने) भी पैंतसे मारकर उस महिषासुरका कवच निकाल दिया। द्विज! इस प्रकारके प्रभावसे युक्त विष्णुपञ्जर समस्त रक्षाकारी (स्तोत्रों)-में श्रेष्ठ कहा गया है। वस्तुतः जिसके वित्तमें चक्रपाणि स्थित हों, युद्धमें उसके अभिमानको फौज मह कर सकता है ॥ ३९ ॥ ४४ ॥

बीसवाँ अध्याय

भगवती कात्यायनीका दैत्योंके साथ युद्ध, महिषासुर वध एवं देवीका शिवजीके पादमूलमें लीन हो जाना

उपक्रम

कथं कात्यायनी देवी सानुगं महिषासुरम् ।
सबाह्नं हतवती तथा विस्तरते वद ॥ १
एतच्छ संशयं ब्रह्मन् इदि मे परिवर्तते ।
विद्यमानेषु शस्त्रेषु यत्पदभ्यां तममर्दयत् ॥ २

पुनस्तथा उपक्रम

शृणुष्यावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम् ।
वृत्तां देवयुगस्यादी पुण्यां पापभयापहाम् ॥ ३

एवं स भगवतः क्रुद्धः समापतत वेगवान् ।
सगजाश्वरथो ब्रह्मन् दृष्टो देव्या यद्येच्छया ॥ ४

ततो बाणगणैर्दित्यः सभानप्याथ कार्मुकम् ।
यवर्षं शैलं धारीघर्षीरिवाम्बुदवृष्टिभिः ॥ ५

शरवर्षेण तेनाथ विलोक्याग्निं समगृत्तम् ।
क्रुद्धा भगवती वेगादावकर्षं धनुर्वरम् ॥ ६
तद्धनुर्दानवे सैन्धे दुर्गया नाभितं बलात् ।
सुवर्णपुष्टं विषभी विद्युदम्बुधरेष्विव ॥ ७

बाणैः सुरपिपून्यान् खड्गेनान्यान् शुभ्रव्रतम् ।
गदया पुसलेनान्यांश्चर्मणाऽन्यानपातयत् ॥ ८

एकोऽप्यसी बहून् देव्याः केसरी कालसंनिभः ।
विधुन्वन् केसरसटां निषूदयति दानवान् ॥ ९

कुलिशाभिहता दैत्यः शक्त्या निर्भिन्नवक्षसः ।
लाङ्गुलीर्दारितग्रीवा विनिकृताः परमृष्टैः ॥ १०

दण्डनिर्भिन्नशिरसश्चक्रविच्छिन्नबन्धनाः ।
चेतुः पेतुश्च भस्त्वश्च तत्पञ्चुश्चापरे रणम् ॥ ११

नारदजीने पूछा (पुलस्त्यजी) दुर्गादेवीने सेना एवं वाहनोंके सहित महिषासुरको किस प्रकार मार डाला, इसे आप विस्तारसे कहें। मेरे मनमें यह शंका घर कर गयी है कि शस्त्रोंके विद्यमान होते हुए भी देवीने पैरोंसे उसे क्यों मारा? ॥ १-२ ॥

[फिर नारदजीके प्रश्नको सुनकर] पुलस्त्यजीने कहा— नारदजी देखभुगके आदिमें धटित तथा पाप एवं भयको दूर करनेवाली इस प्राचीन एवं पवित्र कथाको आप सावधान होकर सुनिये एक बार इसी प्रकार (अर्थात् पूर्ववर्णित रीतिसे क्रुद्ध होकर नमरने भी हाथी, घोड़े और रथोंके साथ वेगपूर्वक देवीके ऊपर आक्रमण कर दिया था। फिर देवीने भी उसे भलीभाँति देखा। इसके बाद दैत्यने अपने धनुषको झुकाकर (चढ़ाकर) विन्ध्य पर्वतके ऊपर इस प्रकारसे बाण-वर्षा की जैसे आकाशसे बादल (उसपर) धारा-प्रवाह (मूसलाधार) जलवृष्टि करता हो उसके बाद उस दैत्यकी बाण-वर्षासे पर्वतको सर्वथा ढका देखकर देवीको बड़ा क्रोध हुआ और तब उन्होंने वेगपूर्वक झट विशाल धनुषको खड़ा लिया ॥ ३-६ ॥

श्रीदुर्गाजीद्वारा चढ़ाया गया सोनेकी चोटवाला चाह धनुष दानवी-सेनामें इस प्रकार चमक उठा, जैसे बादलोंमें बिजली चमकती है शुभ व्रतवाले श्रीनारदजी! श्रीदुर्गाजीने कुछ दैत्योंको बाणोंसे, कुछको तलवारसे, कुछको गदासे, कुछको मुसलसे और कुछ दैत्योंको डाल चलाकर ही मार डाला। कालके समान देवीके सिंहने (भी) अपनी गर्दनके बालोंको झाड़ते हुए अकेला ही अनेकों दैत्योंका संहर कर डाला। देवीने कुछ दैत्योंको वज्रसे आहत कर दिया, कुछ दैत्योंके वक्षःस्थलको शक्तिसे फट डाला, कुछके गर्दनको हलसे विदीर्ण कर कुछको फरसेसे काट डाला, कुछके शिरको दण्डसे फोड़ दिया तथा कुछ दैत्योंके शरीरके संधि स्थानोंको चक्रसे छिन्न-भिन्न कर दिया। कुछ पहले ही चले गये, कुछ गिर गये, कुछ मूर्च्छित हो गये और कुछ युद्धभूमि छोड़कर भाग गये ॥ ७-११ ॥

ते चध्यमाना रौद्रया दुर्गया दैत्यदानवाः ।
 कालरात्रिं मन्यमाना दुहवुर्भयपीडिताः ॥ १२
 सैन्याग्रं भगमास्तेष्वथ दुर्गामग्रे तथा स्थिताम् ।
 दृष्ट्वा जगाम नमरो मत्तकुञ्जरसंस्थितः ॥ १३
 समागम्य च वेगेन देव्याः शक्तिं मुपोच ह ।
 त्रिशूलमपि सिंहाय प्राहिणोद् दानवो रणे ॥ १४
 तत्रापतन्तीं देव्यां तु हुंकारेणाथ भस्मसात् ।
 कृतावय गजेन्द्रेण गृहीतो मध्यतो हरिः ॥ १५
 अधोत्पत्य च वेगेन तलेनाहत्य दानवम् ।
 गतासुः कुञ्जरस्कन्धात् क्षिप्य देव्यै निवेदितः ॥ १६
 गृहीत्वा दानवं मध्ये ब्रह्मन् कात्यायनी रुषा ।
 सव्येन पाणिना भ्राम्य वादयत् पटई यथा ॥ १७
 ततोऽद्भुतं मुमुचे तादृशे वाद्यतां गते ।
 हास्यात् समुद्रवंस्तस्या भूतं नानाविधाद्भुताः ॥ १८
 केचिद् व्याघ्रमुखा रीश वृकाकारस्तथा परे ।
 हयास्या महिषास्याश्च वराहवदना परे ॥ १९
 आखुकुक्कुटवक्त्राश्च गोऽन्धविक्कुटमुखास्तथा ।
 नानावक्त्राक्षिचरणा नानायुधधरास्तथा ॥ २०
 गायन्त्यन्ये हसन्त्यन्ये रमन्त्यन्ये तु संघषाः ।
 वादयन्त्यपरे तत्र स्तुवन्त्यन्ये त्रिधाभिव्रजाम् ॥ २१
 सा तैर्भूतगणैर्देवी सार्द्धं तद्दानवं बलम् ।
 शातयामास चाक्रम्य यथा भस्मं महाशनिः ॥ २२
 सेनाग्रे निहते तस्मिन् तथा सेनाग्रगमिनि ।
 चिक्षुरः सैन्यपालस्तु योधयामास देवताः ॥ २३

कार्मुकं दृढभाकर्णमाकृष्य रथिनां वरः ।
 यवर्षं शरज्वालानि यथा मेघो वसुंधराम् ॥ २४

भयंकर रूपवाली दुर्गाद्वारा मारे जा रहे दैत्य एवं दानव भयसे व्याकुल हो गये तथा वे उन्हें कालरात्रिके समान मानते हुए डरते भाग चलते सेनाके अग्र (प्रधान) भागको नष्ट तथा अपने सम्मुख दुर्गाको स्थित देखकर नम्र मतवाले हाथीपर चढ़कर आगे आया । उस दानवने युद्धम देवीके ऊपर शक्तिसे कसकर प्रहार किया एवं सिंहके ऊपर त्रिशूल चलाया । (किंतु) देवीने उन दोनों अस्त्रोंको आगे देख हुंकारसे ही उन्हें भस्म कर डाला । इधर नमरके हाथीने (सूँइसे) सिंहकी कमर पकड़ ली ॥ १२—१५ ॥

इसपर सिंहने तेजीसे उछलकर नम्र दानवको पंखसे मारकर उसके प्राण ले लिये और हाथीके कंधेसे उसे नीचे गिराकर देवीके आगे रख दिया । नारदजी देवी कात्पायनी प्रोधसे उस दैत्यको मध्यमें पकड़कर तथा बायें हाथसे घुमाकर घोरके समान बजाने लगीं और उसे अपना बाण बनाकर उन्होंने घोरसे अद्भुतस किया । उनके हँसनेसे अनेक प्रकारके अद्भुत भूत उत्पन्न हो गये कोई-कोई (भूत) व्याघ्रके समान भयंकर मुखवाले थे, किसीकी आकृति भेड़ियेके समान थी, किसीका मुख घोड़ेके तुल्य और किसीका मुख भैंसे-जैसा एवं किसीका सूकरके समान मुँह था ॥ १६—१९ ॥

उनके मुँह चूहे, भुँगे (कुक्कुट), गाय, बकरा और भेड़के मुखोंके समान थे । कई नाना प्रकारके मुख, आँख एवं चरणवाले थे तथा वे नाना प्रकारके आयुध धारण किये हुए थे । उनमें कुछ तो समूह बनाकर गाने लगे, कुछ हँसने लगे और कुछ रमण करने लगे तथा कुछ बाजा बजाने लगे एवं कुछ देवीकी स्तुति करने लगे देवीने उन भूतगणोंके साथ उस दानव-सेनापर आक्रमण कर उसे इस प्रकार तहस-नहस कर दिया, जैसे भारी वज्रके समान ओलोंके गिरनेसे खेतीका संहार हो जाता है । इस प्रकार सेनाके अग्रभाग तथा सेनापतिके मारे जानेपर अब सेनापति बिभुर देवताओंसे भिड़ गया युद्ध करने लगा ॥ २०—२३ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ उस दैत्यने अपने मजबूत धनुषको अपने कानोंतक चढ़ाकर उससे बाणोंकी इस प्रकार वर्षा की जैसे मेघ पृथ्वीपर (घनघोर) बल बरसाले हैं । परंतु

तान् दुर्गं स्वशरिण्डित्वा शरसंधान् सुपर्वीभिः ।
सौवर्णपुङ्गवानपराञ् शराञ्जग्राह बोद्धशः ॥ २५

ततश्चतुर्भिश्चतुरस्तुरङ्गानपि भामिनी ।
हत्वा सारथियेकेन श्वजमेकेन चिच्छिन्दे ॥ २६

ततस्तु सशरं चार्प चिच्छेदैकेषुणाऽम्बिका ।
छिन्ने धनुषि खड्गं च चर्म चावतखान् बली ॥ २७
तं खड्गं चर्मणा सार्पं दैत्यस्याधुन्वतो बलात् ।
शरिश्चतुर्भिश्चिच्छेद ततः शूलं समाददे ॥ २८

समुदधाम्य महच्छूलं संप्राद्वदधाम्बिकाम् ।
क्रोड्डुको मुदितोऽरण्ये मृगराजवधू यथा ॥ २९

तस्याभिपततः पादौ करौ शीर्षं च एकद्विभिः ।
शरिश्चिच्छेद मंकुट्ठा न्यपतन्निदृशोऽसुरः ॥ ३०

तस्मिन् सेनापतौ क्षुण्णे तदोप्राप्त्यो महासुरः ।
समाद्वक्त वेगेन करालास्यश्च दानवः ॥ ३१

बाष्कलश्रोद्धतश्चैव वदप्राख्योग्रकार्मुकं ।
दुर्द्धरो धुर्मुखश्चैव बिडालनयनोऽपरः ॥ ३२

एतेऽन्ये च महात्मानो दानवा बलिनां वराः ।
कात्यायनीभाद्रवन्त नानाशस्त्रास्त्रपाणयः ॥ ३३

तान् दृष्ट्वा स्त्रीलया दुर्गा वीणां जग्राह पाणिना ।
वादयामास हसती तथा डमरुकं वरम् ॥ ३४

यथा यथा वादयते देवी वाद्यानि तानि तु ।
तथा तथा भूतगणा नृत्यन्ति च हसन्ति च ॥ ३५

ततोऽसुराः शस्त्रधराः सपथ्येत्य सरस्वतीम् ।
अध्यजन्तान्श्च जग्राह केशेषु परमेश्वरी ॥ ३६

प्रगृह्य केशेषु महासुरास्तान्
उत्पत्य सिंहासु षण्णस्य भानुम् ।

ननर्त वीणां परिवादयन्ती
पपी च पानं जगत्ते जनित्री ॥ ३७

ततस्तु देव्या बलिनो महाभुरा
दोर्दण्डभिर्धृतविशीर्णदर्पाः ।

विस्त्रस्तवस्त्रा व्यसवश्च जाता
ततस्तु तान् वीक्ष्य महासुरेभ्यः ॥ ३८

देव्या भर्ता महाविषामुस्तु
स्वज्ञावधत् भूतगणान् सुरादौ ।
तुण्डेन पुच्छेन तथोरसाऽन्याम्
नि क्षास्यतेन च भूतसंघान् ॥ ३९

दुर्गने भी सुन्दर पर्वी (गौठी) वाले अपने बाणोंसे उन बाणोंको काट डाल्य और फिर सुवर्णसे निर्मित पंखवाले सोलह बाणोंको अपने हाथोंमें ले लिया। उन्होंने क्रुद्ध होकर चार बाणोंसे उसके चार घोड़ोंको और एकसे सारथीको मारकर एक बाणसे उसकी ध्वजाके दो टुकड़े कर दिये फिर अम्बिकाने एक बाणसे उसके बाणसहित धनुषको काट डाला। धनुष काट जानेपर बलवान् चिबुरने उल्ल और तलवा उठा ली ॥ २४—२७ ॥

वह डाल और तलवारको जोर लगाकर घुमा ही रहा कि देवीने चार बाणोंसे उन्हें काट डाला इसपर उस दैत्यने शूल ले लिया महान् शूलको घुमाकर वह अम्बिकाकी ओर इस प्रकार दौड़ा, जैसे घनमें सियाव आनन्दवज्र होकर सिंहिनीकी ओर दौड़े। पर देवीने अत्यन्त क्रुद्ध होकर पाँच बाणोंसे उस असुरके दोनों हाथों दोनों पैरों एवं मस्तकको काट डाल्य जिससे वह असुर भरकर गिर पड़ा उस सेनापतिके मरनेपर उप्रास्य नामक महान् असुर तथा करालास्य नामका दानव ये दोनों तेजीसे उनकी ओर दौड़े ॥ २८—३१ ॥

बाष्कल, उद्धत, वदय, उपकार्मुक, दुर्द्धर, धुर्मुख तथा बिडालास्य ये तथा अन्य अनेक अत्यन्त बली एवं श्रेष्ठ दैत्य शस्त्र और अस्त्र लेकर दुर्गाकी ओर दौड़ पड़े। देवी दुर्गाने उन्हें देखा और वे स्त्रीलापूर्वक हाथोंमें वीणा एवं श्रेष्ठ डमरू लेकर हैसती हुई उन्हें बजाने लगीं। देवी उन वाद्योंको ज्यों ज्यों बजती जाती थीं, त्यों त्यों सभी भूत भी नाचते और हैसते थे ॥ ३२—३५ ॥

अब असुर तत्पत्र लेकर महासरस्वतीरूपा दुर्गाके पास जाकर उनपर प्रहार करने लगे पर परमेश्वरीने (तुरन्त) उनके बालोंको जोरके साथ पकड़ लिया। उन महासुरोंका केश पकड़कर और फिर सिंहसे उछलकर पर्वत शृङ्गपर जाकर जगज्जननी दुर्गा वीणा वादन करती हुई मधुपान करने लगीं। तभी देवीने अपने बाहुदण्डोंसे सभी असुरोंकी मारकर उनके यमण्डको चूर कर दिया। उनके वस्त्र शरीरसे छिसक पड़े और वे प्राणतहित हो गये। यह देखकर महाबली महिषासुर अपने खुरके अग्रभागसे, तुण्डसे, पुच्छसे, वक्षःस्थलसे तथा नि क्षास वापुसे देवीके भूतगणोंको भगाने लगा ॥ ३६—३९ ॥

नादेन चैवाशानिसंनिभेन
विषाणकोट्या त्वपरान् प्रमथ्य।
दुद्राव सिंह युधि हन्तुकामः
ततोऽम्बिका क्रोधवशं जगाम ॥ ४० ॥
ततः स कोपादध सीक्षणाश्रुः
क्षिप्रं गिरान् भूमिपशीर्णयच्च।
संक्षोभयन्तोयनिधीन् घनांश्च
विष्वसयन् प्राद्रवताश्च दुर्गाम् ॥ ४१ ॥
सा चाथ पार्श्वेन ब्रह्मन् दुष्टं
स चाप्यभूत् क्लिन्नकटः करीन्द्रः।
करं प्रचिच्छेद च हस्तिभोज्यं
स चापि भूयो महिषोऽभिजातः ॥ ४२ ॥
ततोऽस्य शूलं व्यसृजन्मुडानी
स शीर्षमूलो न्यपतत् पृथिव्याम्।
शक्तिं प्रचिक्षेप हुताशदत्तां
सः कुण्ठिताग्रा न्यपतन्महर्षे ॥ ४३ ॥
चक्रं हरेर्दानवचक्रहन्तुः
क्षिप्तं त्वचक्रत्वमुपापतं हि।
गदां समाविध्य धनेश्वरस्य
क्षिप्ता तु भग्ना न्यपतत् पृथिव्याम् ॥ ४४ ॥
जलेशपाशोऽपि महासुरेण
विषाणानुण्डाग्रसुरप्रणुनः।
निरस्य तत्कोपितया च भुक्तो
दण्डस्तु गाम्यो बहुरखण्डतां गतः ॥ ४५ ॥
वज्रं सुरेन्द्रस्य च विग्रहेऽस्य
मुक्तं सुसूक्ष्मत्वमुपाजगाम।
संत्यज्य सिंहं महिषासुरस्य
दुर्गाऽधिरुद्धा सहसैव पृष्ठम् ॥ ४६ ॥
मुष्टिस्थितायां महिषासुरोऽपि
पोप्लूयते वीर्यमदान्मुडान्याम्।
सा चापि मदभ्यां मुदुकोमलाभ्यां
ममर्द तं क्लिन्नमिवाजिनं हि ॥ ४७ ॥
स मृगमानो धरणीधराधो
देव्या बली होपबलो बभूव।

और अपने बिजलीकी कड़कके समान गद्ग एवं
सोंगोंकी नोकसे लेश भूतोंको व्याकुल कर रणक्षेत्रमें
सिंहको मारने दीड़ा। इससे अम्बिकाको बड़ा क्रोध
हुआ। फिर वह क्रुद्ध महिष अपने नुकीले सोंगोंसे
जल्दी-जल्दी पर्वतों एवं पृथ्वीको विदीर्ण करने लगा।
वह समुद्रको क्षुब्ध करते तथा मेघोंको तितर-बितर करते
हुए दुर्गाको ओर दीड़ा इसपर उन देवीने उस दुष्टको
पाशसे बाँध दिया, पर वह झटसे मदसे भीगे कपोलोंवाला
गजराज बन गया। (तब) देवीने उस गजके मुण्डका
अगल पाग काट डाला। अब उसने पुनः भैंसेका रूप
धारण कर लिया 'महर्षि नारदजी! उसके बाद देवीने
उसके ऊपर शूल फेंका जो टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा।
तत्पश्चात् उन्होंने अग्निसे प्राप्त हुई शक्ति फेंकी, किंतु वह
भी टूटकर गिर पड़ी ॥ ४०—४३ ॥

दानवसमूहको मारनेवाला विष्णुप्रदत्त चक्र भी
फेंके जानेपर व्यर्थ हो गया। देवीने कुचेद्दारा दी गयी
गदा भी घुमाकर फेंकी, पर वह भी भग्न होकर
पृथ्वीपर गिर पड़ी। महिषने सरणके पाशको भी अपने
सोंग, घूटना एवं खुरके प्रहारसे विफल कर दिया
फिर क्रुपित होकर देवीने ममदण्डको छोड़ा, पर उसे
भी उसने तोड़कर कई खण्ड-खण्ड कर डाला।
उसके शरीरपर देवीद्वारा छोड़ा गया इन्द्रका वज्र भी
छोटे-छोटे टुकड़ोंमें बिखर गया। अब दुर्गाजी सिंहको
छोड़कर सहसा महिषासुरकी पीठपर ही चढ़ गयीं
देवीके पीठपर चढ़ जानेपर भी महिषासुर अपने बलके
मदसे उछलता रहा। देवी भी अपने मृदुल तथा कोमल
चरणोंसे भीगे मृगचर्मके समान उसकी पीठको मर्दन
करती गयीं ॥ ४४—४७ ॥

अन्तमें देवीद्वारा कुचला जाता हुआ पर्वताकार

ततोऽस्य शूलेन विभेद कण्ठं
तस्मात् पुमान् खड्गधरो विनिर्गतः ॥ ४८
निष्क्रान्तमात्रं हृदये यदा तं
आहत्य संगृह्य कचेषु कोषान्।
शिरः प्रचिच्छेद वरासिनाऽस्य
हाहाकृतं दैत्यबलं तदाऽभूत् ॥ ४९
सचण्डमुण्डाः समयाः सताराः
सहासिलोम्ना भयकातराक्षाः।
संताड्यमानाः प्रमथैर्भवान्यारः
पातालमेवाविशिर्भयार्ताः ॥ ५०
देव्या जयं देवगणा किलोक्य
स्तुवन्ति देवीं स्तुतिभिर्महर्षे।
नारायणीं सर्वजगत्प्रतिष्ठां
कात्यायनीं घोरमुखीं सुरूपाम् ॥ ५१
संस्तूयमाना सुरसिद्धसर्व-
निघण्णभूता हरपादमूले।
भूयो भविष्याम्यपरार्धमेव-
मुक्त्वा सुरास्तान् प्रविवेश सुरां ॥ ५२

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २० ॥

॥ २० ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

देवीके पुनराविर्भाव सम्बन्धी प्रश्नोत्तर: कुरुक्षेत्रस्थ पृथूदकतीर्थका प्रसङ्गः
संवरण-तपतीका विवाह

नारद उवाच

नारदजीने कहा— ब्रह्मज्ञानियोंमें केह पुलस्त्यजी।

पुलस्त्य कक्षतां तावद् देव्या भूयः समुद्भव।
महत्कीतूहलं मेऽद्य विस्तराद् ब्रह्मविषम ॥ १

अब आप देवीकी उत्पत्तिके विषयमें मुझसे पुनः विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये उसे सुननेकी मेरी बड़ी अभिलाषा है ॥ १ ॥

पुलस्त्य उवाच

पुलस्त्यजी बोले— मुनिजी। सुनिये; मैं पुनः

श्रूयतां कथयिष्यामि भूयोऽस्याः सम्भवं पुनः।
शुम्भासुरवधार्थाय स्तेकानां हितकाम्यया ॥ २

लोककल्याणकी इच्छासे शुम्भ नामक असुरके वधके लिये देवीकी ओ पुनः उत्पत्ति हुई, उसका वर्णन करता हूँ भगवान् शङ्करने हिमवान्की जिस तपस्विनी कन्या उमासे विवाह किया था, उन्हींके शरीर-कोश (गर्भ) से उत्पन्न होनेके कारण ये देवी कौशिकी कहलायीं।

या सा हिमवतः पुत्री भवेनोडा तपोधना।
उमा नाम्ना च तस्याः सा क्रोशन्जाता तु कौशिकी ॥ ३

सम्भूय विन्ध्यं गत्वा च भूयो भूतगणैर्वृतः।
शुम्भं चैव निशुम्भं च अधिष्यति वरायुधैः ॥ ४

नारद उवाच

ब्रह्मस्त्वया समाख्याता मृता दक्षात्मजः सती।
सा जाता हिमवत्पुत्रीत्येवं मे वक्तुमर्हसि ॥ ५

यथा च पार्वतीकोशात् समुद्भूता हि कौशिकी।
यथा हतवती शुम्भं निशुम्भं च महासुरम् ॥ ६

कस्य चेयं सुतौ वीरौ ख्यातौ शुम्भनिशुम्भकौ।
एतद् विस्तरतः सर्वं यथावद् वक्तुमर्हसि ॥ ७

पुनस्तत्र उवाच

एतत्ते कथयिष्यामि पार्वत्याः सम्भवं मुने।
भृशुष्यावहितो भूत्वा स्कन्दोत्पत्तिं च ज्ञाधृतीम् ॥ ८

रुद्रः सत्त्वां प्रणष्ट्यां ब्रह्मचारिघ्नते स्थितः।
निराश्रयत्वमापन्नस्तपस्तप्तुं व्यवस्थितः ॥ ९

स घासीद् दैवसेनानीर्दैत्यदर्पविनाशनः।
शिवरूपत्वमास्थाय सैनापत्यं समुत्सृजत् ॥ १०

ततो निराकृता देवाः सेनानाथेन शम्भुना।
दानवेन्द्रेण विक्रम्य महिषेण पराजिताः ॥ ११
ततो जग्मुः सुरेशानं द्रष्टुं चक्रगदाधरम्।
श्वेतद्वीपे महारुसं प्रपन्नाः शरणं हरिम् ॥ १२

तानागतान् सुरान् दृष्ट्वा ततः शक्रपुरोगमान्।
विहृत्य मेघगम्भीरं प्रोवाच पुरुषोत्तमः ॥ १३

किं जितास्त्वसुरेन्द्रेण महिषेण दुरात्मना।
येन सर्वे समेत्यैवं मम परमं मुपागताः ॥ १४

तद् युष्माकं हितार्थाय यद् वदामि सुरोत्तमाः।
तत्कुरुष्व जयो येन समाश्रित्य भवेद्धि यः ॥ १५

उत्पन्न होनेपर भूतगणोंसे आवृत हो वे विन्ध्यपर्वतपर
गयीं और उन्होंने (अपने) श्रेष्ठ आयुधोंसे शुम्भ तथा
निशुम्भ नामके दानवोंका वध किया ॥ २-४ ॥

नारदजीने कहकर— ब्रह्मन् आपने पहले यह
बात कही थी कि दक्षकी पुत्री सती ही भरकर फिर
हिमवान्की पुत्री हुई थी। (अब) इसे आप विस्तारसे
सुनाइये। पार्वतीके शरीर कोससे किस प्रकार वे कौशिकी
प्रकट हुई और फिर उन्होंने शुम्भ तथा निशुम्भ नामके
बड़े असुरोंका जैसे वध किया था इन सभी बातोंको
विस्तारसे कहिये ये शुम्भ और निशुम्भ नामसे मिलावा
घोर किसके पुत्र थे, इसका ठीक ठीक विस्तारसे वर्णन
कीजिये ॥ ५—७ ॥

पुनस्तप्यती बोले— मुने! (अच्छा,) अब मैं फिर
आपसे पार्वतीकी उत्पत्तिके विषयमें वर्णन कर रहा हूँ,
आप ध्यान देकर (सम्बद्ध) स्कन्दके जन्मकी शाश्वत
(नित्य, सदा विराजनेवाली) कथा सुनें। सतीके देह
त्याग कर देनेपर रुद्र भगवान् निराश्रय विधुर हो गये एवं
ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए तपस्या करने लगे। वे
शङ्करजी (पहले) दैत्योंके दर्पको धूर्ण करनेवाले
देवताओंके सेनानी थे परंतु अब उन्होंने (रुद्र रूपका
त्याग कर) शिव स्वरूप धारण कर लिया तथा तपमें
लगकर सेनापति (स्वामी) पदका भी परित्याग कर
दिया फिर तो देवताओंके ऊपर उनके सेनापति शिवसे
विरहित हो जानेके कारण दानवश्रेष्ठ महिषने बलपूर्वक
आक्रमण कर उन्हें परास्त कर दिया ॥ ८—११ ॥

(जब देवसमुदाय पराजित हो गया) तब पराजित
हुए देवतालोग सरण-प्राप्तिकी खोजमें देवेश्वर भगवान्
श्रीविष्णुके दर्शनार्थ श्वेतद्वीप गये उस समय भगवान्
विष्णु हन्त्र आदि देवताओंको आये हुए देखकर हैंसे और
मेयकं सयान गम्भीर साणीमें बोले— मालूम होता है कि
आपलोग असुरोंके स्वामी दुरात्मा महिषसे हार गये हैं,
जिसके कारण इस प्रकार एक साथ मिलकर मेरे पास
आये हैं? श्रेष्ठ देवताओ! अब आपलोगोंकी भलाईके
लिये मैं जो बात कहता हूँ, उसे आप सब सुनिये और
उसे (यथावत्) आचरण कीजिये उसके सहारे आपकी
निजय विजय होगी ॥ १२—१५ ॥

य एते पितरो दिव्यास्त्वग्निष्वासेति विश्रुताः ।
अमीषां मनसी कन्या मेना नाम्नाऽस्ति देवताः ॥ १६

तामाराध्य महातिथ्यां श्रद्धया परयाऽमराः ।
प्रार्थयध्वं सर्ती मेनां प्रालेयाग्नेरिहार्थतः ॥ १७

तस्यां सा रूपसंयुक्ता भविष्यति तपस्विनी ।
दक्षकोपाद् यया मुक्तं मलवज्जीवितं प्रियम् ॥ १८

सा शङ्करान् स्थतेजोऽर्शं जनयिष्यति ये सुतम् ।
स हुनिष्यति दैत्येन्द्रं महिषं सपदानुगम् ॥ १९

तस्माद् गच्छत पुण्यं तत् कुरुक्षेत्रं महाफलम् ।
तत्र पृथूदके तीर्थे पूज्यन्तां पितरोऽप्ययाः ॥ २०

महातिथ्यां महापुण्ये यदि शत्रुपराभवम् ।
जिहासतात्मनः सर्वे इत्थं वै क्रियतामिति ॥ २१

पुलस्त्य उवाच

इत्युक्त्वा वासुदेवेन देवाः स्रक्पुरोगमाः ।
कृताह्नलिपुटा भूत्वा पप्रक्षुः परमेश्वरम् ॥ २२

देवा ऊचुः

कोऽयं कुरुक्षेत्र इति यत्र पुण्यं पृथूदकम् ।
उद्भवं तस्य तीर्थस्य भगवान् प्रब्रवीतु नः ॥ २३

केयं प्रोक्ता महापुण्या तिथीनामुत्तमा तिथिः ।
यस्यां हि पितरो दिव्याः पूज्याऽस्माभिः प्रयत्नतः ॥ २४

ततः सुराणां वचनान्मुरारिः कैटभादर्दनः ।
कुरुक्षेत्रोद्भवं पुण्यं प्रोक्तवांस्तां तिथीमपि ॥ २५

श्रीभगवत्कृत्वा

सोमवंशोद्भवो राजा ब्रह्मो नाम महाबलः ।
कृतस्यादी समभवदुक्षात् संवरणोऽभवत् ॥ २६

स च पित्रा निजे राज्ये बाल एवाभिषेचितः ।
बाल्येऽपि धर्मेनिरतो मद्भक्तैश्च सदाऽभवत् ॥ २७

पुरोहितस्तु तस्यासीद् वसिष्ठो वरुणात्मजः ।
स चास्याध्यापयामास साङ्गान् वेदानुदारध्मैः ॥ २८

ततो जगाम चारण्यं त्वनध्याये नृपात्मजः ।
सर्वकर्मसु निक्षिप्य वसिष्ठे तपसां निधिम् ॥ २९

देवगण । जो ये 'अग्निष्वात' नामसे प्रसिद्ध दिव्य पितर हैं उनकी मेना नामकी एक मनसी कन्या है देववृन्द आपलोग आत्यन्त श्रद्धासे अमावास्याको सती मेनाकी (यथाविधि) आराधना करें तथा उनसे हिमालयकी पत्नी बननेके लिये प्रार्थना करें वन्दी मेनासे (एक) तपस्विनी रूपवती कन्या उत्पन्न होगी, जिसने दशकें ऊपर कोषकर अपने प्रिय जीवनका मलके समान परित्याग कर दिया था। वे शिष्यजीके तेजके अंशरूप जिस पुत्रको उत्पन्न करेंगी वह दैत्योंमें श्रेष्ठ महिषको उसकी सेनासहित मार डालेगा ॥ १६ १९ ॥

अतः आपलोग महान् फल देनेवाले, पवित्र कुरुक्षेत्रमें जायें एवं वहाँ 'पृथूदक' नामके तीर्थमें नित्य हो अग्निष्वात नामके पितरोंकी पूजा करें यदि आपलोग अपने शत्रुको पराजय चाहते हैं तो सब कुछ छोड़कर अमावास्याको उस परम पवित्र तीर्थमें इसी (निर्दिष्ट) कार्यको सम्पन्न करें ॥ २०-२१ ॥

पुलस्त्यजी बोले — भगवान् जिष्णुके ऐसा कहनेपर इन्द्र आदि देवताओंने हाथ जोड़कर उन परमात्मासे पूछा — ॥ २२ ॥

देवताओंने पूछा — भगवन् यह कुरुक्षेत्र तीर्थ कौन है, जहाँ पृथूदक तीर्थ है ? आप हमलोगोंको उस तीर्थकी उत्पत्तिके विषयमें बतायें। और, वह पवित्र उत्तम तिथि कौन सी है जिसमें हम सब दिव्य पितरोंकी पूजा प्रयत्नपूर्वक कर सकें। तब भगवान् जिष्णुने देवताओंकी प्रार्थना सुनकर उनसे कुरुक्षेत्रकी पवित्र उत्पत्ति तथा उस उत्तम तिथिका भी वर्णन किया (जिसमें पूजा करनेकी बात कही गयी) ॥ २३-२५ ॥

श्रीभगवान्ने कहा — सत्ययुगके प्रारम्भमें सोमवंशमें ब्रह्मनामके एक महाबलवान् राजा उत्पन्न हुए। उन ब्रह्मसे संवरणकी उत्पत्ति हुई। पिताने उसे वक्पनमें ही राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। वह बाल्यकालमें भी सदा धर्मनिष्ठ एवं भेदा भक्त था। वरुणके पुत्र वसिष्ठ उसके पुरोहित थे उन्होंने उसे अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंको पढ़ाया। एक दिनकी बात है कि अनध्याय (सुदृष्ट) रहनेपर वह राजपुत्र (संवरण) तपोनिधि वसिष्ठको सभी कार्य सौंपकर वनमें चला गया ॥ २६-२९ ॥

ततो मृगयव्याक्षेपाद् एकाकी विजनं वनम् ।
 वैभ्राजं स जगामाद्य अधोन्मादनमभ्ययात् ॥ ३०
 ततस्तु कौतुकाविष्टः सर्वर्तुकुसुमे वने ।
 अविश्रुतः सुगन्धस्य सपन्ताद् व्यचरद् वनम् ॥ ३१
 स वनान्तं च ददृशे फुल्लकोकनदावृतम् ।
 कङ्कारपशुकुमुदैः कमलेन्दीवरैरपि ॥ ३२
 तत्र क्रीडन्ति सततमप्सरोऽमरकन्यकाः ।
 तस्मां मध्ये ददर्शाद्य कन्यां संवरणोऽधिकाम् ॥ ३३
 दर्शनादेव स नृपः काममार्गणपीडितः ।
 जातः स च तमीक्ष्यैव कामबाणातुराऽभवत् ॥ ३४
 वभी तौ पीडितौ मोहं जग्मतुः काममार्गणी ।
 राजा चलासनो भूय्यां निपथात् तुरंगमात् ॥ ३५
 तमभ्येत्य महात्मानो गन्धर्वाः कामरूपिणः ।
 सिविचुर्वाणिणाऽभ्येत्य लब्धसंज्ञोऽभवत् क्षणात् ॥ ३६
 सा चाप्सरोऽभिरुत्पात्य गीता पितृकुलं निजम् ।
 तदभिराश्रासिता चापि मधुरैर्लवणाम्बुभिः ॥ ३७
 स चाप्याकृष्ट्य तुरगं प्रतिष्ठानं पुरोत्तमम् ।
 गतस्तु मेरुशिखरं कामचारी यथाऽमरः ॥ ३८
 यदाप्रभृति सा दृष्ट्वा आक्षिणात् तपती गिरौ ।
 तदाप्रभृति नाश्राति दिक्वा स्वपिति नो निशि ॥ ३९
 ततः सर्वविदध्यग्रे विदित्वा वरुणात्मजः ।
 तपतीतापितं वीरं पार्श्वं तपस्वं निधिः ॥ ४०
 समुत्पत्य महायोगी गगनं रक्विमण्डलम् ।
 विवेश देवं तिग्मांशुं ददर्श स्यन्दने स्थितम् ॥ ४१
 तं दृष्ट्वा भास्करं देवं प्रणमद् द्विजसत्तमः ।
 प्रतिप्रणमितश्चासी भास्करेणाविशद् रथे ॥ ४२
 अलज्जटाकलापोऽसौ दिवाकरसमीपगः ।
 शोभते वारुणिः श्रीमाम् द्वितीय इव भास्करः ॥ ४३

फिर शिकारके लिये व्याधिशिप (व्याघ्र) वह अकेला
 ही वैभ्राज नामक विजन वनमें पहुँचा । उसके बाद वह
 उन्मादसे ग्रस्त हो गया । उस वनमें सभी वस्तुओंमें फूल
 फूलते रहते थे, सुगन्धि भी रहती थी, फिर भी उससे
 संतुष्ट न होनेके कारण वह क्रुतुहलवश वनमें चारों ओर
 विचरण करने लगा वहाँ उसने फूलें हुए श्वेत, लाल,
 पीले कमल, कुमुद एवं नीले कमलोंसे भरे उस वनको
 देखा अप्सराएँ एवं देवकन्याएँ वहाँ सदा मनोरञ्जन
 (मनबहलाव) किया करती थीं संवरणने उनके बीच
 एक अत्यन्त सुन्दरी कन्याको देखा ॥ ३०—३३ ॥

उसे देखते ही वह राजा कामदेवके बाणसे पीडित
 (कामसे आश्रित) हो गया और इसी प्रकार वह कन्या भी
 उसे देखकर कामबाणसे अधीर (मोहित) हो गयी कामके
 बाणोंसे विवश होकर वे दोनों अवेत से हो गये । राजा
 घोड़ेको पीठपर रख हुए आसनसे खिसककर पृथ्वीपर
 गिर पड़ा और इच्छाके अनुसार अपना रूप बना लेनेवाले
 महत्तमा गन्धर्वलोक उसके पास जाकर उसे जलसे
 सौंघने लगे । (फिर) वह दूसरे ही क्षण सेतनामें आ
 गया तब अप्सराओंने उसे मधुर वैष्णवलपी जलसे भी
 आबस्त्र किया और उसे उठाकर उसके पिताके घर ले
 गयीं ॥ ३४—३७ ॥

फिर वह राजा (अपने) घोड़ेपर चढ़कर (अपने)
 श्रेष्ठ पैठण नगर इस प्रकार चला गया, जैसे कोई इच्छाके
 अनुसार चलनेवाला देवता (सरलतासे) मेरुमूकपर चला
 जाय । ब्रह्मके पुत्र संवरणने पर्वतपर देवकन्या तपतीको
 जबसे अपनी आँखोंसे देखा था, तबसे वह दिनमें न तो
 भोजन करता था और न रात्रिमें सोता ही था । फिर सब
 कुछ जाननेवाले एवं ज्ञान्ता तथा तपस्याके निधिस्वरूप
 वरुणके पुत्र महायोगी वसिष्ठ उस वीर राजपुत्रको
 तपतीके कारण संतापमें पड़े देखकर क्रकत्तमें ऊपर
 आकर (मध्य आकाशमें स्थित) सूर्यमण्डलमें प्रवेश
 किया तथा वहाँ रथपर बैठे हुए तेज किरणवाले
 सूर्यदेवका उसने दर्शन किया ॥ ३८—४१ ॥

द्विजश्रेष्ठ वसिष्ठने सूर्यदेवको देखकर प्रणाम
 किया । फिर वे सूर्यके द्वारा प्रत्यभिवादन (प्रणामके
 बदले प्रणाम) किये जानेपर उनके समीप जाकर रथमें
 बैठ गये । सूर्यदेवके पास रथपर बैठे हुए अग्नि-शिखाके
 समान चमकमाती जटावाले वरुणके पुत्र वसिष्ठ दूसरे

ततः सम्पूजितोऽर्चादीर्भास्करेण तपोधनः ।
पृष्टश्चागमने हेतुं प्रन्तुवाच दिवाकरम् ॥ ४४

समायातोऽस्मि देवेश याचितुं त्वं महाद्युते ।
सुतां संवरणस्यार्थं तस्य त्वं क्षानुमहंसि ॥ ४५
ततो वसिष्ठाय दिवाकरेण
निवेदिता सा तपती तनूजा ।
गृहागताय द्विजपुंगवाय
राज्ञोऽर्चतः संवरणस्य देवाः ॥ ४६
साधित्रिमादाय ततो वसिष्ठः
स्वमाश्रमं पुण्यमुपाजगाम ।
सा चापि संस्मृत्य नृपात्मजं तं
कृताञ्जलिर्वारुणिमहा देवी ॥ ४७

राजपुत्रक

अहम् मया खेदमुपेत्य यो हि
सहाप्सरोभिः परिचारिकाभिः ।
दृष्टो हारण्येऽमरगर्भतुल्यो
नृपात्मजो लक्षणतोऽभिजाने ॥ ४८
पादौ शूभौ चक्रगदासिन्धिवी
जह्वं तथोरु करिहस्ततुल्यौ ।
कटिस्तथा सिंहकटिर्यथैव
शायं च मध्यं त्रिखलीनिबद्धम् ॥ ४९
ग्रीवाऽस्य शङ्खकृतिमादधाति
भुजौ च पीनी कठिनी सुदीर्घौ ।
इस्तौ तथा पद्मदलोद्दकाङ्गौ
छत्राकृतिस्तस्य शिरो विभाति ॥ ५०
नीलाश्च केशाः कुटिलाश्च तस्य
कर्णौ समासौ सुसमा च नासाः ।
दीर्घाश्च तस्याङ्गुलयः सुपर्वा
पद्भ्यां कराभ्यां दशनाश्च शुभाः ॥ ५१
समुन्नतः चङ्चिर्गुह्यारतीय-
स्त्रिभिर्गभीरस्त्रिषु च प्रलम्बः ।
रक्तस्तथा पञ्चसु राजपुत्रः
कृष्णश्चतुर्भिस्त्रिभिस्ततोऽपि ॥ ५२

द्वाभ्यां च शुक्लः सुरभिश्चतुर्भिः
दृश्यन्ति पञ्चानि दशैव चास्य ।
वृतः स भर्ता भगवन् हि पृथ्वी
तं राजपुत्रं भुवि संविधित्व ॥ ५३

सूर्यके समान सुशोभित होने लगे फिर भगवान् सूर्यने
उन तपस्वी (अग्नि)-का अर्घ्य आदिसे (सत्कार)
किया; उसके बाद उनसे उनके आनेका कारण पूछा तब
तपोधन वसिष्ठजीने सूर्यसे कहा अति तेजस्वी देवेश मैं
राजपुत्र संवरणके लिये आपसे कन्याकी याचना करने
आया हूँ इसे आप (कृपया) प्रदान करें ॥ ४२—४५ ॥

[भगवान् विष्णु कहते हैं—] देवगण! उसके
बाद सूर्यदेव घरपर आये और ब्राह्मणश्रेष्ठ वसिष्ठको
राजा संवरणके लिये (अपनी) तपती नामकी उस
कन्याको समर्पित कर दिया। फिर सूर्यपुत्रीको साथ लेकर
वसिष्ठ अपने पवित्र आश्रममें आ गये। वह कन्या उस
राजपुत्रका स्मरण कर और हाथ जोड़कर ऋषि वसिष्ठसे
बोली — ॥ ४६, ४७ ॥

तपतीनेकहा वसिष्ठजी मैंने पहले चिन्तनमें विचार
होकर अपनी संविकारों तथा अप्सरओंके साथ देवपुत्रके
समान (सौम्य सुन्दर) जिस व्यक्तिको देखा था, उसे मैं
लक्षणांसे राजकुमार समझ रही हूँ, क्योंकि उसके दोनों
शुभ चरणोंमें चक्र, गदा और खड्गके चिह्न हैं। उसकी
जंघें तथा ऊरु दोनों हाथीकी सूँहके समान हैं। उसकी
कटि सिंहकी कटिके समान है तथा त्रिखलीयुक्त—तीन
बलोंवाला उसका उदरभाग बहुत पतला है। उसकी गर्दन
शङ्खके समान है, दोनों भुजाएँ मोटी, कठोर और लम्बी
हैं, दोनों करतल कमल-चिह्नसे अङ्कित हैं तथा उसका
मस्तक छत्रके समान सुशोभित है उसके बाल काले तथा
घुंघराले हैं, दोनों कर्ण मांसल हैं, नासिका सुडौल हैं
उसके हाथों एवं पैरोंकी अँगुलियाँ सुन्दर पर्वयुक्त (चोखाली)
और लम्बी हैं और उसके दाँत श्वेत हैं ॥ ४८—५१ ॥

[तपतीनेअग्रे कहा—] उस महापुरुषकी राजपुत्रके
ललाट, कंधे, कपोल (गाल), ग्रीवा, कमर तथा जंघें—
ये छः अङ्ग ऊँचे (सुडौल) हैं, नाभि, मध्य तथा
हँसुली—ये तीन अङ्ग गम्भीर हैं और उसकी दोनों
भुजाएँ तथा अण्डकोष ये तीन अङ्ग लम्बे हैं दोनों
नेत्र, अधर दोनों हाथ, दोनों पैर तथा नख—ये सँचीं
हाल वर्णवाले हैं केश, पद्म (बरीनी) और कनोन्निका
(आँखकी पुतली) ये चार अङ्ग कृष्ण हैं, दोनों भौंहें,
आँखके दोनों कोर तथा दोनों कान शुक्रे हुए हैं। दाँत
तथा नेत्र दो अङ्ग श्वेत वर्णके हैं, केश, मुख तथा

ददस्व मां नाथ तपस्विनेऽस्मै
गुणोपपन्नाय समीहिताय ।
नेहान्यकामां प्रवदन्ति सन्तो
दातुं तथान्यस्य विभो क्षमस्व ॥ ५४

देवदेव उवाच
इत्येवमुक्तः सवितुश्च पुत्र्या
ऋषिस्तदा ध्यानपरो बभूव ।
ज्ञात्वा च तत्रार्कसूतां सकामां
मुदा युतो वाक्यमिदं जगात् ॥ ५५
स एव पुत्रि नृपतेस्तनूजो
दृष्टः पुरा कामयसे यमहा ।
स एव जायाति ममाश्रमं वै
ऋक्षात्मजः संवरणो हि नाम्ना ॥ ५६
अथाजगाम स नृपस्य पुत्र-
स्तभाश्रमं ब्राह्मणपुंगवस्य ।
दृष्ट्वा वसिष्ठं प्रणिपत्य मूर्ध्ना
स्थितस्त्वपश्यत् तपतीं नरेन्द्रः ॥ ५७
दृष्ट्वा च तां पद्मविशालनेत्रां
तां पूर्वदृष्टामिति चिन्तयित्वा ।
पप्रच्छ केयं ललना द्विजेन्द्र
स वारुणिः प्राह नराधिपेन्द्रम् ॥ ५८
इदं विवस्वददुहिता नरेन्द्र
नाम्ना प्रसिद्धा तपती पृथिव्याम् ।
मया तवाश्रमं दिवाकरोऽर्धितः
प्रादान्यया त्वाश्रमभानिनिन्ये ॥ ५९
तस्मात् सम्पुतिष्ठ नरेन्द्र देव्याः
पाणिं तपत्या विधिवद् गृहाण ।
इत्येवमुक्ते नृपतिः प्रहृष्टो
जग्राह पाणिं विधिवत् तपत्या ॥ ६०
सा तं पतिं प्राप्य मनोऽभिरामं
सूर्यात्मजा शक्रसमप्रभावम् ।
रसध तन्वी भवनोत्तमेषु
यथा महेन्द्रं दिवि दैत्यकन्या ॥ ६१

दोनों कपोल—ये चार अङ्ग सुगन्धवाले हैं। उनके नेत्र, मुख-विषय, मुख्यमण्डल, जिह्वा, ओष्ठ, तालु, स्तन, नख, हाथ और पैर—ये दस अङ्ग कमलके समान हैं, भगवन् मैंने खूब सोच-विचारकर पृथ्वीपर उस राक्षसपुत्रको पहले ही पतिरूपसे वरण कर लिया है प्रभो मुझे भूमा करें आप गुणोंसे युक्त (मेरी) इच्छाके अनुकूल तथा पाम्छित उस तपस्वीको मुझे दे दें; क्योंकि सन्तोंका यह कहना है कि अन्यकी कामना करनेवाली कन्याको किसी औरको नहीं देना चाहिये ॥ ५२—५४ ॥

(देवदेव भगवान् विष्णु बोले)—फिर सूर्यपुत्री तपतीके ऐसा कहनेपर वसिष्ठजी ध्यानमें मग्न हो गये और तपतीको उस कुमरमें आसक्त समझकर प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने यह बात कही—पुत्रि! जिस राक्षसपुत्रका तुमने पहले दर्शन किया था और जिसकी व्रतभना तुम आज कर रही हो, वह ऋक्षका पुत्र (राजा) संवरण ही है वह आज मेरे आश्रममें आ रहा है। उसके पश्चात् वह राजकुमार भी ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीके आश्रममें आया। उस राजाने वसिष्ठको देखकर सिर झुकाकर प्रणाम किया; बैठनेपर तपतीको भी देखा विले कमलके समान विसाल नेत्रोंवाली उस वपतीको देखकर उसने सोचा कि इसे मैंने पहले भी देखा है। (तब) उसने पूछा—ब्राह्मणश्रेष्ठ! यह सुन्दर स्त्री कौन है? इसपर वसिष्ठजीने राजश्रेष्ठ संवरणसे कहा ॥ ५५ ५६ ॥

‘नरेन्द्र : पृथ्वीमें तपती नामसे प्रसिद्ध यह सूर्यकी पुत्री है। मैंने तुम्हारे ही लिये सूर्यसे इसकी याचना की थी और उन्होंने तुम्हारे लिये इसे मुझे सौंपा था। मैं तुम्हारे लिये ही इसे आश्रममें लाया हूँ, अतः नरेन्द्र! ठहो एवं विधिवत् इस सूर्यपुत्री तपतीका पाणिग्रहण करो।’ [वसिष्ठजीके]—ऐसा कहनेपर राजा बहुत प्रसन्न हुआ उसने तपतीका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया। सूर्यकी वन्या तपती भी हृन्दके तुल्य प्रभावशाली उस सुन्दर पतिको पाकर [अत्यन्त] प्रसन्न हुई। वह उत्तम महलोंमें उसके साथ इस प्रकार विहार करने लगी, जैसे हृन्दको पाकर स्वर्गमें शची विहार करती है ॥ ५९ ६० ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें इसकीसवीं अध्याय समाप्त हुआ ॥ २१ ॥

बाईसवाँ अध्याय

कुरुकी कथा, कुरुक्षेत्रका निर्माण प्रसङ्ग और पृथुदक तीर्थका माहात्म्य

देवदेव उवाच

तस्यां सपत्यां नरसत्तमेन
जतः सुतः पार्थिवलक्षणस्तु ।
स जातकर्मादिभिरेव संस्कृतो
विषर्द्धतान्येन हुतो यथाऽग्निः ॥ १
कृतोऽस्य घूडाकरणश्च देवा
विप्रेण मित्रावरुणात्मजेन ।
नवाब्दिकस्य वतसन्धनं च
वन्दे च शास्त्रे विधिपारगोऽभूत् ॥ २
ततश्चतुःषड्भिरपीह वर्षैः
सर्वज्ञतामभ्यगमत् ततोऽसौ ।
ख्यातः पृथिव्यां पुरुषोत्तमोऽसौ
नाम्ना कुरुः संवरणस्य पुत्रः ॥ ३
ततो नरपतिर्दृष्ट्वा धार्मिकं तनयं शुभम् ।
दारक्रियार्धमकरोद् बलं शुभकुले ततः ॥ ४
सौदामिनीं सुदाम्नीस्तु सुतां रूपाधिकां नृपः ।
कुरोरर्थाय वृत्तवान् स प्रादात् कुरवेऽपि ताम् ॥ ५
स तां नृपसुतां त्वञ्ज्या धर्मार्थविरोधयन् ।
रेमे तन्ज्या सह तया पौलोम्या मवधानिव ॥ ६
ततो नरपतिः पुत्रं राज्यभारक्ष्मं बली ।
विदित्वा यौवराज्याय विधानेनाभ्यषेचयत् ॥ ७
ततो राज्येऽभिषिक्तस्तु कुरुः पित्रा निजे पदे ।
पालयामास स महीं पुत्रवच्च स्वयं प्रजा ॥ ८
स एव क्षेत्रपालोऽभूत् पशुपालः स एव हि ।
स सर्वपालकश्चासीत् प्रजापालो महाबलः ॥ ९
ततोऽस्य बुद्धिरुत्पन्ना कीर्तिलोकं गरीयसी ।
यावत्कीर्तिः सुसंस्था हि तावद्वासः सुरैः सह ॥ १०

देवोंके भी देव भगवान् विष्णुने कहा—उस तपतीके गर्भसे मनुष्योंमें श्रेष्ठ संवरणके द्वारा राजलक्ष्णीवाला एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह जातकर्म आदि संस्कारोंसे संस्कृत होकर इस प्रकार बढ़ने लगा जैसे घीकी आहुति डालनेसे अग्नि बढ़ती है। देवगण मित्रावरुणके पुत्र वसिष्ठजीने उसका (यथासमय) चौल-संस्कार कराया। नवें वर्षमें उसका उपनयन-संस्कार हुआ। फिर वह (श्रम क्रमसे अध्ययन कर) वेद तथा शास्त्रोंका पाठगामी विद्वान् हो गया एवं बीबीस वर्षोंमें तो फिर वह सर्वज्ञ-सा हो गया। पुरुषश्रेष्ठ संवरणका यह पुत्र इस भूभागपर 'कुरु' नामसे प्रसिद्ध हुआ। तब राजा (उस) कल्याणकारी अपने धार्मिक पुत्रको (उपयुक्त अवस्थामें) व्यापे हुए) देखकर किसी उत्तम कुलमें उसके विवाहका यज्ञ करने लगे ॥ १—४ ॥

राजाने कुरुके लिये सुन्दर स्वरूपवाली सुदामाकी पुत्री सौदामिनीको चुना और सुदामा राजाने भी उसे कुरुको विधिवत् प्रदान कर दिया। उस राजकुमारीको पाकर वह (कुरु) धर्म और अर्थका (अधावत्) पालन करते हुए उस तन्वज्जी अर्थात् कृशाजीके साथ गार्हस्थ्य धर्ममें वैसे ही रहने लगा, जैसे पौलोमो (राजी) के साथ इन्द्र दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करते (हुए रहते) हैं। उसके बाद बलवान् राजाने राज्य-भारके घटन करनेमें राज्यकार्य-संचालनमें—उसे समर्थ जानकर विधिपूर्वक वृवराज-पदपर अभिषिक्त कर दिया। तब पिताके द्वारा अपने राज्यपदपर अभिषिक्त होकर कुरु औरस पुत्रको भीति अपनी प्रजाका और पृथ्वीका पालन करने लगे ॥ ५—८ ॥

(प्रजा और पृथ्वीके पालनमें लगे) वे राजकुमार कुरु 'क्षेत्रपाल' तथा 'पशुपाल' भी हुए। महाबली वे सर्वपालक एवं प्रजापालक भी हुए। फिर उन्होंने सोचा कि संसारमें यज्ञ ही सर्वश्रेष्ठ वस्तु है (उसे श्रान्त करना चाहिये), क्योंकि जबतक संसारमें कीर्ति भलीभाँति स्थित रहती है, तबतक मनुष्य देवताओंके साथ निवास करता है।

स त्वेवं नृपतिश्चेष्टो याथातथ्यमवेश्य च।
विचचार महीं सर्वा कीर्त्यर्थं तु नराधिपः ॥ ११
ततो द्वैतवर्नं नाम पुण्यं लोकेश्वरो बली।
तदासाद्य सुसंतुष्टो विवेशाभ्यन्तरं ततः ॥ १२
तत्र देवीं ददर्शाद्य पुण्यां पापक्षिप्तोऽधनीम्।
स्नक्षजां ब्रह्मणः पुत्रीं हरिजिह्वां सरस्वतीम् ॥ १३
सुदर्शनस्य जननीं हृदं कृत्वा सुविस्तरम्।
स्थितां भगवतीं कूले तीर्थकोटिभिराप्सुताम् ॥ १४

तस्यास्तज्जलमीक्ष्यैव क्त्वा प्रीतोऽभवन्नुपः।
समाजगाम च पुनर्ब्रह्मणो वेदिमुत्तराम् ॥ १५
समन्तपञ्चकं नाम धर्मस्थानमनुत्तमम्।
आसमन्त्राद् योजनानि पञ्च पञ्च च सर्वतः ॥ १६

देव उचुः

कियन्त्यो वेदयः सन्ति ब्रह्मणः पुरुषोत्तमः।
येनोत्तरतया वेदिर्गदिता सर्वपञ्चका^१ ॥ १७

देवदेव उवाच

वेदयो लोकनाथस्य पञ्च धर्मस्य सेतवः।
थासु यष्टे सुरेशेन लोकनाथेन शम्भुना ॥ १८
प्रयागो मध्यमा वेदिः भूर्वा वेदिर्गद्याशिरः।
विरजा दक्षिणा वेदिर्गन्तफलदायिनी ॥ १९
प्रतीची पुष्करा वेदिस्त्रिभिः कुण्डैरलंकृता।
समन्तपञ्चका चोक्तः वेदिरेवोत्तराऽव्ययः ॥ २०
तमप्यन्त राजर्षिर्दिदं क्षेत्रं मह्यफलम्।
करिष्यामि कृषिष्यन्ति सर्वान् क्रमान् यथेष्टितनू ॥ २१

इति संचिन्त्य मनसा त्वत्त्वा स्यन्दनमुत्तमम्।
जले कीर्त्यधर्मतुलं संस्थानं पार्थिवर्षभः ॥ २२

इस प्रकार यथार्थताका विचार कर वे राजा यशः प्राप्तिके
लिये समस्त पृथ्वीपर विचरण करने लगे ठसी सिलसिलेमें
वे बलशाली राजा पवित्र द्वैतवन पहुँचे एवं पूर्ण सुसंतुष्ट
होकर उसके भीतर प्रविष्ट हो गये ॥ १ - १२ ॥

[प्रविष्ट होनेके बाद राज्ञे] वहाँपर पापनाशिनी
उस पवित्र सरस्वती नदीको देख, जो पकटि (पाकड़)
वृक्षसे ढलपन्न ब्रह्माकी पुत्री है वह हरिजिह्वा,
ब्रह्मपुत्री और सुदर्शन-जननी नामसे भी प्रसिद्ध है। वह
सुविस्तृत झर (चड़ा ताल या झील) में स्थित है। उसके
तटपर कचोड़ों तीर्थ हैं। उसके जलको देखते ही
राजाको उसमें स्नान करनेकी इच्छा हुई। उन्होंने स्नान
किया और बड़े प्रसन्न हुए। फिर वे उत्तर दिशामें स्थित
ब्रह्माकी समन्तपञ्चक वेदीपर गये। वह समन्तपञ्चक
नामक धर्मस्थान चारों ओर पाँच पाँच योजनतक फैला
हुआ है ॥ १३-१६ ॥

देवताओंने पूछा—पुरुषोत्तम! ब्रह्माकी कितनी
वेदियाँ हैं? क्योंकि आपने इस सर्वपञ्चक वेदीको उत्तर
वेदी (अन्य दिशा-सापेक्ष शब्द 'उत्तर'से विशिष्ट) कहा
है ॥ १७ ॥

[भगवान् विष्णु बोले]—लोकोंके स्वामी
ब्रह्माकी पाँच वेदियाँ धर्म-सेतुके सदृश हैं, जिनपर
देवाधिदेव विश्वेश्वर श्रीकृष्णने यज्ञ किया था। प्रयाग
मध्यवेदी है, गया पूर्ववेदी और अमरा फलदायिनी
जगन्नाथपुरी दक्षिणवेदी है। (इसी प्रकार) तीन कुण्डोंसे
अलंकृत पुष्करक्षेत्र पश्चिम वेदी है और अव्यय
समन्तपञ्चक उत्तर वेदी है। राजर्षि कुलने सोचा कि
इस (समन्तपञ्चक) क्षेत्रको महाफलदायी कहेंगा
(यनार्केगा) और यहीं समस्त मनोरथों (कामनाओं)-
की छेती कहेंगा ॥ १८-२१ ॥

अपने मनमें इस प्रकार विचारकर वे राजाओंमें
शिरोमणि कुरु रथसे उतर पड़े एवं उन्होंने अपनी
कीर्तिके लिये अनुपम स्थानका निर्माण किया उन

१-समन्तपञ्चक और सर्वपञ्चक समानार्थी शब्द हैं क्योंकि 'सर्व' और 'सं' दोनों सर्ववाची शब्द हैं, अतः दोनों शब्दोंका अर्थ एक ही है इसमें पाठभेदसे भ्रम नहीं होना चाहिये।

कृत्वा सीरं स सीवर्णं गृह्य रुद्रवृषं प्रभुः ।
 पौण्ड्रकं चाम्यमहिषं स्वयं कर्षितुमुद्यतः ॥ २३
 तं कर्षन्तं नरवरे समध्येत्य शतक्रतुः ।
 प्रोवाच राजन् किमिदं भवान् कर्तुमिहोद्यतः ॥ २४
 राजाह्वीत् सुरवरे तपः सत्यं क्षमां दयाम् ।
 कृषामि शीघ्रं दानं च योगं च ब्रह्मचारिताम् ॥ २५
 तस्योवाच हरिर्देवः कस्माद्दीजो नरेश्वर ।
 लब्धोऽष्टाद्वेति सहसा अवहस्य गतस्ततः ॥ २६
 गतेऽपि शक्ने राजर्षिरहन्यहनि सीरधृक् ।
 कृषतेऽन्यान् समन्ताष्व सप्तक्रोशान् महीपतिः ॥ २७
 ततोऽहमब्रुवं गत्वा कुरो किमिदमित्यधः ।
 तदाऽष्टाङ्गं महाधर्मं समाख्यातं भूपेण हि ॥ २८
 ततो मयाऽस्य गदितं नृप बीजं क्व तिष्ठति ।
 स चाह मम देहस्थं बीजं तमहमब्रुवम् ।
 देशाहं वापयिष्यामि सीरं कृषतु वै भवान् ॥ २९
 ततो नृपतिना बाहुर्दक्षिणः प्रसृतः कृतः ।
 प्रसृतं तं भुजं दृष्ट्वा मया चक्रेण वेगतः ॥ ३०
 सहस्रधा ततश्छिद्य दप्तो युष्माकमेव हि ।
 ततः सव्ये भुजो राज्ञा दक्षश्छिन्नोऽप्यसौ मया ॥ ३१
 तथैवोरुयुगं प्रादान्मघ्यं छिन्नी च ताकुभी ।
 ततः स मे शिरः प्रादात् तेन प्रीतोऽस्मि तस्य च ।
 वरदोऽस्मीत्यथेत्युक्ते कुरुर्वरमयाद्यत ॥ ३२

कुरुक्षेत्र

यावदेतन्मया कर्तुं धर्मक्षेत्रं तदस्तु च ।
 स्नातानां च मृतानां च महापुण्यफलं त्विह ॥ ३३
 उपवासं च दानं च स्नानं जप्यं च माधव ।
 होमयज्ञादिकं चान्यच्छुभं वाप्यशुभं विभो ॥ ३४
 त्वत्प्रसादाद्दधीकेश शङ्खचक्रगदाधर ।
 अक्षयं प्रवरे क्षेत्रे भवत्वत्र महाफलम् ॥ ३५
 तद्य भवान् सुरैः सार्यं समं देवेन शूलिना ।
 वस त्वं पुण्डरीकाक्ष मन्नामव्यस्रकेऽच्युत ।
 इत्येवमुक्तस्तेनाहं राज्ञा बाहमुवाच तम् ॥ ३६

राजाने सुवर्णमय हल बन्वाकर उसमें शङ्खरके बिल एवं चमरावके पौण्ड्रक नामक घँसेको बौधकर स्वयं जोतनेके लिये तैयार हुए; इसपर इन्द्रने उनके पास जाकर कहा—राजन्! अब यहाँ यह क्या करनेके लिये उद्यत हुए हैं? राजा बोले—मैं यहाँ तप, सत्य, क्षमा दया, शौच, दान, योग और ब्रह्मचर्य इन अष्टाङ्गोंकी खेती कर रहा हूँ ॥ २३—२५ ॥

इसपर इन्द्र उनसे बोले नरेश्वर आपने (कृषिके लिये साधनभूत) हल और बीज कहाँसे प्राप्त किये हैं? यह कहते हुए उपहास कर इन्द्र वहाँसे शीघ्र ही चले गये इन्द्रके चले जानेपर भी राजा प्रतिदिन हल लेकर चारों ओर सात कोसोंतक पृथ्वी जोतते रहे तब मैंने (विष्णुने) उनसे जाकर कहा—कुरु तुम यह क्या कर रहे हो? (इसपर) राजाने कहा—मैं (पूर्वाङ्क) अष्टाङ्ग महाधर्मोंकी खेती कर रहा हूँ। फिर मैंने उनसे पूछा—राजन्, बीज कहाँ है? राजाने कहा बीज मेरे शरीरमें है मैंने उनसे कहा—उसे मुझे दे दो। मैं (उसे) बोझेंगा, तुम हल चलाओ। तब राजाने अपना दाहिना हाथ फैला दिया। फैलाये हुए हाथको देखकर मैंने चक्रसे शीघ्र ही उसके हजार्दों टुकड़े कर डाले और उन टुकड़ोंको तुम देवताओंको दे दिया उसके बाद राजाने वाम बाहु दिया और उसे भी मैंने काट दिया इसी प्रकार उसने दोनों ऊरुओंको दिया। उन दोनोंको भी मैंने काट दिया तब उसने अपना मस्तक दिया, जिससे मैं उसके ऊपर प्रसन्न हो गया और कहा—तुम्हें मैं वर दूँगा। मेरे ऐसा कहनेपर कुरुने (मुझसे) वर माँगा— ॥ २६—३२ ॥

कुरुने कहा—जितने स्थानको मैंने जोया है वह धर्मक्षेत्र हो जाय और यहाँ ज्ञान करनेवालों एवं मरनेवालोंको महापुण्यकी प्राप्ति हो माधव विभो! शङ्खचक्रगदाधारी हर्षिकेश! यहाँ किये गये उपवास, स्नान, दान, जप, हयग, यज्ञ आदि तथा अन्य शुभ या अशुभ कर्म भी इस श्रेष्ठ क्षेत्रमें आपको कृपासे अक्षय एवं महान् फल देनेवाले हों तथा हे पुण्डरीकाक्ष! हे अच्युत मैंने नामके षण्णक (प्रकाशक) इस कुरुक्षेत्रमें आप सभी देवताओं एवं शिवजीके साथ निवास करें राजाके ऐसा कहनेपर मैंने उनसे कहा—बहुत

तथा च त्वं दिव्यवपुर्भव भूयो महीपते ।
 तथाऽन्तकाले यामेव लयमेष्यसि सुव्रत ॥ ३७
 कीर्तिश्च शाश्वती तुभ्यं भविष्यति न संशयः ।
 तत्रैव याजका यज्ञान् यजिष्यन्ति सहस्रशः ॥ ३८
 तस्य क्षेत्रस्य रक्षार्थं ददौ स पुरुषोत्तमः ।
 यक्षं च चन्द्रनामानं वासुकिं चापि पन्नगम् ॥ ३९
 विद्याधरं शङ्कुकर्णं सुकेशिं राक्षसेश्वरम् ।
 अजावर्णं च नृपतिं महादेवं च पावकम् ॥ ४०
 एताभिः सर्वतोऽभ्येत्य रक्षन्ति कुरुजाङ्गलम् ।
 अमीषां बलिनोऽन्ये च भृत्याश्चैवानुयायिनः ॥ ४१
 अष्टौ सहस्राणि धनुर्धराणां
 ये वारयन्तीह सुदुष्कृतान् वै ।
 स्नातुं न यच्छन्ति महोद्यत्स्वा-
 स्तन्यस्य भूताः सचराचराणाम् ॥ ४२
 तस्यैव मध्ये बहुपुण्य उक्तः
 पृथूदकः पापहरः शिवश्च ।
 पुण्या नदी प्राङ्मुखतां प्रयाता
 यत्रीघयुक्तस्य शुभा जलाढ्या ॥ ४३
 पूर्वं प्रजेयं प्रपितामहेन
 सृष्टा समं भूतगणैः समस्तैः ।
 मही जलं वह्निसमीपमेव
 खं त्वेवमादौ विबभौ पृथूदकः ॥ ४४
 तथा च सर्वाणि महार्पाधानि
 तीर्थानि नद्यः स्त्रवणाः सरांसि ।
 संनिर्मितानीह महाभुजेन
 तर्क्ष्यन्त्यमागतं सलिलं महीषु ॥ ४५

देवदेव उवाच

सरस्वतीदुषद्वत्योरन्तरे कुरुजाङ्गले ।
 मुनिप्रवरमासीनं पुराणं लोमहर्षणम् ।
 अपृच्छन्त द्विजवराः प्रभावं सरसस्तदा ॥ ४६
 प्रमाणं सरसो ब्रूहि तीर्थानां च विशेषतः ।
 देवतानां च माहात्म्यमुत्पत्तिं वामनस्य च ॥ ४७
 एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां रोमहर्षसमन्वितः ।
 प्रणिपत्य पुराणधिरिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४८

अच्छा, ऐसा ही होगा राजन्! तुम पुनः दिव्य सरोरवाले हो जाओ तथा हे सुव्रत! (दुष्टरासे व्रतका सुदृष्ट पालन करनेवाले) अन्तकालमें तुम मुझमें हो लीन हो जाओगे ॥ ३७-३७ ॥

[भगवान् विष्णुने आगे कहा—] निःसंदेह तुम्हारा कीर्ति सदा रहनेवाली होगी। यहाँपर यज्ञ करनेवाले व्यक्ति (यजमान) यज्ञ करेंगे फिर, उस क्षेत्रकी रक्षा करनेके लिये उन पुरुषोत्तम भगवान्ने राजाको चन्द्रनामक यक्ष, वासुकि नामक सर्प, शङ्कुकर्ण नामक विद्याधर, सुकेशी नामक राक्षसेश्वर, अजावर्ण नामक राजा और महादेव नामक अग्निको दे दिया। ये सभी तथा इनके अन्य यक्षी भृत्य एवं अनुयायी यहाँ आकर कुरुजाङ्गलको सब ओरसे रक्षा करते हैं ॥ ३८—४१ ॥

आठ हजार धनुषधारी, जो पापियोंको यहाँसे हटते रहते हैं, वे उग्र रूप धारणकर घराघरके दूसरे भूतगण (पापियों) को खान नहीं करने देते वसी (कुरुजाङ्गल) के मध्य पाप दूर करनेवाला एवं अति पवित्र कल्याणकारी पृथूदक (पोहोआ) नामक तीर्थ है जहाँ शुभ अलसे पूर्ण एक पवित्र नदी पूर्वकी ओर बहती है इसे प्रपितामह ब्रह्मने सृष्टिके आदिमें पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन और आकाशादि समस्त भूतोंके साथ ही रचा था, महानाहु ब्रह्मने पृथ्वीपर जिन महासमुद्रों तीर्थों, नदियों ओतों एवं सरोवरोंको रचना की उन सभीके जल उसमें एकत्र प्राप्त हैं ॥ ४२—४५ ॥

[यहाँसे कुरुक्षेत्र और उसके सरोवरका माहात्म्य कहते हैं—]

देवदेव भगवान् विष्णु बोले— पहले समयमें ब्राह्मणोंने सरस्वती और दुषद्वती (घगर) के बीचमें स्थित कुरुक्षेत्रमें आसीन मुनिप्रवर वृद्ध लोमहर्षणसे यहाँ स्थित सरोवरकी महिमा पूछी और इस सरोवरके विस्तार, विलेपत तीर्थों और देवताओंके माहात्म्य एवं वामनके प्रादुर्भावकी कथा कहनेकी प्रार्थना की उनके इस वचनको सुनकर रोमाञ्चित होते हुए पराजिक ऋषि लोमहर्षण उन्हें प्रणाम कर (फिर) इस प्रकार बोले ॥ ४६-४८ ॥

लोमहर्षण उवाच

ब्रह्मणमग्रं कमलासनस्थं
विष्णुं तथा लक्ष्मिसमन्वितं च ।
रुद्रं च देवं प्रणिपत्य मूर्ध्ना
तीर्थं महद् ब्रह्मसरः प्रवक्ष्ये ॥ ४९

रन्तुकादौजसं यावत् पावनाय चतुर्मुखम् ।
सरः संनिहितं प्रोक्तं ब्रह्मणा पूर्वमेव तु ॥ ५०

कलिह्वापरयोर्मध्ये व्यासेन च महात्मना ।
सरःप्रमाणं यत्प्रोक्तं सच्छृणुष्वं द्विजोत्तमा ॥ ५१

विश्वेश्वरादम्बिपुरं तथा कन्या जरद्वती ।
यावदोचयती प्रोक्ता तावत्संनिहितं सरः ॥ ५२

मया श्रुतं प्रमाणं यत् पठ्यमानं तु धामने ।
तच्छृणुष्वं द्विजश्रेष्ठाः पुण्यं श्रद्धिकरं महत् ॥ ५३

विश्वेश्वराद् देववरी नृपावनात् सरस्वती ।
सरः संनिहितं ज्ञेयं समन्तादर्थयोजनम् ॥ ५४

एतदाश्रित्य देवाश्च ऋषयश्च समागताः ।
सेवन्ते मुक्तिकामार्थं स्वर्गार्थं चापरे स्थिताः ॥ ५५

ब्रह्मणा सेवितमिदं सृष्टिकामेन योगिना ।
विष्णुना स्थितिकामेन हरिरूपेण सेवितम् ॥ ५६

रुद्रेण च सरोमध्यं प्रविष्टेन महात्मना ।
सेव्यं तीर्थं महातेजाः स्थाणुत्वं प्राप्तवान् हरः ॥ ५७

आसीया ब्रह्मणो वेदिस्ततो रामहृदः स्मृतः ।
कुरुणा च यतः कृष्टं कुरुक्षेत्रं ततः स्मृतम् ॥ ५८

तरन्तुकारन्तुकयोर्वदन्तरं
यदन्तरं रामहृदाच्चतुर्मुखम् ।
एतत्कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं
पितृभहस्योत्तरवेदिरुच्यते ॥ ५९

लोमहर्षणजी बोले: सबसे पहले उत्पन्न होनेवाले कमलासन ब्रह्मा, लक्ष्मीके सहित विष्णु और महादेव रुद्रको सिर झुकाकर प्रणाम करके मैं महान् ब्रह्मसर तीर्थका वर्णन करता हूँ। ब्रह्माने पहले कहा था कि यह 'संनिहित' सरोवर 'रन्तुक' नामक स्थानसे लेकर औजस' नामक स्थानतक तथा 'पावन'से 'चतुर्मुख' तक फैला हुआ है। ब्राह्मणश्रेष्ठो! किंतु अब कलि और ह्वापरके मध्यमें महात्मा व्यासने सरोवरका जो (वर्तमान) प्रमाण बतलाया है उसे आपलोग सुनें 'विश्वेश्वर' स्थानसे अम्बिपुर तक और कन्या-कन्या'से लेकर 'ओचयती' नदीतक यह 'सरोवर' स्थित है ॥ ४९-५२ ॥

ब्राह्मणश्रेष्ठो! मैंने वामनपुराणमें वर्णित जो प्रमाण सुना है, आप उस पवित्र एवं कल्याणकारी प्रमाणको सुनें विश्वेश्वर स्थानसे देववरीतक एवं नृपावनसे सरस्वतीतक चतुर्दिक् आधे योजन (दो कोसों) में फैले इस संनिहित सरको समझना चाहिये। मोक्षकी इच्छासे आये हुए देवता एवं ऋषियग्न इसका आश्रय लेकर सदा इसका सेवन करते हैं तथा अन्य लोग स्वर्गके निमित्त यहाँ रुकते हैं। योगीश्वर ब्रह्माने सृष्टिकी इच्छासे एवं भगवान् श्रीविष्णुने जगत्के पालनकी कामनासे इसका आश्रय लिया था ॥ ५३-५६ ॥

(इसी प्रकार) सरोवरके मध्यमें बैठकर महात्मा रुद्रने भी इस तीर्थका सेवन किया, जिससे महादेवस्वी (उग्र) हरको स्थाणुत्व (स्थिरत्व) प्राप्त हुआ। आदिमें यह 'ब्रह्मवेदी' कहा गया था, किंतु आगे चलकर इसका नाम 'रामहृद' हुआ। उसके बाद राजर्षि कुल्हारा जाते जानेसे इसका नाम 'कुरुक्षेत्र' पड़ा। तरन्तुक एवं अरन्तुक नामके स्थानोंका मध्य तथा रामहृद एवं चतुर्मुखका मध्यभाग समन्तपञ्चक है जो कुरुक्षेत्र कहा जाता है। इसे पितृमहकी उत्तरवेदी भी कहते हैं ॥ ५७-५९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें बार्हस्पत्ये अध्याय समाप्त हुआ ॥ २२ ॥

तेईसवाँ अध्याय

**वामनचरितका उपक्रम, बलिका दैत्यराज्याधिपति होना और उनकी
अतुल राज्य लक्ष्मीका वर्णन**

अथ वक्तुः

बृहि वामनमाहात्म्यमुत्पत्तिं च विशेषतः ।
यथा बलिर्नियमितो दत्तं राज्यं शतक्रतोः ॥ १

लोमहर्षण उवाच

भृणुष्वं पुनयः प्रीता वामनस्य महात्मनः ।
उत्पत्तिं च प्रभावं च निवासं कुरुजाङ्गले ॥ २

तदेव वंशं दैत्यानां भृणुष्वं द्विजसन्तमाः ।
यस्य वंशे समभवद् बलिर्वैरोचनिः पुरा ॥ ३

दैत्यानामादिपुरुषो हिरण्यकशिपुः पुता ।
तस्य पुत्रो महातेजसः प्रह्लादो नाम दाण्डवः ॥ ४

तस्माद् विरोचनो जज्ञे बलिर्जज्ञे विरोचनात् ।
इते हिरण्यकशिपौ देवानुत्साद्य सर्वतः ॥ ५

राज्यं कृतं च तेनेह त्रैलोक्ये सचराचरे ।
कृतयत्नेषु देवेषु त्रैलोक्ये दैत्यतां गते ॥ ६

जये तथा बलवतोर्मयशम्बरयोस्तथा ।
शुक्रासु दिक्षु सर्वासु प्रवृत्ते धर्मकर्मणि ॥ ७

संप्रवृत्ते दैत्यपथे अयनस्थे दिवाकरे ।
प्रह्लादशम्बरमयैरनुह्लादेन चैव हि ॥ ८

दिक्षु सर्वासु गुप्तासु गगने दैत्यपालिते ।
देवेषु मन्त्रशोभां च स्वर्गस्थां दर्शयितु च ॥ ९

प्रकृतिस्थे ततो लोके वर्तमाने च सत्पथे ।
अभगवे सर्वपापानां धर्मभावे सद्गोत्थिते ॥ १०

श्रुधियेनि कदा— (कृपया आप) वामनके माहात्म्य और विशेषकर उनकी उत्पत्तिका वर्णन (विस्तारसे) करें तथा यह भी बतलावें कि बलिको किस प्रकार बौधकन इन्द्रको राज्य दिया गया ॥ १ ॥

लोमहर्षणने कहा— भुनियो! आपलोग प्रसन्नता-पूर्वक माहात्मा वामनकी उत्पत्ति, उनकी प्रभाव और कुरुजाङ्गल स्थानमें उनके निवासका वर्णन सुनें! द्विजश्रेष्ठो! आपलोग दैत्योंके उस वंशके सम्बन्धमें भी सुनें, जिस वंशमें प्राचीनकालमें विरोचनके पुत्र बलि उत्पन्न हुए थे पहले समयमें दैत्यांका आदिपुरुष हिरण्यकशिपु था। उसका प्रह्लाद नामक पुत्र अत्यन्त तेजस्वी दाण्डव था। उससे विरोचन उत्पन्न हुआ और विरोचनसे बलि हिरण्यकशिपुके मारे जानेपर बलिले सभी स्थानोंसे देवताओंको खदेड़ दिया और वह भयाचरसहित तीनों लोकोंका राज्य स्वच्छन्दतासे करने लगा। (विरोचनमें) देवताओंके (बहुत) प्रयत्न करते रहनेपर भी तीनों लोक दैत्योंके अधीन हो ही गये (एवं त्रैलोक्यपर देवताओंका अधिकार नहीं रह गया) ॥ २—६ ॥

बलशाली मय और शम्बरको विजय वैजयन्ती फहराने लग गयी। धर्मकार्य सर्वत्र होने लग गये फलतः दिशाएँ शुद्ध हो गयीं। सूर्य दैत्योंके मार्ग (दक्षिण अपन) में चले गये। (दैत्योंके शासनमें) प्रह्लाद, शम्बर, मय तथा अनुह्लाद ये सभी दैत्य सभी दिशोंकी रक्षा करने लगे। आकाश भी दैत्योंसे रक्षित हो गया। देवगण स्वर्गमें होनेवाले यज्ञोंकी शोभा देखने लगे। सारा संसार प्रकृतिमें स्थिर और (व्यवस्थित) हो गया तथा सभी सन्मार्गपर चलने लगे। सर्वत्र पापोंका अभाव और धर्म-पाशका उत्कर्ष हो गया ॥ ७—१० ॥

लोमहर्षण उवाच

ब्रह्माणमग्रं

कमलासनस्थं

विष्णुं तथा लक्ष्मिसमन्वितं च ।

रुद्रं च देवं प्रणिपत्य मूर्ध्ना

तीर्थं महद् ब्रह्मसरं प्रवक्ष्ये ॥ ४९

रन्तुकादीजसं यावत् पावनाच्च चतुर्मुखम् ।

सरः संनिहितं प्रोक्तं ब्रह्मणा पूर्वमेव तु ॥ ५०

कलिह्वापरयोर्मध्ये व्यासेन च महात्मना ।

सरःप्रमाणं यत्प्रोक्तं तच्छृणुष्वं द्विजोत्तमाः ॥ ५१

विश्वेश्वरादस्थिपुरं तथा कन्या जरदग्धीः ।

यावदोषवती प्रोक्ता तावत्संनिहितं सरः ॥ ५२

मया श्रुतं प्रमाणं यत् पठ्यमानं तु वापने ।

तच्छृणुष्वं द्विजश्रेष्ठा पुण्यं वृद्धिकरं महत् ॥ ५३

विश्वेश्वराद् देववरो नृपावनरत् सरस्वती ।

सरः संनिहितं ज्ञेयं समन्तादर्शयोजनम् ॥ ५४

एतदाश्रित्य देवाश्च ऋषयश्च समागताः ।

सेवन्ते मुक्तिकायार्थं स्वर्गार्थं चापरे स्थिताः ॥ ५५

ब्रह्मणा सेवितमिदं सृष्टिकामेन योगिना ।

विष्णुना स्थितिकामेन हरिरूपेण सेवितम् ॥ ५६

रुद्रेण च सरोमध्यं प्रविष्टेन महात्मना ।

सेव्यं तीर्थं महातेजाः स्थाणुत्वं प्राप्तवान् हरः ॥ ५७

आसीत् ब्रह्मणो वेदिस्ततो रामहृदः स्मृतः ।

कुरुणा च यतः कष्टं कुरुक्षेत्रं ततः स्मृतम् ॥ ५८

तरन्तुकारन्तुकयोर्वदन्तरं

यदन्तरं रामहृदाच्चतुर्मुखम् ।

एतत्कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं

पितामहस्योत्तरवेदिरुच्यते ॥ ५९

लोमहर्षणजी बोले—सबसे पहले उत्पन्न होनेवाले

कमलासन ब्रह्मा, लक्ष्मीके सहित विष्णु और महादेव रुद्रको सिर झुकाकर प्रणाम करके मैं महान् ब्रह्मसर तीर्थका वर्णन करता हूँ ब्रह्मण ने पहले कहा था कि वह 'संनिहित' सरोवर 'रन्तुक' नामक स्थानसे लेकर 'औजस' नामक स्थानतक तथा 'पावन' से चतुर्मुख तक फैला हुआ है। ब्राह्मणश्रेष्ठो! किंतु अब कलि और ह्वापरके मध्यमें महात्मा व्यासने सरोवरका जो (वर्तमान) प्रमाण बतलाया है उसे आपलोग सुनो 'विश्वेश्वर' स्थानसे 'अस्मिपुर तक और 'वृद्धा-कन्या' से लेकर 'ओषवती' नदीतक यह सरोवर स्थित है ॥ ४९—५२ ॥

ब्राह्मणश्रेष्ठो! मैंने वाग्वनपुराणमें वर्णित जो प्रमाण सुना है आप उस पवित्र एवं कल्याणकारी प्रमाणकी सुनो विश्वेश्वर स्थानसे देववरतक एवं नृपावनसं सरस्वतीतक चतुर्दिक् आधे योजन (दो कोसों)—में फैले इस संनिहित सरको समझना चाहिये मोक्षकी इच्छासे आये हुए देवता एवं ऋषिगण इसका आश्रय लेकर सदा इसका सेवन करते हैं तथा अन्य लोग स्वर्गके निमित्त यहाँ रहते हैं योगीश्वर ब्रह्मणने सृष्टिकी इच्छासे एवं भगवान् श्रीविष्णुने जगत्के पालनकी कामनासे इसका आश्रय लिया था ॥ ५३—५६ ॥

(इसी प्रकार) सरोवरके मध्यमें बैठकर महात्मा रुद्रने भी इस तीर्थका सेवन किया, जिससे महातेजस्वी (उन) हरको स्थाणुत्व (स्थिरत्व) प्राप्त हुआ आदिमें यह 'ब्रह्मवेदी' कहा गया था, किंतु आगे चलकर इसका नाम 'रामहृद' हुआ। उसके बाद राजर्षि कुरुद्वारा जोते जानेसे इसका नाम 'कुरुक्षेत्र' पड़ा तरन्तुक एवं अरन्तुक नामके स्थानोंका मध्य तथा रामहृद एवं चतुर्मुखका मध्यभाग समन्तपञ्चक है, जो कुरुक्षेत्र कहा जाता है इसे पितामहकी उत्तरवेदी भी कहते हैं ॥ ५७—५९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवाग्वनपुराणमें बार्हस्पत्येय अध्याय समाप्त हुआ ॥ २२ ॥

॥ २२ ॥

तेईसवाँ अध्याय

**वामनचरितका उपक्रम, बलिका दैत्यराज्याधिपति होना और उनकी
अतुल राज्य-लक्ष्मीका वर्णन**

श्लोक ऋतुः

ब्रूहि वामनमाहात्म्यमुत्पत्तिं च विशेषतः ।
यथा बलिर्नियमितो दत्तं राज्यं शतक्रतोः ॥ १

लोकवर्णन उवाच

शृणुष्व पुनयः प्रीता वामनस्य महात्मनः ।
उत्पत्तिं च प्रभावं च निवासं कुरुजाङ्गले ॥ २

तदेव वंशं दैत्यानां शृणुष्व द्विजसन्तमाः ।
यस्य वंशे सम्भवद् बलिर्वैरोचनिः पुरा ॥ ३

दैत्यानामादिपुरुषो हिरण्यकशिपुः पुरा ।
तस्य पुत्रो महातेजाः प्रह्लादो नाम दानवः ॥ ४

तस्माद् विरोचनो जज्ञे बलिर्जज्ञे विरोचनात् ।
हते हिरण्यकशिपी देवानुत्साह्य सर्वतः ॥ ५

राज्यं कृतं च तेनेह त्रैलोक्ये सच्चराचरे ।
कृतयज्ञेषु देवेषु त्रैलोक्ये दैत्यतां गते ॥ ६

जये तथा बलवतोर्मयशम्बरयोस्तथा ।
शुद्धासु दिक्षु सर्वासु प्रवृत्ते धर्मकर्मणि ॥ ७

संप्रवृत्ते दैत्यपथे अयनस्थे दिवाकरे ।
प्रह्लादशम्बरमयैरनुह्लादेन चैव हि ॥ ८

दिक्षु सर्वासु गुप्तासु गगने दैत्यपालिते ।
देवेषु मल्लशोभां च स्वर्गस्थां दर्शयत्सु च ॥ ९

प्रकृतिस्थे ततो स्लोके वर्तमाने च सत्पथे ।
अभावे सर्वपापानां धर्मभावे सदोत्थिते ॥ १०

प्रहियोंने कहा—(कृपया आप) वामनके माहात्म्य और विशेषकर उनकी उत्पत्तिका वर्णन (विस्तारसे) करें तथा यह भी अवसरार्थ कि बलिको किस प्रकार बाँधकर इन्द्रको राज्य दिया गया ॥ १ ॥

लोकवर्णनने कहा—मुनियो! आपलोग प्रसन्नतापूर्वक महात्मा वामनकी उत्पत्ति, उनका प्रभाव और कुरुजाङ्गल स्थानमें उनके निवासका वर्णन सुनें! द्विजश्रेष्ठो! आपलोग दैत्योंके उस वंशके सम्बन्धमें भी सुनें, जिस वंशमें प्राचीनकालमें विरोचनके पुत्र बलि उत्पन्न हुए थे पहले समयमें दैत्योंका आदिपुरुष हिरण्यकशिपु था। उसका प्रह्लाद नामक पुत्र अत्यन्त तेजस्वी दानव था ॥ उससे विरोचन उत्पन्न हुआ और विरोचनसे बलि। हिरण्यकशिपुके भरे जानेपर बलिले सभी स्थानोंसे देवताओंको खदेड़ दिया और वह चराचरसहित तीनों लोकोंका राज्य स्वच्छन्दतासे करने लगा। (विरोधमें) देवताओंके (बहुत) प्रयास करते रहनेपर भी तीनों लोक दैत्योंके अधीन हो ही गये (एवं त्रैलोक्यपर देवताओंका अधिकार नहीं रह गया) ॥ २-६ ॥

बलशाली मय और शम्बरको मित्रवद-वैजयन्ती फड़राने लग गयी। धर्मकार्य सर्वत्र होने लग गये फलतः दिशार्ह शुद्ध हो गयीं। सूर्य दैत्योंके मार्ग (दक्षिण अयन) में चले गये। (दैत्योंके शासनमें) प्रह्लाद, शम्बर, मय तथा अनुह्लाद ये सभी दैत्य सभी दिशाओंकी रक्षा करने लगे आकाश भी दैत्योंसे रक्षित हो गया। देवगण स्वर्गमें होनेवाले यज्ञोंकी शोभा देखने लगे। सारा संसार प्रकृतिमें स्थित और (धर्मस्थित) हो गया तथा सभी सन्मार्गपर चलने लगे। सर्वत्र पापोंका अभाव और धर्म-भावका उत्कर्ष हो गया ॥ ७-१० ॥

चतुष्पादे स्थिते धर्मं हाधर्मं पादविग्रहे ।
प्रजापालनयुक्तेषु भाजमानेषु राजसु ।
स्वधर्मसंप्रयुक्तेषु तथाश्रमनिवासिषु ॥ ११

अभिषिक्तो सूरः सर्वदैत्यराज्ये बलिस्तदा ।
दृष्टेज्वसुरसंगेषु नदन्तु मुदितेषु च ॥ १२

अथाभ्युपगता लक्ष्मीर्बलिं पद्यान्तरप्रभा ।
पयोद्घातकरा देवी वरदा सुप्रवेशिनी ॥ १३

बले बलवतां श्रेष्ठ दैत्यराज महाद्युते ।
प्रीताऽस्मि तव भद्रं ते देवराजपराजये ॥ १४

यत्तया युधि विक्रम्य देवराज्यं पराजितम् ।
दुहा ते परमं सत्त्वं ततोऽहं स्वयमागता ॥ १५

नाश्वर्यं दानवव्याघ्र हिरण्यकशिपोः कुले ।
प्रसूतम्यासुरेन्द्रस्य तव कर्मदमीदृशम् ॥ १६

विशेषितस्त्वया राजन् दैत्येन्द्रः प्रपितामहः ।
येन भुक्तं हि निखिलं त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥ १७

एवमुक्त्वा तु सा देवी लक्ष्मीर्दैत्यनृपं बलिम् ।
प्रविष्टा वरदा सेव्या सर्वदेवमनोरमा ॥ १८

तुष्टाश्च देव्यः प्रवराः ह्रीः कीर्तिर्द्युतिरेव च ।
प्रभा धृतिः क्षम्य भुक्तिर्ऋद्धिर्दिव्य महामतिः ॥ १९

श्रुतिः स्मृतिरिह कीर्तिः शान्तिः पुष्टिस्तथा क्रिया ।
सर्वाश्चाप्सरसो दिव्य नृत्तगीतविशारदाः ॥ २०

प्रपद्यन्ते स्म दैत्येन्द्रं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
प्राप्तमैश्वर्यमतुलं बलिना ब्रह्मवादिना ॥ २१

फिर तो धर्म चारों चरणोंसे प्रतिष्ठित हो गया और अधर्म एक ही चरणपर स्थित रह गया। सभी राजा (भलीभाँति) प्रजापालन करते हुए सुशोभित होने लगे और सभी आश्रमोंके लोग अपने-अपने धर्मका पालन करने लगे ऐसे समयमें असुरोंने बलिको दैत्यराजके पदपर अभिषेक कर दिया असुरोंका समुदाय हर्षित होकर निनाद (जय-जयकार) करने लगा। इसके बाद कमलके भीतरी गोफके समान कान्तिवाली अरदायिनी और सुन्दर सुवैभवाली श्रीलक्ष्मीदेवी हाधर्म कमल लिये हुए बलिके समीप आयीं ॥ १२—१३ ॥

लक्ष्मीने कहा बलवानोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी दैत्यराज बलि देवराजके पराजय हो जानेपर मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम्हारा मन्त्र हो क्योंकि तुमने संग्राममें पराक्रम दिखाकर देवोंके राज्यको जीत लिया है। इसलिये तुम्हारे श्रेष्ठ बलको देखकर मैं स्वयं आयी हूँ। दानव! असुरोंके स्वामी। हिरण्यकशिपुके कुलमें उत्पन्न हुए तुम्हारा यह कर्म ऐसा है इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। राजन् आप दैत्यश्रेष्ठ अपने प्रपितामह हिरण्यकशिपुसे भी विशिष्ट (प्रभावशाली) हैं क्योंकि आप पूरे तीनों लोकोंमें समृद्ध इस राज्यका भोग कर रहे हैं ॥ १४—१७ ॥

दैत्यराज बलिते ऐसा कहनेके बाद सर्वदेवस्वरूपिणी एवं मनोहर रूपवाली सबकी सेव्य एवं (सबको) घर देनेवाली श्रीलक्ष्मी देवी राजा बलिमें प्रविष्ट हो गयीं। तब सभी श्रेष्ठ देवियों—ह्री कीर्ति, द्युति, प्रभा, धृति, क्षमा, भुक्ति, ऋद्धि, दिव्य, महामति, श्रुति, स्मृति, शक्त, कीर्ति, शान्ति, पुष्टि, क्रिया और नृत्तगीतमें विपुल दिव्य अप्सराएँ भी प्रसन्न होकर दैत्येन्द्र (बलि) का सेवन करने लगीं इस प्रकार ब्रह्मवादी बलिते चर-अचरवाले त्रैलोक्यका अतुल ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया ॥ १८—२१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

वामन-चरितके उपक्रममें देवताओंका कश्यपजीके साथ ब्रह्मलोकमें जाना

अथ उपबुधः

देवानां बृहि नः कर्म यद्वृत्तास्ते पराजिताः ।
कथं देवाधिदेवोऽसौ विष्णुर्वामनतः गतः ॥ १

लोमहर्षण उवाच

बलिसंस्थं च त्रैलोक्यं दृष्ट्वा देवः पुरंदरः ।
भेरुप्रस्थं ययौ शक्रः स्वयातुर्निलयं शुभम् ॥ २

समीपं प्राप्य मातुश्च कथयामास तां गिरम् ।
आदित्याश्च यथा युद्धे दानवेन पराजिताः ॥ ३

अदितिरुवाच

यद्येवं पुत्र युष्माभिर्भक्षक्यो हन्तुमाहवे ।
बलिर्विरोचनसुतः सर्वैश्चैव मरुद्गणैः ॥ ४

सहस्रशिरसा शक्यः केवलं हन्तुमाहवे ।
तेनैकेन सहस्राक्षं न स ह्यन्येन शक्यते ॥ ५

तद्वत् पृच्छामि पितरं कश्यपं ब्रह्मवादिनम् ।
पराजयार्थं दैत्यस्य बलेस्तस्य महात्मानः ॥ ६

ततोऽदित्या सह सुतः संप्राप्ताः कश्यपान्तिकम् ।
तत्रापश्यन्त भारीचं मुनिं दीप्ततपोनिधिम् ॥ ७

आसीं देवगुरुं दिव्यं प्रदीप्तं ब्रह्मवर्चसा ।
तेजसा भास्कराकारं स्थितमग्निशिखोपमम् ॥ ८

न्यस्तदण्डं तपोयुक्तं बद्धकृष्णाजिनाम्बरम् ।
बल्कलाजिनसंवीतं प्रदीप्तमिव तेजसा ॥ ९

हुताशमिव दीप्यन्तमाज्यगन्धपुरस्कृतम् ।
स्वाध्यायवन्तं पितरं वपुष्मन्तमिवानलम् ॥ १०

ब्रह्मवादिसत्यवादिसुरासुरगुरुं प्रभुम् ।
ब्राह्मण्यऽप्रतिमं लक्ष्म्या कश्यपं दीप्ततेजसम् ॥ ११

यः स्वप्ता सर्वलोकानां प्रजानां धतिरुत्तमः ।
आत्मभावविशेषेण तृतीयो यः प्रजापतिः ॥ १२

अभियोनि कथा—आप इनमें यह बातलायें कि देवताओंने कौन-सा कर्म किया, जिससे प्रभावित होकर वे (दैत्य) पराजित हुए तथा देवाधिदेव भगवान् विष्णु कैसे वामन (यौना) बने ॥ १ ॥

लोमहर्षणने कहा (उत्तर दिया)—इन्द्रदेवने अब तीनों लोकोंको बलिके अधिकारमें देखा तब वे मेर (पर्वत)-पर स्थित (रहनेवाले) अपनी कल्याणमयी माताके घर गये माताके समीप जाकर उन्होंने उनसे (मातासे) यह बात कही—जिससे देवगण युद्धमें दानव बलिले पराजित हुए थे ॥ २-३ ॥

माता अदितिने कहा—पुत्र, यदि ऐसी बात है तो तुमलोग सम्पूर्ण मरुद्गणोंके साथ मिलकर भी संग्राममें विरोचनके पुत्र बलिको नहीं मार सकते सहस्राक्ष। युद्धमें केवल हजारों सिरवाले (सहस्रशीर्षा) भगवान् विष्णु ही (उसे) मार सकते हैं उनके सिवा किसी दूसरेसे यह नहीं मारा जा सकता। अतः इस विषयमें उस महान् आत्मा (महाबलवान्) बलि नामक दैत्यको पशुजयके लिये मैं तुम्हारे पिता ब्रह्मवादी कश्यपसे (ठप्राय) पूछूंगी ॥ ४-६ ॥

इस प्रकार माता अदितिके कहनेपर सभी देवता उनके साथ कश्यपजीके पास पहुँच गये। वहाँ (आकर उन लोगोंने) तपस्याके धनी, मरीचिके पुत्र, आद्य एवं दिव्य पुरुष, देवताओंके गुरु, ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान और अपने तेजसे सूर्यके समान तेजस्वी, अग्निशिखाकी भाँति दीप्त, संन्यासीके रूपमें, तपोयुक्त बल्कल तथा मृगचर्म धारण किये हुए (आहुतिके) धीकी गन्धसे आप्यायित (वासित) अग्निके समान जलते हुए, स्वाध्यायमें लगे हुए मानो सरोरधारो अग्नि ही हों एवं ब्रह्मवादी, सत्यवादी देवों तथा दानवोंके गुरु, अनुपम ब्रह्मतेजसे पूर्ण एवं शोभासे दीप्त कश्यपजीको देखा ॥ ७-११ ॥

वे (देवताओंके पिता श्रीकश्यपजी) सभी लोकोंके रहनेवाले, ग्रेष्ठ प्रजापति एवं आत्मभाव अर्थात् अध्यात्मतत्त्वकी विज्ञताकी विशिष्टताके कारण ऐसे लग

अथ प्रणम्य ते वीराः सहादित्या सुरर्षभाः ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे ब्रह्माणमिव मानसाः ॥ १३

अज्रेयो युधि शक्रेण बलिर्देव्यो बलाधिकः ।
तस्माद् विधत्त नः श्रेयो देवानां पुष्टिवर्धनम् ॥ १४

भुत्वा तु वक्ष्यं तेषां पुत्राणां कश्यपः प्रभुः ।
अकरोद् गमने बुद्धिं ब्रह्मलोकाय लोककृत् ॥ १५

कश्यप उवाच

शक्र गच्छाम मदं ब्रह्मणः परमाद्भुतम् ।
तथा पराजयं सर्वे ब्रह्मणः ख्यातुमुद्यताः ॥ १६

सहादित्या ततो देवा याताः काश्यपमाश्रमम् ।
प्रस्थिता ब्रह्मसदनं महर्षिगणसेवितम् ॥ १७

ते मुहूर्तेन संप्राप्ता ब्रह्मलोकं सुवर्चसः ।
दिव्यैः कामगमैर्यनैर्यथाईस्ते महाबलाः ॥ १८

ब्रह्माणं ब्रह्मिच्छन्तस्तपोराशिनमव्ययम् ।
अध्यागच्छन्त विस्तीर्णा ब्रह्मणः परमां सभाम् ॥ १९

षट्पदोद्गीतमधुरां सामगैः समुदीरिताम् ।
श्रेयस्करीमपित्रर्चीं दृष्ट्वा संजह्युस्तदा ॥ २०

अथो बह्वचमुख्यैश्च प्रोक्ताः क्रमपदाक्षराः ।
शुश्रुवुर्विबुधव्याघ्रा विततेषु च कर्मसु ॥ २१

यज्ञविद्यावेदविदः पदक्रमविदस्तथा ।
स्वरेण परमर्षीणां सा बभूव प्रणादिता ॥ २२

यज्ञसंस्तवविद्भिश्च शिक्षाविद्भिस्तथा द्विजैः ।
छन्दसां चैव चार्वाङ्गैः सर्वविद्याविशारदैः ॥ २३

लोकायतिकमुख्यैश्च शुश्रुवुः स्वरमीरितम् ।
तत्र तत्र च विप्रेन्द्रा विद्यताः शंसितव्रताः ॥ २४

जपहोमपरा मुख्या ददशुः कश्यपात्मजाः ।
तस्यां सभायामास्ते स ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ २५

सुरासुरगुरुः श्रीमान् विद्याया वेदमायया ।
उपासन्त च तत्रैव प्रजानां पतयः प्रभुम् ॥ २६

रहे थे जैसे तीसरे प्रजापति ही हैं। फिर अदितिके साथ समस्त देववीर उन्हें प्रणाम कर उनसे हाथ जोड़कर ऐसे बोले जैसे ब्रह्मासे उनके मानस-पुत्र बोलते हैं— बलशाली दैत्यराज बलि युद्धमें इन्द्रसे अपराजय हो गया है। अतः हम देवोंके सामर्थ्यकी पुष्टि बृद्धिके लिये आप कल्याणकारी उपाय करें उन पुरुषोंकी बातें सुनकर लोकोंको रचनेवाले सामर्थ्यशाली कश्यपने ब्रह्मलोकमें जानेका विचार किया ॥ १२—१५ ॥

(फिर) कश्यपने कहा— इन्द्र! हम सभी अपनी पराजयकी बात ब्रह्माजीसे कहनेके लिये तैयार होकर उनके परम अद्भुत लोकको चले कश्यपके इस प्रकार कहनेपर अदितिके साथ कश्यपके आश्रममें आये हुए सभी देवताओंने महर्षिगणोंसे सेवित ब्रह्मसदनकी ओर प्रस्थान किया। यथायोग्य इच्छाके अनुसार चलनेवाले दिव्य यानोंसे महाबली एवं तेजस्वी ये सभी देवता क्षणमात्रमें ही ब्रह्मलोकमें पहुँच गये और तब ये लोग तपोराशि अव्यय ब्रह्माको देखनेकी इच्छा करते हुए ब्रह्माकी विज्ञात परम श्रेष्ठ सभामें पहुँचे ॥ १६—१९ ॥

वे (देवतालोग) भ्रमरोंकी गुंजारसे गुंजित, सामानसे मुखरित, कल्याणकी विधायिका और शत्रुओंका विनाश करनेवाली उस सभाको देखकर प्रसन्न हो गये (उस स्थानपर) उन श्रेष्ठ देवगणोंने विस्तृत (विशाल) अनेक कर्मानुष्ठानोंके समग्र श्रेष्ठ ऋग्वेदियोंके द्वारा 'क्रमपदादि' (वेद पढ़नेकी विशिष्ट शैलियोंसे) उच्चरित ऋचाओं (वेदमन्त्रों) को सुना। वह सभा यज्ञविद्याके ज्ञाता एवं 'पदक्रम' प्रभृति वेदपाठके ज्ञानवाले परमर्षियोंके उच्चगणकी ध्वनिसे प्रतिध्वनित हो रही थी। देवोंने वहाँ यज्ञके संस्तवोंके ज्ञाताओं शिक्षाविदों और वेदमन्त्रोंके अर्थ जाननेवालों, समस्त विद्याओंमें पारकृत द्विजों एवं श्रेष्ठ लोकायतिकोंके (चार्वाकके मतानुयायियों) द्वारा उच्चरित स्वरको भी सुना कश्यपके पुत्रोंने वहाँ सर्वत्र नियमपूर्वक तीर्थ-व्रतको धारण करनेवाले जप-होम करनेमें लगे हुए श्रेष्ठ विप्रोंको देखा। उसी सभामें लोक-पितामह ब्रह्मा विराजमान थे ॥ २०—२५ ॥

(उस) सभामें वेदमन्त्रा विद्यासे सम्पन्न, सुरों एवं असुरोंके गुरु (श्रीमान् ब्रह्माजी) भी उपस्थित थे। प्रजापतिगण उन (प्रभुता सम्पन्न) प्रभुकी उपासना कर

दक्षः प्रचेताः पुलहो मरीचिश्च द्विजोत्तमाः ।
 भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च गौतमो नारदस्तथा ॥ २७ ॥
 विद्यास्तथान्तरिक्षं च वायुस्तेजो जलं मही ।
 शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च ॥ २८ ॥
 प्रकृतिश्च विकारश्च यच्चान्यत् कारणं महत् ।
 साङ्गोपाङ्गाश्च चत्वारो वेदा लोकपतिस्तथा ॥ २९ ॥
 नद्याश्च क्रतवश्चैव सङ्कल्पः प्राण एव च ।
 एते जान्ये च ब्रह्मः स्वयंभुवमुपासते ॥ ३० ॥
 अर्थो धर्मश्च कामश्च क्रोधो हर्षश्च नित्यशः ।
 शुक्रो बृहस्पतिश्चैव संवर्त्तोऽथ बुधस्तथा ॥ ३१ ॥
 शनैश्चरश्च राहुश्च ग्रहाः सर्वे व्यवस्थिताः ।
 मरुतो विश्वकर्मा च वसवश्च द्विजोत्तमाः ॥ ३२ ॥
 दिवाकरश्च सोमश्च दिवा रात्रिस्तथैव च ।
 अर्द्धमासाश्च मासाश्च ऋतवः षट् च संस्थिताः ॥ ३३ ॥
 तां प्रविश्य सभां दिव्यं ब्रह्मणः सर्वकामिकाम् ।
 कश्यपस्त्रिदशैः सप्तैर्धर्मभृतां वरः ॥ ३४ ॥
 सर्वतेजोमयीं दिव्यां ब्रह्मर्षिगणसेविताम् ।
 ब्रह्मणा श्रिया सेव्यमानामत्रिन्धां श्रितवस्त्वाम् ॥ ३५ ॥
 ब्रह्माणं प्रेक्ष्य ते सर्वे परमात्मनमाश्रितम् ।
 शिरोभिः प्रणत्ता देवं देवा ब्रह्मर्षिभिः सह ॥ ३६ ॥
 ततः प्रणम्य चरणौ नियताः परमात्मनः ।
 विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः शान्ता विगतकल्मषाः ॥ ३७ ॥
 दृष्ट्वा तु तान् सुरान् सर्वान् कश्यपेन सहागतान् ।
 आह ब्रह्मा महातेजा देवानां प्रभुरीश्वरः ॥ ३८ ॥

रहे थे। द्विजोत्तमो। दक्ष, प्रचेता, पुलह, मरीचि, भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, गौतम और नारद एवं सभी विद्याएँ, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, सन्ध, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध एवं प्रकृति, विकृति, अन्यान्य महत् कारण, अङ्गों एवं उपाङ्गोंके साथ चारों वेद और लोकपति, नीति, यज्ञ, संकल्प, प्राण—ये तथा अन्यान्य देव, ऋषि, भूत, तत्त्वदि ब्रह्माकी उपासना कर रहे थे। द्विजश्रेष्ठो! अर्थ, धर्म, काम, क्रोध, हर्ष, शुक्र, बृहस्पति, संवर्त्त, बुध, शनैश्चर और राहु आदि सभी ग्रह भी वहाँ यथास्थान बैठे थे मरुत्माण, विश्वकर्मा, वसु, सूर्य, चन्द्रमा, दिन, रात्रि, पक्ष, मास तथा ऋतुएँ भी वहाँ उपस्थित थीं ॥ २६—३३ ॥

धार्मिकोंमें श्रेष्ठ कश्यपने अपने पुत्र देवताओंके साथ ब्रह्माकी उस सर्वमनोरथमयी, सर्वतेजोमयी, दिव्य एवं ब्रह्मर्षिगणोंसे सेवित तथा ब्रह्म-विचारमयी सरस्वती एवं लक्ष्मीसे सेवित अधिपत्य तथा खिन्तासे रहित सभामें प्रवेश किया। तब उनके साथमें गये सभी देवताओंने श्रेष्ठ आसनपर विराजमान ब्रह्माजीको देखा और उन्हें ब्रह्मर्षियोंके साथ झुककर सिरसे प्रणाम किया नियमका पालन करनेवाले थे सभी परमात्माके चरणोंमें प्रणाम करके सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर निर्मल एवं शान्त हो गये (फिर) महान् तेजस्वी देवेश्वर ब्रह्मने कश्यपके साथ आये हुए उन सभी देवताओंको देखकर कहा— ॥ ३४—३८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें चौबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २४ ॥



वामन चरितके सन्दर्भमें ब्रह्माका उपदेश तथा तदनुसार देवोंका

श्रेतद्वीपमें तपस्या करना

ब्रह्मोवाच

ब्रह्मने कहा— महाबलशाली देवगण! आपलोग

यदर्थंयिह संप्राप्ता भवन्तः सर्व एव हि ।
 तिनत्याभ्यहमप्यग्रे तदर्थं च भ्रातृवताः ॥ १ ॥
 भविष्यति च वः सर्वं काङ्क्षितं यत् सुरोत्तमः ।
 बलेर्दानवमुख्यस्य योऽस्य जेता भविष्यति ॥ २ ॥

जिस उद्देश्यसे यहाँ आये हैं, उसके विषयमें मैं पहलेसे ही सोच रहा हूँ। सुरश्रेष्ठ! आपलोगोंको जो अभिलषित है, वह पूर्ण होकर रहेगा दानवोंमें प्रधान बलिको पराजित करनेवाले एवं विश्वको रचनेवाले

न केवलं सुरादीनां गतिर्मम स विश्वकृत् ।
त्रैलोक्यस्यापि नेत्रं च देवानामपि स प्रभुः । ३
यः प्रभुः सर्वलोकानां विश्वेशश्च सनातनः ।
पूर्वजोऽयं सदाध्याहुरादिदेवं सनत्तनम् ॥ ४
तं देवापि महात्मानं न विदुः कोऽप्यसाविति ।
देवानस्मान् श्रुतिं विश्वं स वेत्ति पुरुषोत्तमः ॥ ५

तस्यैव तु प्रसादेन प्रवक्ष्ये परमां गतिम् ।
यत्र योगं समास्थाय तपश्चरति दुश्चरम् ॥ ६

शीरोदस्योत्तरे कूले उदीच्यां दिशि विश्वकृत् ।
अमृतं नाम परमं स्थानमाहुर्मनीषिणः ॥ ७

भवन्तस्तत्र वै गत्वा तपसा शंसितव्रताः ।
अमृतं स्थानमासाद्य तपश्चरत दुश्चरम् ॥ ८

ततः श्रोष्यथ संपृष्टां त्रिगन्धगम्भीरनिःस्वनाम् ।
उष्णान्ते तोयदस्येव तोयपूर्णस्य निःस्वनम् ॥ ९

रक्तां पुष्टाक्षरां रम्यामभयां सर्वदा शिवाम् ।
वर्णां परमसंस्कारां वदतां ब्रह्मवादिनाम् ॥ १०

दिव्यां सत्यकरीं सत्यां सर्वकल्मषनाशिनीम् ।
सर्वदेवाधिदेवस्य ततोऽस्तौ भावितात्मनः ॥ ११

तस्य व्रतसमाध्यां तु योगव्रतविसर्जने ।
अमोघं तस्य देवस्य विश्वतेजो महात्मनः ॥ १२

कस्य किं नो वरं देवा ददामि वरदः स्थितः ।
स्वर्गतं नः सुरश्रेष्ठा मत्समीपमुपागतः ॥ १३

(परमात्मा) न केवल (आप सब) देवोंके, प्रत्युत हमारे भी सहारे हैं। वे तीनों लोकोंके स्वामी तथा देवोंके भी शासक हैं। इन्हें ही सनातन आदिदेव भी कहते हैं ॥ १-४ ॥

उन महान् आत्मा (सनातन आदिदेव) को देवता आदि कोई भी वास्तवरूपमें नहीं जानते कि वे कौन हैं परंतु वे पुरुषोत्तम (समस्त) देवोंको, मुझे तथा श्रुति (वेद) एवं समस्त विश्वको जानते हैं (संसारके समस्त क्रिया-कलाप उनको जानकारीमें ही होते हैं वे सर्वज्ञ हैं) उन्हींके कृपा-प्रसादसे (आपलोगोंको) मैं अत्यन्त श्रेष्ठ उपाय बतलता हूँ (आपलोग सुनें)। आप सभी उत्तर-दिशामें क्षीरसागरके उत्तरी तटपर स्थित उस स्थानपर जाइये किसे विचारशील विद्वान् लोग (अमृत) नामसे उच्चारित करते हैं। विश्वकी रचना करनेवाले (परमात्मा) वहाँ योगधारणामें स्थित होकर कठिन तपस्या कर रहे हैं। आप सभी लोग उस अमृत नामक स्थानपर जाइँ और अस्तरस्पर्शित होकर आपलोग भी लक्ष्यकी सिद्धिके लिये वहाँ कठिन तपस्या प्रारम्भ कर दें ॥ ५-८ ॥

(अब आपलोग वहाँ जाकर कठिन तपस्या करने लगेंगे) तब श्रोष्यके अन्तमें देवाधिदेवकी शब्दरूपिणी, त्रिगन्ध-गम्भीर ध्वनिवाली, श्रेमसे भरी हुई शुद्ध और स्पष्ट अधरोंसे युक्त मनोहर एवं निर्भयताकी सूचना देनेवाली, सर्वदा मङ्गलमयी, उच्च स्वरसे अघमन करनेवाले ब्रह्मवादियोंकी जाणीके समान स्पष्ट, उत्तम संस्कारसे युक्त, दिव्य, सत्य-स्वरूपिणी, सत्यताकी ओर उन्मुख होनेके लिये प्रेरणा देनेवाली और पार्श्वोंको नष्ट करनेवाली जलसे पूर्ण मेघके गर्जनके समान गम्भीर जाणीको सुनेंगे। उसके बाद भावितात्माके (आत्मज्ञानसे परिपूर्ण महात्मा कल्मषके योगव्रतके अवसरपर) व्रतकी सम्पत्ति हो जानेके बाद अमोघ तेजसे सम्पन्न वे देव आपसे कहेंगे—सुरश्रेष्ठो आपलोग मेरे पास आइये, आपलोगोंका स्वागत है। मैं (आपलोगोंको) वरदान देनेके लिये आप सबके समक्ष स्थित हूँ कहो किसे कौन-सा वर दूँ ॥ ९-१३ ॥

ततोऽदितिः कश्यपश्च गृह्णीयातां वरं तदः।
प्रणम्य शिरसा पादौ तस्मै देवाय धीमते ॥ १४

भगवानेव नः पुत्रो भवत्विति प्रसीद न।
उक्तश्च परया वाचा तथ्यऽस्त्विति स वक्ष्यति ॥ १५

देवां वृणन्ति ते सर्वे कश्यपोऽदितिरेव च।
तथास्त्विति सुराः सर्वे प्रणम्य शिरसा प्रभुम्।
श्वेतद्वीपं समुद्दिश्य गताः सौम्यदिशं प्रति ॥ १६

तेऽचिरेणैव संप्राप्ताः क्षीरेर्द सरितां पतिम्।
यद्योद्दिष्टे भगवता ब्रह्मणा सत्यवादिना ॥ १७

ते प्रप्रन्ताः सागरान् सर्वान् पर्वतांश्च सकाननान्।
नदीश्च विविधा दिव्याः पृथिव्यां ते सुरोत्तमा ॥ १८

अवश्यन्त तमो घोरं सर्वसत्त्वविवर्जितम्।
अभास्करममर्यादं तमसा सर्वतो वृतम् ॥ १९

अमृतं स्थानम्रासाद्य कश्यपेन महात्मना।
दीक्षिताः कामदं दिव्यं व्रतं वर्षसहस्रकम् ॥ २०

प्रसादार्थं सुरेशाय तस्मै योगाय धीमते।
नारायणाय देवाय सहस्राक्षाय भूतये ॥ २१

ब्रह्मचर्येण मौनेन स्थाने वीरासनेन च।
क्रमेण च सुराः सर्वे तप उग्रं समास्थिता ॥ २२

कश्यपस्तत्र भगवान् प्रसादार्थं महात्मनः।
उदीरयत वेदोक्तं यमाहुः परमं स्तवम् ॥ २३

और, जब भगवान् इस प्रकार वरदान देनेके लिये उपस्थित होंगे तथा अदिति एवं कश्यप उन प्रजावान् प्रभुके चरणोंमें झुककर सिरसे प्रणाम और वरकी याचना करेंगे कि 'भगवान् ही हमारे पुत्र बनें इसके लिये आप हमारे ऊपर प्रसन्न हों' तब वे ब्रह्मवाणीके द्वारा 'ऐसा ही हो'—यह कहेंगे। (इस प्रकार संकेत है) निर्देश पाकर कश्यप, अदिति एवं सभी देवताओंने 'ऐसा ही हो'—यह कहकर प्रभु (ब्रह्म) को सिरसे प्रणाम किया और श्वेतद्वीपकी ओर लक्ष्य करके उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान किया। वे अत्यन्त शौघ्रतासे सत्यप्रवक्तृ भगवान् ब्रह्माके द्वारा निर्दिष्ट की गयी व्यवस्थाके अनुसार क्षीरसागरके तटपर पहुँच गये ॥ १४—१७ ॥

उन देवदरोने पृथ्वीके सभी समुद्रों, वनसे भरे हुए पर्वतों एवं भौति-भौतिकी दिव्य नदियोंको पार किया उसके बाद (उसके आगे) उन लोगोंने ऐसे स्थानको देखा जहाँ न कोई प्राणी था, न सूर्यका प्रकाश ही था; प्रत्युत चारों ओर घनघोर अन्धकार था, जिसमें सीमा मालूम ही नहीं होती थी। इस प्रकारके उस 'अमृत' नामक स्थानपर पहुँचकर महात्मा कश्यपने प्रजा-सम्पन्न योगी, देवेश्वर, कल्याणकी मूर्ति, सहस्रचक्षु नारायणदेवकी प्रसन्नताकी प्राप्तिके उद्देश्यसे (देवताओंको) सहस्रवार्धिक (हजारों वर्षोंमें पूर्ण होनेवाले) दिव्य (देव-सम्पत्तियों) इच्छा पूर्ण करनेवाले कामद व्रतको दीक्षा दी। फिर वे सभी देवता क्रमशः अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके और मौन धारणकर उचित स्थानपर वीरासनसे बैठकर कठोर तपस्या करने लगे। वहाँ भगवान् कश्यपने महात्मना विष्णुको प्रसन्न करनेके लिये वेदमें कहे हुए स्तवका (सूक्त या स्तोत्रका) स्पष्ट वाणीमें पाठ किया, जिसे 'परमस्तव' कहते हैं ॥ १८—२३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें पचीसवीं अध्याय समाप्त हुआ ॥ २५ ॥

छब्बीसवां अध्याय

कश्यपद्वारा भगवान् वामनकी स्तुति

कश्यप उवाच

नमोऽस्तु ते देवदेव एकभृङ्ग वृषाचर्वे सिन्धुवृष
वृषाचपे सुरुवृष अनादिसम्भव रुद्र कपिल विष्वक्सेन
सर्वभूतपते ध्रुव धर्माधर्म वैकुण्ठ वृषाचर्तं
अनादिमध्यनिधन धनंजय शुचिश्रवः पृश्नितेजः
निजजय अमृतेश्वर सनातन त्रिधाम तुषित महातत्त्व
लोकनाथ पद्मानाथ विरिञ्चे बहुरूप अक्षय अक्षर
हव्यभुज खण्डपरशो शक्र मुञ्जकेश हंस महादक्षिण
दृषीकेश सूक्ष्म महानिचमधर विरज लोकप्रतिष्ठ
अरूप अग्रज धर्मज धर्मनाथ गभस्तिनाथ
शतक्रतुनाथ चन्द्ररथ सूर्यतेजः सपुत्रवासः अजः
सहस्रशिरः सहस्रपाद अधोमुख महापुरुष पुरुषोत्तम
सहस्रबाहो सहस्रभूर्ते सहस्रास्य सहस्रसम्भव
सहस्रसत्त्वं त्वामाहुः । पुण्यहास चरम त्वमेव वीषट्
वषट्कारं त्वामाहुरग्रं मन्त्रेषु प्राशितारं सहस्रधारे
च भूश्च भुवश्च स्वश्च त्वमेव वेदवेद्य ब्रह्मशाय
ब्राह्मणप्रिय त्वमेव ह्यारसि यातरिक्षाऽसि धर्मोऽसि
होता पोता मन्त्रा नेता होमहेतुस्त्वमेव अग्रज
विश्वधाप्ता त्वमेव दिग्भिः सुभाण्ड इन्द्रोऽसि
सुमेधोऽसि समिधस्त्वमेव मतिर्गतिर्दाता त्वमसि ।
मोक्षोऽसि योगोऽसि । सृजसि । धाता परमयज्ञोऽसि
सोमोऽसि दीक्षितोऽसि दक्षिणाऽसि विश्वमसि ।
स्वविर हिरण्यनाभ नारायण त्रिनयन आदित्यवर्ण
आदित्यतेजः म्हापुरुष पुरुषोत्तम आदिदेव सुविक्रम
प्रभाकर जम्भो स्वयम्भो भूतादिः महाभूतोऽसि
विश्वभूत विश्वं त्वमेव विश्वगोप्ताऽसि पवित्रमसि

कश्यपने कहा— हे देवदेव, एकभृङ्ग, वृषाचि, सिन्धुवृष, वृषाचपि, सुरुवृष, अनादिसम्भव, रुद्र, कपिल, विष्वक्सेन, सर्वभूतपति (सम्पूर्ण प्राणियोंके स्वामी), ध्रुव, धर्माधर्म, वैकुण्ठ, वृषाचर्त, अनादिमध्यनिधन, धनजय, शुचिश्रव, पृश्नितेज, निजजय, अमृतेश्वर, सनातन, त्रिधाम, तुषित, महातत्त्व, लोकनाथ, पद्मानाथ, विरिञ्चि, बहुरूप, अक्षय, अक्षर, हव्यभुज, खण्डपरशु, शक्र, मुञ्जकेश, हंस, महादक्षिण, दृषीकेश, सूक्ष्म, महानिचमधर, विरज, लोकप्रतिष्ठ, अरूप, अग्रज, धर्मज, धर्मनाथ, गभस्तिनाथ, शतक्रतुनाथ, चन्द्ररथ, सूर्यतेज, सपुत्रवास, अज, सहस्रशिर, सहस्रपाद, अधोमुख, महापुरुष, पुरुषोत्तम, सहस्रबाहु, सहस्रभूर्ति, सहस्रास्य, सहस्रसम्भव॥ मेरा आपके चरणोंमें नमस्कार है (आपके भक्तजन) आपको सहस्रसत्त्व कहते हैं (छिले हुए पुष्पके समान यधुर मुसकानवाले) पुण्यहास, चरम (सर्वोत्तम)! लोग आपको ही वीषट् एवं वषट्कार कहते हैं। आप ही अग्रज, (सर्वश्रेष्ठ) यज्ञोंमें प्राशिता (भोक्ता) हैं; सहस्रधर, भूः, भुवः एवं स्वः हैं। आप ही वेदवेद्य (वेदोंके द्वारा ज्ञाननेयोग्य), ब्रह्मशाय, ब्राह्मणप्रिय (अग्नि के प्रेमी) ह्यौ (आकाशके समान सर्वव्यापी), यातरिक्षा (वायुके समान गतिमान) धर्म, होता, पोता (विष्णु) मन्त्रा, नेता एवं होमके हेतु हैं। आप ही विश्वतेजके द्वारा अग्रज (सर्वश्रेष्ठ) हैं और दिशाओंके द्वारा सुभाण्ड (विस्तृत मात्ररूप) हैं अर्थात् दिशाएँ आपमें समाविष्ट हैं। आप (यजन करनेयोग्य) इन्द्र, सुमेध, समिधा, मति, गति एवं दाता हैं। आप ही मोक्ष, योग, सृष्टि (सृष्टि करनेवाले) धाता (धारण और पोषण करनेवाले), परमयज्ञ, सोम, दीक्षित, दक्षिण एवं विश्व हैं। आप ही स्वविर, हिरण्यनाथ, नारायण, त्रिनयन, आदित्यवर्ण, आदित्यतेज, महापुरुष, पुरुषोत्तम, आदिदेव, सुविक्रम, प्रभाकर, जम्भु, स्वयम्भु, भूतादि, महाभूत, विश्वभूत एवं विश्व हैं आप ही

विश्वभय ऊर्ध्वकर्म अमृत दिवस्पति याचस्पति धृताक्षं
अनन्तकर्म वंश प्राग्वंश विश्वरातस्त्वमेव ।

संसारकी रक्षा करनेवाले, पवित्र, विश्वभय—विश्वकी
सृष्टि करनेवाले, ऊर्ध्वकर्म (उत्तमकर्म), अमृत
(कभी भी मृत्युको न प्राप्त होनेवाले) दिवस्पति,
याचस्पति, धृताक्षि, अनन्तकर्म, वंश, प्राग्वंश, विश्वप
(विश्वकी पालन करनेवाले) तथा वरद-वर चाहनेवालोंके
लिये वरदानी हैं ।

चार (आश्रायय), चार (अस्तु श्रीयद्) दो
(यज) तथा पाँच (ये यजामहे, और पुनः दो (वपद्)
अक्षरों इस प्रकार ४+४+२+५+२=१७ अक्षरोंसे—
जिसके लिये अग्निहोत्र किया जाता है उन आप
होत्रत्माको नमस्कार है ॥ १ ॥

वरार्थिना वरदोऽसि त्वम् ।
चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च ।
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तुभ्यं होत्रात्मने नमः ॥ १ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें छम्पांसर्ग अध्याय समाप्त हुआ ॥ २६ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

भगवान् नारायणसे देवों और कश्यपकी प्रार्थना, अदितिकी तपस्या
और प्रभुसे प्रार्थना

सोमहर्षय उवाच

नारायणस्तु भगवाञ्जुत्वेवं परमं स्तवम् ।
ब्रह्मज्ञेन द्विजेत्रेण कश्यपेन समीरितम् ॥ १ ॥
उवाच यचनं सम्यक् तुष्टः षष्ठपदाक्षरम् ।
श्रीमान् प्रीतमना देवो यद्वदेत् प्रभुरीश्वरः । २ ॥
वरं वृणुष्व भद्रं वो वरदोऽसि सुरोत्तमः ।

कश्यप उवाच

प्रीतोऽसि नः सुरश्रेष्ठ सर्वेषामेव निश्चयः ॥ ३ ॥
वासवस्यानुजो भ्राता ज्ञातीनां नन्दिवर्धन ।
अदित्या अपि च श्रीमान् भगवानस्तु वै सुतः ॥ ४ ॥
अदितिर्देवमाता च एतमेवार्थमुत्तमम् ।
पुत्रार्थं वरदं ग्राह्यं भगवन्तं वरार्थिनी ॥ ५ ॥

सोमहर्षणने कहा—इस प्रकार ब्रह्मज्ञानी द्विजश्रेष्ठ
कश्यपने पिप्पुकी उत्तम स्तुति की उसे भुनकर प्रसन्न
होकर सामर्थ्यशाली एवं ऐश्वर्यसम्पन्न नारायणने अत्यन्त
संतुष्ट होकर प्रसन्न मनसे सुसंस्कृत शब्दों एवं अक्षरोंवाला
समयानुकूल उचित वचन कहा—श्रेष्ठ देवताओ! वर
माँगो। तुम सबका कल्याण हो, मैं तुम लोगोंको
(इच्छित) वर दूँगा ।

कश्यपने कहा—सुरश्रेष्ठ यदि आप हम सबपर
प्रसन्न हैं तो हम सभीका यह निश्चय है कि श्रीमान्
भगवान् आप स्वयं इन्द्रके छोटे भाईके रूपमें अदितिके
कुटुम्बिकोंके आनन्द बढ़ानेवाले पुत्र बनें, वरकी याचना
करनेवाली देवमाता अदितिने भी वरदानों भगवान्से
पुत्रकी प्राप्तिके लिये अपने इस उत्तम अभिप्रायको
प्रकट किया—कहा ॥ १—५ ॥

देवता ऊचुः

निःश्रेयसाद्यै सर्वेषां देवतानां महेश्वर।
ज्जाता भर्ता च दाता च शरणं भव नः सह ॥ ६

ततस्तानिब्रवीद्विष्णुर्देवान् कश्यपमेव च।
सर्वेषामेव दुष्काकं ये भविष्यन्ति जगवः।
मुहुर्त्तमपि ते सर्वे न स्थास्यन्ति पमागतः ॥ ७

हृत्वरऽसुरगणान् सर्वान् यज्ञभागग्रभोजिनः।
हव्यादांश्च सुरान् सर्वान् कव्यादांश्च पितृनपि ॥ ८

करिष्ये विबुधश्रेष्ठाः पारमेष्ठ्येन कर्मणा।
यश्चायातेन मार्गेण निवर्तध्वं सुरोत्तमाः ॥ ९

लोमहर्षण उवाच

एवमुक्ते तु देवेन विष्णुना प्रभविष्णुना।
ततः प्रहृष्टमनसः पूजयन्ति स्म तं प्रभुम् ॥ १०
विष्टेदेवा महात्मानः कश्यपोऽदितिरेव च।
नमस्कृत्य सुरेश्वर तस्मै देवाय तहसा ॥ ११
प्रयाताः प्राग्दिशं सर्वे विपुलं कश्यपाश्रमम्।
ते कश्यपाश्रमं गत्वा कुरुक्षेत्रवनं महत् ॥ १२
प्रसाद्य हृदि तत्र तपसे तां न्ययोजयन्।
सा चचार तपो घोरं चर्वाणामयुतं तदा ॥ १३
तस्या नाम्ना वनं दिव्यं सर्वकामप्रदं शुभम्।
आराधनाय कृष्णस्य वाग्विज्ञता वायुभोजनः ॥ १४

दैत्यैर्निराकृतान् दृष्ट्वा तनयानृषिसत्तमाः।
बुधामुत्राऽहमिति सा निर्वेदात् प्रणयाद्धरिम्।
तुष्टाव वाग्भिरग्न्याभिः परमार्थावबोधिनी ॥ १५

शरण्यं शरणं विष्णुं प्रणता भक्तवत्सलम्।
देवदैत्यमयं चादिमध्यमन्तस्वरूपिणम् ॥ १६

[अदितिके अभिप्रायको जानकर] देवताओंने कहा— महेश्वर सभी देवताओंके परम कल्याणके लिये आप हम सबकी सदा रक्षा करनेवाले, फलन-पोषण करनेवाले, दान देनेवाले एवं आश्रय बनें। इसके बाद भगवान् विष्णुने उन देवताओंसे तथा कश्यपसे कहा कि आप सभीके जितने भी शत्रु होंगे वे सभी मेरे सम्मुख क्षणमात्र भी नहीं टिक सकेंगे। देखेंगे। परमेष्ठी (ब्रह्मा) के द्वारा विधान किये गये कर्मोंके द्वारा मैं समस्त असुरोंको मारकर देवताओंको यज्ञभागके सर्व-प्रथम भाग ग्रहण करनेवाले अधिकारी एवं इन्द्रभोक्ता और पितरोंको कव्यभोक्ता बनाऊँगा। सुरोत्तमो अब आपलोग जिस मार्गसे श्राव्य हैं फिर उसी मार्गसे वापस लौट जायें ॥ ६—९ ॥

लोमहर्षणने कहा— प्रभावशाली भगवान् विष्णुने जब ऐसा कहा तब महात्मा देवगन्ध, कश्यप एवं अदितिने प्रसन्नचित्तसे उन प्रभुका पूजन किया एवं देवेश्वरको नमस्कार करनेके बाद पूर्व दिशामें स्थित कश्यपके विस्तृत आश्रमकी ओर शीघ्रतसे चल पड़े जब देवगण कुरुक्षेत्र-वनमें स्थित महान् आश्रममें पहुँचे तब लोगोंने अदितिको प्रसन्नकर उसे तपस्या करनेके लिये प्रेरित किया। (फिर) उसने दस हजार वर्षोंतक वहाँ कठिन तपस्या की ॥ १०—१३ ॥

श्रेष्ठ ऋषियो! (जिस वनमें अदितिने तप किया) उस दिव्य वनका नाम उसके नामपर अदितिवन पड़ा वह समस्त कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला एवं भङ्गलकारी है। ऋषिश्रेष्ठो परम अर्थको जाननेवाली (तत्त्वज्ञा) अदितिने अपने पुत्रोंको दैत्योंके द्वारा अपमानित देखा, उसने सोचा कि तब मेरा पुत्रका जनना ही व्यर्थ है इसलिये अपनी चाणीको संयतकर, हवा पीकर नश्वरतापूर्वक शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले, भक्तजनप्रिय, देवताओं और दैत्योंके मूर्तिस्वरूप, आदि-मध्य और अन्तके रूपमें रहनेवाले भगवान् श्रीविष्णुकी प्रसन्नताके लिये उनकी सत्थ एवं मधुर वागियोंसे उन्नम स्तुति करना प्रारम्भ कर दिया ॥ १४—१६ ॥

अदितिरुक्ताय

नमः कृत्यार्तिनाशाय नमः पुष्करमालिने ।
नमः परमकल्याण कल्याणाद्यादिवेधसे ॥ १७

नमः पङ्कजनेत्राय नमः पङ्कजनाभये ।
नमः पङ्कजसंभूतिसंभवायात्मयोनये ॥ १८

श्रियः कान्ताय दान्ताय दान्तदृश्यय चक्रिणे ।
नमः पद्मासिहस्ताय नमः कनकरेतसे ॥ १९

तत्त्वात्मज्ञानयज्ञाय योगिचिन्त्याय योगिने ।
निर्गुणाय विज्ञेयाय हरये ब्रह्मरूपिणे ॥ २०

जगज्ज तिष्ठते यत्र जगतो यो न दृश्यते ।
नमः स्थूलातिसूक्ष्माय तस्मै देवाय शार्ङ्गिणे ॥ २१

यं न पश्यन्ति पश्यन्तो जगदप्यखिलं नराः ।
अपश्यद्भिर्जगदश्च दृश्यते इति संस्थितः ॥ २२

बहिर्ज्योतिरलक्ष्यो यो लक्ष्यते ज्योतिषः परः ।
यस्मिन्नेव यतश्चैव यस्यैतदखिलं जगत् ॥ २३

तस्मै समस्तजगताममराय नमो नमः ।
आद्यः प्रजापतिः सोऽपि पितॄणां परमं पतिः ।
पतिः सुराणां वस्तस्मै नमः कृष्णाय वेधसे ॥ २४

यः प्रवृत्तैर्निवृत्तैश्च कर्मभिस्तु विरज्यते ।
स्वर्गापवर्गफलदो नमस्तस्मै गदाभूते ॥ २५

अदिति बोलों—कृत्पासे उत्पन्न दुःखका नाश करनेवाले प्रभुको नमस्कार है। कमलको मालाको धारण करनेवाले पुष्करमाली भगवान्को नमस्कार है। परम यज्ञलकारी, कल्याणस्वरूप आदिविधाता प्रभो! आपको नमस्कार है। कमलनयन! आपको नमस्कार है। पद्माभ! आपको नमस्कार है। ब्रह्माकी उत्पत्तिके स्थान, आत्मजन्मा! आपको नमस्कार है। प्रभो! आप लक्ष्मीपति, इन्द्रियोंका दमन करनेवाले, संयमियोंके द्वारा दर्शन पाने योग्य, हाथमें सुदर्शन चक्र धारण करनेवाले एवं खड्ग (तलवार) धारण करते हैं। आपको नमस्कार है। स्वामिन्! आत्मज्ञानके द्वारा यज्ञ करनेवाले, योगियोंके द्वारा ध्यान करने योग्य, योगकी साधना करनेवाले योगी, सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे रहित किन्तु (दयादि) विशिष्ट गुणोंसे युक्त ब्रह्मरूपी श्रीहरि भगवान्को नमस्कार है ॥ १७—२० ॥

जिन आप परमेश्वरमें सारा संसार स्थित है, किन्तु जो संसारसे दृश्य नहीं हैं, ऐसे स्थूल तथा अतिसूक्ष्म आप शार्ङ्गधारी देवको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्की अपेक्षा करनेवाले प्राणी जिन आपके दर्शनसे चकित रहते हैं। आपका ये दर्शन नहीं कर पाते, परन्तु चिन्होंने जगत्की अपेक्षा नहीं की, उन्हें आप उनके हृदयमें स्थित दीखते हैं। आपकी ज्योति बाहर है एवं अलक्ष्य है। सर्वोत्तम ज्योति है; वह सारा जगत् आपमें स्थित है। आपसे उत्पन्न होता है और आपका ही है, जगत्के देवता उन आपको नमस्कार है। जो आप सबके आदिमें प्रजापति रहे हैं एवं पितरोंके श्रेष्ठ स्वामी हैं, देवताओंके स्वामी हैं, उन आप श्रीकृष्णको बार बार नमस्कार है ॥ २१—२४ ॥

जो प्रवृत्त एवं निवृत्त कर्मोंसे विरक्त तथा स्वर्ग और मोक्षके फलसे देनेवाले हैं, उन गदा धारण करनेवाले भगवान्को नमस्कार है। जो

यस्तु संचिन्त्यमानोऽपि सर्वं पापं व्यपोहति ।
नमस्तस्मै विशुद्धाय परस्मै हरिमेधसे ॥ २६

ये पश्यन्त्यखिलाधारमीशानमज्जमव्ययम् ।
न पुनर्जन्ममरणं प्राप्नुवन्ति नमामि तम् ॥ २७

यो यज्ञो यज्ञपरमैरिष्यते यज्ञसंस्थितः ।
तं यज्ञपुरुषं विष्णुं नमामि प्रभुमीश्वरम् ॥ २८

गीयते सर्ववेदेषु वेदविद्धिर्विदां गतिः ।
यस्तस्मै वेदवेद्याय नित्याय विष्णवे नमः ॥ २९

यतो विश्वं समुद्भूतं यस्मिन् प्रलयमेष्यति ।
विश्वोद्भवप्रतिष्ठाया नमस्तस्मै महात्मने ॥ ३०

आसह्यस्ताम्रपर्यन्तं व्याप्तं येन चराचरम् ।
मायाजालसमुन्मूलं तमुपेन्द्रं नमाम्यहम् ॥ ३१

योऽत्र तोयस्वरूपस्थो विभर्त्यखिलमीश्वरः ।
विश्वं विश्वपतिं विष्णुं तं नमामि प्रजापतिम् ॥ ३२

मूर्त्तं तपोऽसुरमयं तद्बुधो विनिहन्ति यः ।
रात्रिजं सूर्यरूपी च तमुपेन्द्रं नमाम्यहम् ॥ ३३

यस्याक्षिणी चन्द्रसूर्यौ सर्वलोकशुभाशुभम् ।
पश्यतः कर्म सततं तमुपेन्द्रं नमाम्यहम् ॥ ३४

यस्मिन् सर्वेश्वरे सर्वं सत्यमेतन्मयोदितम् ।
नानृतं तमजं विष्णुं नमामि प्रभवाव्ययम् ॥ ३५

यद्येतत्सत्यमुक्तं मे भूयश्चातो जनार्दन ।
सत्येन तेन सकलाः पूर्यन्तां मे मनोरथाः ॥ ३६

स्मरण करनेवालेके सारे पाप नष्ट कर देते हैं उन विशुद्ध हरियेश्वरको मेरा नमस्कार है जो प्राणी अविनाशी भगवान्को अखिलाधार, ईशान एवं अजके रूपमें देखते हैं वे कभी भी जन्म-मरणको नहीं प्राप्त होते। प्रभो! मैं आपकी प्रणाम करती हूँ आपकी आराधना यज्ञोंद्वारा होती है, आप यज्ञकी मूर्ति हैं, यज्ञमें आपकी स्थिति है; यज्ञपुरुष! आप ईश्वर, प्रभु विष्णुको मैं नमस्कार करती हूँ ॥ २५—२८ ॥

वेदोंमें आपको गुणगान हुआ है—इसे वेदज्ञ गाने हैं। आप विद्वज्जनके आश्रय हैं, वेदोंसे जानने योग्य एवं नित्यस्वरूप हैं; आप विष्णुको मेरा नमस्कार है। विश्व जिनसे समुद्भूत हुआ है और जिनमें विलीन होगा तथा जो विश्वके उद्भव एवं प्रतिष्ठाके स्वरूप हैं उन महान् आत्मा (परमात्मा)-को मेरा नमस्कार है जिनके द्वारा मायाजालसे बंधा हुआ ब्रह्मासे लेकर चराचर (विश्व) व्याप्त है, उन उपेन्द्र भगवान्को मैं नमस्कार करती हूँ। जो ईश्वर जल-स्वरूपमें स्थित होकर अखिल विश्वका भरण करते हैं, उन विश्वपति एवं प्रजापति विष्णुको मैं नमस्कार करती हूँ ॥ २९—३२ ॥

जो सूर्यरूपी उपेन्द्र असुरमय रात्रिसे उत्पन्न, रूपधारी तमकम विनाश करते हैं, मैं उनको प्रणाम करती हूँ जिनकी सूर्य तथा चन्द्रमा रूप दोनों ओरों समस्त लोकोंके शुभाशुभ कर्मोंको सतत देखती रहती है, उन उपेन्द्रको मैं नमस्कार करती हूँ जिन सर्वेश्वरके विषयमें मेरा यह समस्त उद्गार सत्य है—असत्य नहीं है उन अजन्मा, अव्यय एवं सदा विष्णुको मैं नमस्कार करती हूँ। हे जनार्दन! यदि मैंने यह सत्य कहा है तो उस सत्यके प्रभावसे मेरे मनकी सारी अभिलाषायें परिपूर्ण हों ॥ ३३—३६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें सत्ताईसवीं अध्याय समाप्त हुआ ॥ २७ ॥

अट्टाईसर्वा अध्याय

अदितिकी प्रार्थनापर भगवान्का प्रकट होना तथा भगवान्का अदितिको वर देना

लोमहर्षण उवाच

एवं स्तुतोऽथ भगवान् वासुदेव ब्रवाक ताम् ।
अद्भुतः सर्वभूतानां तस्याः संदर्शने स्थितः ॥ १

श्रीभगवानुवाच

मनोरथांस्त्वमदिते यानिच्छस्यभिवाञ्छितान् ।
तांस्त्वं प्राप्स्यसि धर्मज्ञे भग्नमादान् संशयः ॥ २

शृणु त्वं च महाभागे वरो अस्ते इति स्थितः ।
महर्षिर्न हि विफलं न कदाचिद् भविष्यति ॥ ३

यश्चेह त्वद्वने स्थित्वा त्रिरात्रं वै करिष्यति ।
सर्वे कामाः समृध्यन्ते मनसा यानिहेच्छति ॥ ४

दूरस्थोऽपि क्वं यस्तु अदित्याः स्मरते नरः ।
सोऽपि याति परं स्थानं किं पुनर्निवसन् नरः ॥ ५

यश्चेह ब्राह्मणान् पञ्च ब्रून् वा द्वावेकमेव वा ।
भोजयेच्छुद्धयः युक्तः स याति परमां गतिम् ॥ ६

अदितिकुवाच

यदि देव प्रसन्नस्त्वं भक्त्या मे भक्तवत्सल ।
त्रैलोक्याधिपतिः पुत्रस्तदस्तु मम वामनः ॥ ७

हृतं राज्यं हस्तश्चास्वं यज्ञभाग इहासुरैः ।
त्वयि प्रसन्ने वरद तत् प्राप्नोतु सुतो मम ॥ ८

हृतं राज्यं न दुःखाय मम पुत्रस्य कश्यप ।
प्रपन्नदायविभ्रंशो आधां मे कुरुते इति ॥ ९

श्रीभगवानुवाच

कृतः प्रसादो हि मया तव देवि यथेप्सितम् ।
स्वांशेन चैव ते गन्धे सम्भविध्यामि कश्यपात् ॥ १०

लोमहर्षणने कहा— इस प्रकार स्तुति किये जानेपर सपस्त प्राणियोंके दृष्टि पथमें न अग्रनेवाले भगवान् वासुदेव उसके सामने प्रकट हुए और उससे (इस प्रकार) बोले— ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले— धर्मज्ञे (धर्मके मर्मको जाननेवाली) अदिति तुम मुझसे जिन मनचाही कामनाओंकी पूर्ति चाहती हो, उन्हें तुम मेरी कृपासे प्राप्त करोगी, इसमें कोई संदिह नहीं महाभागे। सुनो, तुम्हारे मनमें जिन वरोंकी इच्छा है, उन्हें तुम मुझसे माँगो, क्योंकि मेरे दर्शन करनेका फल कभी व्यर्थ नहीं होता। तुम्हारे इस (अदिति) वनमें रहकर जो तीन रातोंतक निवास करेगा, उसकी सभी मनचाही कामनाएँ पूरी होंगी जो मनुष्य दूर देशमें स्थित रहकर भी तुम्हारे इस वनका स्मरण करेगा, वह परम धामको प्राप्त कर लेगा फिर यहाँ रहनेवाले मनुष्यको परम धामकी प्राप्ति हो जाय, इसमें क्या आश्चर्य? जो मानव इस स्थानपर पाँच, तीन अथवा दो या एक ही ब्राह्मणको श्रद्धापूर्वक भोजन करावेगा, वह उत्तम गति (मोक्ष) को प्राप्त करेगा ॥ २—६ ॥

अदितिने कहा— भक्तवत्सल देव! यदि आप मेरी भक्तिसे मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मेरा पुत्र इन्द्र तीनों लोकोंका स्वामी हो जाय। असुरोंने उसके राज्यको तथा यज्ञमें मिलनेवाले भागको छोन लिया है। अतः वरदाता प्रभो आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मेरा पुत्र उसे (राज्यको) प्राप्त कर ले केशव! मेरे पुत्रके राज्यके असुरोंद्वारा छीने जानेका मुझे दुःख नहीं है, किंतु (उसके) प्राप्त होनेवाले उचित भागका छिन जाना मेरे हृदयको कुरद रहा है ॥ ७—९ ॥

श्रीभगवान् बोले— देवि तुम्हारी इच्छाके अनुकूल मैंने तुम्हारे ऊपर कृप-प्रसाद प्रकट किया है। (सुनो) कश्यपसे तुम्हारे गन्धमें मैं अपने अंशसे जन्म लूँगा और

तव गर्भे समुद्भूतस्ततस्ते ये त्वरातयः ।
तानहं च हनिष्यामि निवृत्ता भव नन्दिनि ॥ ११

अदितिरुवाच

प्रसीद देवदेवेश नमस्ते विश्वभावन ।
नाहं त्वामुदरे खोदुमीश शङ्क्यामि केशव ।
यस्मिन् प्रतिष्ठितं सर्वं विश्वयोनिस्त्वमीश्वर ॥ १२

श्रीभगवानुवाच

अहं त्वां च वहिष्यामि अत्पानं चैव नन्दिनि ।
न च धीर्ढां करिष्यामि स्वस्ति तेऽस्तु सजाम्यहम् ॥ १३

इत्युक्तवान्निर्हिते देवेऽदितिर्गर्भं समादधे ।
गर्भस्थिते ततः कृष्णे च घाल सकला क्षितिः ।
चक्रामिरे महाशीला जग्मुः क्षीर्धं महाब्धयः ॥ १४

यतो यतोऽदितिर्याति ददाति पदमुत्तमम् ।
ततस्ततः क्षितिः खेदान्नाम द्विजपुंगवा ॥ १५

दैत्यानामपि सर्वेषां गर्भस्थे मधुसूदने ।
बभूव तेजसो हानिर्यथोक्तं परमेष्ठिना ॥ १६

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें अष्टादश्याँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २८ ॥

उन्तीसवाँ अध्याय

बलिका पितामह प्रह्लादसे प्रश्न, प्रह्लादका अदितिके गर्भमें कामनागमन
एवं विष्णु-महिमाका कथन तथा स्तवन

श्रीमहर्षण उवाच

निस्तेजसोऽसुरान् दृष्ट्वा समस्तानसुरेश्वरः ।
प्रह्लादमथ पप्रच्छ बलिरात्मपितामहम् ॥ १

बलिरुवाच

तात निस्तेजसो दैत्या निर्दग्धा इव बह्विना ।
किमेते सहसैवाद्य ब्रह्मदण्डहता इव ॥ २

तुम्हारी कोखसे जन्म लेकर फिर तुम्हारे जितने शत्रु हैं, उन (सभी) का वध करूँगा नन्दिनि तुम शोक छोड़कर स्वस्थ हो जाओ ॥ १०-११ ॥

अदितिने कहा— देवदेवेश आप (मुझपर) प्रसन्न हों विश्वभावन! आपको मेरा नमस्कार है। हे केशव हे ईश आप विश्वके उत्पत्ति स्थान और ईश्वर हैं जिन आप प्रभुमें सारा संसार प्रतिष्ठित है उन आपके भारको मैं अपनी कोखमें वहन न कर सकूँगी ॥ १२ ॥

श्रीभगवान्ने कहा— नन्दिनि! मैं स्वयं अपना और तुम्हारा—दोनोंका भार वहन कर लूँगा; मैं तुम्हें पीड़ा नहीं करूँगा। तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं जाता हूँ यह कहकर भगवान्के चले जानेपर अदितिने गर्भको धारण कर लिया। भगवान् (कृष्ण) के गर्भमें आ जानेपर सारी पृथ्वी ढगमगा गयी बड़े-बड़े पर्वत हिलने लगे एवं विशाल समुद्र विक्षुब्ध हो गये। द्विजश्रेष्ठो अदिति जहाँ जहाँ जाती या पैर रखती थी, वहाँ-वहाँकी पृथ्वी खेद (भार) के कारण झुक जाती थी। जैसा कि ब्रह्मने (पहले) बताया था, मधुसूदनके गर्भमें आनेपर सभी दैत्योंके तेजकी हानि हो गयी ॥ १३-१६ ॥

श्रीमहर्षण बोले— उसके बाद (दैत्योंके तेजके समाप्त हो जानेपर) असुरराज बलिने समस्त असुरोंको श्रीहीन देखकर अपने पितामह प्रह्लादजीसे पूछा ॥ १ ॥

बलिने कहा— तात (इस समय) दैत्य लोग आगसे झुलसे हुए से कान्तिहीन हो गये हैं आज ये ऐसे क्यों हो गये हैं? प्रतीत होता है कि मानो इन्हें ब्राह्मणका अभिशाप लग गया है ये ब्रह्मदण्डसे जैसे

दुरिष्टे किं तु दैत्यानां किं कृत्वा विधिनिर्मिताः ।
नाशायैषां समुद्भूता येन निस्तेजसोऽसुराः ॥ ३

लोमहर्षण उवाच

इत्यसुरघरस्तेन पुष्टः पीत्रेण ब्राह्मणाः ।
धिरं ध्यात्वा जगादेदमसुरं तं तदा बलिम् ॥ ४

प्रह्लाद उवाच

चलन्ति गिरयो धूमिर्जहाति सहसा धृतिम् ।
सद्यः समुद्रा क्षुभिता दैत्या निस्तेजसः कृताः ॥ ५

सूर्योदये यथा पूर्वं तथा वच्छन्ति न ग्रहाः ।
दैवानां च परा लक्ष्मीः कारणेनानुमीयते ॥ ६

महदेतन्महाबाहो कारणं ज्ञानक्षेत्र ।
न ह्यल्पमिति मन्तव्यं त्वया कार्यं कथंचन ॥ ७

लोमहर्षण उवाच

इत्युक्त्वा दानवपतिं प्रह्लादः सोऽसुरोत्तमः ।
अत्यर्थभक्तो देवेशं जगाम मनसा हरिम् ॥ ८

स ध्यानपथगं कृत्वा प्रह्लादश्च मनोऽसुरः ।
विचारयापास ततो यथा देवो जनार्दनः ॥ ९

स ददशोदरेऽदित्याः प्रह्लादो व्यापनाकृतिम् ।
तदन्तश्च वसुन् रुद्रानश्विनी भरतस्तथा ॥ १०

साध्यान् विश्वे तथादित्यान् गन्धर्वौगराक्षसान् ।
विरोचनं च तनयं बलिं चासुरनायकम् ॥ ११

जम्भं कुजम्भं नरकं बाणमन्यास्तथासुरान् ।
आत्मानमुर्वी गगनं वायुं चारि हुताशनम् ॥ १२

समुद्राद्रिसरिद्वीपान् सरांसि च पशून् महीम् ।
वयोमनुष्यान्खिलांस्तथैव च सरीसृपान् ॥ १३

समस्तलोकस्त्रहारं बह्वारणं भवमेव च ।
ग्रहनक्षत्रताराश्च वक्षशाश्च प्रजापतीन् ॥ १४

सम्पश्यन् विस्मयाविष्टः प्रकृतिस्थः क्षणात् पुनः ।
प्रह्लादः प्राह दैत्येन्द्रं बलिं विरोचनिं ततः ॥ १५

पीडित हो गये हैं। क्या दैत्योंका कोई अशुभ होनेवाला है? अथवा इनके नाशके लिये ब्रह्माने कृत्वा (पुरश्चरणसे उत्पन्न की गयी मारिकसक्ति) को उत्पन्न कर दिया है जिससे ये असुरलोक इस प्रकार तेजसे रहित हो गये हैं ॥ ३-४ ॥

लोमहर्षण बोले— ब्राह्मणों! अपने पौत्र (पुत्रके पुत्र) राजा बलिके इस प्रकार पृष्ठनेपर दैत्योंमें प्रधान प्रह्लादने देरतक ध्यान करके तब असुर बलिसे कहा — ॥ ४ ॥

प्रह्लादने कहा— दानवाधिप। इस समय महाङ्कगमना रहे हैं, पृथ्वी एकाएक अपनी (स्वाभाविक) धीरता छोड़ रही है, समुद्रमें जोरोंकी लहरें उठ रही हैं और दैत्य तेजसे रहित हो गये हैं। सूर्योदय होनेपर अब पहलेके समान ग्रहोंकी चाल नहीं दीखती है। इन कारणों (लक्षणों) से अनुमान होता है कि देवताओंका अभ्युदय होनेवाला है। महाबाहु दानवेश्वर वह कोई विशेष कारण अवश्य है। इस कारणको छोटा नहीं मानना चाहिये और आपको इसका कोई प्रतिपन्न (उपाय) करना चाहिये ॥ ५-७ ॥

लोमहर्षणने कहा— असुरोंमें श्रेष्ठ महान् भक्त प्रह्लादने दैत्यराज बलिसे इस प्रकार कहकर मनसे श्रीहरिकका ध्यान किया। असुर प्रह्लादने अपने मनको भगवान्के ध्यान-पथमें लगाकर चिन्तन किया—जैसा कि भगवान्का स्वरूप है। उन्होंने उस समय (चिन्तन करते समय) अदितिकी कोष्ठमें कामनके रूपमें भगवान्को देखा। उनके पीरर वसुओं, रुद्रों, दोनों अश्विनोकुमारों, मरुतों, साध्यों, विश्वेदेवों, आदित्यों, गन्धर्वों, नागों, राक्षसों तथा अपने पुत्र विरोचन एवं असुरनायक बलि, जम्भ, कुजम्भ, नरक, बाण तथा इस प्रकारके दूसरे बहुत से असुरों एवं अपनेको और पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि, समुद्रों, पर्वतों, नदियों, द्वीपों, सरों, पशुओं भूसम्पत्तियों, पक्षियों, सम्पूर्ण मनुष्यों, सरकनेवाले जीवों, समस्त लोकोंके सत्ता ब्रह्मा, शिव, ग्रहों, नक्षत्रों, ताराओं तथा दक्ष आदि प्रजापतियोंको भी देखा। प्रह्लाद इन्हें देखकर आश्चर्यमें पड़ गये, किंतु क्षणमात्रमें ही पुनः पूर्ववत् प्रकृतिस्थ हो गये और विरोचन-पुत्र दैत्यकि राजा बलिसे बोले— ॥ ८-१५ ॥

तत्संज्ञातं यथा सर्वं यदर्थं भवतामियम् ।
सेजस्थे हानिरुत्पन्ना शृण्वन्तु तदशेषतः ॥ १६

देवदेवो जगद्धोनिरयोनिर्जगदादिजः ।
अनादिरादिर्विश्वस्य वरेण्यो वरदो हरिः ॥ १७

परावराणां परमः परापरसतां गतिः ।
प्रभुः प्रमाणं मानानां सप्तलोकगुरोर्गुरुः ।
स्थितिं कर्तुं अगनाद्यं सोऽचिन्त्यो गर्भतां गतः ॥ १८

प्रभुः प्रभूणां परमः पराणा-
मनादिमध्यो भगवानमनः ।
त्रैलोक्यमंशेन सनाथमेक-
कर्तुं महात्माऽदितिजोऽवतीर्णः ॥ १९

न यस्य रुद्रा न च पञ्चयोनि-
नैत्रो न सूर्येन्दुमरीचिमिश्राः ।
जानन्ति दैत्याधिप सन्स्वरूप-
स वासुदेवः कसयावतीर्णः ॥ २०
यमध्वरं वेदविदो यदन्ति
विशन्ति यं ज्ञानविभूतपापाः ।
यस्मिन् प्रविष्टा न पुनर्भवन्ति
तं वासुदेवं प्रणमामि देवम् ॥ २१

भूतान्यशेषाणि यतो भवन्ति
यथोर्म्यस्तोयनिधेरजत्रम् ।
तयं च यस्मिन् प्रलये प्रयान्ति
तं वासुदेवं प्रणतोऽस्म्यचिन्त्यम् ॥ २२

न यस्य रूपं न बलं प्रभायो
न च प्रतापः परमस्य गुणः ।
विज्ञाचते सर्वभितामहाद्यै-
स्तं वासुदेवं प्रणमामि नित्यम् ॥ २३

रूपस्य चक्षुर्ग्रहणे त्वगेषा
स्पर्शग्रहित्री रसना रसस्य ।
घ्राणं च गन्धग्रहणे निसृक्तं
न घ्राणचक्षुः श्रवणादि तस्य ॥ २४

स्थव्यप्रकाशः परमार्थतो यः
सर्वेश्वरो वेदितव्यः स युक्त्या ।
शक्यं तमीच्छमनर्थं च देवं
ग्राह्यं यतोऽहं हरिमीशितारम् ॥ २५

(दैत्यो) मैंने तुम लोगोंकी कान्तिहीनताके (वास्तविक) सब कारणको—अच्छी तरहसे समझ लिया है (अथ) उसे तुम लोग भलीभाँति सुनो । देवोंके देव, जगद्धोनि, (विश्वको उत्पन्न करनेवाले) किंतु स्वयं अयोनि, विश्वके प्रारम्भमें विद्यमान पर स्वयं अनादि फिर भी विश्वके आदि, घर देनवाले करणीय हरि, सर्वश्रेष्ठोंमें भी परम (श्रेष्ठ), बड़े छोटे सृजनोंकी गति, मानोंके भी प्रमाणभूत प्रभु, सातों लोकोंके गुरुओंके भी गुरु एवं चिन्तनमें न आने योग्य विश्वके स्वामी सर्वदा (धर्महेतु) की स्थापना करनेके लिये (अदितिके) गर्भमें आ गये हैं । प्रभुओंके प्रभु, श्रेष्ठोंमें श्रेष्ठ, आदि मध्यसे रहित, अनन्त भगवान् तीनों लोकोंको सनाथ करनेके लिये अदितिके पुत्रके रूपमें अंशवतारस्वरूपसे अवतीर्ण हुए हैं ॥ १६ १९ ॥

दैत्यपते जिन वासुदेव भगवान् के वास्तविक स्वरूपको रुद्र, ब्रह्म, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र एवं मरीचि आदि श्रेष्ठ पुरुष नहीं जानते, वे ही वासुदेव भगवान् अपनी एक कलासे अकतीर्ण हुए हैं वेदके जाननेवाले जिन्हें अक्षर कहते हैं तथा ब्रह्मज्ञानके होनेसे जिनके पाप नष्ट हो गये हैं—ऐसे निष्पाप शुद्ध प्राणी जिनमें प्रवेश पाते हैं और जिनके भीतर प्रविष्ट हुए लोग पुनः जन्म नहीं लेते ऐसे उन वासुदेव भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ । समुद्रकी लहरोंके समान जिनसे समस्त जीव निरन्तर उत्पन्न होते रहते हैं तथा प्रलयकालमें जिनके भीतर विलीन हो जाते हैं उन अधिन्त्य वासुदेवको मैं प्रणाम करता हूँ ब्रह्म आदि जिन परम पुरुषके रूप, बल, प्रभस और प्रतापको नहीं जान पाते उन वासुदेवको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ ॥ २०—२३ ॥

जिन परमेश्वरने रूप देखनेके लिये आँखोंको, स्पर्शज्ञानके लिये त्वचाको, खट्टे मोठे स्वाद लेनेके लिये जीभको और सुगन्ध दुर्गन्ध सूँघनेके लिये नाकको निष्कृष्ट किया है; पर स्वयं उनके नाक, आँख और कान आदि नहीं हैं । जो वस्तुतः स्वयं प्रकाशस्वरूप हैं वे सर्वेश्वर मुक्तिके द्वारा (कुछ कुछ) जाने जा सकते हैं उन सर्वसमर्थ, स्तुतिके योग्य, किसी भी प्रकारके मन्दसे रहित, (भक्तसे) ग्राह्य, ईश हरिदेवको मैं प्रणाम करता हूँ ।

येनैकदंष्ट्रेण समुद्भवेयं
धरा चला धारयतीह सर्वम् ।
श्रोते प्रसित्वा सकलं जगद् य-
स्तमीक्ष्यमीशं प्रणतोऽस्मि विष्णुम् ॥ २६
अंशावतीर्णेन च येन गर्भे
हृतानि तेजांसि महासुराणाम् ।
नमामि तं देवमनन्तमीश-
मशेषसंसारतोः कुक्षारम् ॥ २७
देवो जगद्योनिरयं महात्मा
स षोडशांशेन महाऽसुरेन्द्र- ।
सुरेन्द्रमातुर्जठरं प्रविष्टो
हृतानि यस्तेन कलं वपुषि ॥ २८

बलिरकाव

तात कोऽयं हरिर्नाम यतो नो भयमाप्नोतम् ।
सन्ति मे शतशो दैत्या वासुदेवबलाधिका ॥ २९
विप्रचिन्तिः शिविः शङ्कुरयः शङ्कुस्तथैव च ।
हयशिरा अश्वशिरा भङ्गकारो महाहनुः ॥ ३०
प्रतापी प्रचशः शम्भुः कुक्कुराक्षश्च दुर्जयः ।
एते चान्ये च मे सन्ति दैतेया दापयास्तथा ॥ ३१
महाबलं महावीर्या भूभारधरणक्षमाः ।
एषामेकैकशः कृष्णो न वीर्यार्द्धेन सम्मितः ॥ ३२

लोमहर्षण उवाच

पौत्रस्यैतद् वचः श्रुत्वा प्रह्लादो दैत्यसत्तमः ।
सक्रोधश्च बलिं प्राह वैकुण्ठाक्षेपवादिनम् ॥ ३३
विन्दशमुपयास्यन्ति दैत्या ये चापि दापयाः ।
येषां त्वमीदृशो राजा दुर्बुद्धिरविवेकवान् ॥ ३४
देवदेवं महाभागं वासुदेवमजं विभुम् ।
त्वामृते पापसंकल्प कोऽन्य एवं वदिष्यति ॥ ३५
य एते भवता प्रोक्ताः समस्ता दैत्यदानवाः ।
सब्रह्मकास्तथा देवाः स्थावरान्ता विभूतयः ॥ ३६
त्वं चाहं च जगज्जेवं साद्रिद्रुमनेदीवनम् ।
समुद्रद्वीपलोकोऽयं यज्जोदं सखराचरम् ॥ ३७
यस्याभिवाद्यवन्द्यस्य व्यापिनः परमात्मनः ।
एकांशांशकलाजन्म कस्तमेवं प्रवक्ष्यति ॥ ३८

जिनके द्वारा एक मोटे तथा बड़े दाँतसे निकाली गयी
चिरस्थायिनी पृथ्वी सभी कुछ धारण करनेमें समर्थ है
तथा जो समस्त संसारको अपनेमें स्थान देकर सोनेका
स्वौं धारण करते हैं, उन स्तुत्य ईश विष्णुको मैं प्रणाम
करता हूँ। जिन्होंने अपने अंशसे अदितिके गर्भमें आकर
महासुरोंके तेजका अपहरण कर लिया, उन समस्त
संसाररूपी वृक्षके लिये कुठाररूप धारण करनेवाले
अनन्त देवाधीश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ हे महासुरो ।
जगत्की उत्पत्तिके स्थान वे ही महात्मा देव अपने
सोलाहवें अंशकी कलासे इन्द्रकी मावाके गर्भमें प्रविष्ट
हुए हैं और उन्होंने ही तुम लोगोंके शरीरिक बलको
अपहृत कर लिया है ॥ २४—२८ ॥

बलिने कहा—तात! जिनसे इन सबको डर है
वे हरि कौन हैं? हमारे पास वासुदेवसे अधिक
शक्तिशाली सैकड़ों दैत्य हैं जैसे—विप्रचिन्ति, शिवि,
शङ्कु, अयःशङ्कु, हयशिरा, अश्वशिरा, (विघटन
करनेवाला) भङ्गकार, महाहनु, प्रतापी, प्रचश, शम्भु,
कुक्कुराक्ष एवं दुर्जय। ये तथा अन्य भी ऐसे अनेक दैत्य
एवं दानव हैं। ये सभी महाबलवान् तथा महापराक्रमी
एवं पृथ्वीके भारको धारण करनेमें समर्थ हैं, कृष्ण तो
हमारे इन बलवान् दैत्योंमेंसे पृथक् पृथक् एक-एकके
आधे बलके समान भी नहीं हैं ॥ २९—३२ ॥

लोमहर्षणने कहा - अपने भीत्रकी इस उक्तिको
सुनकर दैत्यश्रेष्ठ प्रह्लाद क्रुद्ध हो गये और भगवान्को
निन्दा करनेवाले बलिसे बोले—बलि! तैरे-जैसे विवेकहीन
एवं दुर्बुद्धि राजाके साथ ये सारे दैत्य एवं दानव मारे
जायेंगे। हे पापको ही सोधनेवाले पापबुद्धि! तुम्हारे सिवा
ऐसा कौन है, जो देवाधिदेव महाभाग अज एवं
सर्वव्यापी वासुदेवको इस तरह कहेगा ॥ ३१—३५ ॥

तुमने जिन-जिनका नाम लिया है, वे सभी दैत्य
एवं दानव तथा ब्रह्माके साथ सभी देवता एवं चराचरको
समस्त विभूतियाँ, तुम और मैं, पक्कत तथा वृक्ष, नदी
और वनसे युक्त सारा जगत् तथा समुद्र एवं द्वीपोंसे युक्त
सम्पूर्ण लोक तथा चर और अचर जिन सर्ववन्द्य श्रेष्ठ
सर्वव्यापी परमात्माके एक अंशकी अंशकलासे उत्पन्न

अते विनाशाभिमुखं त्वामेकमविवेकिनम् ।
दुर्बुद्धिमज्जितात्मानं वृद्धानां शशसनातिगम् ॥ ३९

शौच्योऽहं यस्य मे गेहे जातस्तव पिताऽधमः ।
यस्य त्वमीदृशः पुत्रो देवदेवाद्यमानकः ॥ ४०

तिष्ठत्यनेकसंसारसंचारतौघविनाशिनि ।
कृष्णो भक्तिर्हं तावदेकस्यो भवता न किम् ॥ ४१

न मे प्रियतरः कृष्णादपि देहोऽयमात्मनः ।
इति ज्ञानात्ययं लोको भवांश्च दितिमन्दनः ॥ ४२

जानन्नपि प्रियतरं प्राणेभ्योऽपि हरिं मम ।
निन्दां करोषि तस्य त्वमकुर्वन् गौरवं मम ॥ ४३

विरोचनस्तव गुरुर्गुरुस्तस्याप्यहं बले ।
ममापि सर्वजगतां गुरुर्नारायणो हरिः ॥ ४४

निन्दां करोषि तस्मिन्स्त्वं कृष्णो गुरुगुरोर्गुरौ ।
यस्मात् तस्मादिहैव त्वमैश्वर्याद् भ्रंशमेष्यसि ॥ ४५

स देवो जगतां माधो बले प्रभुर्जनार्दनः ।
नन्वहं प्रत्यवेक्ष्यस्ते भक्तिमानत्र मे गुरुः ॥ ४६

एतावन्मात्रमप्यत्र निन्दता जगतो गुरुम् ।
नापेक्षितस्त्वया यस्मात् तस्माच्छापं ददामि ते ॥ ४७

यथा मे शिरसश्छेदादिदं गुरुतरं बले ।
त्वयोक्तमच्युताक्षेपं राज्यभ्रष्टस्तथा पत ॥ ४८

यथा न कृष्णादपरः परित्राणं भवार्णवे ।
तथाऽचिरेण पश्येयं भवन्तं राज्यविच्युतम् ॥ ४९

हुए हैं, उनके विषयमें विनाशकी ओर चलनेवाले विवेकहीन, मूर्ख, इन्द्रियोंके गुलाम, वृद्धोंके आदेशोंका उल्लङ्घन करनेवाले तुम्हारी अपेक्षा कौन ऐसा (कृष्ण नामसे) कह सकेगा ? ॥ ३६—३९ ॥

मैं (ही सचमुच) शौचनीय हूँ, जिसके घरमें तुम्हारा अधम पिता उत्पन्न हुआ, जिसका तुम्हारे जैसा देवदेव (विष्णु) का तिरस्कार करनेवाला पुत्र है। जो अनेक संसारके समूहोंके प्रवाहका विनाश करनेवाले हैं, ऐसे कृष्णमें भक्तिके लिये तुम्हें क्या मेरा भी ध्यान नहीं रहा। दितिमन्दन मेरे विषयमें समस्त संसार एवं तुम भी यह जानते हो कि मुझे यह मेरा देह भी कृष्णसे अधिक प्रिय नहीं है फिर यह समझते हुए भी कि भगवान् कृष्ण मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, फिर भी तुम मेरी मर्यादापर ध्यान न देकर ठेस पहुँचाते हुए उनकी निन्दा कर रहे हो। बलि! तुम्हारा गुरु (पिता) विरोचन है, उसका गुरु (पिता) मैं हूँ तथा मेरे भी गुरु सम्पूर्ण जगत्के स्वामी भगवान् नारायण श्रीहरि हैं ॥ ४०—४४ ॥

जिस कारण तुम अपने गुरु (पिता विरोचन) के गुरु (पिता मैं प्रह्लाद) के भी गुरु विष्णुकी निन्दा कर रहे हो, इस कारण तुम यहीं ऐश्वर्यसे भ्रष्ट हो जाओगे। बलि से प्रभु जनार्दनदेव जगत्के स्वामी हैं। इस विषयमें मेरा गुरु (अर्थात् मैं) भक्तिमान् हूँ, यह विचारकर तुझे मेरी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। जिस कारणसे जगद्गुरुकी निन्दा करनेवाले तुम्हें मेरी इतनी भी अपेक्षा नहीं की इस कारण मैं तुम्हें शपथ देता हूँ; क्योंकि बलि तुम्हारे द्वारा अभ्युतके प्रति अपमानजनित ये खचन मेरे लिये सिर कट जानेसे भी अधिक कष्टदायी हैं, अतः तुम राज्यसे भ्रष्ट होकर गिर जाओ भवसागरमें भगवान् विष्णुको छोड़कर दूसरा कोई रक्षक नहीं है, अतः शीघ्र ही मैं तुम्हें राज्यसे भ्रष्ट हुआ देखूँगा ॥ ४५—४९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें उन्नीसवीं अध्याय समाप्त हुआ ॥ २९ ॥

तीसवाँ अध्याय

बलिका प्रह्लादको संतुष्ट करना, अदितिके गर्भसे वाचनका प्राकट्य;
ब्रह्माद्वारा स्तुति, वाचनका बलिके यज्ञमें जाना

लोमहर्षणे उवाच

इति दैत्यपतिः श्रुत्वा वचनं रौद्रमप्रियम् ।
प्रसादयामास गुरुं प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥ १

प्रसीद तात मा कोपं कुरु मोहहते मयि ।
बलाबलेपमुदेन मयैतद्वाक्यमीरितम् ॥ २

मोहापहतविज्ञानः पापोऽहं दितिजोत्तम ।
यच्छप्नोऽस्य दुराचारस्तत्साधु भवता कृतम् ॥ ३

रज्यभ्रंशं यशोभ्रंशं प्राप्स्यामीति ततस्त्वहम् ।
विधण्णोऽसि यथा तात तथैवाधिनये कृते ॥ ४

त्रैलोक्यराज्यमैश्वर्यमन्यद्वा नातिदुर्लभम् ।
संसारे दुर्लभास्तात गुरो ये भवद्विधा ॥ ५

प्रसीद तात मा कोपं कर्तुमर्हसि दैत्यप ।
त्वत्कोपपरिदग्धोऽहं परितप्ये दिवाविशम् ॥ ६

प्रह्लाद उवाच

वत्स कोपेन मे मोहो जगितस्तेन ते मया ।
शापो दत्तो विवेकश्च मोहेनापहतो मम ॥ ७

यदि मोहेन मे ज्ञानं नाक्षिप्तं स्यान्महासुर ।
तत्कथं सर्वगं जानन् हरिं कच्छिच्छपाम्यहम् ॥ ८

यो यः शापो मया दत्तो भवतोऽसुरपुंगव ।
भाव्यमेतेन नूनं ते तस्मात्सर्वं मा विधीद वै ॥ ९

अद्यप्रभृति देवेभ्यो भगवत्यच्युते हरौ ।
भवेद्या भक्तिमानीभ्यो स ते दाता भविष्यति ॥ १०

शापं प्राप्य च मे वीर देवेशः संस्मृतस्त्वया ।
तथा तथा यदिध्यामि श्रेयस्त्वं प्राप्स्यसे यथा ॥ ११

लोमहर्षणेने कहा— दैत्यपति बलि प्रह्लादकी इस प्रकार कठोर एवं अश्रिय उक्तिको सुनकर उनके चरणोंमें बार बार सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए मनाने लगा ॥ १ ॥

बलिके कहा— तात! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों, मैं मूढ़ हो गया था, मेरे ऊपर क्रोध न करें बलिके चमण्डसे विवेकहीन होनेके कारण मैंने यह वचन कहा था दैत्यत्रेह! मोहके कारण मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी थी, मैं अधम हूँ। मैंने सदाचारका पालन नहीं किया, जिससे मुझ पापाचारीको आपने जो शाप दिया, वह बहुत ठीक किया तात आप (यतः) मेरी वरुण्डताके कारण बहुत दुःखी हूँ, अतः मैं राज्यसे च्युत और अपनी कीर्तिसे रहित हो जाऊँगा तात! संसारमें तीनों लोकोंका राज्य, ऐश्वर्य अथवा अन्य किसी (वस्तु)-का मिलना बहुत कठिन नहीं है, परंतु आप जैसे जो गुरुजन हैं, वे संसारमें दुर्लभ हैं, दैत्योंकी रक्षा करनेवाले तात! आप प्रसन्न हों, क्रोध न करें आपका क्रोध मुझे बला रहा है, इसलिये मैं दिन रात (आठों प्रहर) संतप्य हो रहा हूँ ॥ १-६ ॥

प्रह्लाद बोले— वत्स! क्रोधके कारण हमें मोह उत्पन्न हो गया था और उसीने मेरी विचार करनेवाली बुद्धि भी नष्ट कर दी थी, इसीसे मैंने तुम्हें शाप दे दिया महासुर! यदि मोहवश मेरा ज्ञान दूर नहीं हुआ होता तो मैं भगवान्को सब जगह विद्यमान जानता हुआ भी तुम्हें शाप कैसे देता। असुरश्रेष्ठ मैंने तुम्हें जो क्रोधवश शाप दिया है, वह तो तुम्हारे लिये होगा, किंतु तुम दुःखी मत हो बल्कि आजसे तुम उन देवोंके भी ईश्वर भगवान् अच्युत हरिकी भक्ति करनेवाले बन जाओ भक्त हो जाओ। वे ही तुम्हारे रक्षक हो जाएंगे। वीर मेरा शाप पाकर तुमने देवेश भगवान्का स्मरण किया है, अतः मैं तुमसे यही कहूँगा, जिससे तुम कल्याणको प्राप्त करो ॥ ७-११ ॥

लोकावर्षण उवाच

अदितिर्वरमासाद्य सर्वकामसमृद्धिदम् ।
 क्रमेण ह्युदरे देवो वृद्धिं प्राप्नो महामशः ॥ ११
 ततो मासेऽथ दशमे काले प्रसव आगते ।
 अजायत स गोविन्दो भगवान् कामनाकृतिः ॥ १३
 भवतीर्णो जगन्नाथे तस्मिन् सर्वाभरेधरे ।
 देवाश्च मुमुक्षुर्दुःखं देवमाताऽदितिस्तथा ॥ १४
 यक्षुर्वाताः सुखस्यर्शा भीरजस्कमभून्भः ।
 धर्मं च सर्वभूतान्नं तदा पतिरजायत ॥ १५
 नोद्वेगश्चाप्यभूद् देहे मनुजानां द्विजोत्तमाः ।
 तदा हि सर्वभूतान्नं धर्मं पतिरजायत ॥ १६
 तं ज्ञातमार्त्तं भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
 जातकर्मादिकां कृत्वा क्रियां तुष्टाव च प्रभुम् ॥ १७

ब्रह्मोवाच

जयाध्रीश जयाजेय जय विश्वगुरो हरे ।
 जन्ममृत्युजरातीत जयानन्त जयाच्युत ॥ १८

जयाजित जयाशेष जयाव्यक्तस्थिते जय ।
 परमार्थार्थ सर्वज्ञ ज्ञानज्ञेयार्थनिःसृत ॥ १९

जयाशेष जगत्साक्षिजगत्कर्तुर्जगद्गुरो ।
 जगतोऽजगदन्तेश स्थितौ पालयते जय ॥ २०

जयाखिल जयाशेष जय सर्वहृदिस्थित ।
 जयादिमध्यान्तमय सर्वज्ञानमयोत्तम ॥ २१

मुमुक्षुभिरनिर्देश्य नित्यहृष्ट जयेश्वर ।
 योगिभिर्भुक्तिकामैस्तु दयादिगुणभूषण ॥ २२

जयातिसूक्ष्म दुर्ज्ञेय जय स्थूल जगन्मय ।
 जय सूक्ष्मातिसूक्ष्म त्वं जयानिन्द्रिय सेन्द्रिय ॥ २३

जय स्वमायायोगस्थ शेषभोग जयाक्षर ।
 जयैकदंष्ट्रप्रान्तेन समुद्धतवसुंधर ॥ २४

लोमहर्षणने कहा—(उधर) अदितिने सभी कामनाओंकी समृद्धि करनेवाले बरको प्राप्त कर लिया तब उसके उदरमें महायक्षस्वी देव (भगवान्) धीरे-धीरे बढ़ने लगे इसके बाद दसवें महीनेमें जब प्रसवका समय आया तब भगवान् गोविन्द कामनाकारमें उत्पन्न हो गये संसारके स्वामी उन अखिलेश्वरके अवतार ले लेनेपर देवता और देवमाता अदिति दुःखसे मुक्त हो गये फिर तो (संसारमें) आनन्ददायी वायु बहने लगी, भगनमण्डल बिना धूलिका (स्वच्छ) हो गया एवं सभी जीवोंकी बुद्धि धर्म कालमें लग गयी द्विजोत्तमो! उस समय मनुष्योंकी देहमें कोई भयझाहट नहीं थी और तब समस्त प्राणियोंकी बुद्धि धर्ममें लग गयी उनके उत्पन्न होते ही लोकपितामह ब्रह्मने उनको तत्काल ज्ञातकर्म आदि क्रिया (संस्कार) सम्पन्न करके उन प्रभुकी स्तुति की ॥ १२- १७ ॥

ब्रह्मा बोले- अधीश आपकी जय हो। अजेय आपकी जय हो विश्वके गुरु हरि आपकी जय हो। जन्म-मृत्यु तथा जरासे अतीत अनन्त! आपकी जय हो। अच्युत! आपकी जय हो अजित! आपकी जय हो। अशेष! आपकी जय हो अव्यक्त स्थितिवाले भगवान्! आपकी जय हो। परमार्थार्थकी (उत्तम अभिप्रायकी) पूर्तिमें निमित्त! ज्ञान और ज्ञेयके अर्थके उत्पदक सर्वज्ञ! आपकी जय हो। अशेष जगत्के साक्षी! जगत्के कर्ता! जगद्गुरु! आपकी जय हो। जगत् (चर) एवं अजगत् (अचर) के स्थिति, पालन एवं प्रलयके स्वामी! आपकी जय हो। अखिल! आपकी जय हो अशेष! आपकी जय हो। सभीके हृदयमें रहनेवाले प्रभो! आपकी जय हो आदि, मध्य और अन्तस्वरूप! समस्त ज्ञानको मूर्ति, उत्तम आपकी जय हो। मुमुक्षुओंके द्वारा अनिर्देश्य, नित्य-प्रसन्न ईश्वर आपकी जय हो। हे मुक्तिकी कामना करनेवाले योगियोंसे सेवित, दम आदि गुणोंसे विभूषित परमेश्वर आपकी जय हो ॥ १८—२२ ॥

हे अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूपवाले, हे दुर्ज्ञेय (कठिनवासे समझमें आनेवाले) आपकी जय हो। हे स्थूल और जगत्-मूर्ति! आपकी जय हो। हे सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म प्रभो! आपकी जय हो। हे इन्द्रियोंसे रहित तथा इन्द्रियोंसे मुक्त (नाथ)! आपकी जय हो।

नृकेसरिन् सुरारातिवक्षःस्थलविदारण।
साम्प्रतं जय विद्यात्मन् माय्यावामन कैशव ॥ २५

निजयायापरिच्छिन्न जगद्धातुर्जनार्दन।
जयाश्रित्य जयानेकस्वरूपैकविध प्रभो ॥ २६

वर्द्धस्व वर्धितानेकविकारप्रकृते हरे।
त्वय्येषा जगतामीशे संस्थिता धर्मपद्धतिः ॥ २७
न त्वामहं न श्लेशामो मेन्द्राद्यास्त्रिदक्षा हरे।
ज्ञातुमीशा न मुनयः सनकाद्या न योगिनः ॥ २८

त्वं मायापटसंवीतो जगत्पथत्र जगत्पते।
कस्त्वां वेत्स्यति सर्वेश त्वत्प्रसादं विना नरः ॥ २९
त्वमेवाराधितो यस्य प्रसादसुमुखः प्रभो।
स एव केवलं देवं वेत्ति त्वां नेतरो जनः ॥ ३०

तदीश्वरेश्वरेशान विभो वर्द्धस्व भावन।
प्रभवाद्यास्य विश्वस्य विद्यात्मन् पृथुलोचन ॥ ३१
लोमहर्षक उवाच

एवं स्तुतो इषीकेशः स तदा वामनाकृतिः।
प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचारुदसम्पदम् ॥ ३२

स्तुतोऽहं भवता पूर्वमिन्द्राद्यैः कश्यपेन च।
मय्य च यः प्रतिज्ञातमिन्द्रस्य भुवनत्रयम् ॥ ३३
भूयश्चाहं स्तुतोऽदित्या तस्याश्चापि मया श्रुतम्।
यथा शक्राय दास्यामि त्रैलोक्यं हतकण्ठकम् ॥ ३४

सोऽहं तस्मा करिष्यामि यथेन्द्रो जयतः पतिः।
भविष्यति सहस्राक्षः सत्यमेतत् हवीमि यः ॥ ३५

ततः कृष्णाजिनं ब्रह्मा इषीकेशाय दत्तवान्।
यज्ञोपवीतं भगवान् ददौ तस्य बृहस्पतिः ॥ ३६

हे अपनी मायासे योगमें स्थित रहनेवाले (स्वामी)।
आपकी जय हो। शेषकी सव्यापर सोनेवाले अविनाशो
शेषशायी प्रभो! आपकी जय हो एक दैतके कोनेपर
पृथ्वीको ठठनेवाले बरह्मरूपधारी भगवन्! आपकी जय
हो हे देवताओंके ज्ञानु (हिरण्यकशिपु) के वक्षःस्थलको
विदीर्ण करनेवाले नृसिंह भगवान् तथा विधकी आत्मा
एवं अपनी मायासे वामनका रूप धारण करनेवाले
कैशव! आपको जय हो। हे अपनी मायासे आवृत तथा
संसारको धारण करनेवाले परमेश्वर आपकी जय हो
हे ध्यानसे परे अनेक स्वरूप धारण करनेवाले तथा
एकविध प्रभो! आपकी जय हो हरे! आपने प्रकृतिके
भीति-भीति विकार बढ़ाये हैं। आपको वृद्धि हो
जगत्का यह धर्ममार्ग आप प्रभुमें स्थित हैं ॥ २३—२७ ॥

हे हरे! मैं, संकर, इन्द्र आदि देव, सनकादि मुनि
तथा योगिगण उन्नको जाननेमें असमर्थ हैं। हे जगत्पते!
आप इस संसारमें मायारूपी वस्त्रसे छके हैं। हे सर्वेश!
आपकी प्रसन्नताके बिना कौन ऐसा मनुष्य है जो
आपको जान सके। प्रभो! जो मनुष्य आपकी आराधना
करता है और आप उसपर प्रसन्न होये हैं वही आपको
जानता है, अन्य नहीं। हे ईश्वरोंके भी ईश्वर। हे ईशान!
हे विभो! हे भावन! हे विश्वात्मन्! हे पृथुलोचन! इस
विश्वके प्रभव (उत्पत्ति—सृष्टिके कारण) विष्णु आपको
वृद्धि हो जय हो ॥ २८—३१ ॥

लोमहर्षणने कहा—इस प्रकार जब वामनरूपमें
अवतीर्ण भगवान्की स्तुति सम्पन्न हुई, तब इषीकेश
भगवान् हैंतकर अभिप्रायपूर्ण ऐश्वर्ययुक्त वाणीमें बोले
पूर्वकालमें आपने, इन्द्र आदि देवों तथा कश्यपने मेरी
स्तुति की थी। मैंने भी आप लोगोंसे इन्द्रके लिये
त्रिभुवनको देनेकी प्रतिज्ञा की थी इसके बाद अदितिने
मेरी स्तुति की तो उससे भी मैंने प्रतिज्ञा की थी कि
मैं बाधाओंसे रहित तीनों लोकोंको इन्द्रको दूँगा अतः
मैं ऐश्वर्य करूँगा, जिससे हजारों नेत्रोंवाले (इन्द्र) संसारके
स्वामी होंगे मेरा यह कथन सत्य है ॥ ३२ ३५ ॥

(इषीकेश भगवान्के इस प्रकार अपने वचनकी
सत्यता घोषित करनेके बाद) ब्रह्मने इषीकेशको कृष्ण
मृगधर्म समर्पित किया एवं भगवान् बृहस्पतिने उन्हें

आषाढमददाद् दण्डं भरीचिर्बह्मणः सुतः ।
कमण्डलुं वसिष्ठश्च कौशं चीरमवाहिनाः ।
आसनं चैव पुलहः पुलस्त्यः पीतवाससी ॥ ३७
उपतस्थुश्च तं वेदाः प्रणवस्वरभूषणाः ।
शास्त्राण्यशेषाणि तथा सांख्ययोगोक्तयश्च याः । ३८
स वामनो जटी दण्डी छत्रे धृतकमण्डलुः ।
सर्वदेवमयो देवो जलेरध्वरमभ्यगात् ॥ ३९
यत्र यत्र पदं विप्रा भूभागे वामनो ददौ ।
ददाति भूमिर्विधौ तत्र तत्राभिपीडिता ॥ ४०
स वामनो जडगतिर्मुदु गच्छन् सपर्वताम् ।
साख्यद्वीपवतीं सर्वां जालयाप्रास मेदिनीम् ॥ ४१
बृहस्पतिस्तु हनकैर्मागं दर्शयते शुभम् ।
तथा क्रीडाधिनोदार्थमतिजाड्यगतोऽभवत् ॥ ४२
ततः शेषो महान्तगो निःसृत्यासी रसातलान् ।
साहाय्यं कल्पयामास देवदेवस्य चक्रिणः ॥ ४३
तदद्यापि च विख्यातमहेर्विलमनुत्तमम् ।
तस्य संदर्शनादेव ऋगेभ्यो न भयं भवेत् ॥ ४४

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३० ॥

इकतीसवाँ अध्याय

वामनद्वारा तीन पग भूमिकी याचना तथा विराटरूपसे तीनों लोकोंको तीन

पगमें नाप लेना और खलिका पातालमें जाना

लोकवर्षभ उवाच

सपर्वतवणामुर्वीं दृष्ट्वा संक्षुभितां खलिः ।
पद्मच्छोशनसं शुक्रं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥ १
आचार्य क्षोभमायाति साख्यभूमिधरा मही ।
कस्माच्च नासुरान् भागान् प्रतिगृह्णन्ति यद्वयः ॥ २
इति पृष्टोऽथ खलिना काव्यो वेदविदां परः ।
उवाच दैत्याधिपतिं चिरं ध्यात्वा महामतिः ॥ ३

यज्ञोपवीत दिया। ब्रह्मपुत्र परोचिने उन्हें पलाशदण्ड, वसिष्ठने कमण्डलु और अङ्गिराने रेशमी वस्त्र दिया। पुलहने आसन तथा पुलस्त्यने दो पोले वस्त्र दिये। आँकारके स्वरसे अलंकृत वेद, सभी शास्त्र तथा सांख्ययोग आदि दर्शनोंकी ठिकियाँ उनका उपस्थान करने लगीं। समस्त देवताओंके मूर्तिरूप वामनभगवान् जटा, दण्ड छत्र एवं कमण्डलु धारण करके खलिकी वक्रभूमिमें पधारे ॥ ३६—३९ ॥

ब्रह्मणो पृथ्वीपर वामनभगवान् जिस-जिस स्थानपर डग रखते थे, वहाँकी दबी हुई भूमिमें दरार पड़ जाता था गड्ढा हो जाता था। मधुरभावसे धीरे धीरे चलते हुए वामनभगवान्ने समुद्रों, द्वीपों तथा पर्वतोंसे युक्त सारी पृथ्वीको कैपा दिया। बृहस्पति भी शनैः शनैः उन्हें सारे कल्याणकारी मार्गको दिखाने लगे एवं स्वयं भी क्रीडापूर्ण मनोरञ्जनके लिये अत्यन्त धीरे-धीरे चलने लगे उसके बाद महामातृ शेष रसातलसे ऊपर आकर देवदेव वक्रधारी भगवान्की सहायता करने लगे आज भी वह श्रेष्ठ सपौका बिल विख्यात है और उसके दशनमात्रसे नागोंसे भय नहीं होता ॥ ४०—४४ ॥

लोकवर्षभ बोले—खलिने चनों और पर्वतोंके साथ सम्पूर्ण पृथ्वीको क्षोभसे भरी देखकर हाथ जोड़ करके शुक्राचार्यको प्रणाम कर पूछ आचार्यदेव! समुद्र तथा पर्वतोंके साथ पृथ्वीके क्षुब्ध होनेका क्या कारण है और अग्निदेव असुरोंके भागोंको क्यों नहीं ग्रहण कर रहे हैं? खलिके इस प्रकार प्रश्न करनेपर वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान् शुक्राचार्यने चिरकालतक ध्यान लगाकर (और

अवतीर्णो जगद्योनिः कश्यपस्य गृहे हरिः ।
वामनेनेह रूपेण धरमात्मा सनातनः ॥ ४

स नूनं यज्ञमायाति तव दानवपुंगव ।
तत्पादन्यासविक्षोभादियं प्रचलिता मही ॥ ५

कप्यन्ते गिरयश्चोमे क्षुभिता मकरालया ।
नेयं भूतपतिं भूमिः समर्था वोढुमीश्वरम् ॥ ६

सदेवासुरगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगा ।
अनेनैव भूता भूमिरापोऽग्निः पवनो नभः ।

धारयत्यग्निस्त्वाम् देवान् मनुर्ध्याश्च महासुरान् ॥ ७

इयमस्य जगद्धातुर्माया कुष्णस्य गङ्गरी ।
धार्यधारकभावेन यथा संपीडितं जगत् ॥ ८

तत्सन्निधानादसुरा न भागार्हा सुरद्विषः ।
भुञ्जते नासुरान् भागानपि तेन त्रयोऽज्जनय ॥ ९

शुकस्य वचनं श्रुत्वा हृष्टरोमाऽब्रवीद् बलिः ।
धन्योऽहं कृतपुण्यश्च यन्मे यज्ञपतिः स्वयम् ।
यज्ञमभ्यागतो ब्रह्मन्मत्तः कौऽन्योऽधिकः पुमान् ॥ १०

यं योगिनः सदोद्युक्ताः परमात्मानमव्ययम् ।
ब्रह्मिच्छन्ति देवोऽसी ममस्त्वरमुपेक्ष्यति ।
यन्मयाचार्यं कर्तव्यं तन्ममादेहमर्हसि ॥ ११

शुक उवाच

यज्ञभागभुजो देवा वेदप्रमाणयतोऽसुर ।
त्वया तु दानव्य दैत्य यज्ञभागभुजः कृता ॥ १२

अयं च देवः सत्त्वस्थः करोति स्थितिपालनम् ।
विस्मृं च तथाऽयं च स्वचमन्ति प्रजा प्रभुः ॥ १३

भवांस्तु वन्दी भविता नूनं विष्णुः स्थिती स्थितः ।
विदित्वैवं महाभाग कुरु यत् ते मनोगतम् ॥ १४

तथ्य समझकर) दैत्येन्द्रसे कहा—कश्यपके घरमें जगद्योनि—संसारको उत्पन्न करनेवाले सनातन परमात्मन वामनके रूपमें अवतीर्ण हो गये हैं ॥ १-४ ॥

दानवश्रेष्ठ! ये ही प्रभु तुम्हारे यज्ञमें आ रहे हैं। उन्होंने पैर रखनेसे पृथ्वीमें विक्षोभ हो रहा है जिससे यह पृथ्वी काँप रही है, ये पर्वत भी काँप रहे हैं और सिन्धुमें जोरोंकी लहरें उठ रही हैं। इस भूमिमें उन भूतपति भगवान्को वहन करनेकी शक्ति नहीं है। ये ही (परमात्मा) देव, असुर, गन्धर्व—देवों, मनुष्यों एवं महाहुरोंको धारण करते हैं। जगत्को धारण करनेवाले भगवान् कुष्णकी ही यह गम्भीर (अविनश्य) माया है, जिस मायाके द्वारा यह संसार धार्यधारकभावसे ध्रुव हो रहा है ॥ ५-८ ॥

उनके सन्निधान होनेके कारण देवताओंके शत्रु दैत्यलोग यज्ञ-भाग पानेके योग्य नहीं रह गये हैं अतएव रीनों अग्निदेव भी असुरोंके भागको नहीं ले रहे हैं। शुकाचार्यकी बात सुननेके बाद बलिके रोंगटे खड़े हो गये उसके बाद बलितने (शुकाचार्यसे) कहा ब्रह्मन्! मैं धन्य एवं कृतकृत्य हो गया, जो स्वयं यज्ञके अधिपति भगवान् लगातार मेरे यज्ञमें पधार रहे हैं। कौन दूसरा पुत्र मुझसे श्रेष्ठ है? सदैव सन्नधान रहनेवाले योगीसौग जिन नित्य परमात्माको देखना चाहते हैं, ये ही देव मेरे यज्ञमें (कृपाकर) पधार रहे हैं। आचार्य! मुझे जो करना चाहिये, उसे आप आदिष्ट कीजिये ॥ ९-११ ॥

शुकाचार्य बोले—असुर! वेदोंका विधान है कि यज्ञभागके भोक्तृ देवता हैं। परंतु दैत्य! तुमने यज्ञभागका भोक्तृ दानवोंको बना दिया है। (यह वेद-विधानके विपरीत किया है—विधानका उल्लंघन किया है।) ये ही देव सत्त्वगुणका आश्रय लेकर विध्वकी स्थिति और फलन करते हैं और ये ही सृष्टि भी करते हैं, फिर ये ही प्रभु स्वयं प्रजाका (जीवोंका) अन्त भी करते हैं विष्णु स्थितिके कार्यमें (कल्याणमय मर्यादाके स्थापनमें) तत्पर हो गये हैं। अतः आपको निश्चय ही वन्दी होना है। महाभाग! इसपर विचारकर तुम्हारे मनमें जैसा

त्वय्यस्य दैत्याधिपते स्वल्पकेऽपि हि वस्तुनि ।
प्रतिज्ञा नैव बोद्धव्या वाच्यं साम तद्याऽफलम् ॥ १५

कृतकृत्यस्य देवस्य देवार्थं चैव कुर्वतः ।
अलं दद्यां धनं देवे त्वेतद्वाच्यं तु याचतः ।
कृष्णस्य देवभूत्यर्थं प्रवृत्तस्य महासुर ॥ १६

कतिपय

ब्रह्मन् कथमहं ब्रूयामन्येनापि हि याचितः ।
नास्तीति किमु देवस्य संसारस्यायद्धारिणः ॥ १७

व्रतोपवासैर्विविधैर्यः प्रभुर्गृह्यते हरिः ।
स ये वक्ष्यति देहीति गोविन्दः किमस्तोऽधिकम् ॥ १८

चदर्शं सुमहारम्भा दम्पशौचगुणान्वितैः ।
यज्ञा क्रियन्ते यज्ञेशः स ये देहीति वक्ष्यति ॥ १९

तत्साधु सुकृतं कर्म तपः सुचरितं च नः ।
यन्मां देहीति विश्वेशः स्वयमेव वदिष्यति ॥ २०
नास्तीत्यहं गुरो वक्ष्ये तमभ्यागतमीश्वरम् ।
प्राणत्यगं करिष्येऽहं न तु नास्ति जने क्वचित् ॥ २१

नास्तीति यन्मया भोक्तव्येभ्यामपि याचताम् ।
वक्ष्यामि कथमायाते तदद्य चापरेऽप्युते ॥ २२

श्लाघ्य एव हि वीराणां दानाच्चापत्समागमः ।
न बाधाकारि यद्दानं तदङ्ग बलवत् स्मृतम् ॥ २३

मशाय्ये नासुखी कश्चिन्न दरिद्रो न चानुरः ।
न दुःखितो न चोद्विग्नो न शमादिविवर्जितः ॥ २४

इच्छा हो वीर करो दैन्यपते ! (देखना) तुम धोड़ी-
सी भी वस्तु देनेके लिये उनसे प्रतिज्ञा मत करना
व्यर्थ की कोमल और मधुर बातें करना महासुर !
कृतकृत्य एवं देवताओं का काय पूरा करनेवाले तथा
देवताओं के ऐश्वर्य के लिये प्रयत्नशील भगवान् श्रीकृष्ण के
याचना करनेपर 'मैं देवताओं के हेतु पर्याप्त धन दूँगा'
ऐसा कहना ॥ २२—२६ ॥

बलि बोले—ब्रह्मन् ! मैं दूसरों के याचना करनेपर
भी 'नहीं है' ऐसा कैसे कह सकता हूँ ? फिर
संसार के पापों को दूर करनेवाले (उन) देवसे कहनेकी
तो बात ही क्या है ? विविध प्रकार के व्रतों एवं
उपवासों से जो परमेश्वर ग्राहण किये जाने योग्य हैं, वे
ही गोविन्द मुझसे 'दो' इस प्रकार कहेंगे तो इससे
बढ़कर (मेरे लिये) और (भाग्य) क्या हो सकता है ?
जिनके लिये दम्प-शमादि शौच-भीतरी-बाहरी पवित्रता
आदि गुणों से युक्त लोग यज्ञीय उपकरणों एवं
सम्पत्तियों को लगाकर यज्ञ करते हैं, वे ही यज्ञेश
(यज्ञ के स्वामी) यदि मुझसे 'दो' इस प्रकार कहेंगे तो
मेरे किये हुए सभी कर्म सफल हो गये और हमारा
तपश्चरण भी सफल हो गया क्योंकि विश्व के स्वामी
स्वयं मुझसे 'दो'—इस तरह कहेंगे ॥ १७-२० ॥

गुरुदेव क्या अपने यहाँ (याचक रूपमें) आये उन
परमेश्वरसे 'नहीं है' मैं ऐसा कहूँ ? (यह तो बकित
नहीं जैयता) भले ही प्राणों का त्याग कर दूँगा, किंतु
किसी भी याचक मनुष्यसे 'नहीं है' यह नहीं कह
सकता दूसरों के भी याचना करनेपर जब मैंने नहीं
है' ऐसा नहीं कहा तो आज अपने यहाँ स्वयं पूर्ण
परमेश्वर के आ जानेपर मैं यह कैसे कहूँगा कि 'नहीं
है' ? दान के कारण यदि कठिनाई आती है तो उसे चौर
पुरुष प्रशंसनीय ही मानते हैं। क्योंकि दानका महत्त्व उससे
और बढ़ जाता है। गुरो ! (हाँ, साधारणतया यह समझा
जाता है कि) जो दान ग्राह्य छलनेवाला नहीं होता,
वह निःसंदेह बलवान् कहा गया है। (पर ऐसा प्रसन्न नहीं
आ सकता; क्योंकि) मेरे राज्यमें ऐसा कोई भी नहीं है,
जो सुखी न हो और न कोई रोगी या दुःखी ही है, न
कोई किसीके द्वारा उद्विग्न किया गया है और न कोई

हृष्टस्तुष्टः सुगन्धी च तृप्तः सर्वसुखान्वितः ।
जनः सर्वो महाभाग किमुताहं सदा सुखी ॥ २५

एतद्विशिष्टमन्नाहं दानबीजफलं लभे ।
विदितं मुनिशार्दूल मयैतत् त्वन्मुखाच्छ्रुतम् ॥ २६

मत्प्रसादपरो नूनं यज्ञेनाराधितो हरिः ।
मम दानमवाप्स्यसी पुष्पाति यदि देवताः ॥ २७

एतद्बीजवरे दानबीजं यतति चेद् गुरौ ।
जनादेनं महापात्रे किं न प्राप्तं ततो मया ॥ २८

विशिष्टं मम तद्दानं परितुष्टाश्च देवताः ।
उपभोगाच्छ्रुतगुणं दानं सुखकरं स्मृतम् ॥ २९
मत्प्रसादपरो नूनं यज्ञेनाराधितो हरिः ।
तेनाध्येति न संदेहो दर्शनादुपकारकत् ॥ ३०

अथ कोपेन चरध्येति देवभागोपरोधतः ।
मं निहन्तुततो हि स्थब्धस्थः स्थाव्यतरोऽच्युतः ॥ ३१

एतज्ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठ दानविजकरेण मे ।
नैव भाव्यं जगन्नाथे गोविन्दे समुपस्थिते ॥ ३२

सोमहर्षण उवाच

इत्येवं वदतस्तस्य प्राप्तस्तत्र जनार्दनः ।
सर्वदधमयोऽचिन्तयो मायाबामनरूपधृक् ॥ ३३

तं दृष्ट्वा वज्रवादं तु प्रविष्टमसुराः प्रभुम् ।
जग्मुः प्रभावतः क्षोभं तेजसा तस्य भिन्नभाः ॥ ३४

जेपुश्च मुनयस्तत्र ये समेता महाध्वरे ।
वसिष्ठो गाधिजो गर्गो अन्ये च मुनिसत्तमः ॥ ३५

वसिष्ठश्चैवाश्लिषं जन्म मेमे सफलमात्मनः ।
सतः संक्षोभमापन्नो न कश्चित् किञ्चिदुक्तवान् ॥ ३६

प्रत्येकं देवदेवेशं पूजयामास तेजसा ।
अद्यासुरपतिं प्रहं दृष्ट्वा मुनिवरांश्च तां ॥ ३७

राम आदि गुणोंसे रहित है महाभाग! सभी लोग हट-
तुड़, पुष्पात्मा धर्मपरायण हुए एवं सुखी हैं। अधिक
क्या है? मैं तो सदा सुखी हूँ ॥ २१-२५ ॥

मुनिशार्दूल। आपके मुखसे सुनकर मुझे यह
मालूम हो गया कि मैं यहाँपर विशिष्ट दानरूपी बीजक
सुभ फल प्राप्त कर रहा हूँ। वे हरि यदि मुझसे दान
लेकर देवताओंकी पुष्टि करते हैं तो यज्ञसे आराधित से
(हरि) मुझपर निश्चय ही प्रसन्न हैं यदि श्रेष्ठ बीज (ऐसा
दान) महान् (योग्य) पात्र, पूज्य जनार्दनको मिल गया
तो फिर मुझे क्या नहीं मिला? निश्चय ही मेरा यह दान
विशिष्ट गुणोंवाला है और देवता मेरे ऊपर प्रसन्न हैं।
दानके उपभोगकी अपेक्षा दान देना सौ गुना सुख
देनेवाला माना गया है ॥ २६-२९ ॥

यज्ञसे पूजे गये श्रीहरि निश्चय ही मेरे ऊपर प्रसन्न
हैं। तभी तो निस्संदेह मुझे दर्शन देकर मेरा कल्याण
करनेवाले वे प्रभु आ रहे हैं, निश्चय ही यही बात है।
देवताओंके देवभागकी प्राप्तिमें रुकावट होनेके कारण
यदि वे क्रोधवश मेरा वध करने भी आ रहे हों तो भी
उन अच्युतसे होनेवाला मेरा वध भी प्रशंसनीय ही होगा।
मुनिश्रेष्ठ यह समझकर गोविन्दके यहाँ समुपस्थित
होनेपर आप मेरे दानमें विघ्न न डालें ॥ ३०-३२ ॥

सोमहर्षण बोले—शुक्राचार्य और बलिमें इस
प्रकार बात हो ही रही थी कि सर्वदेवमय, अचिन्त्य
भगवान् अपनी मायासे अपना वामनरूप धारणकर कहाँ
पहुँच गये। उन प्रभुको यत्स्थानमें उपस्थित देखकर
दैत्यलोक उनके प्रभावसे अशान्त और तीव्र तेजसे
रहित हो गये उस महायज्ञमें एकत्र (उपस्थित)
वसिष्ठ, विश्वामित्र, गर्ग एवं अन्य श्रेष्ठ मुनिजन अपना-
अपना जप करने लगे। बलिवे भी अपने सम्पूर्ण
जन्मको सफल माना, किंतु उसके बाद (इधर)
खलबली मच गयी और संशुभ्य होनेके कारण किसीने
कुछ भी नहीं कहा ॥ ३३-३६ ॥

उनके देदीप्यमान तेजके कारण प्रत्येकने
देवाधिदेवकी पूजा की उसके बाद वामनरूपमें प्रत्यक्ष
प्रकट हुए विष्णुभगवान्ने लोगोंसे पूजित होनेके अर्थ एवं
दृष्टिसे (चारों ओर देखकर) उन विनम्र दैत्यपति एवं

देवदेवपतिः साक्षाद् विष्णुर्वागमनरूपधृक् ।
तुष्टाव यज्ञं ब्रह्मि च यजमानमधार्धितम् ।
यज्ञकर्मधिकारस्थान् सदस्थान् ब्रह्मसम्पदम् ॥ ३८
सदस्याः पात्रमखिलं वामनं प्रति तत्क्षणात् ।
यज्ञवाटस्थितं विप्राः साधु साध्वित्युदीरयन् ॥ ३९
स चार्घ्यमादाय बलिः प्रोद्भूतपुलकस्तदा ।
पूजयामास गोविन्दं ग्रहं चेदं महासुरः ॥ ४०

बलित्वा

सुवर्णरत्नसंघातो गजान्धसपितिस्तथा ।
स्वित्ते वस्त्राण्यलंकारान् गावो प्रमाश्च पुष्कलम् ॥ ४१

सर्वे च सकला पृथ्वी भवन्ते वा यदीप्सितम् ।
तद् ददामि वृणुष्वेष्टं मपार्थः सन्ति ते प्रिया ॥ ४२
इत्युक्तो दैत्यपतिश्च प्रीतिगर्भान्वितं वचः ।
प्राह सस्मितगम्भीरं भगवान् वामनाकृतिः ॥ ४३

ममाग्निशरणायाय देहि राजन् पदत्रयम् ।
सुवर्णग्रामरत्नादि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम् ॥ ४४

त्रिभिः प्रयोजनं किं ते पदैः पदवतां धर ।
शतं शतसहस्रं वा पदानां मार्गतां भवन् ॥ ४५

श्रीवामन उवाच

एतावता दैत्यपते कृतकृत्योऽस्मि मार्गणे ।
अन्येषामर्थिनां धित्तमिच्छया दास्यते भवान् ॥ ४६

एतच्छ्रुत्वा तु गदितं वामनस्य महात्मनः ।
वाचयामास चै तस्मै वामनाय महात्मने ॥ ४७

पाणी तु पतिते तोये वामनोऽभूद्वामनः ।
सर्वदेवमयं रूपं दर्शयामास तत्क्षणात् ॥ ४८

चन्द्रसूर्यौ तु नयने श्रीः शिरश्चरणौ क्षितिः ।
पादाङ्गुल्यः पिशाचास्तु हस्ताङ्गुल्यश्च गुहाकाः ॥ ४९

विश्वेदेवाश्च जानुस्थ जङ्घे साध्याः सुरोत्तमाः ।
यक्षा नखेषु सम्भूता रेखास्वप्सरसस्तथा ॥ ५०

मुनिवर्षोंको देखा तथा यज्ञ, अग्नि, यजमान, यज्ञकर्ममें अधिकृत सदस्यों एवं ब्रह्म की सामग्रियों की प्रशंसा की विशेषः। तत्काल ही सभी सदस्यगण यज्ञमण्डपमें उपस्थित पात्रस्वरूप वामनको प्रति 'साधु-साधु' कहने लगे। उस समय हृष्यमें खिड़ल होकर महासुर बलिन अर्धं लिया और गोविन्दकी पूजा की तथा उनसे यह कहा ॥ ३७—४० ॥

बलिन कहा— (वामनदेव) अनन्त सुवर्ण और रत्नों के ढेर तथा हाथी, घोड़े, स्त्रियाँ, वस्त्र, आभूषण, गावें तथा ग्रामसमूह—ये सभी वस्तुएँ, समस्त पृथ्वी अथवा आपकी जो अभिलाषा हो कह मैं देता हूँ। आप अपना अभीष्ट बतलायें। मैं प्रिय लगनेवाले समस्त अर्थ आपके लिये हूँ ॥ ४१—४२ ॥

दैत्यपति बलिके इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक उदार वचन कहनेपर वामनका आकार धारण करनेवाले भगवान्ने ईसते हुए दुर्वोध वाणीमें कहा—राजन्! मुझे अग्निशलाके लिये तीन पग (भूमि) दें सुवर्ण, ग्राम एवं रत्न आदि उनकी इच्छा रखनेवाले योधकोंको प्रदान करें ॥ ४३—४४ ॥

बलिन कहा—हे पदधारियोंमें श्रेष्ठ! तीन पग भूमिसे आपका कौन सा स्वार्थ सिद्ध होग्य। सौ अथवा सौ हजार पग भूमि आप माँगियें ॥ ४५ ॥

श्रीवामनने कहा—हे दैत्यपते! मैं इतना पानेसे ही कृतकृत्य हूँ (मेरा स्वार्थ इतनेसे ही सिद्ध हो जायगा) आप दूसरे याचना करनेवाले याचकोंको उनके इच्छानुकूल दान दीजियेगा। महात्मा वामनकी यह वाणी सुनकर (बलिन) उन महात्मा वामनको तीन पग भूमि देनेके लिये वचन दे दिया। दान देनेके लिये हाथपर बल गिरते ही वामन अवामन (विराट्) बन गये। तत्क्षण उन्होंने उन्हें अपना सर्वदेवमय स्वरूप दिखाया। चन्द्र और सूर्य उनके दोनों नेत्र, आकाश सिर, पृथ्वी दोनों चरण, पिशाच पैरकी अँगुलियाँ एवं गुहाक हाथोंकी अँगुलियाँ थे ॥ ४६—४९ ॥

जानुओंमें विश्वेदेवगण, दोनों जङ्घाओंमें सुरश्रेष्ठ, नखोंमें यक्षा एवं रेखाओंमें अप्सरारें थीं।

दृष्टिर्भक्षायशेषाणि केशाः सूर्याशवः प्रभोः ।
 तारका रोमकूपाणि रोमेषु च महर्षयः ॥ ५१ ॥
 साहस्रे विदिशास्तस्य दिशः श्रोत्रे महात्मनः ।
 अभिनी श्रवणे तस्य नासा वायुर्महात्मनः ॥ ५२ ॥
 प्रसादे चन्द्रश्च देवो मनो धर्मः सभाश्रितः ।
 सत्यमस्याभवद् वाणी जिह्वा देवी सरस्वती ॥ ५३ ॥
 ग्रीवाऽदितिर्देवमाता विद्यास्तद्वलयस्तथा ।
 स्वर्गद्वारमभून्नैत्रं त्वष्टा पूषा च वै भुवः ॥ ५४ ॥
 मुखे वैश्वानरश्चास्य वृषणी तु प्रजापतिः ।
 हृदयं च परं ब्रह्म पुंस्त्वं वै कश्यपो मुनिः ॥ ५५ ॥
 पूष्टेऽस्य वसवो देवा मरुतः सर्वसन्धिषु ।
 वक्षःस्थले तथा रुद्रो धैर्यं चास्य महार्णवः ॥ ५६ ॥
 उदरे चास्य गन्धर्वा मरुतश्च महाबला ।
 लक्ष्मीर्मथा धृतिः कान्तिः सर्वविद्याश्च वै कटिः ॥ ५७ ॥
 सर्वज्योतीर्षिं चाग्नीह तपश्च परमं महत् ।
 तस्य देवाधिदेवस्य तेजः प्रोद्भूतमुत्तमम् ॥ ५८ ॥
 तनौ कुक्षिषु वेदाश्च जानुनी च महामखा ।
 इष्टयः पशवश्चास्य द्विजानां चेष्टितानि च ॥ ५९ ॥
 तस्य देवमयं रूपं दृष्ट्वा विष्णोर्महात्मनः ।
 उपसर्पन्ति ते दैत्याः पतङ्गा इव पावकम् ॥ ६० ॥
 विष्णुस्तु महादैत्यः पादाङ्गुष्ठं गृहीतवान् ।
 दन्ताभ्यां तस्य वै ग्रीवामङ्गुष्ठेनाहनन्दरिः ॥ ६१ ॥
 प्रपथ्य सर्वानसुरान् पादहस्ततलेर्विभुः ।
 कृत्वा रूपं महत्कार्यं संजहाराशु मेदिनीम् ॥ ६२ ॥
 तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ भ्रतन्तरे ।
 नभो विक्रममाणस्य सविद्यदेजे स्थितावुभौ ॥ ६३ ॥
 परे विक्रममाणस्य जानुमूले प्रभाकरौ ।
 विष्णोरास्तां स्थितस्यैतौ देवपालनकर्षिणि ॥ ६४ ॥
 जित्वा लोकत्रयं तांश्च हत्वा चासुरपुंगवान् ।
 पुरंदराय त्रैलोक्यं ददौ विष्णुरुत्तमः ॥ ६५ ॥

समस्त नक्षत्र उनकी दृष्टियाँ, सूर्यकिरणें प्रभुके केश, तारकार् उनके रोमकूप एवं महर्षिगण रोमोंमें स्थित थे विदिशाएँ उनकी बाहें, दिशाएँ उन महत्माके कर्ण, दोनों अभिनीकुमार श्रवण एवं वायु उन महात्माके नासिका-स्थानपर थे। उनके प्रसादमें (मधुर हास्यछटामें) चन्द्रदेव तथा मनमें धर्म आश्रित थे। सत्य उनकी वाणी तथा जिह्वा सरस्वतीदेवी थीं ॥ ५०—५३ ॥

देवमाता अदिति उनकी ग्रीवा, विद्या उनकी सनियाँ, स्वर्गद्वार उनकी गुदा तथा त्वष्टा एवं पूषा उनकी भीहें थे। वैश्वानर उनके मुख तथा प्रजापति वृषण थे मरुद्वार उनके हृदय तथा कश्यप मुनि उनके पुंस्त्व थे उनकी पीठमें वसु देवता, सभी सन्धिवाँमें मरुद्वार, वक्षःस्थलमें रुद्र तथा उनके धैर्यमें महार्णव आश्रित थे उनके उदरमें गन्धर्व एवं महाबली मरुद्वार स्थित थे लक्ष्मी, मेधा, धृति, कान्ति एवं सभी विद्याएँ उनकी कटिमें स्थित थीं ॥ ५४—५७ ॥

समस्त ज्योतिर्याँ एवं परम महत् तप उन देवाधिदेवके उत्तम तेज थे। उनके शरीर एवं कुक्षियोंमें वेद थे तथा बड़े-बड़े यज्ञ इष्टियाँ बाँ, पशु एवं साहाणोंकी चेष्टाएँ उनकी दोनों जानुएँ थीं उन महात्मा विष्णुके सर्वदेवमय रूपको देखकर वे दैत्य उनके निकट दसी प्रकार जाते थे, जिस प्रकार अग्निके निकट पतंगे जाते हैं। महादैत्य विष्णुने दाँतोंसे उनके पैरके अँगूठेको दबोच लिया। फिर भगवान्ने अँगूठेसे उसकी ग्रीवापर प्रहार किया और— ॥ ५८—६१ ॥

अपने पैरों एवं हाथोंके तलवोंसे समस्त असुरोंको रागड़ डाला तथा विरट्ट शरीर धारण करके शीघ्र ही उन्होंने पृथ्वीको उनसे छीन लिया। भूमिको नापते समय चन्द्र और सूर्य उनके स्तनोंके मध्य स्थित थे तथा आकाशके नापते समय उनके सन्धिप्रदेश (जॉव) में स्थित हो गये एवं परम (ऊर्ध्व) लोकका अतिक्रमण करते समय देवताओंकी रक्षा करनेमें स्थित श्रीविष्णुके जानुमूल (घुटनेके स्थान)-में चन्द्र एवं सूर्य स्थित हो गये। तरुक्रम (लंबी डगोंवाले) विष्णुने तीनों लोकोंको जीतकर एवं उन बड़े-बड़े असुरोंका वध कर तीनों लोक इन्द्रको दे दिये ॥ ६२—६५ ॥

सुतलं नाम पातालमथस्ताद् वसुधातलात् ।
बलेर्दत्तं भगवता विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ६६

अथ दैत्येश्वरं प्राह विष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः ।
तत् त्वया सलिलं दत्तं गृहीतं पाणिना मया ॥ ६७

कल्पप्रमाणं तस्मात् ते भविष्यत्यायुरुत्तमम् ।
वैवस्वते तथाऽतीते काले मन्वन्तरे तथा ॥ ६८

सावर्णिके तु संप्राप्ते भवानिन्द्रो भविष्यति ।
इदानीं भुवनं सर्वं दत्तं शक्राय वै पुरा ॥ ६९

चतुर्युगव्यवस्था च साधिका ह्येकसप्ततिः ।
नियन्तव्या मया सर्वे ये तस्य परिपन्थिनः ॥ ७०

तेनाहं परया भक्त्या पूर्वमाराधितो बले ।
सुतलं नाम पातालं समासाद्य बभौ मम ॥ ७१

वसासुर ममादेशं यथावत्परिपालयन् ।
तत्र देवसुखोपेते प्रासादशतसंकुले ॥ ७२

प्रोत्फुल्लपद्मसरसि हृदशुद्धसरिद्वारे ।
सुगन्धी रूपसम्पन्नो वराभरणभूषितः ॥ ७३

स्रक्चन्दनादिदिग्धाङ्गो नृत्यगीतमनोहरान् ।
उपभुञ्जन् महाभोगान् विविधान् दानवेश्वर ॥ ७४

ममाज्ञया कालमिदं तिष्ठ स्त्रीशतसंवृतः ।
मावत्सुरैश्च विप्रैश्च न विरोधं गमिष्यसि ॥ ७५

तवत्त्वं भुङ्क्ष्व संभोगान् सर्वकामसम्पन्नितान् ।
यदा सुरैश्च विप्रैश्च विरोधं त्वं करिष्यसि ।
बन्धिष्यन्ति तदा पाशा वारुणा शेरदर्शनाः ॥ ७६

विरिष्काय

तत्रासतो मे पाताले भवन् भवदाज्ञया ।
किं भविष्यत्सुपादापमुपभोगोपपादकम् ।
आप्यायितो येन देव स्मेयं त्वामहं सदर ॥ ७७

श्रीभगवानुवाच

दानान्यविधित्तानि श्रद्धान्यश्रोत्रियाणि च ।
दुतान्यश्रद्धया यानि तानि दास्यन्ति ते फलम् ॥ ७८

शक्तिशाली भगवान् विष्णुने पृथ्वीतलके नीचे स्थित सुतल नामक पातालको बलिके लिये दे दिया। तदनन्तर सर्वेश्वर विष्णुने दैत्येश्वरसे कहा—मैंने तुम्हारे द्वारा दानके लिये दिये हुए जलको अपने हाथमें ग्रहण किया है अतः तुम्हारी उत्तम आयु कल्पप्रमाणकी होगी तथा वैवस्वत मन्वन्तरका काल व्यतीत होनेपर एवं सावर्णिक मन्वन्तरके आनेपर तुम इन्द्रपद प्राप्त करोगे— इन्द्र बनोगे। इस समयके लिये मैंने समस्त भुवनको पहले ही इन्द्रको दे रखा है। इकहत्तर चतुर्युगीके कालसे कुछ अधिक कालतक जो समयकी व्यवस्था है अर्थात् एक मन्वन्तरके कालतक मैं उसके (इन्द्रके) विरोधियोंको अनुशासित करूँगा ॥ ६६—७० ॥

बलि। पूर्वकालमें उसने बड़ी श्रद्धासे मेरी आराधना की थी, अतः तुम मेरे कहनेसे सुतल नामक पातालमें जाकर मेरे आदेशका मतीभाँति पालन करो तथा देवताओंके मुखसे भरे-पूरे सैकड़ों प्रासादोंसे पूर्ण विकसित कमलोंवाले सरोवरों, झरों एवं तृट् श्रेष्ठ सरिताओंवाले उस स्थानपर निवास करो। दानवेश्वर! सुगन्धिते अनुलिप्त हो तथा श्रेष्ठ आभरणोंसे भूषित एवं माला और चन्दन आदिसे अलंकृत सुन्दर स्वरूपवाले तुम नृत्य और गीतसे युक्त विविध भाँतिके महान् भोगोंका उपभोग करते हुए सैकड़ों स्त्रियोंसे आवृत होकर इतने कालतक मेरी आज्ञासे वहाँ निवास करो। जबतक तुम देवताओं एवं ब्राह्मणोंसे विरोध न करोगे, तबतक समस्त कामनाओंसे युक्त भोगोंको भोगोगे। किंतु जब तुम देवों एवं ब्राह्मणोंके साथ विरोध करोगे तो देखनेमें भयंकर वरुणके पाता तुम्हें बाँध लेंगे ॥ ७१—७६ ॥

बलिने पूछा—हे भगवन्, हे देव। आपकी आज्ञासे वहाँ पातालमें निवास करनेवाले मेरे भोगोंका साधन क्या होगा? जिससे तृप्त होकर मैं सदा आपका स्मरण करूँगा ॥ ७७ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—अविधिपूर्वक दिये गये दान, श्रोत्रिय ब्राह्मणसे रहित ब्राह्म तथा बिना श्रद्धाके किये गये जो दान हैं, वे तुम्हारे भाग होंगे।

अदक्षिणास्तथा यज्ञाः क्रियाश्चाविधिना कृताः ।
 फलानि तत्र दास्यन्ति अधीतान्यज्ञतानि च ॥ ७९
 उदकेन विना पूजा विना दर्भेण वा क्रिया ।
 आज्येन च विना होमं फलं दास्यन्ति ते बले ॥ ८०
 यश्चेदं स्थानमाश्रित्य क्रियाः काञ्चित् करिष्यति ।
 न तत्र चासुरो भागो भविष्यति कदाचन ॥ ८१
 ज्येष्ठाश्रमे महापुण्ये तथा विष्णुपदे हृदे ।
 ये च ब्राह्मणानि दास्यन्ति व्रतं नियममेव च ॥ ८२
 क्रियन् कृत्वा च यः काञ्चिद् विधिनाऽविधिनापि वा ।
 सर्वं तदक्षयं तस्य भविष्यति न संशयः ॥ ८३
 ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।
 द्वादश्यां वामनं दृष्ट्वा स्वात्वा विष्णुपदे हृदे ।
 दानं दत्त्वा यथाशक्त्या प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ८४

लोमहर्षण उवाच

ब्रह्मेत्वरमिदं दत्त्वा शक्राय च त्रिविष्टपम् ।
 व्याधिना तेन रूपेण जगामादर्शनं हरिः ॥ ८५
 शशास च यथापूर्वमिन्द्रस्त्रैलोक्यमूर्जितः ।
 निःशेषं च तदा कालं बलिः पातालमास्थितः ॥ ८६
 इत्येतत् कथितं तस्य विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।
 शृणुयादो वामनस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८७
 बलिप्रह्लादसंवादं मन्वितं बलिशुक्रयोः ।
 बलेविष्णोश्च चरितं ये स्मरिष्यन्ति मानवाः ॥ ८८
 कथयो व्याघ्रघस्तेषां न च मोहाकुलं मनः ।
 भविष्यति द्विजश्रेष्ठाः पुंसस्तस्य कदाचन ॥ ८९
 च्युतराज्यो निजं राज्यमिष्टप्राप्तिं वियोगवान् ।
 समाप्नोति महाभागा नरः श्रुत्वा कथांमिमाम् ॥ ९०
 ब्राह्मणोऽवेदमाप्नोति क्षत्रियो जयते महीम् ।
 वैश्यो धनसमृद्धिं च शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ।
 वामनस्य च माहात्म्यं शृण्वन् पापैः प्रमुच्यते ॥ ९१

दक्षिणा-रहित यज्ञ, अविधिपूर्वक किये गये कर्म और व्रतसे रहित अध्ययन तुम्हें फल प्रदान करेंगे। हे बलि जलके बिना की गयी पूजा, बिना कुशकी की गयी क्रिया और बिना घीके किये गये हवन तुमको फल देने। इस स्थानका आश्रय कर जो मनुष्य किन्हीं भी क्रियाओंको करेगा, उसमें कभी भी असुरोंका अधिकार न होगा। अश्वत्थ पवित्र ज्येष्ठाश्रम तथा विष्णुपद सरोवरमें जो ब्राह्म, दान, व्रत या नियम-पालन करेगा तथा विधि या अविधिपूर्वक जो कोई क्रिया वहाँ की जायगी, उसके लिये वे सभी निःसंदेह अक्षय फलदायी होंगे जो मनुष्य ज्येष्ठमासके शुक्ल पक्षमें एकादशीके दिन उपवास कर द्वादशीके दिन विष्णुपद नामके सरोवरमें स्नान कर वामनका दर्शन करनेके बाद यथाशक्ति दान देगा, वह परम पदको प्राप्ति करेगा ॥ ७८-८४ ॥

लोमहर्षणजी बोले — भगवान् उस सर्वव्यापी रूपसे बलिको यह वरदान तथा इन्द्रको स्वर्ग प्रदानकर अन्तर्हित हो गये तबसे मलशाली इन्द्र पहलेकी भाँति तीनों लोकोंका शासन करने लगे और बलि सर्वदा पातालमें निवास करने लगे इस प्रकार उन भगवान् (वामन) विष्णुका उत्तम माहात्म्य कहा गया; जो इसे (वामन माहात्म्यको) सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है द्विजश्रेष्ठे बलि एवं प्रह्लादके संवाद, बलि एवं शुक्रकी मन्त्रणा तथा बलि एवं विष्णुके चरितका जो मनुष्य स्मरण करेंगे, उन्हें कभी कोई आधि एवं व्याधि न होगी तथा उनका मन भी मोहसे आकुल नहीं होगा हे महाभागो। इस कथाको सुनकर राज्यच्युत व्यक्ति अपने राज्यको एवं वियोगी मनुष्य अपने प्रियको प्राप्ति करता है (इनको सुननेसे) ब्राह्मणको वेदकी प्राप्ति होती है, क्षत्रिय पृथ्वीकी जय प्राप्त करता है तथा वैश्यको धन-समृद्धि एवं शूद्रको सुखकी प्राप्ति होती है वामनका माहात्म्य सुननेसे पापोंसे मुक्ति होती है ॥ ८५-९१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें इकतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३१ ॥

बत्तीसवाँ अध्याय

सरस्वती नदीका वर्णन—उसका कुरुक्षेत्रमें प्रवाहित होना

अथ वक्तुः

कथमेषा समुत्पन्ना नदीनामुत्तमा नदी।
सरस्वती महाभागा कुरुक्षेत्रप्रवाहिनी ॥ १

कथं सरः समासाद्य कृत्वा तीर्थानि पार्श्वतः।
प्रयाता पश्चिमाभाशां दृश्यादृश्यगतिः शुभा।
एतद् विस्तरतो ब्रूहि तीर्थवर्षा सनातनम् ॥ २

लोमहर्षण उवाच

प्लक्षवृक्षात् समुद्भूता सरिच्छ्रेष्ठा सनातनी।
सर्वपापक्षमकरी स्मरणादेव नित्यशः ॥ ३

सैषा शैलसहस्राणि विदार्य च महानदीः
प्रविष्टा पुण्यतोयीषा खनं हृतमिति स्मृतम् ॥ ४

तस्मिन् प्लक्षे स्थितां दृष्ट्वा मार्कण्डेयो महामुनिः।
प्रणिपत्य तदा मूर्ध्ना तुष्टावाप सरस्वतीम् ॥ ५

त्वं देवि सर्वलोकानां माता देवराणि शुभा।
सदसद् देवि यत्किञ्चिन्मोक्षदाय्यर्थवत् पदम् ॥ ६

तत् सर्वं त्वयि संयोगि योगिषद् देवि संस्थितम्।
अक्षरं परमं देवि यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्।
अक्षरं परमं ब्रह्म विश्वं चैतत् क्षरात्मकम् ॥ ७

दारुण्यवस्थितो बह्विभूमी गन्धो यथा ध्रुवम्।
तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगच्चेदमशेषतः ॥ ८

अकाराक्षरसंस्थानं यत् तद् देवि स्थिरस्थिरम्।
तत्र मात्रात्रयं सर्वमस्ति यद् देवि नास्ति च ॥ ९

अकाराक्षरसंस्थानं यत् तद् देवि स्थिरस्थिरम्।
तत्र मात्रात्रयं सर्वमस्ति यद् देवि नास्ति च ॥ ९

अकाराक्षरसंस्थानं यत् तद् देवि स्थिरस्थिरम्।
तत्र मात्रात्रयं सर्वमस्ति यद् देवि नास्ति च ॥ ९

अकाराक्षरसंस्थानं यत् तद् देवि स्थिरस्थिरम्।
तत्र मात्रात्रयं सर्वमस्ति यद् देवि नास्ति च ॥ ९

अकाराक्षरसंस्थानं यत् तद् देवि स्थिरस्थिरम्।
तत्र मात्रात्रयं सर्वमस्ति यद् देवि नास्ति च ॥ ९

ऋषियोंने पूछा—(लोमहर्षणजी) कुरुक्षेत्रमें प्रवाहित होनेवाली नदियोंमें श्रेष्ठ भाग्यशालिनी यह सरस्वती नदी कैसे उत्पन्न हुई? सरोवरमें जाकर अगल-बगलमें (अपने दोनों तटोंपर) तीर्थोंकी स्थापना करती हुई दृश्य और अदृश्यरूपसे यह शुभ नदी किस प्रकार पश्चिम दिशाको गयी? इस सनातन तीर्थ-वर्षका विस्तारपूर्वक वर्णन करें ॥ १-२ ॥

लोमहर्षणने कहा—(ऋषियो!) स्मरण करनेमात्रसे ही नित्य सभी पापोंको नष्ट करनेवाली यह सनातनी श्रेष्ठ (सरस्वती) नदी प्लक्ष वृक्षसे उत्पन्न हुई है। यह पवित्र जलधारमयी महानदी हजारों पर्वतोंको तोड़ती-फोड़ती हुई प्रसिद्ध है। वनमें प्रविष्ट हुई, ऐसी प्रसिद्धि है। महापुनि मार्कण्डेयने उस प्लक्षवृक्षमें स्थित सरस्वती नदीको देखकर सिरसे (सिर झुकाकर नम्रतापूर्वक) प्रणाम करनेके बाद उसकी स्तुति की—हे देवि! आप सभी लोकोंकी माता एवं देवोंकी शुभ अरुणि हैं देवि! समस्त सद, असद, मोक्ष देनेवाले एवं अर्थवान् पद, योगिक क्रियासे युक्त पदार्थकी भीति आपमें मिलकर स्थित हैं देवि अक्षर परमब्रह्म तथा यह विनाशाशील समस्त संसार आपमें प्रतिष्ठित है ॥ ३-७ ॥

जिस प्रकार काटमें आग एवं पृथिवीमें गन्धकी निश्चित स्थिति होती है, उसी प्रकार तुम्हारे भीतर ब्रह्म और यह सम्पूर्ण जगत् नित्य (सदा) स्थित हैं। देवि! जो कुछ भी स्थिर (अक्षर) तथा अस्थिर (चर) है वह सब ओंकार अक्षरमें व्यवस्थित है। जो कुछ भी अस्तित्वयुक्त है या अस्तित्वविहीन, उन सबमें ओंकारकी तीन मात्राएँ (अनुस्यूत) हैं हे सरस्वति भू, भुवः, स्व—ये तीनों लोक; ब्रह्म यजुः, साम—ये तीनों वेद; आन्वीक्षिकी, त्रयी और धर्मा—ये तीनों विद्याएँ; गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि—ये तीनों अग्नियाँ; सूर्य चन्द्र, अग्नि—ये तीनों ज्योतिर्मा धर्म, अर्थ, काम—ये तीनों

त्रयो गुणास्त्रयो वर्णास्त्रयो देवास्तथा क्रमात् ।
त्रैधातवस्तथावस्थाः पितरश्चैवमादयः ॥ ११

एतन्मात्रात्रयं देवि तव रूपं सरस्वति ।
विभिन्नदर्शनामाद्यां ब्रह्मणो हि सनातनीम् ॥ १२
सोमसंस्था हविःसंस्था पाकसंस्था सनातनी ।
सास्त्वदुच्चारणाद् देवि क्रियन्ते ब्रह्मवादिभिः ॥ १३

अनिर्देश्यपदं स्वेतदर्द्धमात्राश्रितं परम् ।
अविकार्यक्षयं दिव्यं परिणामविवर्जितम् ॥ १४

तवैतत् परमं रूपं यन्न शक्यं भयोदितुम् ।
न चास्येन न वा जिह्वातात्त्वोद्वादिभिरुच्यते ॥ १५

स विष्णुः स षष्ठो ब्रह्मा चन्द्रार्कज्योतिरेव च ।
विद्यावासं विश्वरूपं विश्वात्मानमनीश्वरम् ॥ १६
सांख्यसिद्धान्तवेदोक्तं बहुशाखास्थिरीकृतम् ।
अनादिमध्यनिधनं सदसच्च सदेव तु ॥ १७

एकं त्वनेकधाप्येकभाववेदसमाश्रितम् ।
अनाख्यं बहुगुणाख्यं च ब्रह्माख्यं त्रिगुणाश्रयम् ॥ १८

नानाशक्तिविभावज्ञं नानाशक्तिविभावकम् ।
सुखात् सुखं महत्सौख्यं रूपं तत्त्वगुणात्मकम् ॥ १९

एवं देवि त्वया व्याप्तं सकलं निष्कलं च यत् ।
अद्वैतावस्थितं ब्रह्म यच्च द्वैते व्यवस्थितम् ॥ २०
येऽर्था नित्या ये विनश्यन्ति चान्ये

येऽर्थाः स्थूला ये तथा सन्ति सूक्ष्माः ।

ये च भूमी येऽन्तरिक्षेऽन्यतो वा
तेषां देवि त्वत् एवोपलब्धिः ॥ २१

यद्वा मूर्तं यदमूर्तं समस्तं
यद्वा भूतेष्वेकमेकं च किञ्चित् ।

यच्च द्वैतं व्यस्तभूतं च लक्ष्यं
तत्सम्बद्धं त्वत्स्वरूपैर्ब्रह्मैश्च ॥ २२

वर्णः, सत्त्व, रज, तम — ये तीनों गुण, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीनों वर्ण; तीनो देव; वात, पित्त, कफ — ये तीनों धातुएँ तथा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति ये तीनों अवस्थाएँ एवं पिता, पितामह, प्रपितामह ये तीनों पितर इत्यादि — ये सभी ओंकारके मात्रात्रयस्वरूप आपके रूप हैं। आपको ब्रह्मकी विभिन्न रूपोंवाली आद्या एवं सनातनी मूर्ति कहा जाता है ॥ ८—१२ ॥

देवि! ब्रह्मवादी लोग आपकी शक्तिसे ही उच्चारण करके सोमसंस्था, हवि संस्था एवं सनातनी पाकसंस्थाको सम्पन्न करते हैं। अर्थमात्राएँ आश्रित आपका यह अनिर्देश्य पद अविकारी, अक्षय, दिव्य तथा अपरिणामी है यह आपका अनिर्देश्य पद परम रूप है, जिसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। न तो मुखसे ही इसका वर्णन हो सकता है और न जिह्वा, तालु, ओष्ठ आदिसे ही। तुम्हारा यह रूप ही विष्णु, बृष (धर्म), ब्रह्मा, चन्द्रमा, सूर्य एवं ज्योति है उसीको विश्वावास, विश्वरूप, विश्वात्मा एवं अनीश्वर (स्वतन्त्र) कहते हैं ॥ १३—१६ ॥

आपका यह रूप सांख्य-सिद्धान्त तथा वेदद्वारा वर्णित, (वेदोंकी) बहुत सी शाखाओंद्वारा स्थिर किया हुआ, आदि-मध्य-अन्तसे रहित, सत्-असत् अथवा एकमात्र सत् (ही) है यह एक तथा अनेक प्रकारका, वेदोंद्वारा एकत्र भक्तिसे अवलम्बित, आख्य (नाम)-विहीन, ऐश्वर्य आदि बहुगुणोंसे युक्त, बहुत नामोंवाला तथा त्रिगुणाश्रय है। आपका यह तत्त्वगुणात्मक रूप सुखसे भी परम सुख, महान् सुखरूप नाना शक्तियोंके विभावको जाननेवाला है। हे देवि! यह अद्वैत तथा द्वैतमें आश्रित 'निष्कल' तथा 'सकल ब्रह्म' आपके द्वारा व्याप्त है ॥ १७—२० ॥

(सरस्वती) देवि! जो पदार्थ नित्य हैं तथा जो विनष्ट हो जानेवाले हैं, जो पदार्थ स्थूल हैं तथा जो सूक्ष्म हैं जो भूमिपर हैं तथा जो अन्तरिक्षमें हैं वा जो इनसे भिन्न स्थानोंमें हैं, उन समस्त पदार्थोंकी प्राप्ति आपसे ही होती है। जो मूर्त वा अमूर्त है वह सब कुछ और जो सब भूतोंमें एक रूपसे स्थित है एवं केवल एकमात्र है और जो द्वैतमें अलग-अलग रूपसे दिखायी पड़ता है, वह सब कुछ आपके स्वर-व्यञ्जनोंसे सम्बद्ध है।

एवं स्तुता तदा देवी विष्णोर्जिह्वा सरस्वतीः ।
प्रत्युवाच महात्मान् मार्कण्डेयं महामुनिम् ।
यत्र त्वं नेष्यसे विप्र तत्र यास्याम्यतन्द्रिता ॥ २३

आइं ब्रह्मरः पुण्यं ततो रामहृदः स्मृतः ।
कुरुणा ऋषिणा कृष्टं कुरुक्षेत्रं ततः स्मृतम् ।
तस्य मध्येन वै गङ्गं पुण्या पुण्यजलावहा ॥ २४

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें अतीसवीं अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३२ ॥

तीसवीं अध्याय

सरस्वती नदीका कुरुक्षेत्रमें प्रवाहित होना और कुरुक्षेत्रमें निवास करने तथा
तीर्थमें स्नान करनेका महत्त्व

लोमहर्षण उवाच

इत्पृथेर्वचनं श्रुत्वा मार्कण्डेयस्य धीमतः ।
नदी प्रवाहसंपुक्ता कुरुक्षेत्रं विवेश ह ॥ १

तत्र सा रन्तुकं प्राप्य पुण्यतोया सरस्वती ।
कुरुक्षेत्रं सभाप्ताव्य प्रयाता पश्चिमां दिशम् ॥ २

तत्र तीर्थसहस्राणि ऋषिभिः सेवितानि च ।
तान्यहं कीर्तयिष्यामि प्रसादात् परमेष्ठिनः ॥ ३

तीर्थानां स्मरणं पुण्यं दर्शनं पापनाशनम् ।
स्नानं मुक्तिकरं प्रोक्तमपि दुष्कृतकर्मणः ॥ ४

ये स्मरन्ति च तीर्थानि देवताः प्रीणयन्ति च ।
स्नानं च ब्रह्मधनञ्च ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ५

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वाविस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत् कुरुक्षेत्रं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥ ६

कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम् ।
इत्येवं वाचमुत्सृज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ७

इस प्रकार स्तुति किये जानेपर विष्णुकी जीभरूपिणी सरस्वतीने महामुनि महात्मा मार्कण्डेयसे कहा—हे विप्र! तुम मुझे जहाँ ले जाओगे, मैं वहीं आलस्य छोड़कर चली जाऊँगी ॥ २१—२३ ॥

मार्कण्डेयने कहा—आरम्भमें (इसका) पवित्र नाम ब्रह्मसर था, फिर रामहृद प्रसिद्ध हुआ एवं उसके बाद कुरु ऋषिद्वारा कृष्ट होनेसे कुरुक्षेत्र कहा जाने लगा। (अब) उसके मध्यमें अत्यन्त पवित्र जलवाली गङ्गरी सरस्वती प्रवाहित हों ॥ २४ ॥

लोमहर्षणने कहा बुद्धिमान् मार्कण्डेय ऋषिके इस उपर्युक्त वचनको सुनकर प्रवाहसे भरी हुई सरस्वती नदी कुरुक्षेत्रमें प्रविष्ट हुई। वह पवित्रसलिला सरस्वती नदी वहाँ रन्तुकमें आकर कुरुक्षेत्रको जलसे प्लावित करती हुई, जो पश्चिम दिशाकी ओर चली गयी, वहाँ (कुरुक्षेत्रमें) हजारों तीर्थ ऋषियोंसे सेवित हैं। परमेष्ठी (ब्रह्मा) के प्रसादसे मैं उनका वर्णन करूँगा। पापियोंके लिये भी तीर्थोंका स्मरण पुण्यदायक, उनका दर्शन पापनाशक और स्नान मुक्तिदायक कहा गया है (पुण्यशालियोंके लिये तो कहना ही क्या है) ॥ १—४ ॥

जो ब्रह्मपूर्वक तीर्थोंका स्मरण करते हैं और उनमें स्नान करते हैं तथा देवताओंको प्रसन्न करते हैं, वे परम गति (मोक्ष)—को प्राप्त करते हैं। (मनुष्य) अपवित्र हो या पवित्र अथवा किसी भी अवस्थामें पड़ा हुआ हो, यदि कुरुक्षेत्रका स्मरण करे तो वह बाहर तथा भीतरसे (हर प्रकारसे) पवित्र हो जाता है। 'मैं कुरुक्षेत्रमें जाऊँगा और मैं कुरुक्षेत्रमें निवास करूँगा' इस प्रकारका वचन कहनेसे (भो) मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है।

ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोघ्नो नरघ्नं तथा ।
असः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिं न ता चतुर्विधा ॥ ८

सरस्वतीद्वयद्वयोर्देवनद्योर्दत्तम् ।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥ ९

दूरस्थोऽपि कुरुक्षेत्रे गच्छामि च वसाम्यहम् ।
एवं यः सततं ध्यात् सोऽपि पापैः प्रमुच्यते ॥ १०

तत्र धैव सरःस्वायी सरस्वत्यास्तटे स्थितः ।
तस्य ज्ञानं ब्रह्ममयमुत्पत्स्यति न संशयः ॥ ११

देवता श्रवय सिद्धाः सेवन्ते कुरुजाङ्गलम् ।
तस्य संसेवनानित्यं ब्रह्म ज्ञात्वापि पश्यति ॥ १२

चञ्चलं हि मनुष्यत्वं प्राप्य ये मोक्षकाङ्क्षिणः ।
सेवन्ति निधतात्मानो अपि दुष्कृतकारिणः ॥ १३

ये विमुक्ताश्च कलुषैरनेकजन्मसम्भूतैः ।
पश्यन्ति निर्यसं देवं हृदयस्थं सनातनम् ॥ १४

ब्रह्मवेदिः कुरुक्षेत्रं पुण्यं संनिहितं सरः ।
सेवमाना नरा नित्यं प्राप्नुवन्ति परं पदम् ॥ १५

ग्रहनक्षत्रताराणां कालेन पतनाद् भयम् ।
कुरुक्षेत्रे भूतानां च पतनं धैव विद्यते ॥ १६

यत्र ब्रह्मावयो देवा ऋषयः सिद्धचारणाः ।
यन्धर्वाप्सरसो यक्षः सेवन्ति स्थानकाङ्क्षिणः ॥ १७

गत्वा तु ब्रह्मया युक्तः स्वात्मा स्थाणुमहाहवे ।
मनसा चिन्तितं कार्यं लभते नात्र संशयः ॥ १८

नियमं च ततः कृत्वा गत्वा सरः प्रदक्षिणम् ।
रन्तुकं च समासाद्य क्षामयित्वा पुनः पुनः ॥ १९

सरस्वत्यां नरः स्नत्वा यक्षं दृष्ट्वा प्रणम्य च ।
पुष्पं धूपं च नैवेद्यं दत्त्वा वाचभुदीरयेत् ॥ २०

तत्र प्रसादाद् यक्षेन्द्र वनानि सरितश्च यतः ।
धूमिष्णामि च तीर्त्तानि अविघ्नं कुरु ये सदा ॥ २१

मानवोक्तिं स्त्रिये ब्रह्मज्ञानं, गयामें श्राद्ध, गौओंकी रक्षामें मृत्यु और कुरुक्षेत्रमें निवास—यह चार प्रकारकी मुक्ति कही गयी है ॥ ५—८ ॥

सरस्वती और द्वयद्वती—इन दो देव नदियोंके बीच देव-निर्मित देशको ब्रह्मावर्त कहते हैं। दूर देशमें स्थित रहकर भी जो मनुष्य 'मैं कुरुक्षेत्र जाऊँगा, वहाँ निवास करूँगा' इस प्रकार गिरन्तर (मनमें संकल्प करता था) कहता है वह भी सभी पापोंसे छूट जाता है। वहाँ सरस्वतीके तटपर रहते हुए सरोवरमें स्नान करनेवाले मनुष्यको शिक्षित ब्रह्मज्ञान उत्पन्न हो जाता है। देवता, ऋषि और सिद्ध लोग सदा कुरुजाङ्गल (तीर्थ) का सेवन करते हैं। उस तीर्थका नित्य सेवन करनेसे, (वहाँ नित्य निवास करनेसे), मनुष्य अपने भीतर ब्रह्मका दर्शन करता है ॥ ९—१२ ॥

जो भी पापी चञ्चल मानव जीवन पाकर जितेन्द्रिय होकर मोक्ष प्राप्त करनेको कामनासे वहाँ निवास करते हैं, वे अनेक जन्मोंके पापोंसे छूट जाते हैं तथा अपने हृदयमें रहनेवाले निर्मल देव—सनातन (ब्रह्म) का दर्शन करते हैं। जो मनुष्य ब्रह्मवेदी, कुरुक्षेत्र एवं पवित्र 'संनिहित सरोवर' का सदा सेवन करते हैं, वे परम फलको प्राप्त करते हैं। समवपर ग्रह, नक्षत्र एवं ताराओंके भी पतनका भय होता है किंतु कुरुक्षेत्रमें मनेवालोंका कभी पतन नहीं होता ॥ १३—१६ ॥

ब्रह्मा आदि देवता, ऋषि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व अप्सराएँ और यक्ष उत्तम स्थानको प्राप्तिके लिये जहाँ (कुरुक्षेत्रमें) निवास करते हैं, वहाँ जाकर स्थाणु नामक महासरोवरमें ब्रह्मापूर्वका स्नान करनेसे मनुष्य निःसंदेह मोक्षाधिकृत फल प्राप्त करता है। नियम-परायण होनेके पश्चात् सरोवरकी प्रदक्षिणा करके रन्तुकमें जाकर बार-बार स्नान प्रार्थना करनेके बाद सरस्वती नदीमें स्नान कर यक्षका दर्शन करे और उन्हें प्रणाम करे तथा पुष्प, धूप एवं नैवेद्य देकर इस प्रकार वचन कहे 'हे यक्षेन्द्र, आपकी कृपासे मैं जनों, नदियों और तीर्थोंमें भ्रमण करूँगा; उसे आप सदा विघ्न रहित करें (मेरी यात्रामें किसी प्रकारका विघ्न न हो) ॥ १७—२१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीकामनपुराणमें तैत्तिरीयों अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३३ ॥

चौतीसवाँ अध्याय

कुरुक्षेत्रके सात प्रसिद्ध वनों, नौ नदियों एवं सम्पूर्ण तीर्थोंका माहात्म्य

अथ वनम्:

वनानि सप्त नो ब्रूहि नव नद्यश्च या स्मृताः ।
तीर्थानि च समग्राणि तीर्थस्नानफलं तथा ॥ १
येन येन विधानेन यस्य तीर्थस्य यत् फलम् ।
तत् सर्वं विस्तरेणोह ब्रूहि यौराणिकोत्तम ॥ २

लोकहर्षण उवाच

शृणु सप्त वनानीह कुरुक्षेत्रस्य पथ्यतः ।
येषां नामानि पुण्यानि सर्वपापहराणि च ॥ ३
काम्यकं च वनं पुण्यं तथाऽदितिवनं महत् ।
व्यासस्य च वनं पुण्यं फलकीवनमेव च ॥ ४
तत्र सूर्यवनस्थानं तथा मधुवनं महत् ।
पुण्यं शीतवनं नाम सर्वकल्मषनाशनम् ॥ ५
वनान्येतानि वै सप्त नदीः शृणु मे द्विजः ।
सरस्वती नदी पुण्यं तथा वैतरणी नदी ॥ ६
आपगा च महापुण्या गङ्गा मन्दाकिनी नदी ।
मधुस्रवा वासुपदी कौशिकी पापनाशिनी ॥ ७
दुमहती महापुण्या तथा हिरण्यती नदी ।
वर्षाकालगङ्गाः सर्वं वर्जयित्वा सरस्वतीम् ॥ ८
एतासामुदकं पुण्यं द्वादशकाले प्रकीर्तितम् ।
रजस्वत्यवमेतासां विद्यते न कदाचन ।
तीर्थस्य च प्रभावेण पुण्यं होताः सरिद्धरा ॥ ९
शृण्वन्तु पुण्यः प्रीतास्तीर्थस्नानफलं महत् ।
गमनं स्मरणं चैव सर्वकल्मषनाशनम् ॥ १०
रन्तुकं च परो दृष्ट्वा द्वारपालं महगवतम् ।
यक्षं सप्रभित्वाद्यैव तीर्थयात्रां समाचरेत् ॥ ११
ततो गच्छेत् विप्रेन्द्र नाम्नाऽदितिवनं महत् ।
अदित्या यत्र पुत्रार्थं कृतं घोरं महत्तपः ॥ १२
तत्र खात्वा च दृष्ट्वा च अदितिं देवमथतरम् ।
पुत्रं जनयते शूरं सर्वदोषविजितम् ।
आदित्यशतसंकाशं विमानं चाधिरोहति ॥ १३

ऋषियोंने [लोमहर्षणजीसे] कहा— (मुने आप) हमसे उन सात वनों, नौ नदियों, समस्त तीर्थों एवं तीर्थ-स्नानके फलका वर्णन करें। पुराणवेत्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ मुने जिस-जिस विधानसे जिस तीर्थका जो फल होता है, उन सबको आप विस्तारपूर्वक बतलावें ॥ १-२ ॥

लोमहर्षणने कहा— (ऋषियो) कुरुक्षेत्रके मध्यमें जो सात वन हैं, उनका मैं वर्णन करता हूँ, आपलोग उसे सुनें। उन वनोंके नाम सभी पापोंको नष्ट करनेवाले तथा पवित्र हैं (उन वनोंके नाम हैं—) पवित्र काम्यकवन, महान् अदितिवन, पुण्यप्रद व्यासवन, फलकीवन, सूर्यवन, महान् मधुवन तथा सर्वकल्मष-नाशक पवित्र शीतवन ये ही सात वन हैं। हे द्विजो (अब) नदियों (के नाम)-को मुझसे सुनो (उनके नाम हैं—) पवित्र सरस्वती नदी, वैतरणी नदी, महापवित्र आपगा, मन्दाकिनी गङ्गा, मधुस्रवा, वासुपदी, पापनाशिनी कौशिकी, महापवित्र दुमहती (कङ्गर) तथा हिरण्यती नदी इनमें सरस्वतीके अतिरिक्त सभी नदियाँ वर्षाकालमें (ही) बहनेवाली हैं ॥ ३-८ ॥

वर्षाकालमें इनका जल पवित्र माना जाता है। इनमें कभी भी रजस्वत्यत्व दोष नहीं होता। तीर्थके प्रभावसे ये सभी श्रेष्ठ नदियाँ पवित्र हैं। हे मुनियो! आपलोग (अब) प्रसन्न होकर तीर्थस्नानका महान् फल सुनें वहाँ जाना एवं उनका स्मरण करना समस्त पापोंका नाश करनेवाला होता है। महाबलवान् रन्तुक नामक द्वारपालका दर्शन करनेके बाद वक्षको प्रणाम कर तीर्थयात्रा प्रारम्भ करनी चाहिये। विप्रेन्द्रो उसके बाद महान् अदिति-वनमें जाना चाहिये, जहाँ अदितिने पुत्रके लिये अत्यन्त कठोर तप किया था ॥ ९-१२ ॥

वहाँ स्नानकर तथा देवमता अदितिका दर्शनकर मनुज्य समस्त दोषोंसे रहित (निर्मल) वीर पुत्र उत्पन्न करता है और सैकड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान विमानपर

ततो गच्छेत् विप्रेन्द्रा विष्णोः स्थानमनुत्तमम् ।
 सत्त्वं त्रयं विख्यातं यत्र संनिहितौ हरिः ॥ १४
 विमले च नरः स्नात्वा दुष्टा च विमलेश्वरम् ।
 निर्मलं स्वर्गमायाति रुद्रलोकं च गच्छति ॥ १५
 हरिं च बलदेवं च एकत्राससमन्वितौ ।
 दुष्टा मोक्षमवाप्नोति कलिकल्पावसम्पदैः ॥ १६
 ततः पारिप्लवं गच्छेत् तीर्थं त्रैलोक्यविभ्रुतम् ।
 तत्र स्नात्वा च दुष्टा च ब्रह्माणं वेदसंयुतम् ॥ १७
 ब्रह्मवेदफलं प्राप्य निर्मलं स्वर्गमाप्नुयात् ।
 तत्रापि संगमं प्राप्य कौशिक्या तीर्थसम्भवम् ।
 संगमे च नरः स्नात्वा प्राप्नोति परमं पदम् ॥ १८
 धरण्यास्तीर्थमासाद्य सर्वपापविमोचनम् ।
 क्षान्तियुक्ते नरः स्नात्वा प्राप्नोति परमं पदम् ॥ १९
 धरण्यामपराधानि कृतानि पुरुषेण वै ।
 सर्वाणि क्षमते तस्य ज्ञानमात्रस्य देहिनेः ॥ २०
 ततो दक्षाश्रमं गत्वा दुष्टा दक्षेश्वरं शिवम् ।
 अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ २१
 ततः शालूकिनीं गत्वा स्नात्वा तीर्थं द्विजोत्तमाः ।
 हरिं हरेण संयुक्तं पूज्य भक्तिसमन्वित ।
 प्राप्नोत्यभिमतौत्सुकान् सर्वपापविमर्जितान् ॥ २२
 सर्पिर्दधि समासाद्य नागानां तीर्थमुत्तमम् ।
 तत्र स्नानं नरः कृत्वा युक्तो नागधयाद् भवेत् ॥ २३
 ततो गच्छेत् विप्रेन्द्रा द्वारपालं तु रत्नकुम् ।
 तत्रोष्य रजनीमेकां स्नात्वा तीर्थवरे शुभे ॥ २४
 द्वितीयं पूजयेद् यत्र द्वारपालं प्रयत्नतः ।
 ब्राह्मणान् भोजयित्वा च प्रणिपत्य ब्रह्मापयेत् ॥ २५
 तव प्रसादाद् यक्षेन्द्र युक्तो भवति कित्त्विधैः ।
 सिद्धिर्दयाभिलषिता तया साद्ध भवाम्पदम् ।
 एवं प्रसाद्य यक्षेन्द्रं ततः पञ्चनदं गच्छेत् ॥ २६
 पञ्चनदाञ्च रुद्रेण कृता दानवभीषणाः ।
 तत्र सर्वेषु लोकेषु तीर्थं पञ्चनदं स्मृतम् ॥ २७
 कोटितीर्थानि रुद्रेण समावृत्य यतः स्थितम् ।
 तेन त्रैलोक्यविख्यातं कोटितीर्थं प्रचक्षते ॥ २८

आरब्ध होता है। विप्रेन्द्रो इसके बाद 'सत्त्वं' नामसे विख्यात सर्वोत्तम विष्णु स्थानको जाना चाहिये, जहाँ भगवान् हरि सदा संनिहित रहते हैं। विमल तीर्थमें स्नानकर विमलेश्वरका दर्शन करनेसे मनुष्य निर्मल हो जाता है तथा रुद्रलोकमें जाता है। एक आसनपर स्थित कृष्ण और बलदेवका दर्शन करनेसे मनुष्य कलिक कल्पकीसे उत्पन्न पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १३—१६ ॥

उसके पश्चात् तीनों लोकोंमें विख्यात पारिप्लव नामक तीर्थमें जाय। वहाँ स्नान करनेके पश्चात् वेदों सहित ब्रह्माका दर्शन करनेसे अध्वर्यवेदका ज्ञान प्राप्त कर निर्मल स्नानको प्राप्त करता है। कौशिकी संगम तीर्थमें जाकर स्नान कर मनुष्य परम पदको प्राप्त करता है। समस्त पापोंसे मुक्त करनेवाले धरणीके तीर्थमें जाकर स्नान करनेसे क्षमाशैल मनुष्य परम पदको प्राप्ति करता है। वहाँ स्नान करनेमात्रसे पृथ्वीपर मनुष्यद्वारा किये गये समस्त अपराध क्षमा कर दिये जाते हैं ॥ १७—२० ॥

उसके बाद दक्षाश्रममें जाकर दक्षेश्वर शिवका दर्शन करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। द्विजोत्तमो तदनन्तर शालूकिनी तीर्थमें जाकर स्नान करनेके उपरान्त भक्तिपूर्वक हरसे संयुक्त हरिका पूजन कर मनुष्य समस्त पापोंसे रहित इच्छक अनुकूल लोकोंको प्राप्त करता है। सर्पिर्दधि नामवाले नागोंके उत्तम तीर्थमें जाकर स्नान करनेसे मनुष्य नाग भयसे मुक्त हो जाता है। विप्रेन्द्रो तदनन्तर रत्नकु नामक द्वारपालके पास जाय। वहाँ एक रात्रि निवास करे तथा कल्याणकारी (उस) के तीर्थमें स्नान करनेके बाद दूसरे दिन प्रयत्नपूर्वक (विष्णुके स्तब्ध मन लगाकर) द्वारपालका पूजन करे एवं ब्राह्मणोंको भोजन कराये फिर उन्हें प्रणाम कर इस प्रकार क्षमा प्रार्थना करे—'हे यक्षेन्द्र! तुम्हारी कृपासे मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है। मैं अपनी अधीष्ट सिद्धिको प्राप्त करूँ (मेरी मनःकामना पूर्ण हो)।' इस प्रकार यक्षेन्द्रको प्रसन्न करनेके पश्चात् पञ्चनद तीर्थमें जाना चाहिये। जहाँ भगवान् रुद्रने दानवोंके शिवे भयंकर पाँच नदोंका निर्माण किया है, उस स्थानपर समाप्त संसारमें प्रसिद्ध पञ्चनद तीर्थ है ॥ २१—२७ ॥

क्योंकि करोड़ों तीर्थोंको एकत्र (स्वाधित) कर भगवान् वहाँ स्थित हैं अतः उसे त्रैलोक्य प्रसिद्ध

तस्मिन् तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कोटीश्वरं हरम् ।
पञ्चमज्ञानवाप्नोति तिर्य्य भ्रष्टासमन्वितः ॥ २९

तत्रैव वामनो देवः सर्वदेवैः प्रतिष्ठितः ।
तत्रापि च नरः स्नात्वा हृदिगन्धोमफलं लभेत् ॥ ३०

अश्विनोत्तीर्णमासाद्य भ्रष्टावान् यो जितेन्द्रियः ।
रूपस्य भागी भवति पशस्वी च भवेन्नरः ॥ ३१
चाराङ्गं तीर्थमाख्यातं विष्णुना परिकीर्तितम् ।
तस्मिन् स्नात्वा ब्रह्मधाम प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ३२
ततो गच्छेत् विप्रेन्द्राः सोमतीर्थमनुत्तमम् ।
यत्र सोमस्तपस्तप्त्वा व्याधिपुक्तोऽभवत् पुरा ॥ ३३
तत्र सोमेश्वरं दृष्ट्वा स्नात्वा तीर्थेश्वरं शुभे ।
राजसूयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति भक्तवः ॥ ३४
व्याधिभिः विनिर्मुक्तः सर्वदोषविमर्जितः ।
सोमलोकमवाप्नोति तत्रैव रमते धिरम् ॥ ३५
भूतेश्वरं च तत्रैव ज्वालामालेश्वरं तथा ।
तावुभी लिङ्गावभ्यर्च्य न भूयो जन्म जाययात् ॥ ३६

एकहंसे नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ।
कृतशीर्चं समासाद्य तीर्थसेवी द्विज्जेतयः ॥ ३७
पुण्डरीकमवाप्नोति कृतशीर्चो भवेन्नरः ।
ततो मुञ्चवटं नाम महादेवस्य धीमतः ॥ ३८

उपोष्य रजनीमेकां गाणपत्यमवाप्नुयात् ।
तत्रैव च महाप्राप्ती यक्षिणी लोकविभृता ॥ ३९
स्नात्वाऽभिगत्या तत्रैव प्रसाद्य यक्षिणीं ततः ।
उपवासं च तत्रैव महापातकनाशनम् ॥ ४०
कुरुक्षेत्रस्य तद् द्वारे विभृतं पुण्यवर्धनम् ।
प्रदक्षिणमुपावर्त्य ब्राह्मणान् भोजयेत् कृतः ।
पुष्करं च तत्रैव गत्वा अभ्यर्च्य पितृदेवताः ॥ ४१
जन्मदण्डेन रामेण आहृतं तन्महात्मना ।
कृतकृत्यो भवेद् राजा अश्वमेधं च विन्दति ॥ ४२
कन्यादानं च यस्तत्र कार्तिक्या वै करिष्यति ।
प्रसन्ना देवतास्तस्य दाम्यन्त्यभिमतं फलम् ॥ ४३

कोटितीर्थं कहा जाता है। मनुष्य ब्रह्मपूर्वक उस तीर्थमें स्नान कर तथा कोटीश्वर हरका दर्शन कर पञ्च प्रकारके (पहा) यज्ञोंके अनुष्ठानका फल प्राप्त करता है। उसी स्थानपर सब देवताओंने भगवान् वामन्देवकी स्थापना की है वहाँ भी स्नान करनेसे मनुष्यको अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है। ब्रह्मवान् जितेन्द्रिय मनुष्य अश्विनीकुम्भारोकि तीर्थमें जाकर रूपवान् और यशस्वी होता है ॥ २८—३१ ॥

विष्णुद्वारा वर्णित चाराङ्ग नामक विख्यात तीर्थ है। ब्रह्मालु पुरुष उसमें स्नान कर परमपदको प्राप्त करता है। विप्रेन्द्रो उसके बाद केन्द्र सोमतीर्थमें स्नान चाहिये, जहाँ चन्द्रमा पूर्वकालमें तपस्या कर व्याधिसे मुक्त हुए थे उस शुभ तीर्थमें स्नान कर सोमेश्वर भगवान्का दर्शन करनेसे मनुष्य राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त करता है तथा व्याधियों और सभी दोषोंसे मुक्त होकर सोमलोकमें जाता एवं चिरकालतक वहीं सानन्द विहर करता है ॥ ३२—३५ ॥

वहाँपर भूतेश्वर एवं ज्वालामालेश्वर नामक लिङ्ग है उन दोनों लिङ्गोंको पूजा करनेसे (मनुष्य) पुनर्जन्म नहीं पता, एकहंस (सरोवर) में स्नान कर मनुष्य हजारों गौओंके दानका फल प्राप्त करता है। 'कृवशीच' नामक तीर्थमें जाकर मनोयोगपूर्वक तीर्थकी सेवा करनेवाला द्विजोत्तम 'पुण्डरीक' यज्ञक्षेत्रके फलको प्राप्त करता है तथा उसकी श्रद्धा हो जाती है (—वह पवित्र हो जाता है)। उसके बाद बुद्धिमान् महादेवके मुञ्चवट नामक तीर्थमें एक रात्रि निवास करके मनुष्य गावपत्य (गणनायकके पदको) प्राप्त करता है वहीं विश्वप्रसिद्ध महाप्राप्ती यक्षिणी है। वहाँ जाकर स्नान करनेके बाद यक्षिणीको प्रसन्न कर उपवास करनेसे महान् पताकोंका नश्व होता है ॥ ३६—४० ॥

पुण्यकी वृद्धि करनेवाले कुरुक्षेत्रके उस विख्यात द्वारकी प्रदक्षिणा कर ब्राह्मणोंको भोजन करावे। फिर पुष्करमें जाकर पितृदेवोंकी अर्चना करे। उस तीर्थका महात्म्य ऊर्ध्वदिग्गन्धर्व परशुरामजीने निर्माण किया था वहाँ (जाकर) मनुष्य सफल-मनोरथ हो जाता है और राजाको अश्वमेधयज्ञके फलकी प्राप्ति होती है कार्तिकी पूर्णिमाको जो मनुष्य वहाँ कन्यादान करेगा, उसके ऊपर देवता प्रसन्न होकर उसे मनोवाञ्छित फल देंगे। वहाँ

कपिलश्च महायक्षो द्वारपालः स्वयं स्थितः ।
विघ्नं करोति पापानां दुर्गतिं च प्रयच्छति ॥ ४४

पत्नी तस्य महायक्षी नाम्नोदुखलमेखला ।
आहत्य दुन्दुभिं तत्र भ्रमते नित्यमेव हि ॥ ४५
सा ददर्श स्वयं यैकां सपुत्रां पापदेशजाम् ।
तामुवाच तदा यक्षी आहत्य भिक्षुं दुन्दुभिम् ॥ ४६
युगन्धरे इक्षि प्राश्य वधित्वा ज्ञाच्युतस्थले ।
तद्भद्रं भूतालये ज्ञात्वा सपुत्रा वस्तुमिच्छसि ॥ ४७
दिवा मया ते कथितं रात्रौ भक्ष्यामि निश्चितम् ।
एतच्छ्रुत्वा तु यच्चनं प्रणिपत्य च यक्षिणीम् ॥ ४८
उवाच दीनया वाचा प्रसादं कुरु भामिनि ।
ततः सा यक्षिणी तां तु प्रोवाच कृपयान्विता ॥ ४९
यदा सूर्यस्य ग्रहणं कालेन भविता क्वचित् ।
सन्निहत्यां तदा ज्ञात्वा पुता स्वर्गं गमिष्यसि ॥ ५०

कपिल नामक महायक्ष स्वयं द्वारपालके रूपमें स्थित हैं, जो पापियोंके मार्गमें विघ्न उपस्थित कर उनकी दुर्गति करते हैं (जिससे वे पापाचरण न करें तथा धर्मकी भर्षादा स्थित रहे) 'उदुखलमेखला' नामक उनकी महायक्षी पत्नी दुन्दुभि बजाकर वहाँ नित्य भ्रमण करती रहती है ॥ ४१—४५ ॥

उस यक्षीने पापवासे देसमें उत्पन्न पुत्रके साथ एक रात्रिमें स्त्रीको देखनेके बाद दुन्दुभि बजाकर उससे कहा — युगन्धरमें दही खाकर तथा अश्रुतस्थलमें निवास करनेके बाद भूतालयमें खान कर तुम पुत्रके साथ निवास करना चाहती हो मैंने दिनमें यह बात तुमसे कही है । रात्रिमें मैं अवश्य तुमको खा जाऊँगी * उसकी यह बात सुननेके बाद यक्षिणीको प्रणाम कर उसने दीन वाणीमें उससे कहा — 'हे भामिनी मेरे ऊपर दया करो।' फिर उस यक्षिणीने उससे कृपापूर्वक कहा—जब किसी समय सूर्य-ग्रहण होगा, उस समय सान्निहत्य (सरोवर) में खान करके पवित्र होकर तुम स्वर्ग चली जाओगी ॥ ४६—५० ॥

॥ इस प्रकाश श्रीवामनपुराणमें चौत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३४ ॥

पैंतीसवाँ अध्याय

कुरुक्षेत्रके तीर्थोंके माहात्म्य एवं क्रमका वर्णन

श्लोमहर्षण उवाच

ततो रामहृदं गच्छेत् तीर्थसेवी द्विजोत्तमः ।
यत्र रामेण विघ्नेन तरसा दीप्यतेजसा ॥ १
क्षत्रमुत्साह्य वीरेण हृदाः पङ्क निवेशिताः ।
पूरयित्वा नरव्याघ्र रुक्षिरेणेति नः श्रुतम् ॥ २
पितरस्तर्पितस्तेन तथैव प्रणितामहाः ।
ततस्ते पितरः प्रीता राममुखिजोत्तमाः ॥ ३
राम राम महाबाहो प्रीताः स्मस्तव भार्गव ।
अनया पितृभक्त्या च विक्रमेण च ते विभो ॥ ४

श्लोमहर्षणने कहा— इसके बाद तीर्थका सेवन करनेवाले उत्तम द्विजको रामकुण्ड नामक स्थानमें जाना चाहिये, वहाँ उद्दीप्त तेजस्वी विघ्न-वीर राम (परशुराम) ने बलपूर्वक क्षत्रियोंका संहारकर पाँच कुण्डोंको स्थापित किया था। पुरुषसिंह हमलोगोंने ऐसा सुना है कि परशुरामने उन (कुण्डों) को रक्तसे भरकर उससे अपने पितरों एवं प्रणितामहोंका तर्पण किया था द्विजोत्तमो! उसके बाद उन प्रसन्न पितरोंने परशुरामसे कहा या कि महाबाहु भार्गव राम! परशुराम! विभु! तुम्हारी इस पितृभक्ति और पराक्रमसे हम सब तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं ॥ १—४ ॥

वरं वृणीष्व भर्तृ ते किमिच्छसि महायशः ।
 एवमुक्तस्तु पितुभी रामः प्रभवतां वरः ॥ ५ ॥
 अब्रवीत् प्राज्ञलिङ्गार्क्यं स पितॄन् गगने स्थितान् ।
 भवन्तो यदि मे प्रीता यद्यनुशास्यता मयि ॥ ६ ॥
 पितृप्रसादादिच्छेयं तपसाप्यायनं पुनः ।
 यच्च रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं मया ॥ ७ ॥
 ततश्च पापान्मुच्येयं युष्माकं तेजसा ह्यहम् ।
 हुदाश्रिते तीर्थभूता भवेयुर्भुवि विश्रुताः ॥ ८ ॥
 एवमुक्ताः शुभं वाक्यं रामस्य पितरस्तदा ।
 प्रत्युचुः परमप्रीता रायं हर्षपुरस्कृताः ॥ ९ ॥
 तपस्ते वर्द्धतां पुत्र पितृभक्त्या विशेषतः ।
 यच्च रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं त्वया ॥ १० ॥
 ततश्च पापान्मुक्तस्त्वं पातितास्ते स्वकर्मभिः ।
 हुदाश्रिते तव तीर्थस्त्वं गमिष्यन्ति न संशयः ॥ ११ ॥
 हुदेष्वेतेषु ये स्नात्वा स्वान् पितृस्तर्पयन्ति च ।
 तेभ्यो दास्यन्ति पितरो यथाभिलषितं वरम् ॥ १२ ॥
 ईप्सितान्मानसान् काम्यान्स्वर्गवासं च शान्दतम् ।
 एवं दत्त्वा वरान् विप्रा रामस्य पितरस्तदा ॥ १३ ॥
 आमन्त्र्य भार्गवं प्रीतास्तत्रैवान्तिर्हितास्तदा ।
 एवं रामहृदाः पुण्या भार्गवस्य महात्मनः ॥ १४ ॥
 स्नात्वा हुदेषु रामस्य ब्रह्मचारी शुचिब्रतः ।
 राममभ्यर्च्य ब्रह्मावान् विन्देद् बहु सुसर्गकम् ॥ १५ ॥
 वंशमूलं समासाद्य तीर्थसेवी सुसंयतः ।
 स्ववंशसिद्धये विप्राः स्नात्वा वै वंशमूलके ॥ १६ ॥
 कायशोधनमासाद्य तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
 शरीरशुद्धिमाप्नोति स्नातस्तस्मिन् न संशयः ॥ १७ ॥
 शुद्धदेहश्च तं याति यस्मान्नावर्तते पुनः ।
 तावद् भ्रमन्ति तीर्थेषु सिद्धास्तोर्ध्वपरायणाः ।
 यावन् प्राप्नुवन्तीह तीर्थं तत्कायशोधनम् ॥ १८ ॥

महायशस्विन्, तुम्हारा कल्याण हो तुम वर माँगे
 क्या चाहते हो ? पितरोंके इस प्रकार कहनेपर प्रभुवशालिङ्गोंमें
 ब्रह्म रामने आकाशमें स्थित पितरोंसे हाथ जोड़कर
 कहा यदि आपलोग मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तथा मुझपर
 आप सबकी दया है तो आप पितरोंके प्रसादसे मैं पुनः
 तपसे पूर्ण हो जाऊँ। रोषसे अभिभूत होकर मैंने जो
 क्षत्रियोंका विनाश किया है, आपके तेजद्वारा मैं उस
 पापसे मुक्त हो जाऊँ एवं ये कुण्ड संसारमें विख्यात
 तीर्थस्वरूप हो जायें ॥ ५-८ ॥

परशुरामके इस प्रकारके मङ्गलमथ वचन कहनेपर
 उनके परम प्रसन्न पितरोंने हर्षपूर्वक उनसे कहा
 'पुत्र! पितृभक्तिसे तुम्हारा तप विशेषरूपसे बढ़े क्रोधसे
 अभिभूत होनेके कारण तुमने क्षत्रियोंका जो विनाश
 किया है उस पापसे तुम मुक्त हो- क्योंकि ये क्षत्रिय
 अपने कर्मसे ही मारे गये हैं तुम्हारे ये कुण्ड नि-संदेह
 तीर्थके गुणोंको प्राप्त करेंगे। जो इन कुण्डोंमें स्नान कर
 अपने पितरोंका तर्पण करेंगे, उन्हें (उनके) पितृगण
 उनकी इच्छाके अनुसार वर देंगे, उनकी मनोऽभिलषित
 कामनाएँ पूर्ण करेंगे एवं उन्हें स्वर्गमें शाश्वत निवास
 प्रदान करेंगे' विप्रे इस प्रकार वर देकर परशुरामके
 पितर उनसे अनुमति लेकर प्रसन्नतापूर्वक वहीं अन्तर्हित
 हो गये। इस प्रकार महात्मा परशुरामके ये रामहृद परम
 पवित्र हैं ॥ ९-१४ ॥

ब्रह्मासु पवित्रकर्मा व्यक्ति ब्रह्मस्वयंपूर्णक परशुरामजीके
 हृदोंमें स्नान करनेके बाद परशुरामका अर्चन कर प्रचुर
 सुखों प्राप्त करता है। ब्राह्मणों तीर्थसेवी जितेन्द्रिय
 मनुष्य वंशमूलक नामक तीर्थमें जाकर उसमें स्नान
 करनेसे अपने वंशकी सिद्धि प्राप्त करता है तीनों
 लोकोंमें विख्यात कायशोधन नामक तीर्थमें जाकर उसमें
 स्नान करनेसे मनुष्यको निस्संदेह शरीरकी शुद्धि प्राप्त
 होती है और वह शुद्धदेही मनुष्य उस स्थानको जाता
 है, जहाँसे वह पुनः नहीं लौटता (जन्म मरणके
 चक्करमें नहीं पड़ता)। तीर्थपरायण सिद्ध पुरुष तीर्थमें
 तबतक भ्रमण करते रहते हैं जबतक वे उस कायशोधन
 नामक तीर्थमें नहीं पहुँचते ॥ १५-१८ ॥

तस्मिंस्तीर्थे च संप्लाव्य कार्यं संयतमानसः ।
परं पदमवाप्नोति यस्मान्नाकर्तते पुनः ॥ १९

ततो गच्छेत् विप्रेन्द्रास्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
लोका यत्रोद्भूताः सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २०

लोकोद्धारं समासाद्य तीर्थस्मरणतत्परः ।
स्नात्वा तीर्थक्षेत्रतस्मिन् लोकान् पश्यति शास्त्रज्ञान् ॥ २१

यत्र विष्णुः स्थितो नित्यं शिवो देवः सनातनः ।
तौ देवी प्रणिपातेन प्रसाद्य मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ २२

श्रीतीर्थं तु ततो गच्छेत् शालग्राममनुत्तमम् ।
तत्र स्नातव्यं सान्निध्यं सदा देवी प्रयच्छति ॥ २३

कपिलाह्वदमासाद्य तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च दैवतानि पितृस्तथा ॥ २४

कपिलान्नं सहस्रस्य फलं पिबेत्तु यामव ।
तत्र स्थितं महादेवं कापिलं वपुरास्थितम् ॥ २५

दृष्ट्वा मुक्तिमवाप्नोति ऋषिभिः पूजितं शिवम् ।
सूर्यतीर्थं समासाद्य स्नात्वा नियतमानसः ॥ २६

अर्चयित्वा पितॄन् देवानुपवासपरायणः ।
अग्निष्टोममवाप्नोति सूर्यलोकं च गच्छति ॥ २७

सहस्रकिरणं देवं भानुं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
दृष्ट्वा मुक्तिमवाप्नोति भरो ज्ञानसमन्वितः ॥ २८

भवानीवनमासद्य तीर्थसेवी यथाक्रमम् ।
तत्राभिषेकं कुर्वाणो गोमहस्रफलं लभेत् ॥ २९

पितामहस्य पित्रतो ह्यमृतं पूर्वमेव हि ।
उद्धारात् सुरभिर्जाता सा च पातालमाश्रिता ॥ ३०

तस्याः सुरभ्यो जाताः तनया लोकमातरः ।
ताभिस्तत्सकलं व्याप्तं पातालं सुमिरन्तरम् ॥ ३१

पितामहस्य यजतो वक्षिणार्धमुपाहृता ।
आहृता ब्रह्मण ताञ्च विभ्रान्ता विचरेण हि ॥ ३२

मनुष्यो नियन्त्रित करनेवाला मनुष्य उस तीर्थमें शरीरको धोकर (प्रक्षालित कर) उस परम पदको प्राप्त करता है, जहाँसे उसे पुनः परावर्तित नहीं होगा पड़ता। विप्रवरो। उसके बाद तीनों लोकोंमें विख्यात लोकोद्धार नामके तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ सर्वसमर्थ विष्णुने समस्त लोकोंको उद्धार किया था। तीर्थका स्मरण करनेमें तत्पर मनुष्य लोकोद्धार नामके तीर्थमें जाकर उसमें स्नान करनेसे समस्त लोकोंका दर्शन प्राप्त करता है। वहाँ विष्णु एवं सनातनदेव शिव ये दोनों ही स्थित हैं। उन दोनों देवोंको प्रणामाद्वा प्रसन्न कर फिर मुक्तिका फल प्राप्त करे। तदनन्तर अनुत्तम शालग्राम एवं श्रीतीर्थमें जाना चाहिये वहाँ स्नान करनेवालोंको भगवती (लक्ष्मी) अपने निकट निवास प्रदान करती हैं ॥ १९—२३ ॥

फिर त्रैलोक्यप्रसिद्ध कपिलाह्वद नामक तीर्थमें जाकर उसमें स्नान करनेके पश्चात् देवता तथा पितरोंको पूजा करनेसे मनुष्यको सहस्र कपिला गायेंकि दानका फल प्राप्त होता है। वहाँपर स्थित ऋषियोंसे पूजित कापिल शरीरधारी महादेव शिवका दर्शन करनेसे मुक्तिकी प्राप्ति होती है स्थिर अन्तःकरणवाला एवं उपवास परामर्श व्यक्ति सूर्यतीर्थमें जाकर स्नान करनेके बाद पितरोंका अर्चन करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त करता है एवं सूर्यलोकको जाता है ॥ २४—२७ ॥

तीनों लोकोंमें विख्यात हजारों किरणोंवाले सूर्यदेव भगवान्का दर्शन करनेसे मनुष्य ज्ञानसे युक्त होकर मुक्तिको प्राप्त करता है तीर्थसेवन करनेवाला मनुष्य क्रमानुसार भवानीवनमें जाकर वहाँ (भवानीका) अभिषेक करनेसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त करता है, प्राचीन कालमें अमृत पान करते हुए ब्रह्माके उद्धार (उद्धार) से सुरभिकी उत्पत्ति हुई और वह पाताल लोकमें चली गयी। उस सुरभिसे लोकमाताएँ (सुरभिकी पुत्रियाँ) (गायें) उत्पन्न हुईं। उनसे समस्त पाताल लोक व्याप्त हो गया ॥ २८—३१ ॥

पितामहके यज्ञ करते समय दक्षिणार्धके लिये लायी गयी एवं ब्रह्माके द्वारा मुलायी ये गायें विचरनेके कारण

तस्मिन् विवाहद्वारे तु स्थितो गणपतिः स्वयम् ।
यं दृष्ट्वा सकलान् कामान् प्राप्नोति संयतेन्द्रियः ॥ ३३

सङ्गिनीं तु समासाद्य तीर्थं मुक्तिसमाश्रयम् ।
देव्यास्तीर्थं नरः स्नात्वा लभते रूपमुत्तमम् ॥ ३४

अनन्तं श्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
भोगंश्च विपुलान् भुक्त्वा प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ३५

ब्रह्मावर्तं नरः स्नात्वा ब्रह्मज्ञानसमन्वितः ।
भवते नात्र संदेहः प्राणान् मुञ्चति स्वेच्छया ॥ ३६

ततो गच्छेत् विप्रेन्द्रा द्वारपालं तु रत्नकुम् ।
तस्य तीर्थं सगस्वत्यां यक्षेन्द्रस्य महात्मनः ॥ ३७

तत्र स्नात्वा महाप्राज्ञ उपवासपरायणः ।
यक्षस्य च प्रसादेन लभते कामिकं फलम् ॥ ३८

ततो गच्छेत् विप्रेन्द्रा ब्रह्मावर्तं मुनिस्तुतम् ।
ब्रह्मावर्तं नरः स्नात्वा ब्रह्म प्राप्नोति निश्चितम् ॥ ३९

ततो गच्छेत् विप्रेन्द्राः सुतीर्थकप्रनुत्तमम् ।
तत्र संनिहिता नित्यं पितरो दैवतैः सह ॥ ४०

तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चने रतः ।
अश्वमेधयवाप्नोति पितृन् प्रीणाति शाश्वतान् ॥ ४१

ततोऽम्बुवनं धर्मज्ञ समासाद्य यज्ञाक्रमम् ।
कामेश्वरस्य तीर्थं तु स्नात्वा ब्रह्मासमन्वितः ॥ ४२

सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो ब्रह्मावर्तिर्भवेद् भुवम् ।
मातृतीर्थं च तत्रैव यत्र स्नातस्य भक्तिः ॥ ४३

प्रजा विवर्द्धते नित्यमनन्तां चाप्नुयाच्छ्रियम् ।
ततः शीतवनं गच्छेन्नियतो निघताशनः ॥ ४४

तीर्थं तत्र महाविष्ठा मूढदन्त्यत्र दुर्लभम् ।
पुनरिति दर्शनादेव दण्डकं च द्विजोत्तमाः ॥ ४५

केशानभ्युक्ष्य वै तस्मिन् पूतो भवति पापतः ।
तत्र तीर्थं चान्यत् स्वानुलोमायनं महत् ॥ ४६

तत्र विष्ठा महाप्राज्ञा विद्वांसस्तीर्थतत्पराः ।
स्वानुलोमायने तीर्थे विष्ठास्वैलोक्यविश्रुते ॥ ४७

भटकने लगीं। उस विवरके द्वारपर स्वयं गणपति भगवान् स्थित हैं। जितेन्द्रिय मनुष्य उनका दर्शन करके समस्त कामनाओंको प्राप्त करता है। मुक्तिके आश्रयस्वरूप देवोंके संगिनीतीर्थमें जाकर स्नान करनेसे मनुष्यको सुन्दर रूपकी प्राप्ति होती है तथा वह स्नानकर्ता पुरुष पुत्र-पौत्रसमन्वित होकर अनन्त ऐश्वर्यको प्राप्त करता है और विपुल भोगोंका उपभोग कर परम पदको प्राप्त करता है ॥ ३३—३५ ॥

ब्रह्मावर्त नामक तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य निःसंदेह ब्रह्मज्ञानी हो जाता है एवं वह निज इच्छाके अनुसार अपने प्राणोंका परिचाग करता है। हे विप्रश्रेष्ठे! संगिनीतीर्थके बाद द्वारपाल रत्नकुम्के तीर्थमें जाय उन महात्मा यक्षेन्द्रका तीर्थ सरस्वती नदीमें है। वहाँ स्नान करके उपवास-यतमें निरत परमज्ञानी व्यक्ति यक्षके प्रसादसे इच्छित फल प्राप्त करता है हे विप्रवरो फिर मुनिर्माद्वार प्रज्ञांश प्राप्त ब्रह्मावर्त तीर्थमें जाना चाहिये ब्रह्मावर्तमें स्नान करनेसे मनुष्य निश्चय ही ब्रह्मको प्राप्त करता है ॥ ३६ ३९ ॥

हे विप्रश्रेष्ठे! उसके बाद त्रेह सुतीर्थक नामक स्थानपर जाना चाहिये, उस स्थानमें देवताओंके साथ पितृगण नित्य स्थित रहते हैं। पितरों एवं देवोंकी अर्चनामें लग्न रहनेवाला व्यक्ति वहाँ स्नानकर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है तथा शाश्वत पितरोंको प्रसन्न करता है। धर्मज्ञ उसके बाद क्रमानुसार कामेश्वर तीर्थके अम्बुवनमें जाकर ब्रह्मापूर्वक स्नान करनेसे मनुष्य सभी व्याधियोंसे छुटकर निश्चय ही ब्रह्मको प्राप्ति करता है उसी स्थानमें स्थित मातृतीर्थमें भक्तिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्यकी प्रजा (संतति) की नित्य वृद्धि होती है तथा उसे अनन्त लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। उसके बाद नियत अश्वार करनेवाला एवं जितेन्द्रिय व्यक्ति शीतवन नामक तीर्थमें जाय हे महाविष्ठा वहाँ दण्डक नामक एक महान् तीर्थ है, वह अत्यन्त दुर्लभ है। द्विजोत्तमो वह दण्डक नामका महान् तीर्थ दर्शनमात्रसे मनुष्यको पवित्र कर देता है ॥ ४०—४५ ॥

उस तीर्थमें केशोंका मुण्डन करानेसे मनुष्य अपने पापोंसे मुक्त हो जाता है। वहाँ स्वानुलोमायन नामका एक दूसरा महान् तीर्थ है। हे द्विजोत्तमो! वहाँ तीर्थ-सेवन करनेमें तत्पर परमज्ञानसे विद्वान् लोग रहते हैं त्रिलोकविख्यात

य आपगां नदीं गत्वा तिलैः संतर्पयिष्यति ।
 तेन तृणा भविष्यामो यावत्कल्पशतं गतम् ॥ ५
 नभस्ये मासि सम्प्राप्ते कृष्णपक्षे विशेषतः ।
 चतुर्दश्यां तु पय्याह्ने पिण्डदो मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ६
 ततो गच्छेत् विप्रेन्द्रा ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम् ।
 ब्रह्मोदुम्बरमित्येष सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥ ७
 तत्र ब्रह्मर्षिकुण्डेषु स्नातस्य द्विजसत्तमा ।
 सप्तर्षीणां प्रसादेन सप्तसोमफलं भवेत् ॥ ८
 भरद्वाजो गौतमश्च जगदग्निश्च कश्यपः ।
 विश्वामित्रो वसिष्ठश्च अत्रिश्च भगवानृषिः ॥ ९
 एतैः समेत्य तत्कुण्डं कल्पितं भुवि दुर्लभम् ।
 ब्रह्मणा सेवितं यस्माद् ब्रह्मोदुम्बरमुच्यते ॥ १०
 तस्मिंस्तीर्थवरे स्नातो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्यनः ।
 ब्रह्मलोकमवाप्नोति पात्रं कार्या विचारणा ॥ ११
 देवान् पितॄन् समुद्दिश्य यो विप्रं भोजयिष्यति ।
 पितरस्तस्य सुखिता दास्यन्ति भुवि दुर्लभम् ॥ १२
 सप्तर्षींश्च समुद्दिश्य पुण्यं स्नानं समाचरेत् ।
 ऋषीणां च प्रसादेन सप्तलोकाधिपो भवेत् ॥ १३
 कपिस्मरन्ति विख्यातं सर्वपातकनाशनम् ।
 यस्मिन् स्थितः स्वयं देवो वृद्धकेदारसंज्ञितः ॥ १४
 तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च तत्र दिण्डिमसमन्वितम् ।
 अन्तर्धानमवाप्नोति शिखलेके स भोदते ॥ १५
 यस्तत्र तर्पणं कृत्वा पिबते क्षुलकत्रयम् ।
 दिण्डिदेवं नमस्कृत्य केदारस्य फलं लभेत् ॥ १६
 यस्तत्र कुरुते श्राद्धं शिवमुद्दिश्य मानवः ।
 चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां प्राप्नोति परमं पदम् ॥ १७
 कलस्यां तु ततो गच्छेद् यत्र देवी स्वयं स्थिता ।
 दुर्गा कल्पायनी भद्रा निद्रा पाया सनातनी ॥ १८
 कलस्यां च नरः स्नात्वा दृष्ट्वा दुर्गां तटे स्थिताम् ।
 संसारगहनं दुर्गं निस्तरेनात्र संशयः ॥ १९

ऐसा पुत्र या पौत्र उत्पन्न होगा, जो आपगा नदीके तटपर जाकर तिलसे तर्पण करेगा, जिससे हम सभी सैकड़ों कल्पतक (अनन्त कालतक) तृप्त रहेंगे ॥ १-५ ॥

भाद्रपदके महीनेमें, विशेषकर कृष्णपक्षमें, चतुर्दशी तिथिको पय्याह्ण कालमें पिण्डदान करनेवाला मनुष्य मुक्ति प्राप्ति करता है विप्रवरो इसके बाद समस्त लोकोंमें 'ब्रह्मोदुम्बर' नामसे प्रसिद्ध ब्रह्मके त्रेह स्थानमें आना चाहिये द्विजवरो यहाँ ब्रह्मर्षिकुण्डमें स्नान करनेवाले व्यक्तिको सप्तर्षियोंकी कृपासे सप्त सोमयज्ञोंका फल प्राप्त होता है भरद्वाज, गौतम, जमदग्नि, कश्यप, विश्वामित्र, वसिष्ठ एवं भगवान् अत्रि (इन सात) ऋषियोंने मिलकर पृथ्वीमें दुर्लभ इस कुण्डको बनाया था। ब्रह्माद्वारा सेवित होनेके कारण यह स्थान 'ब्रह्मोदुम्बर' कहलाता है ॥ ६-१० ॥

अव्यक्त जन्मवाले ब्रह्मके उस त्रेह तीर्थमें स्नान करके मनुष्य ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है—इसमें कोई संदेहकी बात नहीं है जो मनुष्य यहाँ देवताओं और पितरोंके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको भोजन करायेगा, उसके पितर सुखी होकर उसे संसारमें दुर्लभ वस्तु प्रदान करेंगे सप्त ऋषियोंके उद्देश्यसे जो (व्यक्ति) अलगासे स्नान करेगा, वह ऋषियोंके अनुग्रहसे सप्त लोकोंका स्वामी होगा यहाँ सभी पार्ष्वका विनाश करनेवाला विष्णुनाथ कपिस्मरल नामक तीर्थ है जहाँ वृद्धकेदार नामके देव स्वयं विद्यमान हैं यहाँ स्नान करनेके बाद दिण्डिके साथ रुद्रदेवका अर्चन करनेसे मनुष्यको अन्तर्धानकी शक्ति प्राप्त होती है और वह त्रिलोकिकमें आनन्द प्राप्त करता है ॥ ११-१५ ॥

जो व्यक्ति इस स्थानपर तर्पण करके दिण्डि भगवान्को प्रणाम कर तीन चुल्लू जल पीता है वह केदारतीर्थमें जानेका फल प्राप्त करता है जो व्यक्ति यहाँ शिवजीके उद्देश्यसे चैत्र शुक्ला चतुर्दशी तिथिमें श्राद्ध करता है, वह परम पद (मोक्ष)-को प्राप्त कर लेता है उसके बाद कलसी नामके तीर्थमें जाना चाहिये जहाँ भद्रा, निद्रा, माया, सनातनी, कल्पायनीरूप दुर्गादेवी स्वयं अवस्थित हैं कलसी तीर्थमें स्नानकर उसके तीरपर स्थित दुर्गादेवीका दर्शन करनेवाला मनुष्य दुस्तर संसार-दुर्ग (सांसारिक भयबन्धन)-को पार कर जाता है इसमें (तनिक भी) संदेह नहीं करना चाहिये ॥ १६-१९ ॥

ततो गच्छेत् सरकं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम् ।
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ॥ २०

लभते सर्वकामांश्च शिवलोकं स गच्छति ।
तिस्रः कोट्यस्तु तीर्थानां सरके द्विजसत्तमाः ॥ २१

रुद्रकोटिस्तथा कूपे सरोमध्ये व्यवस्थिता ।
तस्मिन् सरे च यः स्नात्वा रुद्रकोटिं स्मरेन्नरः ॥ २२

पूजिता रुद्रकोटिश्च भविष्यति न संशयः ।
रुद्राणां च प्रसादेन सर्वदोषविवर्जितः ॥ २३

ऐन्द्रज्ञानेन संयुक्तः परं पदमवाप्नुयान् ।
इडास्पदं च तत्रैव तीर्थं पापभयापहम् ॥ २४
अस्मिन् मुक्तिमवाप्नोति दर्शनादेव मानवः ।
तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च पितृदेवगणानपि ॥ २५

न दुर्गन्तिमवाप्नोति मनसा चिन्तितं लभेत् ।
केदारं च महातीर्थं सर्वकल्मषनाशनम् ॥ २६

तत्र स्नात्वा तु पुरुषः सर्वदानफलं लभेत् ।
किंरूपं च महातीर्थं तत्रैव भुवि दुर्लभम् ।
तस्मिन् स्नातस्तु पुरुषः सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥ २७

सरकस्य तु पूर्वेंग तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
अन्यजन्म सुविख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २८
नारसिंहं वपुः कृत्वा हृत्वा तानवमूर्जितम् ।
तिर्यग्योनीं स्थित्वा विष्णुः सिंहं पुरतिमाप्नुयन् ॥ २९

ततो देवाः सगन्धर्वा आराध्य वरदं शिवम् ।
कक्षः प्रणतसर्वाङ्गा विष्णुदेहस्थं लम्बने ॥ ३०

ततो देवो महात्माऽसी शारभं रूपमास्थितः ।
युद्धं च कारवाभासं दिव्यं वर्षसहस्रकम् ।
युध्यमानो तु तौ देवौ पतितौ सरमध्यतः ॥ ३१

तस्मिन् सरस्तटे विप्रो देवर्षिर्नारदः स्थितः ।
अश्वत्थवृक्षमाश्रित्य ध्यानस्थस्तौ ददर्श ह ॥ ३२

दुर्गादेवीके दर्शनके बाद तीनों लोकोंमें दुर्लभ सरकतीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको माहेश्वरदेवका दर्शन करके मनुष्य (अपने) सभी मनोरथोंको प्राप्त करता और (अन्तर्में) शिवलोकमें चला जाता है। द्विजश्रेष्ठो! सरकतीर्थमें तीन करोड़ तीर्थ विद्यमान हैं। सरके बीच कूपमें रुद्रकोटि स्थित है। उस सरमें यदि व्यक्ति ज्ञान कर रुद्रकोटिका स्मरण करता है तो निःसंदेह (उसके द्वारा) रुद्रकोटि पूजित हो आते हैं और रुद्रके प्रसादसे वह व्यक्ति समस्त दोषोंसे छूट जाता है। वह इन्द्रसम्बन्धी ज्ञानसे पूरित होकर परम पदको प्राप्त कर लेता है। वहाँ पापों और भयोंका दूर करनेवाला इडास्पद नामका तीर्थ वर्तमान है ॥ २०—२४ ॥

इस इडास्पद नामके तीर्थके दर्शनसे ही मनुष्य मुक्तिको प्राप्त कर लेता है। वहाँ ज्ञान करके पितरों एवं देवोंका पूजन करनेसे मनुष्यकी दुर्गति नहीं होती और उसे मनोवाञ्छित वस्तु प्राप्त होती है। सभी पापोंका विनाश करनेवाला केदार नामक महातीर्थ है। वहाँ जाकर ज्ञान करनेसे मनुष्यको सभी प्रकारके दानोंका फल प्राप्त होता है। वहाँपर पृथ्वीमें दुर्लभ किंरूप नामका (भी) तीर्थ है। उसमें ज्ञान करनेवाले मनुष्यको सभी प्रकारके यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। सरकके पूर्वमें तीनों लोकोंमें सुप्रसिद्ध सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला अन्यजन्म नामका तीर्थ है ॥ २५—२८ ॥

नरसिंहका शरीर धारण कर शक्तिशाली दानव (हिरण्याक्ष) का वध करनेके बाद विष्णु पशुयोगिनिर्म स्थित सिंहोंमें प्रेम करने लगे। उसके बाद गन्धर्वोंके साथ सभी देवताओंने वरदाता शिवकी आराधना कर स्पष्टाङ्ग प्रणम करके हुए विष्णुसे पुनः स्वदेह (स्वरूप) धारण करनेकी प्रार्थना की। उसके बाद (फिर) महादेवने शारभ (सिंहोंसे भी बलवान् पशु विशेष) का रूप धारण करके (नरसिंहसे) हजारों दिव्य वर्षोंतक युद्ध किया-कराया। दोनों देवता (आप्सर्गमें) युद्ध करते हुए सरोवरमें गिर पड़े। उस सरोवरके तीरपर (स्थित) अश्वत्थ (पीपल) वृक्षके नीचे देवर्षि नारद ध्यान लगाये

विष्णुश्चतुर्भुजो जज्ञे लिङ्गाकारः शिवः स्थितः ।
तौ दृष्ट्वा तत्र पुरुषौ तुष्टाव भक्तिभावितः ॥ ३३

नमः शिवाय देवाय विष्णवे प्रभविष्णवे ।
हरये च उमाभर्त्रे स्थितिकालभूते नमः ॥ ३४

हराय बहुरूपाय विश्वरूपाय विष्णवे ।
त्र्यम्बकाय सुसिद्धाय कृष्णाय ज्ञानहेतवे ॥ ३५

धन्योऽहं सुकृती नित्यं यद् दृष्टौ पुरुषोत्तमौ ।
ममाश्रममिदं पुण्यं युष्माभ्यां विमलीकृतम् ।
अद्यप्रभृति त्रैलोक्ये अन्यजन्मेति विश्रुतम् ॥ ३६

य इहागत्य स्नात्वा च पितृन् संतर्पयिष्यति ।
तस्य श्रद्धान्वितस्येह ज्ञानमैन्द्रं भविष्यति ॥ ३७
अश्वत्थस्य तु यन्मूलं सदा तत्र वसाम्यहम् ।
अश्वत्थवन्दनं कृत्वा यमं रौद्रं न पश्यति ॥ ३८

ततो गच्छेत् सिप्रेन्द्रा नागस्य हृदमुत्तमम् ।
पौण्डरीके परः स्नात्वा पुण्डरीकफलं लभेत् ॥ ३९

दशम्यां शुक्लपक्षस्य चैत्रस्य तु विशेषतः ।
स्नानं जपं तथा श्राद्धं मुक्तिमार्गप्रदायकम् ॥ ४०

ततस्त्रिविष्टपं गच्छेत् तीर्थं देवनिवेदितम् ।
तत्र वैतरणी पुण्या नदी पापप्रमोचनी ॥ ४१

तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च शूलपाणिं वृषध्वजम् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा गच्छत्येव परां गतिम् ॥ ४२
ततो गच्छेत् सिप्रेन्द्रा रसावर्तमनुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा भक्तियुक्तः सिद्धिमाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ ४३

बैठे थे उन्होंने उन दोनोंको देखा। (फिर तो) विष्णु चतुर्भुज-रूपमें और शिव लिङ्गरूपमें (परिवर्तित) हो गये; उन दोनों पुरुषों (देवों) को देखकर उन्होंने भक्तिभावसे उनकी स्तुति की ॥ ३२—३३ ॥

[नारदजीने स्तुति की]—देवाधिदेव शिवको नमस्कार है। प्रभावशाली विष्णुको नमस्कार है। स्थिति (प्रजापालन) करनेवाले श्रीहरिको नमस्कार है। संहारके आधारभूत उमापति भगवान् शिवको नमस्कार है। बहुरूपायी तक्षकजी एवं विश्वरूपधारी (विश्वरूपा) विष्णुको नमस्कार है। परमसिद्ध (योगीश्वर) तक्षक एवं ज्ञानके मूल कारण भगवान् कृष्णको नमस्कार है। मैं धन्य तथा सदा पुण्यवान् हूँ; क्योंकि मुझे (आज) आप दोनों (श्रेष्ठ) पुरुषों (देवों) के दर्शन प्राप्त हुए। आप दोनों पुरुषोंद्वारा पवित्र किया गया मेरा यह आश्रम पुण्यमय ही गया। आजसे तीनों लोकोंमें यह 'अन्यजन्म' नामसे प्रसिद्ध हो जायगा। जो व्यक्ति यहाँ आकर इस तीर्थमें स्नान कर अपने पित्रोंका तर्पण करेगा श्रद्धासे सम्पन्न उस पुरुषको यहाँ इन्द्र सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त हो जायगा ॥ ३४—३७ ॥

मैं पीपल वृक्षके मूलमें सदा निवास करूँगा। उस अश्वत्थ (पीपल वृक्ष) को प्रणाम करनेवाला व्यक्ति भयंकर यमराजको नहीं देखेगा श्रेष्ठ ब्राह्मणों। उसके बाद (उस तीर्थसेवीको) उत्तम नागहृदमें जाना चाहिये पौण्डरीकमें स्नान करके मनुष्य पुण्डरीक (एक प्रकारके यज्ञ) का फल प्राप्त करता है। शुक्लपक्षकी दशमी, विशेषकर चैत्रमासकी (शुक्ला) दशमी तिथिमें वहाँ किया गया स्नान, जप और श्राद्ध मोक्षपथकी प्राप्ति करानेवाला होता है। पुण्डरीकमें स्नान करनेके बाद देवताओंद्वारा पूजित 'त्रिविष्टप' नामक तीर्थमें जाना चाहिये वहाँ पापोंसे विमुक्त करनेवाली पवित्र वैतरणी नदी है। वहाँ स्नानकर शूलपाणि वृषध्वज (शिव) की पूजा कर मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा विशुद्ध होकर निश्चय ही परमगतिको प्राप्त कर लेता है ॥ ३८—४२ ॥

त्रिप्रश्नेष्टो। तत्पश्चात् सर्वश्रेष्ठ रसावर्त (तीर्थ) में स्नान चाहिये वहाँ भक्तिसहित स्नान करनेवाला सर्वश्रेष्ठ

चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां तीर्थे स्नात्वा ह्यलेपके ।
पूजयित्वा शिवं तत्र पापलेपो न विद्यते ॥ ४४

ततो गच्छेत विप्रेन्द्राः फलकीवनमुत्तमम् ।
यत्र देवाः सगन्धर्वः साध्याश्च ऋषयः स्थिताः ।
तपश्चरन्ति विपुलं दिव्यं सर्वसहस्रकम् ॥ ४५

दृषद्भृत्यां नरः स्नात्वा तर्पयित्वा च देवताः ।
अग्निष्टोमतिरात्राभ्यां फलं विन्दति मानवः ॥ ४६

सोमक्षये च सम्प्राप्ते सोमस्य च दिने तथा ।
यः श्राद्धं कुरुते यत्वंस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ४७

गज्यां च यथा श्राद्धं पितृन् प्रीणाति नित्यशः ।
तथा श्राद्धं च कर्तव्यं फलकीवनमाश्रितैः ॥ ४८

यनसा स्मरते यस्तु फलकीवनमुत्तमम् ।
तस्यपि पितरस्तृप्तिं प्रयास्यन्ति न संशयः ॥ ४९

तत्रापि तीर्थं सुमहत् सर्वदेवीरलंकृतम् ।
तस्मिन् स्नातस्तु पुरुषो योमहस्रफलं लभेत् ॥ ५०

पाणिष्ठाते नरः स्नात्वा पितृन् संतर्प्य मानवः ।
भवाप्नुयाद् राजसूयं सांख्यं योगं च विन्दति ॥ ५१

ततो गच्छेत सुमहतीर्थं मिश्रकमुत्तमम् ।
तत्र तीर्थानि मुनिना मिश्रितानि महात्मना ॥ ५२

ध्यासेन मुनिशार्दूल तदीज्यर्थं महात्मना ।
सर्वतीर्थेषु न स्नाति मिश्रके स्नाति यो नरः ॥ ५३

ततो व्यासवनं गच्छेन्नियतो नियताशनः ।
मनोजबे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवमणिं शिवम् ॥ ५४

यनसा चिन्तितं सर्वं सिध्यते नात्र संशयः ।
गत्वा मधुवटीं चैव देव्यास्तीर्थं नरः शुचिः ॥ ५५

तत्र स्नात्वाऽर्चयेद् देवाम् पितॄंश्च प्रयतो नरः ।
स देव्यः समनुज्ञातो यथा सिद्धिं लभेन्नरः ॥ ५६

कीशिक्याः संगमे यस्तु दृषद्भृत्यां नरोत्तमः ।
स्वायीत नियताहारः सर्वपापं प्रमुच्यते ॥ ५७

सिद्धि (मुक्ति) प्राप्ता करता है। चैत्रमासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशी (चौदस) तिथिको 'अलेपक' नामक तीर्थमें जान कर वहाँ शिवकी पूजा करनेसे पापसे लिप्त नहीं होता—पाप दूर भाग जाता है। विप्रेन्द्रो' वहाँसे उत्तम फलकीवनमें जाना चाहिये वहाँ देवता, गन्धर्व, साध्व और ऋषि लोग रहते हैं एवं दिव्य सहस्र वर्षोंतक बहुत तप करते हैं। दृषद्भृत्य (कर्मर) नदीमें स्नानकर देवताओंका तर्पण करनेसे मनुष्य अग्निष्टोम और अतिरात्र नामक यज्ञोंसे मिलनेवाले फलको प्राप्त करता है ॥ ४३-४६ ॥

सोमवारके दिन चन्द्रमाके क्षीण हो जानेपर अर्थात् सोमवती अमावास्याको जो मनुष्य श्राद्ध करता है उसका पुण्यफल सुनो जैसे गया-क्षेत्रमें किया गया श्राद्ध पितरोंको नित्य हृत्प करता है वैसे ही फलकीवनमें रहनेवालोंको श्राद्ध करनेसे पितरोंको तृप्ति होती है जो मनुष्य मनसे फलकोवनका स्मरण करता है, उसके भी पितर निःसंदेह हृत्पि प्राप्त करते हैं वहाँ सभी देवोंसे सुतांभित एक 'सुमहत्' तोष है, उसमें जान करनेवाला पुरुष हजारों गौओंके दानका फल प्राप्त करता है। मानव पाणिष्ठात तीर्थमें जान करके द्रव पितरोंका तर्पण कर राजसूय यज्ञ तथा सांख्य (ज्ञान) और योग (कर्म) के अनुष्ठान करनेसे होनेवाले फलको प्राप्त करता है ॥ ४७—५१ ॥

पाणिष्ठातके बाद 'मिश्रक' नामक महान् एवं श्रेष्ठ तीर्थमें जाना चाहिये मुनिश्रेष्ठो वहाँ महात्मा व्यासदेवनं दधीचिऋषिके हेतु तीर्थोंको एकमें मिश्रित किया था। इस मिश्रक तीर्थमें जान कर लेनेवाला मनुष्य (मानो) सभी तीर्थोंमें जान कर लेता है फिर संयमशील तथा नियमित आहार करनेवाला होकर व्यासवनमें जाना चाहिये। 'मनोजब' तीर्थमें जानकर 'देवमणि' शङ्करका दर्शन करनेसे मनुष्यको अभीष्ट सिद्धिकी प्राप्ति होती है—इसमें संदेह नहीं मनुष्यको देवीके मधुवटी नामक तीर्थमें जाकर जान करके संयत होकर देवों एव पितरोंकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेवाला व्यक्ति देवीकी आज्ञासे (जैसी चाहता है वैसे) सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥ ५२—५६ ॥

जो मनुष्य 'कीशिकी' और 'दृषद्भृत्य' (कर्मर) नदियोंके संगममें जान करता और नियत भोजन करता है, वह श्रेष्ठ पुरुष सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है।

ततो व्यासस्थली नाम यत्र व्यासेन धीमता ।
पुत्रशोकाभिभूतेन देहत्यागाद्य निश्चयः ॥ ५८

कृतो देवैश्च विप्रेन्द्राः पुनरुत्थापितस्तदा ।
अभिगम्य स्थलीं तस्य पुत्रशोकं न विन्दति ॥ ५९

किंदत्तं कूपमासाद्य तिलाग्रस्थं प्रदाय च ।
गच्छेत् परमां सिद्धिं श्रृणोर्मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ६०

अहं च सुदिनं चैव द्वे तीर्थे भुवि दुर्लभे ।
तयोः स्नात्वा विशुद्धात्मा सूर्यलोकमवाप्नुयात् ॥ ६१

कृतजप्यं ततो गच्छेत् त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
तत्राभिषेकं कुर्यात् पद्गायां प्रयतः स्थितः ॥ ६२

अर्चयित्वा महादेवमश्वमेधफलं लभेत् ।
कोटितीर्थं च तत्रैव दृष्ट्वा कोटीश्वरं प्रभुम् ॥ ६३

तत्र स्नात्वा श्वधानः कोटियज्ञफलं लभेत् ।
ततो वामनकं गच्छेत् त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ६४

यत्र वामनरूपेण विष्णुना प्रभविष्णुना ।
अक्षरपङ्क्तं राज्यमिन्द्राय प्रतिपादितम् ॥ ६५

तत्र विष्णुपदे स्नात्वा अर्चयित्वा च वामनम् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ ६६

ज्येष्ठाश्रमं च तत्रैव सर्वपातकनाशनम् ।
तं तु दृष्ट्वा नरो मुक्तिं संप्रयाति न संशयः ॥ ६७

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।
द्वादश्यां च नरः स्नात्वा ज्येष्ठत्वं लभते नृपु ॥ ६८

तत्र प्रतिष्ठिता विप्रा विष्णुना प्रभविष्णुना ।
दीक्षाप्रतिष्ठासंयुक्ता विष्णुप्रीणनतत्परः ॥ ६९

तेभ्यो दत्तानि श्राद्धानि दानानि विविधानि च ।
अक्षयाणि भविष्यन्ति यावन्मन्वन्तरस्थितिः ॥ ७०

तत्रैव कोटितीर्थं च त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा कोटियज्ञफलं लभेत् ॥ ७१

श्रेष्ठ ब्राह्मणो! 'व्यासस्थली' नामका एक स्थान है, जहाँ पुत्रशोकसे दुःखी होकर वेदव्यासने अपने शरीरत्यागका निश्चय कर लिया था, पर देवीं उन्हें पुनः संभाल लिया। उसके बाद उस भूमिमें जानेवाले मनुष्यको पुत्रशोक नहीं होता। 'किंदत्तकूप'में जाकर एक पसर (तौलका) एक परिमाण) तिलका दान करनेसे मनुष्य परमसिद्धि और श्रृणसे मुक्ति प्राप्त करता है। 'अहं एवं सुदिन' नामक ये दो तीर्थ पृथ्वीमें दुर्लभ हैं इन दोनोंमें स्नान करनेसे मनुष्य विशुद्धात्मा होकर सूर्यलोकको प्राप्त करता है ॥ ५७—६१ ॥

उसके बाद तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध 'कृतजप्य' नामके तीर्थमें जाना चाहिये। जहाँ नियमपूर्वक संयत रहते हुए गङ्गामें स्नान करना चाहिये वहाँपर महादेवका पूजन करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है वहाँपर कोटितीर्थ स्थित है। वहाँ श्रद्धापूर्वक स्नानकर 'कोटीश्वर' नामका दर्शन करनेसे मनुष्य कोटि यज्ञोंका फल प्राप्त कर लेता है। उसके बाद तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध 'वामनक' तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ प्रभावशाली विष्णुने वामनरूप धारणकर बलिका राज्य छीन कर इन्द्रको दे दिया था ॥ ६२—६५ ॥

वहाँ 'विष्णुपद' तीर्थमें स्नान कर वामनदेवकी पूजा कर समस्त पापोंसे शुद्ध होकर (छूटकर) मनुष्य विष्णुके लोकको प्राप्त कर लेता है। वहाँपर सभी पापोंको नष्ट करनेवाला ज्येष्ठाश्रम नामका तीर्थ है उसका दर्शन कर मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है इसमें संदेह नहीं। ज्येष्ठ महीनेके सुक्लपक्षकी एकादशी तिथिको उपवास कर द्वादशी तिथिके दिन स्नानकर पानव मनुष्योंमें श्रेष्ठता (बड़प्पन) प्राप्त करता है वहाँ (सर्वाधिक) प्रभावशाली विष्णुभगवान्ने यज्ञादिमें दीक्षित (संगे हुए), प्रतिष्ठित एवं सम्मान्य तथा विष्णु-भगवान्की आराधनामें परायण ब्राह्मणोंको सम्मानित किया था ॥ ६६—६९ ॥

उन्हें दिये गये (पात्रक) श्राद्ध और अनेक प्रकारके दान अक्षय एवं मन्वन्तरतक स्थिर रहते हैं। वहाँ तीनों लोकोंमें विख्यात 'कोटितीर्थ' है। उस तीर्थमें स्नानकर मनुष्य करोड़ों यज्ञोंके फल प्राप्त करता है

कोटीश्वरं नरो दृष्ट्वा तस्मिंस्तीर्थे महेश्वरम् ।
महादेवप्रसादेन गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ ७२

तत्रैव सुमहत् तीर्थं सूर्यस्य च महात्मनः ।
तस्मिन् स्नात्वा भक्तियुक्तः सूर्यलोके महीयते ॥ ७३
ततो गच्छेत विप्रेन्द्रास्तीर्थं कल्मषनाशनम् ।
कुलोत्तारणनामज्ञं विष्णुना कल्पितं पुरा ॥ ७४

वर्णानामाश्रमाणां च तारणाय सुनिर्मलम् ।
ब्रह्मचर्यात्परं मोक्षं च इच्छन्ति सुनिर्मलम् ।
तेऽपि ततीर्थमासाद्य पश्यन्ति परमं पदम् ॥ ७५

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ।
कुलानि तत्रयेत् स्नातः सप्त सप्त च सप्त च ॥ ७६

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ये तत्परावणाः ।
स्नाता भक्तियुताः सर्वे पश्यन्ति परमं पदम् ॥ ७७

दूरस्थोऽपि स्मरेद् यस्तु कुरुक्षेत्रं स्वामनम् ।
सोऽपि मुक्तिमवाप्नोति किं पुनर्निवसन्नरः ॥ ७८

उस तीर्थमें 'कोटीश्वर' महादेवका दर्शन कर मनुष्य उन महादेवकी कृपासे गाणपत्य पद (गणनायकत्वकी उपाधि) प्राप्त करता है। और वहाँ महज्ज्मा सूर्यदेवका महान् तीर्थ है उसमें भक्तिपूर्वक स्नानकर मनुष्य सूर्यलोकमें महान् माना जाता है ॥ ७०-७३ ॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणो कोटितीर्थके बाद पापका नाश करनेवाले 'कुलोत्तारणतीर्थ'में जाना चाहिये, जिसे प्राचीनकालमें विष्णुने वर्णाश्रम धर्मका पालन करनेवाले मनुष्योंको तारनेके लिये बनाया था। जो मनुष्य ब्रह्मचर्यव्रतसे विशुद्ध मुक्तिकी इच्छा करते हैं ऐसे लोग भी उस तीर्थमें जाकर परम पदका दर्शन कर लेते हैं। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी और संन्यासी वहाँ स्नानकर अपने कुलके (७४+७५+७६=२१) इक्कीस पूर्व पुरुषोंका वदना कर देते हैं जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र उस तीर्थमें तीर्थपरायण होकर एवं भक्तिसे स्नान करते हैं वे सभी परम पदका दर्शन करते हैं और जो दूर रहता हुआ भी वामनसहित कुरुक्षेत्रका स्मरण करता है, वह भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है फिर वहाँ निवास करनेवालेका तो कहना ही क्या? ॥ ७४-७८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३६ ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

सैंतीसवाँ अध्याय

कुरुक्षेत्रके तीर्थोंके माहात्म्य और क्रमका पूर्वानुक्रान्त वर्णन

श्लोमहर्षण उवाच

पवनस्य हृदे स्नात्वा दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ।
विमुक्तः कलुषैः सर्वैः शीवं पदमवाप्नुयात् ॥ १
पुत्रशोकैः पवनो यस्मिंस्त्पीनो बभूव ह ।
ततः स ब्रह्मकैर्देवैः प्रसाद्य प्रकटीकृतः ॥ २
अतो गच्छेत अमृतं स्थानं तच्छूलपाणिनः ।
यत्र देवैः सगन्धर्वैः हनुमान् प्रकटीकृतः ॥ ३

श्लोमहर्षण बोले—पवनके हृदमें, पुत्र (हनुमान्जी) के शोकके कारण जिस संशयमें पवन लीन हो गये थे, उसमें स्नान करके महेश्वरदेवका दर्शन कर मनुष्य समस्त पापोंसे विमुक्त हो शिवपदके प्राप्त करता है उसके बाद ब्रह्मके साथ सभी देवोंने मिलकर उन्हें प्रसन्न एवं प्रत्यक्ष प्रकट किया। यहाँसे शूलपाणि (भगवान् शंकर) के अमृत नामक स्थानमें जाना चाहिये, जहाँ गन्धर्वोंके साथ देवताओंने हनुमान्जीको प्रकट किया था।

तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा अमृतत्वमवाप्नुयात् ।
कुलोत्तारणमासाद्य तीर्थसेवी द्विजोत्तमः ॥ ४

कुलानि ताम्येतु सर्वान् म्रतामहृषितामहम् ।
शालिहोत्रस्य राजर्षेस्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ५

तत्र स्नात्वा विमुक्तस्तु कलुषैर्देहसंभवैः ।
श्रीकुञ्जं तु सरस्वत्यां तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ६

तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या अग्निष्टोमफलं लभेत् ।
ततो नैमिषकुञ्जं तु सम्मसाद्य नरः शुचिः ॥ ७

नैमिषस्थं च स्नानेन यत् पुण्यं तत् समाप्नुयात् ।
तत्र तीर्थं महाख्यातं वेदवत्या निवेदितम् ॥ ८

रावणेन गृहीतायाः केशेषु द्विजसप्तमः ।
तद्वधाय च सा प्राणान् घुमुषे शोककारिता ॥ ९

ततो जाता गृहे राज्ञो जनकस्य महात्मनः ।
सीता नामेति विख्याता रामपत्नी पतिव्रता ॥ १०

सा हृता रावणेनेह विनाशायाम्नः स्वयम् ।
रामेण रावणं हत्वा अभिविष्य विभीषणम् ॥ ११

समानीता गृहं सीता कीर्तिरात्मवता यथा ।
तस्यास्तीर्थं नरः स्नात्वा कन्यायज्ञफलं लभेत् ॥ १२

विमुक्तः कलुषैः सर्वैः प्राप्नोति परमं पदम् ।
ततो गच्छेत् सुमहद् ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम् ॥ १३

यत्र सर्पादरः स्नात्वा ब्राह्मण्यं लभते नरः ।
ब्राह्मणश्च विशुद्धात्मा परं पदमवाप्नुयात् ॥ १४

स्ततो गच्छेत् सोमस्य तीर्थं त्रैलोक्यदुर्लभम् ।
यत्र सोमस्तपस्तप्त्वा द्विजराज्यमवाप्नुयात् ॥ १५

तत्र स्नात्वाऽर्घ्यित्वा च स्वपितृभ्य ईक्षतानि च ।
निर्मलः स्वर्गमायति कार्तिक्या चन्द्रमा यथा ॥ १६

उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य अमृतपदको पा लेता है ।
निबन्धानुसार तीर्थका सेवन करनेवाला श्रेष्ठ ब्राह्मण
'कुलोत्तारण' तीर्थमें जाकर अपने मातामह और पितामहके
समस्त वंशोंका उद्धार कर देता है । तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध
राजर्षि शालिहोत्रके तीर्थमें स्नान कर मुक्त हो मनुष्य
शारीरिक पापोंसे सर्वथा छूट जाता है । सरस्वती-क्षेत्रमें
तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध श्रीकुञ्ज नामक तीर्थ है । उसमें
भक्तिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल
प्राप्त कर लेता है । मनुष्य वहाँसे नैमिषकुञ्जतीर्थमें जाकर
पवित्र हो जाता है और नैमिषारण्यतीर्थमें स्नान करनेसे
जो पुण्य होता है, उसे प्राप्त कर लेता है । वहाँपर
'वेदवती' से निवेदित बहुत प्रसिद्ध तीर्थ है ॥ १-८ ॥

द्विजश्रेष्ठो! रावणके द्वारा अपने केशके पकड़े
जानेपर शोकसे संतप्त होकर (वेदवतीने) उसके
(रावणके) वधके लिये अपने प्राणोंको छोड़ दिया था
और उसके बाद महात्मा राजा जनकके घरमें वे उत्पन्न
हुई और उनकी माँ 'सीता' विख्याति हुई तथा वे
रामकी पतिव्रता पत्नी हुई । उस सीताको रावणने स्वयं
अपने विनाशके लिये अपहृत कर लिया । सीताके
अपहरण हो जानेपर राम-रावण-युद्ध हुआ, जिसमें
रावणको मारनेके बाद विभीषणको (लङ्काके राज्यपर)
अभिषिक्त कर राम सीताको वैसे ही घर लौट लाये,
वैसे आत्मवान् (जितेन्द्रिय) पुरुष कीर्तिको प्राप्त करता
है । उनके तीर्थमें स्नान कर मनुष्य कन्यायज्ञ (कन्यादान-
का फल एवं समस्त पापोंसे मुक्त होकर परम पदको
प्राप्त करता है । उस वेदवतीतीर्थके बाद ब्रह्मके उत्तम
और महान् स्थानमें जाना चाहिये, जहाँ स्नान करनेसे
अवरः सर्पका व्यक्ति (जन्मान्तरमें) ब्राह्मणत्व प्राप्त कर
लेता है और ब्राह्मण विशुद्ध अन्तःकरणवाला होकर
परम पदको प्राप्ति करता है ॥ १-१४ ॥

उस ब्रह्मके तीर्थस्थलपर जानेके बाद तीनों
लोकोंमें दुर्लभ 'सोमतीर्थ' में जाना चाहिये, जहाँ चन्द्रमाने
तपस्या करके द्विजराजत्व पदको प्राप्त किया था । वहाँ
स्नानकर अपने पितरों और देवताओंकी पूजा करनेसे
मनुष्य कार्तिककी पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान निर्मल

सप्तसारस्वतं तीर्थं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम् ।
 यत्र सप्त सरस्वत्यः एकीभूता वहन्ति च ॥ १७
 सुप्रभा काञ्चनाक्षी च विशाला मानसहृदा ।
 सरस्वत्योघनामा च सुरेणुर्विमलोदका ॥ १८
 पितामहस्य यजतः पुष्करेषु स्थितस्य ह ।
 अम्बुवन् ऋषयः सर्वे नाज्यं यज्ञो महाफलः ॥ १९
 न दृश्यते सरिच्छ्रेष्ठा यस्मादिह सरस्वती ।
 तच्छ्रुत्वा भगवान् प्रीतः सस्माराच्च सरस्वतीम् ॥ २०
 पितामहेन यजता आहूता पुष्करेषु वै ।
 सुप्रभा नाम सा देवी तत्र ख्याता सरस्वती ॥ २१
 तां ब्रुवा पुनयः प्रीता वेगयुक्तां सरस्वतीम् ।
 पितामहं मानयन्तीं ते तु तां ब्रुव मेनिरे ॥ २२
 एवमेवा सरिच्छ्रेष्ठा पुष्करस्था सरस्वती ।
 समानीता कुरुक्षेत्रे मङ्गणेन महात्मना ॥ २३
 नैमिषे मुनयः स्थित्वा शौनकाद्यास्तपोधनाः ।
 ते पृच्छन्ति महात्मानं पीराणं लोमहर्षणम् ॥ २४
 कथं यज्ञफलोऽस्माकं वर्ततां सत्यमे भवेत् ।
 ततोऽब्रवीन्महाभागः प्रणम्य शिरसा ऋषीन् ॥ २५
 सरस्वती स्थिता यत्र तत्र यज्ञफलं महत् ।
 एतच्छ्रुत्वा तु पुनयो नानास्वाध्यायवेदिनः ॥ २६
 समायम्य ततः सर्वे सस्मरुस्ते सरस्वतीम् ।
 सा तु ध्यातां ततस्तत्र ऋषिभिः सत्रयाजिभिः ॥ २७
 समागत्य प्लावनाथं यज्ञे तेषां महात्मनाम् ।
 नैमिषे काञ्चनाक्षी तु स्मृता मङ्गणकेन सा ॥ २८
 समागत्य कुरुक्षेत्रं पुण्यतोया सरस्वती ।
 गदस्य यजमानस्य गयेच्छेकं महाकतुम् ॥ २९
 आहूता च सरिच्छ्रेष्ठा गदयज्ञे सरस्वती ।
 विशाला नाम तां ब्राह्मर्षयः संशितव्रताः ॥ ३०
 सरित् सा हि समाहूता मङ्गणेन महात्मना ।
 कुरुक्षेत्रं समयाता प्रविष्टा च महानदी ॥ ३१
 उत्तरे कोशलाभागे पुण्ये देवर्षिसेविते ।
 उहालकेन पुनिता तत्र ध्याता सरस्वती ॥ ३२

होकर स्वर्गको प्राप्ता कर लेता है। तीनों लोकोंमें दुर्लभ
 सप्तसारस्वत नामक एक तीर्थ है, जहाँ सुप्रभा, काञ्चनाक्षी,
 विशाला, मानसहृदा, सरस्वती, ओषधती, विमलोदका
 एवं सुरेणु नामकी सातों सरस्वतियों (नदियों) एकत्र
 मिलकर प्रवाहित होती हैं ॥ १५—१८ ॥

पुष्करतीर्थमें स्थित ब्रह्माजीके यज्ञके अनुष्ठानमें
 लग जानेपर सभी ऋषियोंने उनसे कहा आपका यह
 यज्ञ महाफलजनक नहीं होगा; क्योंकि यहाँ सरिताओंमें
 श्रेष्ठ सरस्वती (नदी) नहीं दिखलाई पड़ रही है उसे
 सुनकर भगवान्ने प्रसन्नतापूर्वक सरस्वतीका स्मरण
 किया। पुष्कार्थमें यज्ञ कर रहे ब्रह्माजीद्वारा आहूत की गयी
 'सुप्रभा' नामकी देवी यहाँ सरस्वती नामसे प्रसिद्ध हुई
 ब्रह्माजीका मन करनेवाली उस वेगवती सरस्वतीको
 देखकर मुनिजन प्रसन्न हो गये और उन सबोंने उनका
 अत्यधिक सम्मान किया ॥ १९—२२ ॥

इस प्रकार पुष्करतीर्थमें स्थित एवं नदियोंमें श्रेष्ठ
 इस सरस्वतीको महात्मा मङ्गुण कुरुक्षेत्रमें लाये

एक समय नैमिषारण्यमें रहनेवाले तपस्वीके बनी
 शौनक आदि मुनियोंने पुराणोंके द्वारा महात्मा लोमहर्षयसे
 पूछा सत्यव्रतामी हम लोगोंको यज्ञका फल कैसे प्राप्त
 होगा ? (—इसे कृपणकर समझाये) उसके बाद महानुभाव
 लोमहर्षणजीने ऋषियोंको फिरसे प्रणाम कर कहा कि
 ऋषियो! जहाँ सरस्वती नदी अवस्थित है, वहाँ (रहनेसे)
 यज्ञका महान् फल प्राप्त होता है। इसको सुनकर विविध
 वेदोंका स्वाध्याय करनेवाले मुनियोंने एकत्र होकर
 सरस्वतीका स्मरण किया। दीर्घकालिक यज्ञ करनेवाले
 उन ऋषियोंके ध्यान (स्मरण) करनेपर वे (सरस्वती)
 वहाँ नैमिषक्षेत्रमें उन महात्माओंके यज्ञमें प्लावण करनेके
 लिये काञ्चनाक्षी नामसे उपस्थित हो गयीं। वे ही प्रसिद्ध
 नदी मङ्गणके द्वारा स्मृत होनेपर पवित्र सलिला सरस्वतीके
 रूपमें कुरुक्षेत्रमें (भी) आयीं और महान् ब्रती ऋषियोंने
 गद-क्षेत्रमें महायज्ञका अनुष्ठान करनेवाले गदके यज्ञमें
 आहूत की गयीं उन श्रेष्ठ सरस्वती नदीको 'विशाला' के
 नामसे स्मरण किया ॥ २३—३० ॥

महात्मा मङ्गुण ऋषिद्वारा समाहूत की गयी बही
 नदी कुरुक्षेत्रमें आकर प्रवेश कर गयी। (पिच) उहालक
 मुनिने देवर्षियोंके द्वारा सेवित जय पवित्र उत्तरकोसल

आजगाम सरिच्छेद्वा तं देशं मुनिकारणात् ।
 पूज्यमाना मुनिगणैर्वल्कलाजिनसंवृतैः ॥ ३३
 मनोहरेति विख्याता सर्वपापक्षयावहा ।
 आहूता सा कुरुक्षेत्रे मङ्गलेन महात्मना ।
 ऋधेः संमाननार्थाय प्रविष्टा तीर्थमुत्तमम् ॥ ३४
 सुवेणुरिति विख्याता केदारे या सरस्वती ।
 सर्वपापक्षया ज्ञेया ऋधिसिद्धनिवेदिता ॥ ३५
 सापि तेनेह मुनिना आराध्य परमेश्वरम् ।
 ऋषीणामुपकारार्थं कुरुक्षेत्रं प्रवेशिता ॥ ३६
 दक्षेण यजता सापि गङ्गाद्वारे सरस्वती ।
 विमलोदा भगवती दक्षेण प्रकटीकृता ॥ ३७
 समाहूता ययौ तत्र मङ्गलेन महात्मना ।
 कुरुक्षेत्रे तु कुरुणा यजिता च सरस्वती ॥ ३८
 सरोमध्ये समानीता मार्कण्डेयेन धीमता ।
 अभिष्टूय महाभगां पुण्यतोयां सरस्वतीम् ॥ ३९
 यत्र मङ्गलकः सिद्धः सप्तसारस्वते स्थितः ।
 नृत्यमानश्च देवेन शंकरेण निवारितः ॥ ४०

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें सैतौसर्वा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३७ ॥



मङ्गलक-प्रसङ्ग, मङ्गलकका शिवस्तवन और उनकी अनुकूलता प्राप्ति

अथ कथं:

कथं मङ्गलकः सिद्धः कस्मान्जातो महानृषिः ।
 नृत्यमानस्तु देवेन किमर्थं स निवारितः ॥ १

लोगहर्षण उवाच

कश्यपस्य सुतो जज्ञे मानसो मङ्गलो मुनिः ।
 श्रानं कर्तुं व्यवसितो गृहीत्वा चत्कलं द्विजः ॥ २
 तत्र गता ह्यप्सरसो रम्भाद्याः प्रियदर्शनः ।
 स्नायन्ति रुचिराः स्निग्धास्तेन सार्धमर्चिन्दिताः ॥ ३

प्रदेशमें सरस्वतीका ध्यान किया उन मुनिके कारण नदियोंमें श्रेष्ठ वह सरस्वती नदी उस देशमें आ गयी एवं वह चत्कल तथा मृगधर्मको धारण करनेवाले मुनियोंद्वारा पूजित हुई। तब सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाली वह 'मनोहरा' नामसे विख्यात हुई। फिर वह महत्मा मङ्गलद्वारा आहूत होकर ऋधिको सम्मानित करनेके लिये कुरुक्षेत्रके उत्तम तीर्थमें प्रविष्ट हुई। केदारतीर्थमें जो सरस्वती 'सुवेणु' नामसे प्रसिद्ध है, वह ऋषियों और सिद्धोंके द्वारा सेवित तथा सर्वपापनाशक रूपसे अपनी जाती है ॥ ३१—३५ ॥

परमेश्वरकी आराधना कर उन मुनिने उसे (सुवेणुको) भी ऋषियोंका उपकार करनेके लिये इस कुरुक्षेत्रमें प्रवाहित कराया। गङ्गाद्वारमें यज्ञ कर रहे दक्षने 'विमलोदा' नामसे भगवती सरस्वतीको प्रकट किया। कुरुक्षेत्रमें कुरुद्वारा पूजित सरस्वती मङ्गलद्वारा बुलायी जानेपर वहाँ गयी फिर बुद्धिमान् मार्कण्डेयजी उस पवित्र जलवाली महाभागा सरस्वतीकी स्तुति कर उसे सरोवरके मध्यमें ले गये। वहाँ सप्तसारस्वततीर्थमें उपस्थित एवं नृत्य करते हुए सिद्ध मङ्गलकको नृत्य करनेसे शंकरजीने रोका था ॥ ३६—४० ॥

ऋषियोंने कहा—(प्रभो) मङ्गलक किस प्रकार सिद्ध हुए? वे महान् ऋषि किससे उत्पन्न हुए थे? नृत्य करते हुए उन मङ्गलकको महादेवने क्यों रोका? ॥ १ ॥

लोगहर्षणने कह्य—(ऋषियो!) मङ्गलकमुनि महर्षि कश्यपके मानसपुत्र थे (एक समय) वे ब्राह्मण देवता चत्कल वस्त्र लेकर स्नान करने गये वहाँ रम्भा आदि सुन्दरी अप्सराएँ भी गयी थीं अनिन्द्य, कोमल एवं मनोहर (रूपवाली ये सभी) अप्सराएँ उनके साथ (ही)

ततो मुनेस्तदा क्षोभाश्रेतः स्कन्धं यदम्भसि ।
तत्रेतः स तु जग्राह कलशे वै महातपाः ॥ ४

सप्तधा प्रविभर्गं तु कलशस्थं जगाम ह ।
तत्रर्षयः सप्त जाता विदुर्यान् भरुतां गणान् ॥ ५

वायुवेगो वायुबलो वायुहा वायुमण्डलः ।
वायुज्वालो वायुरेतो वायुचक्रश्च वीर्यवान् ॥ ६

एते ज्ञापत्यास्तस्यैवधारयन्ति चराचरम् ।
पुन मङ्गणकः सिद्धः कुशाग्रोऽपि मे श्रुतम् ॥ ७

क्षतः किल करे विप्रास्तस्य शाकरस्केऽस्वक्त् ।
स वै शाकरसं दृष्ट्वा हर्षाविष्टः प्रनृत्तवान् ॥ ८

ततः सर्वं प्रनृत्तं च स्थावरं जङ्गमं च यत् ।
प्रनृत्तं च जगद् दृष्ट्वा तेजसा तस्य मोहितम् ॥ ९

ब्रह्मादिभिः सूरैस्तत्र ऋषिभिश्च तपोधनैः ।
विज्ञप्तो वै महादेवो मुनेरर्थं द्विजोत्तमः ॥ १०

नायं नृत्येद् यथा देव तथा त्वं कर्तुमर्हसि ।
ततो देवो मुनिं दृष्ट्वा हर्षाविष्टमतीव हि ॥ ११

सुरार्णां हितकामार्थं महादेवोऽभ्यभाषत ।
हर्षस्थानं किमर्थं च तवेदं मुनिसत्तम ।
तपस्विनो धर्मपथे स्थितस्य द्विजसत्तम ॥ १२

किं न पश्यसि मे ब्रह्मन् कराच्छाकरसं स्नुतम् ।
यं दृष्ट्वाऽहं प्रनृत्तो वै हर्षेण महताऽन्वितः ॥ १३

तं प्रहस्यासवीद् देवो मुनिं रागेण मोहितम् ।
अहं न विस्मयं विप्र गच्छामीह प्रपश्यताम् ॥ १४

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठं देवदेवो महाद्युतिः ।
अकूल्यग्रेण विप्रेन्द्राः स्थादुष्टे तडयद् भवः ॥ १५

ततो भस्म क्षतात् तस्मान्निर्गतं हिमसन्निभम् ।
तद् दृष्ट्वा घ्रीडितो विप्रः पादयोः पतितोऽस्रवीत् ॥ १६

नान्यं देवादहं मन्ये शूलपाणेर्यहात्मनः ।
चराचरस्य जगतो अस्त्वमसि शूलधृक् ॥ १७

ज्ञान करने लगीं। उसके बाद मुनिके मनमें विकृति हो गयी, फलतः उनका शूल जलमें स्थानित हो गया। उस रेतको उन महातपस्वीने उठाकर घड़ेमें रख लिया वह कलशस्थ (रेत) सात भागोंमें विभक्त हो गया। उससे सात ऋषि उत्पन्न हुए, जिन्हें मत्तद्गण कहा जाता है (उनके नाम हैं—) वायुवेग, वायुबल, वायुहा, वायुमण्डल, वायुज्वाल, वायुरेत एवं वीर्यवान् वायुचक्र उन (मङ्गणक) ऋषिके ये सात पुत्र चराचरको धारण करते हैं। ब्राह्मणो! मैंने यह सुना है कि प्राचीन कालमें सिद्ध मङ्गणकके हाथमें कुशके अग्रभागसे छिद्र जानेके कारण घाव हो गया था; उससे शाकरस निकलने लगा। ये (अपने हाथसे निकलते हुए उस) शाकरसको देखकर प्रसन्न हो गये और नाचने लगे ॥ २—८ ॥

इससे (उनके नृत्य करनेसे उनके साथ) सम्पूर्ण अचर-चर जगत् भी नाचने लगा। उनके तेजसे मोहित जगत्को नाचते देखकर ब्रह्मा आदि देव एवं तपस्वी ऋषियोंने मुनिके (हितके) लिये महादेवसे कहा—देव! आप ऐसा (कार्य) करें, जिससे ये नृत्य न करें (उन्हें नृत्यसे विरत करनेका उपाय करें)। उसके बाद हर्षसे अधिक मान उन मुनिको देखकर एवं देखोंके हितकी इच्छासे महादेवने कहा—मुनिसत्तम। ब्राह्मणश्रेष्ठ आप तो तपस्वी एवं धर्मपथमें स्थित रहनेवाले हैं। फिर आपके इस हर्षका क्या कारण है? ॥ ९—१२ ॥

ऋषिने कहत—ब्रह्मन्। क्या आप नहीं देखते कि मैंने हाथसे शाकका रस चू रहा है; जिसे देखकर मैं अत्यन्त आनन्दमग्न होकर नृत्य कर रहा हूँ। महादेवजीने हँसकर आसक्तिये मोहित हुए उन मुनिसे कहा—विप्रवर मुझे आश्चर्य नहीं हो रहा है (किंतु) आप हृष्ट देखें। विप्रेन्द्रो! श्रेष्ठ मुनिसे ऐसा कहकर देदीप्यमान भगवान् देवाधिदेव महादेवने अपनी अंगुलिके अग्रभागसे अपने अंगूठेको ठीक किया। उसके बाद उस चोटसे हिमतुल्य (स्वच्छ) भस्म निकलने लगा उसे देखनेके बाद ब्राह्मण लज्जित होकर (महादेवके) चरणोंमें गिर पड़े और बोले— ॥ १३—१६ ॥

मैं महात्मा शूलपाणि महादेवके अतिरिक्त किसीको नहीं मानता। शूलपाणे! मेरी दृष्टिमें आप ही चराचर

त्वदाश्रयाश्च वृश्यन्ते सुरा ब्रह्मादयोऽनघ ।
पूर्वस्त्वमसि देवानां कर्ता कारयिता महत् ॥ १८

त्वत्प्रसादात् सुराः सर्वे मोदन्ते ह्यकुतोभयाः ।
एवं स्तुत्वा महादेवमृषिः स प्रणतोऽब्रवीत् ॥ १९

भगवंस्त्वत्प्रसादाद्धि तपो मे न क्षयं व्रजेत् ।
ततो देवः प्रसन्नात्मा तमृषिं वाक्यमब्रवीत् ॥ २०

ईश्वर उवाच

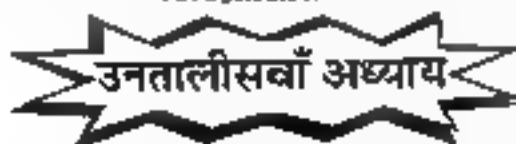
तपस्ते वर्धतां विप्र मत्प्रसादात् सहस्रधा ।
आश्रमे चेह वत्स्यामि त्वया सद्दीमहं सदा ॥ २१
सप्तसारस्वते स्नात्वा यो मामर्चिष्यते परः ।
न तस्य दुर्लभं किञ्चिदिह लोके परत्र च ॥ २२
सारस्वतं च तं लोकं गमिष्यति न संशयः ।
शिवस्य च प्रसादेन प्राप्नोति परमं पदम् ॥ २३

समस्त संसारमें सर्वश्रेष्ठ हैं। अनघ! ब्रह्म आदि देवता आपके ही आश्रित देखे जाते हैं। आप ही देवताओंमें प्रथम हैं और आप (सब कुछ) करने एवं करानेवाले तथा महत्स्वरूप हैं। आपकी कृपासे सभी देवगण निर्भय होकर मोदमग्न होते रहते हैं। ऋषिने इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति करनेके बाद उन्हें प्रणामकर कहा—भगवन्! आपकी कृपासे मेरे तपका क्षय न हो तब महादेवजीने प्रसन्न होकर उन ऋषिसे यह वचन कहा— ॥ १७—२० ॥

(सदाशिव) ईश्वरने कहा: विप्र मेरी कृपासे तुम्हारी तपस्या सहस्रों प्रकारसे बढ़े। मैं तुम्हारे साथ इस आश्रममें सदा निवास करूँगा। जो मनुष्य इस सप्तसारस्वततीर्थमें स्नान करके मेरी पूजा करेगा, उसे इस लोक और परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा। वह निःसंदेह उस सारस्वतलोकको जायगा एवं (मुझ) शिवके अनुग्रहसे परम पदको प्राप्त करेगा ॥ २१—२३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें अष्टतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३८ ॥

॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥



कुरुक्षेत्रके तीर्थोंका अनुक्रान्त वर्णन

लोगहर्षण उवाच

ततस्त्वीशानसं तीर्थं गच्छेत् शुभ्रवस्त्रधरः ।
दशजं यत्र संसिद्धौ ग्रहत्वं च समाप्तवान् ॥ १
तस्मिन् स्नात्वा विमुक्तस्तु पातकैर्जन्मसम्भवैः ।
ततो याति परं ब्रह्म यस्मान्नावर्तते पुनः ॥ २
रहोदरो नाम मुनिर्यत्र मुक्तो बभूव ह ।
महता शिरसा ग्रस्तस्तीर्थमाहात्म्यदर्शनात् ॥ ३

शिव उवाच

कथं रहोदरो ग्रस्तः कथं मोक्षमवाप्तवान् ।
तीर्थस्य तस्य माहात्म्यमिच्छामः श्रोतुमादरात् ॥ ४

लोगहर्षणने कहा—(ऋषियो!) सप्तसारस्वतके बाद ब्रह्मसे युक्त होकर 'औशनस' तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ शुक्र सिद्धि प्राप्तकर ग्रहत्वको प्राप्त हो गये। उस तीर्थमें स्नानकर मनुष्य अनेक जन्मोंमें किये हुए पातकोंसे छूटकर परब्रह्मको प्राप्त करता है, जहाँसे पुनः (जन्म-मरणके चक्करमें) लौटना नहीं पड़ता। (यह तीर्थ ऐसा है) जहाँ तीर्थ दर्शनकी महिमासे भारी सिरसे जकड़े हुए रहोदर नामके एक मुनि उससे मुक्त हो गये थे ॥ १—३ ॥

ऋषियोने कहा (पूछ) — रहोदर मुनि सिरसे ग्रस्त कैसे हो गये थे? और वे उससे मुक्त कैसे हुए? हम लोग उस तीर्थके माहात्म्यको आदरके साथ सुनना चाहते हैं (जिसकी महिमासे ऐसा हुआ) ॥ ४ ॥

लोमहर्षण उवाच

पुरा वै दण्डकारण्ये राघवेण महात्मना ।
वसता द्विजशार्दूला राक्षसास्तत्र हिंसिताः ॥ ५
तत्रैकस्य शिरश्छिन्नं राक्षसस्य दुरात्मनः ।
शूरेण शितधारेण तत् पपात महावने ॥ ६
रहोदरस्य तत्स्थानं जङ्घायां वै चदुच्छया ।
वने विचरतस्तत्र अस्थि भित्त्वा विवेश ह ॥ ७
स तेन लग्नेन तदा द्विजातिर्न शशाक ह ।
अभिगन्तुं महाप्राज्ञस्तीर्थान्पायतनानि च ॥ ८
स पूतिना विस्ववता वेदनासौ भ्रामुनिः ।
जगाम सर्वतीर्थानि पृथिव्यां यानि कानि च ॥ ९

ततः स कथयामास ऋषीणां भावितात्मनाम् ।
तेऽब्रुवन् ऋषयो विप्रं प्रयाहीश्वरसं प्रति ॥ १०

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा जगाम स रहोदरः ।
ततस्त्वौशनसे तीर्थं तस्योपस्मृजतस्तदा ॥ ११

तच्छिरश्चरणं मुक्त्वा पपातान्तर्धले द्विजाः ।
ततः स विरजो भूत्वा पूतात्मा क्षीतकल्मषः ॥ १२

आजगामाश्रमं प्रीतः कथयामास चाखिलम् ।
ते श्रुत्वा ऋषयः सर्वे तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ।
कपालमोचनमिति नाम चक्रुः समागताः ॥ १३
तत्रापि सुमहतीर्थं विश्वामित्रस्य विश्रुतम् ।
आह्वयं लब्धवान् यत्र विश्वामित्रो महापुनिः ॥ १४

तस्मिंस्तीर्थवरे स्वात्मा आह्वयं लभते ध्रुवम् ।
आह्वणस्तु विशुद्धात्मा परं पदमवाप्नुयात् ॥ १५

ततः पृथूदकं गच्छेन्नियतो नियताशनः ।
तत्र सिद्धस्तु ब्रह्मर्षी रुषहुर्नाम नामतः ॥ १६

जातिस्मरो रुषहुस्तु गङ्गाद्वारे सदा स्थितः ।
अन्तकालं ततो दृष्ट्वा पुत्रान् वचनमब्रवीत् ।
इह श्रेयो न पश्यामि नयध्वं मां पृथूदकम् ॥ १७

लोमहर्षणजी बोले - द्विजश्रेष्ठो! प्राचीन कालमें दण्डकारण्यमें रहते हुए रघुवंशी महारथी रामचन्द्रने बहुत से राक्षसोंको मारा था। वहाँ एक दुष्टरथी राक्षसका सिर तीक्ष्णधारवाले शूर नामक बाणसे कटकर उस महावने गिरा। (फिर वह) संयोगवश वनमें विचरण करते हुए रहोदर मुनिको जंगममें उनकी हड्डीको तोड़कर उससे चिपट गया। महाप्राज्ञ वै ब्राह्मणदेव (जंगेकी दूटी हड्डीमें) उस मस्तकके साथ जानेके कारण तीर्थों और देवाल्योंमें नहीं जा पाते थे ॥ ५-८ ॥

वै महामुनि दुर्गन्धपूर्ण पोष आदि बहनेके कारण तथा वेदनासे अथवा दुःखी रहते थे। पृथ्वीके जिन-जिन तीर्थोंमें वे गये, वहाँ-वहाँ उन्होंने पवित्रात्मा ऋषियोंसे (अपना दुःख) कहा। ऋषियोंने उन विप्रसे कहा— ब्राह्मणदेव! आप औशनस (तीर्थ) में जाइये। (लोमहर्षणने कहा—) द्विजो! उनका यह वचन सुनकर रहोदर मुनि वहाँसे औशनसतीर्थमें गये। वहाँ उन्होंने तीर्थ-जलका स्पर्श किया। उनके द्वारा (जलका) स्पर्श होते ही वह मस्तक उनके (जोंध)-को छोड़कर जलमें गिर गया। उसके बाद वे मुनि पापसे रहित निर्मल स्वर्गगुणसे रहित अतएव पवित्रात्मा होकर प्रसन्नतापूर्वक (अपने) अश्रममें गये और उन्होंने (ऋषियोंसे) सारी आपबोती कह सुनायो फिर तो उन आये हुए सभी ऋषियोंने औशनसतीर्थके इस उत्तम माहात्म्यको सुनकर उसके नाम 'कपालमोचन' रख दिया ॥ ९-१३ ॥

वहाँ (कपालमोचन तीर्थमें ही) महामुनि विश्वामित्रका बहुत बड़ा तीर्थ है, वहाँ विश्वामित्रने ब्राह्मणत्वको प्राप्त किया था। उस श्रेष्ठ तीर्थमें ज्ञान करनेसे मनुष्यको निश्चय रूपसे ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति होती है और वह ब्राह्मण विशुद्धात्मा होकर ब्रह्मके परम पदको प्राप्त करता है। कपालमोचनके बाद पृथूदक नामके तीर्थमें जाय और नियमपूर्वक नियत मात्रामें आहार करे। वहाँ रुषहु नामके ब्राह्मर्षिने सिद्धि पायी थी। सदा गङ्गाद्वारमें स्थित रहते हुए पूर्वजन्मके वृत्तान्तको स्मरण रखनेवाले रुषहुने (अपना) अन्तकाल आया देखाकर (अपने) पुत्रोंसे कहा कि वहाँ (मैं) अपना कल्याण नहीं देख रहा हूँ। मुझे पृथूदक

विज्ञाय तस्य तद्भावं रुचद्गोस्ते तपोधनाः ।
तं वै तीर्थं उपाविन्युः सरस्वत्यास्तपोधनम् ॥ १८

स तैः पुत्रैः समानीतः सरस्वत्यां सभाष्यत ।
स्मृत्वा तीर्थगुणान् सर्वान् प्राहेदमुषिसत्तमः ॥ १९
सरस्वत्युत्तरे तीर्थं यस्त्यजेदात्मनस्तनुम् ।
पृथूदकं जप्यपरो भूतं चामरतां व्रजेत् ॥ २०
तत्रैव ब्रह्मयोऽन्यस्ति ब्रह्मणा यत्र निर्मिता ।
पृथूदकं समाश्रित्य सरस्वत्यास्तटे स्थितः ॥ २१
चातुर्वर्ण्यस्य सुष्ठुर्थमात्मज्ञानपरोऽभवत् ।
तस्याभिध्यायतः सृष्टिं ब्रह्मणो व्यक्तजन्मनः ॥ २२
मुखतो ब्राह्मणा जाता बाहुभ्यां क्षत्रियास्तथा ।
ऊरुभ्यां वैश्यजातीयाः पद्भ्यां शूद्रास्ततोऽभवन् ॥ २३
चातुर्वर्ण्यं ततो दृष्ट्वा आश्रमस्थं ततस्ततः ।
एवं प्रतिष्ठितं तीर्थं ब्रह्मयोनीति संज्ञितम् ॥ २४

तत्र स्नात्वा मुक्तिकामः पुनर्योनिं न पश्यति ।
तत्रैव तीर्थं विख्यातमवकीर्णंति नामतः ॥ २५

यस्मिंस्तीर्थे चको दाल्भ्यो धृतराष्ट्रमवर्षणम् ।
जुहाव वाहनैः सार्धं तत्रायुधयत् ततो नृपः ॥ २६

अथ चक्रं

कथं प्रतिष्ठितं तीर्थमवकीर्णंति नामतः ।
धृतराष्ट्रेण राजा च स किमर्थं प्रसादितः ॥ २७

सौम्यवर्षण उवाच

ऋषयो नैमिषया ये दक्षिणार्थं ययुः पुरा ।
तत्रैव च चको दाल्भ्यो धृतराष्ट्रमयाचत ॥ २८
तेनापि तत्र निन्दार्थमुक्तं पञ्चनृतं तु यत् ।
ततः क्रोधेन भृता मांसमुत्कृत्य तत्र ह ॥ २९
पृथूदके महातीर्थं अवकीर्णंति नामतः ।
जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रे नरपतेस्ततः ॥ ३०
हृयमाने तदा राष्ट्रे प्रवृत्ते यज्ञकर्मणि ।
अक्षीयत ततो राष्ट्रं नृपतेर्दुष्कृतेन वै ॥ ३१

तीर्थ) में ले चला। रुचद्गोस्ते उस भावको जानकर ये तपोधन (पुत्र) उन तपके धनीको सरस्वतीके तीर्थमें ले गये ॥ १४-१८ ॥

उन पुत्रोंद्वारा लाये गये उन ऋषिश्रेष्ठने सरस्वतीमें स्नान करनेके पश्चात् उस तीर्थके सब गुणोंका स्मरण कर यह कहा था—‘सरस्वतीके उत्तरीकी ओर स्थित पृथूदक नामके तीर्थमें अपने शरीरका त्याग करनेवाला अपरमर्त्य मनुष्य निश्चय ही देवत्वको प्राप्त होता है।’ वहीं ब्रह्माद्वारा निर्मित ‘ब्रह्मयोनितीर्थ’ है। जहाँ सरस्वतीके किनारे अवस्थित पृथूदकमें स्थित होकर ब्रह्मा चारों वर्णोंकी सृष्टिके लिये आत्मज्ञानमें लीन हुए थे। सृष्टिके विषयमें अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके चिन्तन करनेपर उनके मुखसे ब्राह्मण, भुजाओंसे क्षत्रिय, दोनों ऊरुओंसे वैश्य और दोनों पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए ॥ १९-२३ ॥

उसके बाद उन्होंने चारों वर्णोंको विभिन्न आश्रमोंमें स्थित हुआ देखा। इस प्रकार ब्रह्मसेवि नामक तीर्थकी प्रतिष्ठा हुई थी। मुक्तिकी कामना करनेवाला व्यक्ति वहाँ स्नान करनेसे पुनर्जन्म नहीं देखता। वहीं अवकीर्ण नामक एक विख्यात तीर्थ भी है जहाँपर दाल्भ्य (दलभ या दल्लिम गोत्रमें उत्पन्न) चक्र नामक ऋषिने क्रोधी धृतराष्ट्रको उसके वाहनके साथ हवन कर दिया था, तब वहाँ राजाको (अपने किये कर्मका) हाल हुआ था ॥ २४-२६ ॥

ब्रह्मियोंने पूछा—अवकीर्ण नामक तीर्थ कैसे प्रतिष्ठित हुआ एवं राजा धृतराष्ट्रने उन (चक्र दाल्भ्य मुनि) को क्यों प्रसन्न किया था? ॥ २७ ॥

लोभदुर्बर्षणने कहा—प्राचीन कालमें नैमिषारण्य निवासी जो ऋषि दक्षिणा पानेके लिये (राजा धृतराष्ट्रके यहाँ) गये थे, उनमेंसे दल्लिभवंशीय चक्र ऋषिने धृतराष्ट्रसे (धनकी) याचना की, उन्होंने (धृतराष्ट्रने) भी निन्दार्थपूर्ण प्राम्थ्य और असत्य बात कही। उसके बाद ये (चक्र दाल्भ्य) आप्तन्न कुछ होकर पृथूदकमें स्थित अवकीर्ण नामक तीर्थमें जा करके मांस काट काटकर धृतराष्ट्रके राष्ट्रके नाम हवन करने लगे तब यज्ञमें राष्ट्रका हवन प्रारम्भ होनेपर राजाके दुष्कर्मके कारण राष्ट्रका क्षय होने लगा ॥ २८-३१ ॥

ततः स चिन्तयामास ब्राह्मणस्य विचेष्टितम् ।
 पुरोहितेन संयुक्तो रत्नान्वादाय सर्वज्ञः ॥ ३२
 प्रसादनार्थं विप्रस्य ज्ञावकीर्णं ययौ तदा ।
 प्रसादितः स राज्ञा च तुष्टः प्रोवाच तं नृपम् ॥ ३३
 ब्राह्मणा नाकमन्तव्याः पुरुषेण विज्ञानता ।
 अवज्ञातो ब्राह्मणस्तु हन्यात् त्रिपुरुषं कुलम् ॥ ३४
 एवमुक्त्वा स नृपतिं राज्येन यशसा पुनः ।
 उत्थापयामास ततस्तस्य राज्ञे हिते स्थितः ॥ ३५
 तस्मिंस्तीर्थे तु यः स्नाति श्रद्धधानो जितेन्द्रियः ।
 स प्राप्नोति नरो भित्त्वं मनसा चिन्तितं फलम् ॥ ३६
 तत्र तीर्थं सुविख्यातं यायतं नाम नामतः ।
 यस्येह यजमानस्य मधु सुखाय वै नदी ॥ ३७
 तस्मिन् स्वातो नरो भक्त्या मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।
 फलं प्राप्नोति यज्ञस्य अश्वमेधस्य मानवः ॥ ३८
 मधुस्त्रवं च भद्रैव तीर्थं पुण्यतमं द्विजाः ।
 तस्मिन् स्वात्वा नरो भक्त्या मधुना तर्पयेत् पितॄन् ॥ ३९
 तत्रापि सुमहतीर्थं वसिष्ठोद्गाहसंज्ञितम् ।
 तत्र स्नातो भक्तियुक्तो चाभिष्टु लोकमाप्नुयात् ॥ ४०

॥ इस प्रकार श्रीकामनपुराणमें उन्नाल्लोसर्वा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३९ ॥



वसिष्ठापवाह नामक तीर्थका उत्पत्ति-प्रसङ्ग

अथवा ऊचुः

वसिष्ठस्यापवाहोऽसौ कथं वै सम्बभूव ह ।
 किमर्थं सा सरिच्छ्रेष्ठा तमूषिं प्रत्यवाहयत् ॥ १

लोकमहर्षिण उवाच

विश्वामित्रस्य राजर्षेर्वसिष्ठस्य महात्मनः ।
 भृशं वैरं बभूवेह तपःस्यर्द्धाकृते भवत् ॥ २

(राष्ट्रको क्षीण होते देख) उसने विचार किया और वह इसे ब्राह्मणका विकर्म जानकर (उस ब्राह्मणको) प्रसन्न करनेके लिये समस्त रत्नोंको लेकर पुरोहितके साथ अवकीर्ण-तीर्थमें गया (और उस) राजाने उन्हें प्रसन्न कर लिया प्रसन्न होकर उन्होंने राजासे कहा — (राजन्!) विद्वान् मनुष्यको ब्राह्मणका अपमान नहीं करना चाहिये। अपमानित हुआ ब्राह्मण मनुष्यके कुलके तीन पुरुषों (पीढ़ियों)-का विनाश कर देता है ऐसा कहकर उन्होंने पुनः राजाको राध्य एवं यज्ञके साथ सम्पन्न कर दिया और वे उस राजाके हितकारी हो गये ॥ ३२- ३५ ॥

उस (अवकीर्ण) तीर्थमें जो जितेन्द्रिय मनुष्य श्रद्धापूर्वक स्नान करता है वह निश्चय मनोऽभिसन्धित फल प्राप्त करता है। वहाँ 'यायत' (यायातिका तीर्थ) नामसे सुविख्यात तीर्थ है, जहाँ यज्ञ करनेवालेके लिये नदीने मधु बहाया था। उसमें भक्तिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है एवं उसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है द्विजो! वहीं 'मधुस्त्रवं' नामक पवित्र तीर्थ है उसमें मनुष्यको भक्तिपूर्वक स्नान कर मधुसे पितरोंका तर्पण करना चाहिये, वहाँपर 'वसिष्ठोद्गाह' नामक सुन्दर महान् तीर्थ है वहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करनेवाला श्वाक महर्षि वसिष्ठके लोकको प्राप्त करता है ॥ ३६-४० ॥

अधियोंने कहा (पूछा)—महाराज! वह वसिष्ठापवाह कैसे उत्पन्न हुआ? उस श्रेष्ठ सरित्ताने वन-अधिको अपने प्रवाहमें क्यों बहा दिया था? ॥ १ ॥
 लोकमहर्षिण बोले—(अधियो!) राजर्षि विश्वामित्र एवं महात्मा वसिष्ठमें तपस्याके विषयमें परस्पर चुनौती होनेके कारण बड़ी भारी शत्रुता हो गयी

आश्रमो वै तसिष्ठस्य स्थाणुतीर्थे बभूव ह ।
 तस्य पश्चिमदिग्भागे विश्वामित्रस्य धीमतः ॥ ३
 यनेद्वा भगवान् स्थाणुः पूजयित्वा सरस्वतीम् ।
 स्थापयामास देवेशो लिङ्गाकारां सरस्वतीम् ॥ ४
 तसिष्ठस्तत्र तपसा धोररूपेण संस्थितः ।
 तस्येह तपसा हीनो विश्वामित्रो बभूव ह ॥ ५
 सरस्वतीं समाहूय इदं वचनमब्रवीत् ।
 तसिष्ठं मुनिशार्दूलं स्तेन वेगेन आगम्य ॥ ६
 इहाहं तं द्विजश्रेष्ठं हनिष्यामि न संशयः ।
 एतच्छ्रुत्वा तु वचनं व्यधिता सा महानदी ॥ ७
 तथा तां व्यधितं दृष्ट्वा जपमानां महानदीम् ।
 विश्वामित्रोऽब्रवीत् कुन्तो तसिष्ठं शीघ्रमानय ॥ ८
 ततो गत्वा सरिच्छ्रेष्ठा तसिष्ठं मुनिसन्तमम् ।
 कथयामास रुदतो विश्वामित्रस्य तद् वचनम् ॥ ९
 तपःक्रियाविशीर्णां च भृशं शोकसमन्विताम् ।
 उवाच स सरिच्छ्रेष्ठा विश्वामित्राय मां वह ॥ १०
 तस्य तद् वचनं श्रुत्वा कृपाशीलस्य सा सरित् ।
 चालयामास तं स्थानात् प्रवाहेणाम्बुसस्तदा ॥ ११
 स च कूलापहरेण मित्रावरुणयोः सुतः ।
 उद्गमानश्च तुष्टाय तदा देवीं सरस्वतीम् ॥ १२
 पितामहस्य सरसः प्रवृत्ताऽभि सरस्वति ।
 व्याप्तं त्वया जगत् सर्वं त्वैवाम्भोभिरुत्तमैः ॥ १३
 त्वमेवाकाङ्क्षा देवी मेघेषु सुजसे पथः ।
 सर्वास्त्वापस्त्वमेवेति त्वत्तो वयमधीमहे ॥ १४
 पुष्टिर्दृतिस्तथा कीर्तिः सिद्धिः कान्तिः क्षया तथ ।
 स्वधा स्वाहा तथा वाणी तवायत्तमिदं जगत् ॥ १५
 त्वमेव सर्वभूतेषु वाणीरूपेण संस्थिता ।
 एवं सरस्वती तेन स्तुता भगवती सदा ॥ १६
 सुखेनोवाह तं विप्रं विश्वामित्राश्रमं प्रति ।
 न्यवेदयत्तदा खिन्ना विश्वामित्राय तं मुनिम् ॥ १७

तसिष्ठका आश्रम स्थाणुतीर्थमें था और उसके पश्चिम
 दिशामें बुद्धिमान् विश्वामित्र महर्षिका आश्रम था, जहाँ
 देवाधिदेव भगवान् शिवने यज्ञ करनेके बाद सरस्वतीकी
 पूजा कर भूर्तिके रूपमें सरस्वतीकी स्थापना की थी।
 तसिष्ठजी वहीं घोर तपस्यामें संलग्न थे। उनकी तपस्वासे
 विश्वामित्र (प्रभावतः) हीन-से होने लगे ॥ २ ५ ॥

(एक बार) विश्वामित्रने सरस्वतीको बुलाकर वह
 वचन कहा—सरस्वति! तुम मुनिश्रेष्ठ तसिष्ठको अपने
 वेगसे बहा लाओ। मैं उन द्विजश्रेष्ठ तसिष्ठको यहाँ मारूँगा
 इसमें संदेहकी बात नहीं है। इस (अवाञ्छनीय बात) —
 को सुनकर वह महानदी दुःखित हो गयी (पर) विश्वामित्रने
 उस प्रकार दुःखित एवं काँपती हुई उस महानदीको
 देखकर क्रोधमें भरकर कहा कि तसिष्ठको शीघ्र लाओ।
 उसके बाद उस श्रेष्ठ नदीने मुनिश्रेष्ठके पास जाकर उनसे
 रोते हुए विश्वामित्रकी उस बातको कहा ॥ १ ९ ॥

उन तसिष्ठजीने तपःपर्यासे दुर्बल एवं अतिशय
 शोक-समन्वित उस श्रेष्ठ सरिता (सरस्वती) — से कहा —
 (तुम) विश्वामित्रके पास मुझे बहा ले चलो। इन
 दयालुके उस वचनको सुनकर उस सरस्वती सरिताने
 जलके (तेज) प्रवाहद्वारा उन्हें उस स्थानसे बहाना
 प्रारम्भ किया। किनारेसे लें जाये जानेके कारण बहते हुए
 मित्रावरुणके पुत्र तसिष्ठ-प्राधि प्रसन्न होकर देवी
 सरस्वतीकी स्तुति करने लगे — सरस्वति! आप ब्रह्माके
 सरोवरसे निकली हैं। आपने अपने उत्तम जलसे समस्त
 जगत्को व्याप्य कर दिया है ॥ १० १३ ॥

'आप ही आकाशगामिनी देवी हैं और मेघोंमें
 जलको उत्पन्न करती हैं। आप ही सभी जलोंके रूपमें
 कर्मग्रन्थ हैं। आपकी ही शक्तिसे हम लोग अध्ययन
 करते हैं। आप ही पुष्टि, धृति, कीर्ति, सिद्धि, कान्ति,
 क्षमा, स्वधा, स्वाहा तथा सरस्वती हैं। यह पूरा विश्व
 आपके ही अधीन है। आप ही समस्त प्राणियोंमें
 वाणीरूपसे स्थित हैं।' तसिष्ठजीने भगवती सरस्वतीकी
 इस प्रकार स्तुति की और सरस्वती नदीने उन
 विप्रदेवको विश्वामित्रके आश्रममें सुखपूर्वक पहुँच
 दिया और छिन्न होकर उन मुनिको विश्वामित्रके स्थान
 निवेदित कर दिया ॥ १४—१७ ॥

तप्मानीतं सरस्वत्या दृष्ट्वा कोपसमन्वितः ।
अथान्विषत् प्रहरणं वमिष्ठान्तकरं तदा ॥ १८

तं तु कुद्धमधिप्रेक्ष्य ब्रह्महत्याभयान्नीदी ।
अपोवाह वसिष्ठं तं मध्ये त्रैवाम्भसस्तदा ।
उभयोः कुर्वती वाक्यं वक्ष्यित्वा च गगधिजम् ॥ १९

ततोऽपवाहितं दृष्ट्वा वसिष्ठमृषिसत्तमम् ।
अब्रवीत् क्रोधरक्ताक्षो विश्वामित्रो महातपाः ॥ २०

यस्यान्मां सरितां श्रेष्ठे वक्ष्यित्वा विनिर्गता ।
शोणितं वह कल्याणि रक्षोग्रामणिसंयुक्त ॥ २१

ततः सरस्वतीं जप्त्वा विश्वामित्रेण धीमता ।
अवहृच्छोणितोन्मिश्रं तोयं संवत्स्रं तदा ॥ २२

अधर्षयश्च देवाश्च गन्धर्वाप्सरस्तदा ।
सरस्वतीं तदा दृष्ट्वा बभूवुर्भृशदुःखिताः ॥ २३

तस्मिंस्तीर्थवरे पुण्ये शोणितं समुपावहत् ।
ततो भूतपिशाचाश्च राक्षसाश्च समागताः ॥ २४

ततस्ते शोणितं सर्वे पिबन्तः सुखपासते ।
तृप्ताश्च सुभृशं तेन सुखिता विगतम्बरः ।
मृत्यन्तश्च हसन्तश्च मया स्वर्गजितस्तथा ॥ २५

कस्यचित्त्वथ कालस्य ऋषयः सतपोधनाः ।
तीर्थयात्रां समाजग्मुः सरस्वत्यां तपोधनाः ॥ २६

तां दृष्ट्वा राक्षसैर्घोरैः पीयमानां महानदीम् ।
परिश्राणे सरस्वत्याः परं यत्नं प्रचक्रिरे ॥ २७

ते तु सर्वे महाभागाः समागम्य महाव्रताः ।
आहूय सरितां श्रेष्ठामिदं वचनमब्रुवन् ॥ २८

किं कारणं सरिच्छ्रेष्ठे शोणितेन हृदो ब्रह्म ।
एवमाकुलतां यातः श्रुत्वा येत्स्यामहे वयम् ॥ २९

ततः सा तर्षमाचष्ट विश्वामित्रविचेष्टितम् ।
ततस्ते मुनयः प्रीता सरस्वत्यां समानयन् ।
अरुणां पुण्यतोयौघं सर्वदुष्कृतनाशनीम् ॥ ३०

उसके बाद सरस्वतीद्वारा बहाकर लाये गये वसिष्ठको देखकर विश्वामित्र क्रोधसे भर गये और वसिष्ठका अन्त करनेवाला शस्त्र दौड़ने लगे उन्हें क्रोधसे भरा हुआ देखकर ब्रह्महत्याके भयसे डरती हुई वह सरस्वती नदी गाधिपुत्र विश्वामित्रको वक्षित कर दोनोंकी बातोंका पालन करती हुई उन वसिष्ठको जलमें (पुनः) बहा ले गयी। उसके बाद ऋषिप्रवर वसिष्ठको अपवाहित होते देखकर महातमस्वी विश्वामित्रके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये फिर विश्वामित्रने कहा— ओ श्रेष्ठ नदी यतः तुम भुङ्गे वक्षितकर चली गयी हो, कल्याणि यतः श्रेष्ठ राक्षसोंसे संयुक्त होकर तुम शोणितका वहन करो— तुम्हारा जल रक्तसे युक्त हो जाय ॥ २८—२९ ॥

उसके बाद बुद्धिमान् विश्वामित्रसे इस प्रकार शाप प्राप्तकर सरस्वतीने एक वर्षतक रक्तसे मिले हुए जलको बहाया। उसके पश्चात् सरस्वती नदीको रक्तसे मिश्रित जलवाली देखकर ऋषि, देवा, गन्धर्व और अप्सराएँ अत्यन्त दुःखित हो गयीं (यतः) उस पवित्र श्रेष्ठ तीर्थमें रुधिर ही बहने लगा। अतः वहाँ भूत, पिशाच, राक्षस एकत्र होने लगे वे सभी रक्तका पान करते हुए वहाँ आनन्दपूर्वक रहने लगे। व उससे अत्यन्त दुष्ट, सुखी एवं निश्चिन्ता होकर इस प्रकार नाचने एवं हँसने लगे, मानो उन्होंने स्वर्गको जीत लिया हो ॥ २२-२५ ॥

कुछ समय बीतनेपर तपस्याके धनी ऋषिलोक तीर्थयात्रा करते करते सरस्वतीके तटपर पहुँचे, (वहाँ) भयानक राक्षसोंके द्वाय पीती जाती हुई महावदी सरस्वतीको देखकर वे उसकी रक्षाके लिये महान् प्रयत्न करने लगे और महान् व्रतोंका अनुष्ठान करनेवाले उन महाभागोंने श्रेष्ठ नदीको (पास) बुलाकर उससे यह वचन फिर कहा—श्रेष्ठ सरिता! हम सब आपसे यह जानना चाहते हैं कि यह जलाशय रक्तसे भरकर ऐसा दुःख कैसे हुआ है? ॥ २६-२९ ॥

तब उसने विश्वामित्रके समस्त विकर्मोंका (उनके सामने डी) वर्णन किया उसके पश्चात् प्रसन्न हुए मुनिजन सरस्वती तथा समस्त पापोंका विनाश करनेवाली अरुणा नदीको ले आये। (जिससे सरस्वती ब्रह्मका

दृष्ट्वा तोयं सरस्वत्या राक्षसा दुःखिता भृशम् ।
ऊचुस्तान् वै मुनीन् सर्वान् दैन्ययुक्तान् पुनः पुनः ॥ ३१

अथ हि क्षुधिता सर्वे धर्महीनाश्च शाश्वताः ।
न च नः कामकारोऽयं यद् अयं पापकारिणः ॥ ३२

युष्माकं चाप्रसादेन दुष्कृतेन च कर्मणा ।
पक्षोऽयं वर्धतेऽस्माकं यतः स्मो ब्रह्मराक्षसाः ॥ ३३

एवं वैश्याश्च शूद्राश्च क्षत्रियाश्च विकर्मभिः ।
ये ब्राह्मणान् प्रद्विषन्ति ते भवन्तीह राक्षसाः ॥ ३४

योषितां चैव पापान्नं योनिदोषेण वर्द्धते ।
इयं संततिरस्माकं गतिं चा सनातनी ॥ ३५

शक्ता भवन्तः सर्वेषां लोकाणामपि सारणे ।
तेषां ते मुनयः श्रुत्वा कृपाशीलाः पुनश्च ते ॥ ३६

ऊचुः परस्परं सर्वे तप्यमानाश्च ते द्विजाः ।
श्रुतकीटावपन्नं च यच्चोच्छिष्टाशितं भवेत् ॥ ३७

केशावपन्नमाधृतं पारुतश्वासदूषितम् ।
एभिः संसृष्टमन्नं च भार्गवै रक्षसां भवेत् ॥ ३८

तस्मान्ज्ञात्वा सदा विद्वान् अन्नान्येतानि वर्जयेत् ।
राक्षसानामसी भुङ्क्ते यो भुङ्क्तेऽन्नमीदृशम् ॥ ३९

शोधयित्वा तु तत्तीर्थमुपयस्ते तपोधनः ।
मोक्षार्थं रक्षसां तेषां संगमं तत्र कल्पयन् ॥ ४०

अरुणायाः सरस्वत्याः संगमे लोकविश्रुते ।
त्रिरात्रोपोषितः स्नातो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ४१

प्राप्ते कलियुगे घोरे अधर्मे प्रत्युपस्थिते ।
अरुणासंगमे स्नात्वा मुक्तिमाप्नोति मानवः ॥ ४२

ततस्ते राक्षसाः सर्वे स्नात्वा पापविवर्जिताः ।
दिव्यमाल्याम्बरधराः स्वर्गस्थितिसमन्वितः ॥ ४३

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें वालीसर्ग अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४० ॥

शोषित पवित्र जल हो गया) (पर) सरस्वतीके जलको (इस प्रकार शुद्ध हुआ) देखकर राक्षस बहुत दुःखित हो गये वे दीनतापूर्वक उन सभी मुनियोंसे बार-बार कहने लगे कि हम सभी सदा भूखे एवं धर्मसे रहित रहते हैं। हम अपनी इच्छासे पापकर्म करनेवाले पापी नहीं बने हुए हैं, अपितु आप लोगोंकी अकृपा एवं अशोभन कर्मोंसे ही हमारा पक्ष बढ़ता रहता है; क्योंकि हम सभी ब्रह्मराक्षस हैं ॥ ३०—३३ ॥

इसी प्रकार जो क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ब्राह्मणोंसे द्वेष करते हैं वे (ऐसे ही) विकर्म करनेके कारण राक्षस हो जाते हैं। पापिनी स्त्रियोंके योनिदोषसे हमारी यह संतति बढ़ती रहती है। यह हमारी प्राचीन गति है आप लोग सभी लोकोंका उद्धार करनेमें समर्थ हैं। (लोमहर्षणजी कहते हैं -) द्विजो वे कृपालु मुनि उन सदाकी रीति ब्रह्मराक्षसोंके इन वचनोंको सुनकर बहुत दुःखी हुए और परस्पर परामर्शकर उनसे बोले (ब्रह्मराक्षसो) झींक तथा कीटके संसर्गसे दूषित, उच्छिष्ट भोजन, केशमुत्त, तिरस्कृत एवं क्षासवायुसे दूषित अन्न तुम राक्षसोंका भोग होगा ॥ ३४—३८ ॥

(पुनः लोमहर्षणजी बोले -) ऋषियो! इसको जानकर विद्वान् पुरुषको चाहिये कि इस प्रकारके अन्नोंका त्याग दे इस प्रकार अन्न खानेवाला व्यक्ति राक्षसोंका भाग खाता है। उन तपोधन ऋषियोंने उस तीर्थको शुद्धकर उन राक्षसोंकी मुक्तिके लिये जहाँ एक सङ्गमकी रचना की। [उसका फल इस प्रकार है—] लोक-प्रसिद्ध अरुणा और सरस्वतीके सङ्गममें तीन दिनोत्तक व्रतपूर्वक स्नान करनेवाला (व्यक्ति) सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। (आगे भी) घोर कलियुग आनेपर तथा अधर्मका अधिक प्रसार हो जानेपर मनुष्य अरुणाके सङ्गममें स्नान करके मुक्ति प्राप्त कर लेंगे इसको सुननेके बाद उन सभी राक्षसोंने उसमें स्नान किया और वे निष्पाप हो गये तथा दिव्य माला और वस्त्र धारणकर स्वर्गमें विराजने लगे ॥ ३९ ४३ ॥

इकतालीसवाँ अध्याय

कुरुक्षेत्रके तीर्थों— शतसाहस्रिक, शक्तिक, रेणुका, ऋणमोचन, ओजस, संनिहति, प्राची सरस्वती, पञ्चवट, कुरुतीर्थ, अनरकतीर्थ, काम्यकथन आदिका वर्णन

लोकहर्षण उवाच

समुद्रास्तत्र जलवारो दर्विणा आहूताः पुरा ।
 प्रयेकं तु नरः स्नातो मोसहस्रफलं लभेत् ॥ १
 यत्किंचिन् क्रियते तस्मिन्स्तपस्तीर्थं द्विजोत्तमः ।
 परिपूर्णं हि तत्सर्वमपि दुष्कृतकर्मेणः ॥ २
 शतसाहस्रिकं तीर्थं तथैव शक्तिकं द्विजा ।
 उभयोर्हि नरः स्नातो मोसहस्रफलं लभेत् ॥ ३
 सोमतीर्थं च तत्रापि सरस्वत्यास्तटे स्थितम् ।
 यस्मिन् स्नातस्तु पुरुषो राजसूयफलं लभेत् ॥ ४
 रेणुकाश्च यमासाक्ष्यं श्रद्धाभावे जितेन्द्रियः ।
 घातृभक्त्या च यत्पुण्यं तत्फलं प्राप्नुयान्नरः ॥ ५
 ऋणमोचनमासाक्ष्यं तीर्थं ब्रह्मनिषेधितम् ।
 ऋणीमुक्तो भवेन्नित्यं देवर्षिपितृसम्भवेः ।
 कुमारस्याभिषेकं च ओजसं नाम विभुतम् ॥ ६
 तस्मिन् स्नातस्तु पुरुषो यशसा च समन्वितः ।
 कुमारपुरमाप्नोति कृत्वा ब्राह्मं तु धानवः ॥ ७
 चैत्रचह्मणं सिते यज्ञे यस्तु ब्राह्मं करिष्यति ।
 गयाब्राह्मे च यत्पुण्यं तत्पुण्यं प्राप्नुयान्नरः ॥ ८
 संनिहत्या यथा ब्राह्मं राहुग्रस्ते दिवाकरे ।
 तत्र ब्राह्मं तत्र कर्तुं मात्र कार्या विचारणा ॥ ९
 ओजसे ब्रह्मण्यं ब्राह्मं वायुना कथितं पुरा ।
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मं तत्र समाचरेत् ॥ १०
 यस्तु स्नानं श्रद्धाधानं चैत्रचह्मणं करिष्यति ।
 अश्वत्थमुदकं तस्य पितृणामुपजायते ॥ ११
 तत्र पञ्चवटं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविभुतम् ।
 महादेवः स्थितो यत्र योगमूर्तिधरः स्वयम् ॥ १२

लोकहर्षणने कहा— प्राचीन कलकी बाल है महर्षि
 दक्षिं वहाँ चार समुद्रोंको ले आये थे। उनमेंसे प्रयेक
 समुद्रमें स्नान करनेसे मनुष्योंको हजार गोदान करनेका
 फल प्राप्त होता है द्विजोत्तम उस तीर्थमें जो तपस्या की
 जाती है, वह पापीद्वारा भी गयी होनेपर भी सिद्ध हो जाती
 है। द्विजो वहाँ शतसाहस्रिक एवं शक्तिक नामके दो तीर्थ
 हैं उन दोनों ही तीर्थोंमें स्नान करनेवाला मनुष्य हजार
 गी दान करनेका फल प्राप्त करता है। वहीं सरस्वतीके
 तटपर सोमतीर्थ भी स्थित है, जिसमें स्नान करनेसे पुरुष
 राजसूययज्ञका फल प्राप्त करता है ॥ १-४ ॥

यमाकी सेवा करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है उस
 पुण्य-फलको इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करनेवाला ब्रह्मा
 मनुष्य रेणुकातीर्थमें जाकर प्राप्त कर लेता है और
 ब्रह्माद्वारा सेवित ऋणमोचन नामके तीर्थमें जाकर देव-
 ऋण, ऋषि ऋण और पितृ-ऋणसे मुक्त जाता है। कुमार
 (कार्तिकेय) का अभिषेकफल ओजसनामसे विख्यात
 है उस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य कीर्ति प्राप्त करता है
 और वहाँ ब्राह्म करनेसे उसे कार्तिकेयके लोकको प्राप्ति
 होती है चैत्रमासकी शुक्ला चह्मि तिथिमें जो मनुष्य वहाँ
 ब्राह्म करेगा, वह गयामें ब्राह्म करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता
 है, उस पुण्यको प्राप्त करता है ॥ ५-८ ॥

राहुद्वारा सूर्यके ग्रस्त हो जानेपर (सूर्यग्रहण लगनेपर)
 संनिहति तीर्थमें किये गये ब्राह्मके समान वहाँका ब्राह्म
 पुण्यप्रद होता है, इसमें अन्यथा विचार नहीं करना
 चाहिये। पूर्वसम्पन्नमें ययुन कहा था कि ओजसतीर्थमें
 किये गये ब्राह्मण्य बन्ध नहीं होता है। इसलिये प्रयत्नपूर्वक
 वहाँ ब्राह्म करना चाहिये। चैत्र मासके शुक्लपक्षकी चह्मि
 तिथिके दिन जो उसमें ब्राह्मपूर्वक स्नान करेगा, उसके
 पितरोंको जन्म (कभी भी श्राव न होनेवाले) जलकी
 प्राप्ति होगी। तीनों लोकोंमें विख्यात एक 'पञ्चवट'
 नामका तीर्थ है जहाँ स्वयं भगवान् महादेव योगसाधन
 करनेकी मुरामें विराजमान हैं ॥ ९-१२ ॥

तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च दैवदेवं महेश्वरम् ।
 गाणपत्यमवाप्नोति दैवतैः सह मोदते ॥ १३

कुरुतीर्थं च विख्यातं कुरुणा यत्र वै तपः ।
 तप्तं सुघोरं क्षेत्रस्य कर्षणार्थं द्विजोत्तमाः ॥ १४

तस्य घोरं तपसा तुष्ट इन्द्रोऽश्ववीद् वचः ।
 राजर्षे परितुष्टोऽस्मि तपसाऽनेन सुव्रतः ॥ १५

यज्ञं ये च कुरुक्षेत्रे करिष्यन्ति शतक्रतोः ।
 ते परिष्यन्ति सुकर्तार्लोकान् पापविघर्जितान् ॥ १६

अबहस्य ततः शक्रो जगाम त्रिदिवं प्रभुः ।
 आगम्यागम्य चैवेनं भूयो भूयो बहस्य च ॥ १७

शतक्रतुरनिर्विण्णः पृष्ट्वा पृष्ट्वा जगाम ह ।
 यदा तु तपसोरेण चक्रर्षं देहमात्मनः ।
 ततः शत्रोऽश्ववीत् प्रीत्या ब्रूहि यत्ते त्वितीर्षितम् ॥ १८

कुरुक्षेत्र

ये श्रद्धधानास्तीर्थेऽस्मिन् मानवा निवसन्ति ह ।
 ते प्राप्नुवन्तु सदनं ब्राह्मणः परमात्मनः ॥ १९

अन्यत्र कृतपापा ये पञ्चपातकदूषिताः ।
 अस्मिन्तीर्थे भ्रातः स्नात्वा मुक्ता सन्तु परं गतिम् ॥ २०

कुरुक्षेत्रे पुण्यतमं कुरुतीर्थं द्विजोत्तमाः ।
 तं दृष्ट्वा पापमुक्तस्तु परं पदमवाधुयात् ॥ २१

कुरुतीर्थे नरः ज्ञासो मुक्तो भवति किल्बिषैः ।
 कुरुणा समनुज्ञातः प्राप्नोति परमं पदम् ॥ २२

स्वर्गद्वारं ततो गच्छेच्छिवद्वारे व्यवस्थितम् ।
 तत्र स्नात्वा शिवद्वारे प्राप्नोति परमं पदम् ॥ २३

ततो गच्छेदनरकं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
 यत्र पूर्वं स्थितो ब्रह्मा दक्षिणे तु महेश्वरः ॥ २४

रुद्रपत्नी पश्चिमतः पद्मनाभोत्तरे स्थितः ।
 मध्ये अनरकं तीर्थं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम् ॥ २५

उस (पञ्चवट) स्थानपर ज्ञान करके देवधिदेव महादेवकी पूजा करनेवाला मनुष्य गणपतिका पद और देवताओंके साथ आनन्द प्राप्त करता हुआ प्रसन्न रहता है। श्रेष्ठ द्विजों। 'कुरुतीर्थ' विख्यात तीर्थ है, जिसमें कुरुने कीर्तिकी प्राप्तिके लिये धर्मकी खेती करनेके लिये तपस्या की थी उनकी घोर तपस्यासे प्रसन्न होकर इन्द्रने कहा—सुन्दर व्रतोंके करनेवाले राजर्षि! तुम्हारी इस तपस्यासे मैं संतुष्ट हूँ। (सुनो) इस कुरुक्षेत्रमें जो लोग इन्द्रका यज्ञ करेंगे, वे लोग पापरहित हो आवेंगे और पवित्र लोकोंको प्राप्त होंगे इसना कहकर इन्द्रदेव मुक्तकरकर स्वर्ग चले गये बिना छिन्न हुए इन्द्र बारंबार आये और तपहस्तपूर्वक उनसे (उनकी योजनाके सम्बन्धमें कुछ) पूछ-पूछकर चले गये। कुरुने जब उग्र तपस्याद्वारा अपनी देहका कर्षण किया तो इन्द्रने प्रेमपूर्वक उनसे कहा—'कुरु! तुम्हें जो कुछ करनेकी इच्छा हो उसे कहो' ॥ १३-१८ ॥

कुरुने कहा—इन्द्रदेव जो ब्रह्मासु मानव इस तीर्थमें निवास करते हैं, वे परमात्मरूप परब्रह्मके लोकको प्राप्त करते हैं। इस स्थानसे अन्यत्र पाप करनेवालों एवं पञ्चपातकोंसे दूषित मनुष्य भी इस तीर्थमें स्नान करनेसे मुक्त होकर परमगतिको प्राप्त करता है। (सोमकर्षणने कहा—) श्रेष्ठ ब्राह्मणों! कुरुक्षेत्रमें कुरुतीर्थ सर्वाधिक पवित्र है। इसका दर्शन कर पापहत्या मनुष्य (भी) मोक्ष प्राप्त कर लेता है तथा कुरुतीर्थमें स्नानकर पापोंसे छूट जाता है एवं कुरुकी आज्ञासे परमपद (मोक्ष)—को प्राप्त करता है ॥ १९-२२ ॥

फिर (कुरुतीर्थमें स्नान करनेके बाद) शिवद्वारमें स्थित स्वर्गद्वारको जाय (और स्नान करे), क्योंकि वहाँ (शिवद्वारमें) स्नान करनेसे मनुष्य परमपदको प्राप्त करता है। शिवद्वार जानेके पश्चात् तीनों लोकोंमें विख्यात अनरक नामके तीर्थमें जाय। उस अनरकके पूर्वमें ब्रह्मा, दक्षिणमें महेश्वर, पश्चिममें रुद्रपत्नी एवं उत्तरमें पद्मनाभ और इन सबके मध्यमें अनरक नामका तीर्थ स्थित है; यह तीनों लोकोंके लिये भी दुर्लभ है— ॥ २३-२५ ॥

यस्मिन् स्नातस्तु मुच्येत पातकैरुपपातकैः ।
 वैशाखे च यदा षष्ठी मङ्गलस्य दिनं भवेत् ॥ २६
 तदा स्नानं तत्र कृत्वा मुक्तो भवति पातकैः ।
 यः प्रयच्छेत् करकांश्चतुरो भक्ष्यसंयुतान् ॥ २७
 कलशं च तथा दद्यादपूपैः परिशोभितम् ।
 देवताः प्रीणयेत् पूर्वं करैरन्नसंयुतैः ॥ २८
 ततस्तु कलशं दद्यात् सर्वपातकनाशनम् ।
 अनेनैव विधानेन यस्तु स्नानं समाचरेत् ॥ २९
 स मुक्तः कलुषैः सर्वैः प्रयाति परमं पदम् ।
 अन्यत्रापि यदा षष्ठी मङ्गलेन भविष्यति ॥ ३०
 तत्रापि मुक्तिफलदा क्रिया तस्मिन् भविष्यति ।
 तीर्थं च सर्वतीर्थानां यस्मिन् स्नातो द्विजोत्तमः ॥ ३१
 सर्वदेवीरनुज्ञातः परं पदमवाप्नुयात् ।
 काम्यकं च वनं पुण्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ ३२
 यस्मिन् प्रविष्टमात्रस्तु मुक्तो भवति किल्बिषैः ।
 यमाश्रित्य वनं पुण्यं सविता प्रकटः स्थितः ॥ ३३
 पूषा नाम द्विजश्रेष्ठा दर्शानामुक्तिमाप्नुयात् ।
 आदित्यस्य दिने प्राप्ते तस्मिन् स्नातस्तु मानवः ।
 विशुद्धदेहो भवति मनसा चिन्तितं लभेत् ॥ ३४

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४१ ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



काम्यकवन तीर्थका प्रसङ्ग, सरस्वती नदीकी महिमा और तत्सम्बद्ध तीर्थोंका वर्णन

अथ उचुः

काम्यकस्य तु पूर्वेण कुलं देवीर्निषेधितम् ।
 तस्य तीर्थस्य सम्भूतिं विस्तरेण ब्रवीहि न ॥ १

श्रीमहर्षि उवाच

शृण्वन्तु मनुजः सर्वे तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ।
 श्रुत्वा घोरितं श्रुत्वा मुक्तो भवति किल्बिषैः ॥ २

जिस (अनरकतीर्थ) में स्नान करनेवाला मनुष्य छोटे-बड़े सभी पापोंसे छूट जाता है जब वैशाखमासकी षष्ठी तिथिको मङ्गल दिन हो तब वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य पापोंसे छूट जाता है (उस दिन) खाद्य पदार्थसे संयुक्त चार करक (करवे या कमण्डलु) एवं मालपुओं आदिसे सुशोभित कलशका दान करे। पहले अन्नसे युक्त करवाँसे देवताकी पूजा करे, फिर सम्पूर्ण पापोंके नाश करनेवाले कलशका दान करे। जो मानव इस विधानसे स्नान करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट आयागा और परमपदको प्राप्त करेगा इसके अतिरिक्त (वैशाखके सिवा) अन्य समयमें भी मङ्गलके दिन षष्ठी तिथि होनेपर उस तीर्थमें को हुई पूर्वोक्त क्रिया मुक्ति देनेवाली होगी ॥ २६—३० ॥

श्रेष्ठ द्विजो वहाँ समस्त पापोंका विनाश करनेवाला तीर्थ-सितोष्णिग काम्यकवन नामका एक तीर्थ है जो मनुष्य उसमें स्नान करता है, वह सभी देवोंकी अनुमतिसे परमपदको प्राप्त करता है। इस वनमें प्रवेश करनेसे ही मनुष्य अपने समस्त पापोंसे छूट जाता है इस पवित्र वनमें पूषा नामके सूर्यभगवान् प्रत्यक्ष रूपसे स्थित हैं द्विजश्रेष्ठो! उन सूर्यभगवान्के दर्शनसे मुक्ति प्राप्त होती है रविचारको उस तीर्थमें स्नान करनेवाला मनुष्य विशुद्ध देह हो जाता है और अपने मनोरथको प्राप्त करता है ॥ ३१—३४ ॥

अधियोंने पूछा—(लोमहर्षणजी!) काम्यकवनके पूर्वमें स्थित कुलका आश्रयण देवताओंने किया था, पर उस काम्यकवन-तीर्थकी उत्पत्ति कैसे हुई इसे आप हमें विस्तारसे बतलाइये ॥ १ ॥

लोमहर्षणजी बोले—(उत्तर दिया) — मुनियो! आप सभी लोग इस तीर्थके श्रेष्ठ माहात्म्यको सुनें अधियोंके चरित्रको सुननेसे मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है।

नैमिषेयाश्च श्रपयः कुरुक्षेत्रे समागताः ।
सरस्वत्यास्तु स्नानार्थं प्रवेशं ते न लेभिरे ॥ ३

ततस्ते कल्पयामासुस्तीर्थं यज्ञोपवीतिकम् ।
शेषास्तु मुनयस्तत्र न प्रवेशं हि लेभिरे ॥ ४

रन्तुकस्याश्रमाभावाद् यावत्तीर्थं सचक्रकम् ।
आश्रणीं परिपूर्णं तु दृष्ट्वा देवी सरस्वती ॥ ५

हितार्थं सर्वधिप्राणां कृत्वा कुञ्जानि सा नदी ।
प्रयाता पश्चिमं मार्गं सर्वभूतहिते स्थिता ॥ ६

पूर्वप्रवाहे यः स्नाति गङ्गास्नानफलं लभेत् ।
प्रवाहे दक्षिणे तस्या नर्मदा सरितां वरा ॥ ७

पश्चिमे तु दिशाभागे यमुना संश्रिता नदी ।
यदा उत्तरतो घाति सिन्धुर्भवति सा नदी ॥ ८

एवं दिशाप्रवाहेण याति पुण्या सरस्वती ।
तस्यां स्नातः सर्वतीर्थं स्नातो भवति मानवः ॥ ९

ततो गच्छेद् द्विजश्रेष्ठा मदनस्य महात्मनः ।
तीर्थं त्रैलोक्यविख्यातं विहारं नाम नामतः ॥ १०

यत्र देवाः समागम्य शिवदर्शनकाङ्क्षिणः ।
समागता न चापश्यन् देवं देव्या समन्वितम् ॥ ११

ते स्तुवन्तो महादेवं नन्दिनं गणनायकम् ।
ततः प्रसन्नो नन्दीशः कथयामास चोद्धितम् ॥ १२

भवस्य ठमया साधं विहारे क्रीडितं महत् ।
तच्छ्रुत्वा देवतास्तत्र पत्नीराहूय क्रीडिताः ॥ १३

तेषां क्रीडाविनोदेन तुष्टः प्रोवाच शंकरः ।
योऽस्मिन्तीर्थे नरः स्नाति विहारे ब्रह्मयान्वितः ॥ १४

धनधान्यप्रियैर्वृत्तो भवते नात्र संशयः ।
दुर्गातीर्थं ततो गच्छेद् दुर्गया सेवितं महत् ॥ १५

यत्र स्नात्वा पितृन् पुण्यं न दुर्गातिष्ठापुयात् ।
तत्रापि च सरस्वत्याः कूर्पं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ १६

(एक बारकी बात है) नैमिषारण्यके निवासी ऋषि सरस्वती नदीमें स्नान करनेके लिये कुरुक्षेत्र आये परंतु वे सरस्वतीमें स्नान करनेके लिये प्रवेश न पा सके तब उन्होंने यज्ञोपवीतिक नामके एक तीर्थकी कल्पना कर ली। (पर फिर भी) शेष मुनिलोग उसमें भी प्रवेश न पा सके। सरस्वतीने देखा कि रन्तुक आश्रमसे सचक्रकतक जितने भी तीर्थस्थल हैं, वे सब-क-सब ब्राह्मणोंसे भर गये हैं। इसलिये सभी ब्राह्मणोंके कल्याणके लिये उस सरस्वती नदीने कुछ बना दिया और सभी प्राणियोंकी भलाईमें तत्पर होकर वह पश्चिम मार्गकी (पश्चिमवाहिनी बनकर) चल पड़ी ॥ ३—६ ॥

जो मनुष्य सरस्वतीके पूर्वी प्रवाहमें स्नान करता है, उसे गङ्गामें स्नान करनेका फल प्राप्त होता है। उसके दक्षिणी प्रवाहमें सरिताओंमें श्रेष्ठ नर्मदा एवं पश्चिम दिशाकी ओर यमुना नदी संश्रिता है। किंतु जब वह उत्तर दिशाकी ओर बहने लगती है तो वह सिन्धु हो जाती है। इस प्रकार विभिन्न दिशाओंमें वह पवित्र सरस्वती नदी (भिन्न-भिन्न रूपोंमें) प्रवाहित होती है। उस सरस्वती नदीमें स्नान करनेवाला मनुष्य मानो सभी तीर्थोंमें स्नान कर लेता है। द्विजश्रेष्ठो सरस्वती नदीमें स्नान करनेके बाद तीर्थसेवीको तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध महत्त्वा मदनके 'विहार' नामक तीर्थमें जाना चाहिये ॥ ७—१० ॥

जहाँपर भगवान् शिवके दर्शनभिलाषी देवता आये, पर वे उमासहित शिवका दर्शन न कर पाये वे लोग गणनायक महादेव नन्दीकी स्तुति करने लगे। इससे नन्दीधर प्रसन्न हो गये और (उन्होंने) उमाके साथ की जा रही शिवकी महती विहार-क्रीडाका वर्णन किया। यह सुनकर देवताओंने भी अपनी पत्नियोंकी बुलाया और उनके साथ (उन लोगोंने भी) क्रीडा की। उनके क्रीडा-विनोदसे शंकर प्रसन्न हो गये और बोले—इस विहार-तीर्थमें जो ब्रह्मके साथ स्नान करेगा, वह वि-संदेह धन-धान्य एवं प्रिय सम्पत्तियोंसे सम्पन्न होगा। उमा-शिवके विहार-स्थलकी यात्राके बाद दुर्गासे प्रतिष्ठित उस महत् दुर्गातीर्थमें जाना चाहिये ॥ ११—१५ ॥

जहाँ स्नानकर पितरोंकी पूजा करनेसे मनुष्यको दुर्गातकी प्राप्ति नहीं होती उसी स्थानपर तीनों लोकोंमें

दर्शनान्मुक्तिमाप्नोति सर्वपातकवर्जितः ।
यस्तत्र तर्पयेद् देवान् पितॄंश्च ब्रह्मयान्वितः ॥ १७

अक्षय्यं लभते सर्वं पितृतीर्थं विशिष्यते ।
मातृहा पितृहा यश्च ब्रह्महा गुरुतत्पणः ॥ १८

स्नात्वा शुद्धिमवाप्नोति यत्र प्राची सरस्वती ।
देवमार्गप्रविष्टा च देवमार्गेण निःसृता ॥ १९
प्राची सरस्वती पुण्या अपि दुष्कृतकर्मणाम् ।
त्रिरात्रं ये करिष्यन्ति प्राचीं प्राप्य सरस्वतीम् ॥ २०

न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद् देहमाश्रित्य तिष्ठति ।
नरन्तरायणी देवी ब्रह्मा स्थाणुस्तथा रविः ॥ २१
प्राचीं दिशं निषेवन्ते सदा देवाः सक्कसभाः ।
ये तु ब्राह्मं करिष्यन्ति प्राचीमाश्रित्य मानवाः ॥ २२

तेषां न दुर्लभं किञ्चिदिह लोके परत्र च ।
तस्मात् प्राची सदा सेव्या पञ्चम्यां च विशेषतः ॥ २३

पञ्चम्यां सेवमानस्तु सक्ष्मीवाङ्मायते नरः ।
तत्र तीर्थमौलनसं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम् ॥ २४

उशाना यत्र संसिद्ध आराध्य परमेश्वरम् ।
ग्रहमध्येषु पूज्यते तस्य तीर्थस्य सेवनात् ॥ २५

एवं शुक्रेण मुनिना सेवितं तीर्थमुत्तमम् ।
ये सेवन्ते ब्रह्मधानास्ते यान्ति परमं गतिम् ॥ २६

यस्तु ब्राह्मं नरो भक्त्या तस्मिंस्तीर्थं करिष्यति ।
पितरस्तापितास्तेन भविष्यन्ति न संशयः ॥ २७

चतुर्मुखं ब्रह्मतीर्थं सरो मर्यादया स्थितम् ।
ये सेवन्ते चतुर्दश्यां स्रोतसासा वसन्ति च ॥ २८

आष्टम्यां कृष्णपद्मस्य चैत्रे मासि द्विजोत्तमाः ।
ते पश्यन्ति परं सुखं यस्मान्भवतर्तते पुनः ॥ २९

स्थाणुतीर्थं ततो गच्छेत् सहस्रलिङ्गशोभितम् ।
तत्र स्थाणुवटं दृष्ट्वा मुक्तो भवति किस्त्रिवै ॥ ३०

प्रसिद्ध सरस्वतीका एक कूप है। उसका दर्शन करनेमात्रसे ही मनुष्य सभी पापोंसे रहित हो जाता है और मुक्ति प्राप्त करता है। जो वहाँ ब्रह्मपूर्वक देवता और पितरोंका तर्पण करता है वह व्यक्ति समस्त अक्षय्य (कभी भी न होनेवाले) पदार्थोंको प्राप्त करता है। पितृतीर्थकी विशेष महता है। उस तीर्थमें माता, पिता और ब्राह्मणका घातक तथा गुरुपत्नीगामी भी खान करनेसे (ही) शुद्ध हो जाता है। वहीं पूर्व दिशाकी ओर बहनेवाली सरस्वती देवमार्गमें प्रविष्ट होकर देवमार्गसे ही निकली हुई है ॥ १६—१९ ॥

पूर्ववाहिनी सरस्वती दुष्कर्मियोंके लिये भी पुण्य देनेवाली है। जो प्राची सरस्वतीके निकट जाकर त्रिरात्रव्रत करता है, उसके शरीरमें कोई पाप नहीं रह जाता। नर और नारायण—ये दोनों देव, ब्रह्म, स्थाणु तथा सूर्य एवं इन्द्रसहित सभी देवता प्राची दिशाका सेवन करते हैं। जो मानव प्राची सरस्वतीमें ब्राह्म करेंगे, उन्हें इस लोक तथा परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा, अतः प्राची सरस्वतीका सर्वदा सेवन करना चाहिये। विशेषतः पञ्चमीके दिन पञ्चमी तिथिमें प्राची सरस्वतीका सेवन करनेवाला मनुष्य लक्ष्मीवान् होता है। वहीं तीनों लोकोंमें दुर्लभ औरानस नामका तीर्थ है। जहाँ परमेश्वरकी आराधना कर कुत्रचार्थ सिद्ध हो गये थे। उस तीर्थका सेवन करनेसे ग्रहोंके मध्य उनकी पूजा होती है ॥ २०—२५ ॥

इस प्रकार शुक्रमुनिके द्वारा सेवित उत्तमतीर्थका जो ब्रह्मपूर्वक (स्वयं) सेवन करते हैं, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं। उस तीर्थमें भक्तिपूर्वक जो व्यक्ति ब्राह्म करेगा, उसके द्वारा उसके पितर निःसन्देह तर जायेंगे। द्विजोत्तमो! जो सरोवरकी मर्यादासे स्थित चतुर्मुख ब्रह्मतीर्थमें चतुर्दशोके दिन उपवासव्रत करते हैं तथा चैत्रमासके कृष्णपक्षकी अष्टमीतक निवास करके तीर्थका सेवन करते हैं, उन्हें परम सुख (तत्त्व) का दर्शन प्राप्त होता है; जिससे वे पुनः संसारमें नहीं आते। ब्रह्मतीर्थके नियम पालन करनेके बाद सहस्रलिङ्गसे शोभित स्थाणुतीर्थमें जाय। वहाँ स्थाणुवटका दर्शन प्राप्त कर मनुष्य पापोंसे विमुक्त हो जाता है ॥ २६—३० ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें ब्रह्मतीर्थकी अस्त्राय समाप्त हुआ ॥ ४२ ॥

तिरालीसवाँ अध्याय

**स्थाणुतीर्थ, स्थाणुवट और सांनिहत्य सरोवरके सम्बन्धमें प्रश्न
और ब्रह्माके हवालेसे लोमहर्षणका उत्तर**

अथ ब्रह्मः

स्थाणुतीर्थस्य माहात्म्यं वटस्य च महामुने।
सांनिहत्यसरोत्पत्तिं पूरणं पशुना ततः ॥ १

लिङ्गानां दर्शनात् पुण्यं स्पर्शनेन च किं फलम्।
तथैव सरमाहात्म्यं ब्रूहि सर्वमशेषतः ॥ २

लोमहर्षण उवाच

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे पुराणं वामनं महत्।
यच्छ्रुत्वा मुक्तिमप्नोति प्रसादाद् वामनस्य तु ॥ ३

सनत्कुमारमासीनं स्थाणुवटसमीपतः।
अधिभिर्बाललिखित्यादौ ब्रह्मपुत्रैर्महात्मभिः ॥ ४

मार्कण्डेयो मुनिस्तत्र विनयेनाभिगम्य च।
पप्रच्छ सरमाहात्म्यं प्रमाणं च स्थितिं तथा ॥ ५

मार्कण्डेय उवाच

ब्रह्मपुत्र महाभाग सर्वशास्त्रविशारद।
ब्रूहि मे सरमाहात्म्यं सर्वपापक्षयावहम् ॥ ६

कानि तीर्थानि दृश्यानि गुह्यानि द्विजसन्तम।
लिङ्गानि ह्यतिपुण्यानि स्थाणोर्धानि समीपतः ॥ ७

येषां दर्शनमात्रेण मुक्तिं प्राप्नोति मानवः।
वटस्य दर्शनं पुण्यमुत्पत्तिं कथयस्व मे ॥ ८

प्रदक्षिणायां यत्पुण्यं तीर्थस्नानेन यत्फलम्।
गुह्येषु चैव दृष्टेषु यत्पुण्यमभिज्जयते ॥ ९

देवदेवो यथा स्थाणुः सरोमध्ये व्यवस्थितः।
किमर्थं पशुना शक्रस्तीर्थं पूरितवान् पुनः ॥ १०

स्थाणुतीर्थस्य माहात्म्यं चक्रतीर्थस्य यत्फलम्।
सूर्यतीर्थस्य माहात्म्यं सोमतीर्थस्य ब्रूहि मे ॥ ११

(स्थाणुतीर्थमें जाने तथा स्थाणुवटके दर्शनसे मुक्ति-प्राप्ति होनेकी बात सुननेके बाद) ऋषियोंने पूछा— महामुने! आप स्थाणुतीर्थ एवं स्थाणुवटके माहात्म्य तथा सांनिहत्य सरोवरकी उत्पत्ति और इन्द्रद्वारा उसके फूलसे भरे जानेके कारणका वर्णन करें (इसी प्रकार) लिङ्गोंके दर्शनसे होनेवाले पुण्य तथा स्पर्शसे होनेवाले फल और सरोवरके माहात्म्यका भी पूर्णतः वर्णन करें ॥ १ २ ॥

लोमहर्षणजी बोले—मुनियो आप लोग महान् वामनपुराणको श्रवण करें, जिसका श्रवण कर मनुष्य वामनभगवान्की कृपासे मुक्ति पा लेता है। (एक समय) ब्रह्मके पुत्र सनत्कुमार महात्म बाललिखित आदि ऋषियोंके साथ स्थाणुवटके पास बैठे हुए थे महर्षि मार्कण्डेयने उनके निकट जाकर नम्रतापूर्वक सरोवरके माहात्म्य, उसके विस्तार और स्थितिके विषयमें पूछा— ॥ ३ ५ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा (पूछा)—सर्वशस्त्रविशारद महाभाग ब्रह्मपुत्र (सनत्कुमार)! आप मुझसे सभी पापोंके नाश करनेवाले सरोवरके माहात्म्यको कहिये। द्विजब्रह्म स्थाणुतीर्थके पास कौन-कौन-से तीर्थ दृश्य हैं और कौन-कौन-से अदृश्य और कौन-से लिङ्ग अत्यन्त पवित्र हैं जिनका दर्शन कर मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है। मुने! आप स्थाणुवटके दर्शनसे होनेवाले पुण्य तथा उसकी उत्पत्तिके विषयमें भी कहिये—बताइये। इनकी प्रदक्षिणा करनेसे होनेवाले पुण्य, तीर्थमें स्नान करनेसे मिलनेवाले फल एवं गुप्त तीर्थों तथा प्रकट तीर्थोंके दर्शनसे मिलनेवाले पुण्यका भी वर्णन करें। प्रभो! सरोवरके मध्यमें देवाधिदेव स्थाणु (शिव) किस प्रकार स्थित हुए और किस कारणसे इन्द्रने इस तीर्थको पुनः धूलिसे भर दिया? आप स्थाणुतीर्थका माहात्म्य, चक्रतीर्थका फल एवं सूर्यतीर्थ तथा सोमतीर्थका माहात्म्य—इन

शंकरस्य च गुह्यानि विष्णोः स्थानानि यानि च ।
कथयस्व महाभाग सरस्वत्याः सविस्तरम् ॥ १२

ब्रूहि देवाधिदेवस्य महात्म्यं देव तत्त्वतः ।
विरिञ्चस्य प्रसादेन विदितं सर्वमेव च ॥ १३

ह्येवमहर्षय उवाच

मार्कण्डेयवचः श्रुत्वा ब्रह्मात्मा स महामुनिः ।
अतिभक्त्या तु तीर्थस्य प्रवर्णीकृतमानसः ॥ १४

पर्यङ्कं शिथिलीकृत्वा नमस्कृत्वा महेश्वरम् ।
कथयामास तत्सर्वं यच्चकृतं ब्रह्मणः पुरा ॥ १५

सन्तकुमार उवाच

नमस्कृत्य महादेवमीशानं वरदं शिवम् ।
उत्पत्तिं च प्रवक्ष्यामि तीर्थानां ब्रह्मभाषिताम् ॥ १६

पूर्वमेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
बृहदण्डमभूदेकं प्रजानां बीजसम्भवम् ॥ १७

तस्मिन्नण्डे स्थितो ब्रह्मा शयनायोपचक्रमे ।
सहस्रयुगपर्यन्तं सुप्त्वा स प्रत्यबुध्यत ॥ १८

सुप्तोत्थितस्तदा ब्रह्मा शून्यं लोकमपश्यत् ।
सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य रजसा मोहितस्य च ॥ १९

रजः सृष्टिगुणं प्रोक्तं सत्त्वं स्थितिगुणं विदुः ।
उपसंहारकाले च तमोगुणः प्रवर्तते ॥ २०

गुणातीतः स भगवान् व्यापकः पुरुषः स्मृतः ।
तेनैव सकलं व्याप्तं यत्किञ्चिज्जीवसंज्ञितम् ॥ २१

स ब्रह्मा स च गोविन्द ईश्वरः स सनातनः ।
यस्तं वेद महात्मानं स सर्वं वेद मोक्षयितु ॥ २२

किं तेषां सकलैस्तीर्थैराश्रमैर्वा प्रयोजनम् ।
येषामनन्तकं चित्तमात्मन्येव व्यवस्थितम् ॥ २३

आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था
सत्योदका शीलसमाधियुक्ता ।

सबको मुझसे कहिये महाभाग! सरस्वतीके निकट शंकर तथा विष्णुके जो-जो गुप्त स्थान हैं उनका भी आप विस्तारपूर्वक वर्णन करें देव देवाधिदेवके महात्म्यको आप भलीभाँति बतायें, क्योंकि ब्रह्माकी कृपासे आपको सब कुछ विदित है ॥ १६—१३ ॥

लोमहर्षणने कहा (उत्तर दिया)—मार्कण्डेयके वचनको सुनकर ब्रह्मस्वरूप महामुनिका मन उस तीर्थके प्रति अत्यन्त भक्ति प्रवर्ण होनेसे गद्गद हो गया उन्होंने आसनसे उठकर भगवान् शंकरको प्रणाम किया तथा प्राचीनकालमें ब्रह्मासे इसके विषयमें जो कुछ सुना था उन सबका वर्णन किया ॥ १४—१५ ॥

सन्तकुमारने कहा मैं कल्याणकर्ता, वरदानो महादेव ईशानको नमस्कार कर ब्रह्मासे कहे हुए तीर्थकी उत्पत्तिके विषयमें वर्णन करूँगा। प्राचीन कालमें जब महाप्रलय हो गया और सर्वत्र केवल जल ही जल हो गया एवं उसमें समस्त चर-अचर जगत् नष्ट हो गया, तब प्रजाओंके बीजस्वरूप एक 'अण्ड' उत्पन्न हुआ ब्रह्मा उस अण्डमें स्थित थे। उन्होंने उसमें अपने सोनेका उपक्रम किया। फिर तो वे हजारों युगीतक सोते रहे उसके बाद अगे। ब्रह्मा जब सोकर उठे, तब उन्होंने संसारको शून्य देखा। (जब उन्होंने संसारमें कुछ भी नहीं देखा) तब रजोगुणसे आविष्ट हो गये और सृष्टिके विषयमें विचार करने लगे ॥ १६—१९ ॥

रजोगुणको सृष्टिकारक तथा सत्त्वगुणको स्थिति-कारक माना गया है। उपसंहार करनेके समयमें तमोगुणकी प्रवृत्ति होती है परन्तु भगवान् वास्तवमें व्यापक एवं गुणहीन हैं। वे पुरुष नामसे कहे जाते हैं। जीव नामसे निर्दिष्ट सारे पदार्थ उन्हींसे ओतप्रोत हैं। वे ही ब्रह्मा हैं वे ही विष्णु हैं और वे ही सनातन महेश्वर हैं। मोक्षके ज्ञानी जिस प्राणीने उन महान् आत्माको समझ लिया, उसने सब कुछ जान लिया। जिस मनुष्यका अनन्त (बहुमुखी) चित्त उन परमात्मामें ही भलीभाँति स्थित है, उनके लिये सारे तोष एवं आश्रमोंसे क्या प्रयोजन? ॥ २०—२३ ॥

यह आत्मारूपी नदी शील और समाधिसे युक्त है। इसमें संयमरूपी पवित्र तीर्थ है, जो साररूपी जलसे

तस्यां स्नातः पुण्यकर्मा पुनाति
न चारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा ॥ २४
एतत्प्रधानं पुरुषस्य कर्म
यदात्मसम्बोधसुखे प्रविष्टम् ।
ज्ञेयं तदेव प्रवदन्ति सन्त-
स्तत्राप्य देही विजहाति कामान् ॥ २५
नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति विमं
यद्येकता समता सत्यता च ।
शीले स्थितिर्दण्डविधानवर्जन-
मक्रोधनश्रोपरमः क्रियाभ्यः ॥ २६
एतद् ब्रह्म समासेन भयोक्तं ते द्विजोत्तम ।
यज्ज्ञात्वा ब्रह्म परमं प्राप्यसि त्वं न संशयः ॥ २७
इदानीं शृणु चोत्पत्तिं ब्रह्मणः परमात्मनः ।
इमं चोदाहरन्येष श्लोकं नारायणं प्रति ॥ २८
आपो नारा वै तनव इत्येवं नाम शशुमः ।
तासु षोढे स यस्माञ्च तेन नारायणः स्मृतः ॥ २९
विबुद्धः सलिले तस्मिन् किञ्चाध्यान्तर्गतं जगत् ।
अण्डं विभेद भगवांस्तस्मादोभित्यजायत ॥ ३०
ततो भूरभवत् तस्माद् भुव इत्यपरः स्मृतः ।
सः जब्दश्च तृतीयोऽभूद् भूर्भुवः स्येति संज्ञितः ॥ ३१
तस्मात्तेजः समभवत् तत्सञ्चितुर्विषयं यत् ।
उदकं शोषयामास यत्तेजोऽण्डविनिःसृतम् ॥ ३२
तेजसा शोषितं शोषं कललत्वमुपागतम् ।
कललाद् बुद्बुद् ज्ञेयं ततः काठिन्यत्वं गतम् ॥ ३३
काठिन्याद् धरणी ज्ञेयं भूतानां धारिणी हि सा ।
यस्मिन् स्थाने स्थितं ह्यण्डं तस्मिन् स्निहितं सरः ॥ ३४
यदाहं निःसृतं तेजस्तस्मादादित्य उच्यते ।
अण्डमध्ये समुत्पन्नो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ३५
तत्त्वं तस्याभवन्मेरुर्जरायुः पर्वताः स्मृतः ।
गर्भोदकीं समुद्राश्च तथा नद्यः सहस्रशः ॥ ३६

परिपूर्ण है। जो पुण्यकर्मा इस (नदी) में स्नान करता है, वह पवित्र हो जाता है, (पिये जानेवाले सामान्य) जलसे अन्तरात्माको शुद्धि नहीं होती। इसलिये पुरुषका मुख्य कर्तव्य है कि वह आत्मज्ञानरूपी सुखमें प्रविष्ट रहे, महात्मा लोग उसीको 'ज्ञेय' कहते हैं। शरीर धारण करनेवाला देही जब उसे पक लेता है, तब सभी इच्छाओंको छोड़ देता है ब्राह्मणके लिये एकता, समता, सत्यता, मर्यादामें स्थिति, दण्ड-विधानका त्याग, क्रोध न करना एवं (सांसारिक) क्रियाओंसे विराग ही धन है, इनके समान उनके लिये कोई अन्य धन नहीं है। द्विजोत्तम! मैंने थोड़ी मात्रामें तुमसे यह जो ज्ञानके विषयमें कहा है, इसे जानकर तुम निःसंदेह परम ब्रह्मको प्राप्त करोगे अब तुम परमात्मा ब्रह्मकी उत्पत्तिके विषयमें सुनो उस नारायणके विषयमें लोग इस श्लोकका उदाहरण दिया करते हैं— ॥ २४—२८ ॥

'आप्' (जल) ही को 'नार' (एवं परमात्मा) को 'तनु' ऐसा हमने सुन रखा है। वे (परमात्मा) उसमें शक्ति करते हैं, जिससे वे (सब्दव्युत्पत्तिसे) 'नारायण' शब्दसे स्मरण किये गये हैं। जलमें सोनेके बाद आग जानेपर उन्होंने जगत्को अपनेमें प्रविष्ट जानकर अण्डको तोड़ दिया, उससे 'अण्ड' शब्दकी उत्पत्ति हुई। इसके बाद उससे (पहली बार) भूः, दूसरी बार भुवः एवं तीसरी बार स्वःकी उत्पत्ति (ध्वनि) हुई। इन तीनोंका नाम क्रमशः मिलकर 'भूर्भुवः स्वः' हुआ। उस सविता देवताका जो वरेण्य तेज है, वह उसीसे उत्पन्न हुआ। अण्डसे जो तेज निकला, उसने जलको सुखा दिया ॥ २९-३२ ॥

तेजसे जलके सोखे जानेपर जोष अल कललकी आकृतिमें बदल गया। कललसे बुद्बुद् हुआ और उसके बाद वह कठोर हो गया। कठोर हो जानेके कारण वह बुद्बुद् भूतोंको धारण करनेवाली धरणी बन गया। जिस स्थानपर अण्ड स्थित था, वही संनिहित नामका सरोवर है तेजके आदिमें उत्पन्न होनेके कारण उसे 'अदित्य' नामसे कहा जाता है। फिर सारे संसारके पितामह ब्रह्मा अण्डके मध्यमें उत्पन्न हुए। उस अण्डका उत्पन्न (गर्भका आवरण) घेर पर्वत है एवं अन्य पर्वत उसके जरायु (झिल्ली) माने जाते हैं। समुद्र एवं सड़कों नदियों

नाभिस्थाने यदुदकं ब्रह्मणो निर्मलं महत् ।
महत्सरस्तेन पूर्णं विमलेन वराम्भसा ॥ ३७

तस्मिन् मध्ये स्थाणुरूपी वटवृक्षो महामनाः ।
तस्माद् विभिर्गता वर्णा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः ॥ ३८

शूद्राश्च तस्मादुत्पन्ताः शूश्रूषार्थं द्विज-मनाम् ।
ततश्चिन्तयतः सृष्टिं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
मनसा मनसा जाताः सनकाद्या महर्षयः ॥ ३९

पुनश्चिन्तयतस्तस्य प्रजाकामस्य धीमतः ।
उत्पन्ना ऋषयः सप्त ते प्रजापतयोऽभवन् ॥ ४०

पुनश्चिन्तयतस्तस्य रजसा मोहितस्य च ।
बालखिल्याः समुत्पन्नास्तपःस्वाध्यायतत्पराः ॥ ४१
ते सदा स्नाननिरताः देवार्चनपरायणाः ।
उपवासीर्द्धतस्तीक्ष्णैः शोषयन्ति कलेवरम् ॥ ४२

वानप्रस्थेन विधिना अग्निहोत्रसमन्विताः ।
तपसा परमेणोह शोषयन्ति कलेवरम् ॥ ४३

दिव्यं वर्षसहस्रं ते कृशा धमनिसंतताः ।
आराधयन्ति देवेशं न च तुष्यति शंकरः ॥ ४४

ततः कालेन महता उमया सह शंकरः ।
आकाशपार्श्वेण तदा दृष्ट्वा देवीं सुदुःखिता ॥ ४५

प्रसाद्य देवदेवेशं शंकरं प्राह सुवता ।
क्लिश्यन्ते ते मुनिगणा देवदारुवनाश्रयाः ॥ ४६

तेषां क्लेशक्षयं देव विधेहि कुरु मे दयाम् ।
किं वेदधर्मेनिष्ठानामनन्तं देव दुष्कृतम् ॥ ४७

नाद्यापि येन शुद्ध्यन्ति शुष्कस्त्राव्यस्थिशोषिताः ।
तच्छ्रुत्वा वचनं देव्याः पिन्द्रकी पातितान्यकः ।
प्रोवाच प्रहसन् मूर्ध्नि चारुचन्द्रांशुशोभितः ॥ ४८

श्रीवामदेव उवाच

न वेत्ति देवि तत्त्वेन धर्मस्य गहना गतिः ।
नैते धर्मं विजानन्ति न च कामविवर्जिताः ॥ ४९

गर्भकं जलं है । ब्रह्मके नाभि-स्थानमें जो विशाल निर्मल जल रहित है, उस स्वच्छ श्रेष्ठ जलसे महान् सरोवर भरा-पूरा है ॥ ३७—३७ ॥

उस सरोवरके मध्यमें स्थाणुके आकारका महान् विशाल एक वटवृक्ष है, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीनों वर्ण उससे निकले और द्विजोंकी शूश्रूषा करनेके लिये उसीसे शूद्रोंकी भी उत्पत्ति हुई। (इस प्रकार चारों वर्णोंकी सृष्टि सरोवरके मध्यमें स्थाणुरूपसे स्थित वटवृक्षसे हुई।) उसके बाद सृष्टिकी चिन्ता करते हुए अव्यक्तजन्मा ब्रह्मके मनसे सनकादि महर्षियोंकी उत्पत्ति हुई फिर प्रजाकी इच्छासे चिन्तन कर रहे मतिमान् ब्रह्मसे सप्त ऋषि उत्पन्न हुए। वे प्रजापति हुए रजोगुणसे मोहित होकर ब्रह्माने जब पुनः चिन्तन किया, तब तप एवं स्वाध्यायमें पण्यन बालखिल्य ऋषियोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ३८—४१ ॥

वे सर्वदा स्नान (शुद्धि) करनेमें निरत तथा देवताओंकी पूजा करनेमें विशेषरूपसे लगे रहते तथा उपवासों एवं तीव्र व्रतोंसे अपने शरीरको सुखाये जा रहे थे अग्निहोत्रसे युक्त होकर वानप्रस्थकी विधिसे वे उत्कृष्ट तपस्या करते और अपने शरीर सुखाते जाते थे वे होतग अल्पत दुर्बल एवं कंकाल काय होकर सहस्र दिव्य वर्षोंतक देवेशको उपासना करते रहे; परंतु भगवान् शंकर प्रसन्न न हुए। उसके बहुत दिनोंके बाद उमाके साथ भगवान् शंकर आकाश-मार्गसे प्रमण कर रहे थे। धार्मिक कर्तव्योंको करनेवाली उमा (चाम्बखिल्योंकी) इस प्रकारकी दशा (कंकालमात्र) देखकर दुःखी हो गयीं और दुःखी होकर देवदेवेश शंकरको प्रसन्नकर कहने लगीं—देव! देवदाह-वनमें रहनेवाले वे मुनिगण क्लेश उद्य रहे हैं। देव! मेरे ऊपर दया करें आप उनके क्लेशका विनाश करें। देव! वैदिक धर्ममें निष्ठा रखनेवाले इन (तपस्वियों) के कौन ऐसा अनन्त दुष्कृत है जिससे वे कङ्कालमात्र होनेपर भी अबतक शूद्र नहीं हुए? अन्धकको मार गिरानेकाले, चन्द्रमण्डी मनोहर किरणोंसे सुशोभित सिरवाले पिनाकधारी शंकरजी उमाकी बातको सुनकर हँसते हुए बोले— ॥ ४२—४८ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—देवि! धर्मकी गति गहन होती

है। पुन उसे तत्त्वतः नहीं जानती। ये लोग न तो धर्मज्ञ हैं

न च क्रोधेन निर्मुक्ताः केवलं मूढबुद्धयः ।
एतच्छ्रुत्वाऽऽश्चर्यं देवी मा मैवं संसितव्रतान् ॥ ५०

देव प्रदर्शयाम्यामं परं कीर्तुहलं हि मे ।
स इत्युक्ता उवाचेदं देवी देवः स्मिताननः ॥ ५१

तिष्ठ त्वमत्र यास्यामि यत्र ते मुनिपुंगवाः ।
साधयन्ति तपो घोरं दर्शयिष्यामि चेष्टितम् ॥ ५२
इत्युक्ता तु ततो देवो शंकरेण महात्मना ।
गच्छस्तेत्याह मुदिता भर्तारं भुवनेश्वरम् ॥ ५३

यत्र ते मुनयः सर्वे काहुलोहसमाः स्थिताः ।
अधीयाना महाभागाः कृताश्रिसदनकिया ॥ ५४

तान् विलोक्य ततो देवो नग्नः सर्वाङ्गसुन्दरः ।
वनमालाकृतापीडो युवा भिक्षाकपालभृत् ॥ ५५

आश्रमे पर्यटन् भिक्षां मुनीनां दर्शनं प्रति ।
देहि भिक्षां ततश्चोक्त्वा ह्याश्रमादाश्रमं ययौ ॥ ५६
तं विलोक्याश्रमगतं योषितो ब्रह्मवादिनाम् ।
सर्कातुकस्वभावेन तस्य रूपेण मोहिताः ॥ ५७

प्रोचुः परस्परं नार्य एहि पश्याम भिक्षुकम् ।
परस्परमिति चोक्त्वा गृहा मूलफलं बहु ॥ ५८

गृहाण भिक्षामुचुस्तास्तं देवं मुनियोषितः ।
स तु भिक्षाकपालं तं प्रसार्य बहु सादरम् ॥ ५९

देहि देहि शिवं योऽस्तु भवतीभ्यस्तपोवने ।
हसमानस्तु देवेशस्तत्र देव्या निरीक्षितः ।
तस्मै द्रष्टव्यं तां भिक्षां पप्रच्छुस्तं स्मरातुराः ॥ ६०

नार्य कचुः

योऽस्त्री नाम स्रतयिधिस्त्वया तापस सेव्यते ।
यत्र नग्रेन लिङ्गेन वनमालाविभूषितः ।
भवान् वै तापसो हृष्टो हृष्टा स्मो यदि मन्यसे ॥ ६१

और न कामश्च ये क्रोधसे मुक्त भी नहीं हैं और विचार-रहित हैं यह सुनकर उमादेवीने कहा—महो, व्रत धारण करनेवाले इन लोगोंको ऐसा फ्त कहिये, (प्रत्युत) देव ! आप अपनेको प्रकट करें। निश्चय ही मुझे बड़ा कीर्तुहल है। उमाके ऐसा कहनेपर शंकरने मुस्कराकर देवीसे इस प्रकार कहा—अच्छा, तुम यहाँ रहो। ये मुनिश्रेष्ठ जहाँ घोर तपस्याकी साधना कर रहे हैं वहाँ जाकर मैं इनकी चेष्टा कैसी है, उसे दिखलाता हूँ ॥ ४९—५२ ॥

जब महात्मा शंकरने देवी उमासे इस प्रकार कहा तब उमादेवी प्रसन्न हो गयीं और भुक्तोंके पालन करनेवाले भुक्तेष्वर शिष्यसे बोलीं—अच्छा, जिस स्थानपर लकड़ी और मिट्टीके ढेरके समान निक्षेप, अग्निहोत्री एवं अध्ययनमें लगे हुए मुनिगण रहते हैं, उस स्थानपर आप जायें (फिर उमाहारा इस प्रकार प्रेरित किये जानेपर शंकरजी मुनिमण्डलीकी ओर जानेके लिये प्रस्तुत हो गये) फिर शंकरने उस मुनिमण्डलीको देखकर वनमाला धारण कर लिया। तब वे सर्वाङ्गसुन्दर (पर) नग्न—मुडौल पैर धारण कर युवाके रूपमें हो गये और भिक्षा—पात्र हाथमें लेकर मुनियोंके सामने भिक्षाके लिये भ्रमण करते हुए 'भिक्षा दो यह कहते हुए एक आश्रमसे दूसरे आश्रममें जाने लगे ॥ ५३—५६ ॥

एक आश्रमसे दूसरे आश्रममें घूम रहे उन नग्न युवाको देखकर ब्रह्मवादीयोंकी स्त्रियाँ उत्सुकताके साथ स्वभाववश उनके रूपसे मोहित हो गयीं और परस्परमें कहने लगीं—आओ, भिक्षुकको देखा जाय। आपसमें इस प्रकार कहकर बहुत-सा मूल-फल लेकर मुनि-पत्नियोंने उन देवसे कहा—आप भिक्षा ग्रहण करें। उन्होंने भी अत्यन्त आदरसे उस भिक्षापात्रको फैलाकर (सामने दिखाकर) कहा—तपोवनवासिनियो। (भिक्षा) दो, दो आप सबका कल्याण हो। पार्वतीजी वहाँ हैसते हुए शंकरको देख रही थीं। कामातुर मुनिपत्नियोंने उस नग्न युवाको भिक्षा देकर उनसे पूछा— ॥ ५७—६० ॥

मुनिपत्नियोंने पूछा—तापस ! आप किस व्रतके विधानका पालन कर रहे हैं, जिसमें वनमालासे विभूषित हृदयहारी तपस्वीका सुन्दर स्वरूप धारण कर नग्न-मूर्ति बनना पड़ा है ? आप हमारे हृदयके आनन्दप्रद तापस हैं, यदि आप मानें तो हम भी आपकी

इत्युक्तस्तापसीभिस्तु प्रोवाच हसिताननः ।
इदमीदृग् व्रतं किञ्चिन्न रहस्यं प्रकाशयते ॥ ६२

शृण्वन्ति बहवो यत्र तत्र व्याख्या न विद्यते ।
अस्य व्रतस्य सुभगा इति मत्वा गमिष्यथ ॥ ६३

एवमुक्तस्तदा तेन ताः प्रत्युद्युस्तदा मुनिम् ।
रहस्ये हि गमिष्यामो मुने नः कौतुकं महत् ॥ ६४

इत्युक्त्वा तत्रस्तदा तं वै जगद्गुः पाणिपल्लवैः ।
काचित् कण्ठे सकन्दर्पा बाहुभ्यामपरास्तथा ॥ ६५

जानुभ्यामपरा नयः केशेषु ललितापराः ।
अपरास्तु कटीरन्ध्रे अपरा पादयोरपि ॥ ६६

क्षोभं विलोक्य मुनय आश्रमेषु स्वयोषिताम् ।
हन्यतामिति संभाष्य काष्ठपाषाणपाणयः ॥ ६७

पातयन्ति स्म देवस्य लिङ्गमुदधृत्य भीषणम् ।
पातिते तु ततो लिङ्गे गतोऽन्तर्धानमीश्वरः ॥ ६८

देव्या स भगवान् रुद्रः कैलासं नगमाश्रितः ।
धनिते देवदेवस्य लिङ्गे नष्टे खराखरे ॥ ६९

क्षोभो बभूव सुमहानुषीर्णां भावितात्मनाम् ।
एवं देवे तदा तत्र वर्तन्ति आकुलप्रेकृते ॥ ७०

उवाचैको मुनिवरस्तत्र बुद्धिस्तां वरः ।
न वयं विद्यां सद्भावं तापसस्य महात्मनः ॥ ७१

विरिञ्चिं शरणं यामः स हि ज्ञास्यति चेष्टितम् ।
एवमुक्ताः सर्वे एव श्रवयो लज्जिता भृशम् ॥ ७२

ब्रह्मणः सदनं जगुर्देवैः सह निषेवितम् ।
प्रणिपत्याश्च देवेशं लज्जयाऽधोमुखः स्थिताः ॥ ७३

अथ तान् दुःखितान् दृष्ट्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ।
अहो मुग्धा यद्द वयं क्रोधेन कलुषीकृताः ॥ ७४

न धर्मस्य क्रिया काचिन्नायते मूढबुद्धयः ।
भूयतां धर्मसर्वस्य तापसाः कूरचेष्टिताः ॥ ७५

मनोऽनुकूल प्रिया हो सकती हैं उन्होंने तपस्विनियोंके इस प्रकार कहनेपर ईसते हुए कहा—यह व्रत ऐसा है कि इसका कुछ भी रहस्य प्रकट नहीं किया जा सकता। सौभाग्यशालिनियों जहाँ बहुत-से सुननेवाले हैं वहाँ इस व्रतकी व्याख्या नहीं की जा सकती इसलिये यह जानकर आप सभी चली जायें। उनके ऐसा कहनेपर उन्होंने मुनिसे कहा—मुने हम सब (यह जाननेके लिये) एकान्तमें चलेंगी; (क्योंकि) हमें महान् कौतुहल हो रहा है ॥ ६१—६४ ॥

यह कहकर उन सभीने उनको अपने कोमल हाथोंसे पकड़ लिया। कुछ कामसे आतुर होकर कण्ठसे लिपट गयीं और कुछने उन्हें भुजाओंमें बाँध लिया। कुछ स्त्रियोंने उन्हें मुट्ठोंसे पकड़ लिया; कुछ सुन्दरी स्त्रियों उनके केश छूने लगीं और कुछ उनकी कमरसे लिपट गयीं एवं कुछने उनके पैरोंको पकड़ लिया मुनियोंने आश्रममें अपनी स्त्रियोंकी अधीरता देख 'मारो-मारो' इस प्रकार कहते हुए हाथोंमें डंढा और पत्थर लेकर शिवके लिङ्गको ही उछाड़कर फेंक दिया। लिङ्गके गिरा दिये जानेपर भगवान् शंकर अन्तर्हित हो गये ॥ ६५—६८ ॥

वे भगवान् रुद्र उमादेवीके साथ कैलास पर्वतपर चले गये। देवदेव शंकरके लिङ्गके गिरनेपर प्रायः सप्सप्त रा अघर जागृत नष्ट हो गया। इससे आत्मनिष्ठ महर्षियोंको व्याकुलता हुई। इसी प्रकार देवके (भी) व्याकुल हो जानेपर एक अत्यन्त बुद्धिमान् श्रेष्ठ मुनिने कहा—हम उन महात्मा तापसके सद्भाव (सदाशय)-को नहीं जानते। हम ब्रह्माकी शरणमें चलें। वे ही उनको चेष्टा (रहस्य) सपन्न सकेगे ऐसा कहनेपर सभी ऋषि अत्यन्त लज्जित हो गये ॥ ६९—७२ ॥

फिर वे लोग देवताओंसे उपासित ब्रह्माके लोकमें गये। वहाँ देवेश (ब्रह्मा) को प्रणाम कर लज्जासे मुख नीचा कर खड़े हो गये उसके बाद ब्रह्माने उन्हें दुःखी देखकर यह वचन कहा—अहो, क्रोध करनेसे तुम सबका मन कलुषित हो गया है, इसलिये मूढ़ हो गये हो। मूढ़ बुद्धिवालो तुम सब धर्मकी कोई वास्तविक क्रिया नहीं जानते। अत्रिय कर्म करनेवाले तापसी धर्मके सारभूत रहस्यको सुनो, जिसे

विदित्वा यद् बुधः क्षिप्रं धर्मस्य फलमाप्नुयात् ।
सोऽसायात्यनि देहोऽस्मिन् किर्भुर्नित्यो व्यवस्थितः ॥ ७६

सोऽप्नादिः स महास्याणुः पृथक्स्थे परिसूचितः ।
मणिर्यथोपधानेन धत्ते वर्णोज्ज्वलोऽपि वै ॥ ७७

तन्मयो भवते तद्दात्माऽपि मनसा कुतः ।
मनसो भेदमाश्रित्य कर्मभिश्चोपजीवते ॥ ७८

ततः कर्मवशाद् भुङ्क्ते संभोगान् स्वर्गनारकान् ।
तन्मनः शोधयद् धीमाञ्ज्ञानयोगाद्युपक्रमैः ॥ ७९

तस्मिञ्शुद्धे शान्तरात्मा स्वयमेव निराकुलः ।
न शरीरस्य संक्लेशैरपि निर्देहनात्मकैः ॥ ८०

शुद्धिमाप्नोति पुरुषः संशुद्धं यस्य नो मनः ।
क्रिया हि नियमार्थाय पातकेभ्यः प्रकीर्तिताः ॥ ८१

यस्मादत्याविलं देहं न शीघ्रं शुद्ध्यते किल ।
तेन लोकेषु मार्गोऽयं सत्पथस्य प्रवर्तितः ॥ ८२

वर्णाश्रमविभागोऽयं लोकाध्यक्षेण केनचित् ।
निर्मितो मोहमाहात्म्यं चिह्नं चोत्तमभागिनाम् ॥ ८३

भक्तः क्रोधकाषाभ्यामभिभूताश्रमे स्थिताः ।
ज्ञानिनामाश्रमो वैश्वं अनाश्रममयोगिनाम् ॥ ८४

क्व च न्यस्तसमस्तेच्छा क्व च नारीमयो भ्रमः ।
क्व क्रोधमोदुर्षा धोरे येनात्मानं न जानथ ॥ ८५

यत्क्रोधनो यजति यच्च ददाति नित्यं
यद् वा तपस्तपति यच्च जुहोति तस्य ।
प्राप्नोति नैव किमपीह फलं हि लोके
मोघं फलं भवति तस्य हि क्रोधनस्य ॥ ८६

जानकर बुद्धिमान् मनुष्य शीघ्र ही कर्मका फल प्राप्त करता है। हम सबके इस शरीरमें रहनेवाला जो नित्य विभु (परमेश्वर) है वह आदि-अन्त-रहित एवं महा स्वाणु है (विचार करनेपर) वह (देही) इस शरीरसे अलग प्रतीत होता है। जिस प्रकार उज्ज्वल वर्णकी मणि भी आश्रयके प्रभावसे उसी रूपकी भासती है, उसी प्रकार आत्मा भी मनसे संयुक्त होकर मनके भेदका आश्रय कर कर्मोंसे ढक जाता है उसके बाद कर्मवश वह स्वर्गीय तथा नारकीय भोगोंको भोगता रहता है बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि ज्ञान तथा योग आदि उपायोंद्वारा मनका शोधन करे ॥ ७३—७९ ॥

मनके शुद्ध होनेपर अन्तरात्मा अपने-आप निर्मल हो जाता है। जिसका मन शुद्ध नहीं है, ऐसा पुरुष शरीरको सुखानेवाले क्लेशोंके द्वारा शुद्ध नहीं होता। एषोंसे बचनेके लिये ही (धर्म्य) क्रियाओंका विधान हुआ है, अतः अत्यन्त साधपूर्ण शरीर (स्वतः) शीघ्र शुद्ध नहीं होता। इसीलिये लोकमें सत्पथः मास्त्रविहित क्रियाओंका यह मार्ग प्रवर्तित हुआ है। किसी दिव्यदृष्टा लोक-स्वामीने उत्तम भागवत्लोकिके निमित्त मोह-माहात्म्यके प्रतीकस्वरूप इस वर्णाश्रम-विभागका निर्माण किया है ॥ ८०—८३ ॥

आप लोग आश्रममें रहते हुए भी क्रोध तथा कामके वशीभूत हैं ज्ञानियोंके लिये जर ही आश्रम है और अयोगियों (अज्ञानियों) के लिये आश्रम भी अनाश्रम है कहीं समस्त कामनाओंका त्याग और कहीं नारीमय यह भ्रम-जाल (कहीं तप और) कहीं तो इस प्रकारका क्रोध, जिससे तुम लोग अपने आत्मा (चित्त) को नहीं पहचान पाते। क्रोधी पुरुष लोकमें जो सदा यज्ञ करता है, जो दान देता है अथवा जो तप या हवन करता है, उसका कोई फल उसे नहीं मिलता उस क्रोधीके सभी फल व्यर्थ होते हैं ॥ ८४—८६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें तैत्तिरीयसंख्ये अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४३ ॥

चौवालीसवाँ अध्याय

ऋषियोंसहित ब्रह्माजीका शंकरजीकी शरणमें जाना और स्तवन; स्थाण्वीश्वरप्रसङ्ग और हस्तिरूप शंकरकी स्तुति एवं लिङ्गमें संनिधान

सप्तकुमार उवाच

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा ऋषयः सर्वे एव ते ।
पुनरेव च पप्रच्छुर्जगतः श्रेयकारणम् ॥ १

ब्रह्मोवाच

गच्छामः शरणं देवं शूलपाणिं त्रिलोचनम् ।
प्रसादाद् देवदेवस्य भविष्यद्य यथा पुरा ॥ २

इत्युक्ता ब्रह्मणा सार्धं कैलासं गिरिपुत्रमम् ।
ददृशुस्ते समरसीनमुमया सहितं हरम् ॥ ३

ततः स्तोतुं समारब्धो ब्रह्मा लोकपितामहः ।
देवाभिदेवं वरदं त्रैलोक्यस्य प्रभुं शिवम् ॥ ४

ब्रह्मोवाच

अनन्ताय नमस्तुभ्यं वरदाय पिनाकिने ।
महर्देवाय देवाय स्थाणवे परमात्मने ॥ ५

नमोऽस्तु भुवनेशाय तुभ्यं तारक सर्वदा ।
ज्ञानानां दायको देवस्त्वमेकः पुरुषोत्तमः ॥ ६

नमस्ते पद्मगर्भाय पद्मेशाय नमस्ते नमः ।
घोरशान्तिस्वरूपाय चण्डक्रोध नमोऽस्तु ते ॥ ७

नमस्ते देव विश्वेश नमस्ते सूरनायक ।
शूलपाणे नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वधाम्न ॥ ८

एवं स्तुतो महादेवो ब्रह्मणा ऋषिभिस्तदा ।
उवाच सा भैरवजत लिङ्गं यो भविता पुनः ॥ ९

क्रियतां मद्ब्रूचः शीघ्रं येन मे प्रीतिरुत्पत्ता ।
भविष्यति प्रतिष्ठायां लिङ्गस्यात्र न संशयः ॥ १०

ये लिङ्गं पूजयिष्यन्ति पामकं भक्तिमाभिताः ।
न तेषां दुर्लभं किंचिद् भविष्यति कदाचन ॥ ११

सप्तकुमारने कहा—उन सभी ऋषियोंने ब्रह्माजी इस चाणोंको सुनकर संसारके कल्याणार्थ पुनः उपाय पूछा ॥ १ ॥

ब्रह्माने कहा—(उत्तर दिया) (आओ), हम सभी लोग हाथमें शूल धारण करनेवाले, त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकरकी शरणमें चलें। तुम सब लोग उन्हीं देवदेवके प्रसादसे पहले जैसे हो जाओगे। ब्रह्माके ऐसा कहनेपर वे लोग ठन्के साथ श्रेष्ठ पर्वत कैलासपर चले गये और वहाँ उन लोगोंने उमा (पार्वती)-के साथ बैठे हुए शंकरका दर्शन किया। उसके बाद संसारके पितामह ब्रह्माने देवोंके इष्टदेव, तीनों लोकोंके स्वामी वरदानी भगवान् शंकरकी स्तुति करनी आरम्भ की ॥ २-४ ॥

पिताक धारण करनेवाले वरदानी अनन्त महादेव! स्थाणुस्वरूप परमात्मदेव! आपको मेरा नमस्कार है। भुवनोंके स्वामी भुवनेश्वर तारक भगवान्! आपको सदा नमस्कार है। पुरुषोत्तम! आप ज्ञान देनेवाले अद्वितीय देव हैं। आप कमलगर्भ एवं पद्मेश हैं। आपको मारम्भार नमस्कार है (प्रचण्ड) घोर-स्वरूप एवं शान्तिमूर्ति! आपको नमस्कार है विश्वके शासकदेव आपको नमस्कार है। सूरनायक आपको नमस्कार है। शूलपाणि शंकर! आपको नमस्कार है (संसारके रक्षनेवाले) विश्वधाम्न आपको मेरा नमस्कार है ॥ ५-८ ॥

ऋषियों और ब्रह्माने जब इस प्रकार शंकरकी स्तुति की तब महादेव शङ्करने कहा—भय मत करो, आओ (तुम लोगोंके कल्याणार्थ) लिङ्ग फिर भी (उत्पन्न) हो जायगा। मेरे वचनका शीघ्र पालन करो लिङ्गकी प्रतिष्ठा कर देनेपर निस्सन्देह मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी। जो व्यक्ति भक्तिके साथ मेरे लिङ्गकी पूजा करेंगे उनके लिये कोई भी पदार्थ कभी दुर्लभ न होगा।

सर्वधामेष पापानां कृतानामपि जानता ।
शुद्धयते लिङ्गपूजायां नत्र कार्या विचारणारः ॥ १२

युष्माभिः पातितं लिङ्गं सारयित्वा महत्सरः ।
सान्निहत्यं तु विख्यातं तस्मिञ्शीघ्रं प्रतिष्ठितम् ॥ १३

यथाभिलषितं कामं ततः प्राप्स्यथ ब्राह्मणाः ।
स्थाणुर्नाम्ना हि लोकेषु पूजनीयो दिवीकसाम् ॥ १४

स्थाण्वीश्वरेस्थिते यस्मत्स्थाण्वीश्वरस्ततः स्मृतः ।
ये स्मरन्ति सदा स्थाणुं ते मुक्ताः सर्वकिर्त्तित्वैः ॥ १५

भविष्यन्ति शुद्धदेहा दर्शनान्मोक्षप्राप्तयि ।
इत्येवमुक्ता देवेन ऋषयो ब्रह्मणा सह ॥ १६

तस्माद् दारुवनारत्नैर्गन्धैर्गन्धैर्गन्धैर्गन्धैः ।
न तं चालयितुं शक्तास्ते देव्यः ऋषिभिः सह ॥ १७

श्रमेण महता युक्ता ब्रह्माणं शरणं ययुः ।
तेषां श्रमाभितप्तानामिदं ब्रह्माऽब्रवीद् यच्च ॥ १८

किं वा श्रमेण महता न यूर्यं बह्वक्षमाः ।
स्वेच्छया पातितं लिङ्गं देवदेवेन शूलिना ॥ १९

तस्मात् तमेव शरणं यास्यामः सहितः सुराः ।
प्रसन्नश्च महादेवः स्वयमेव नयिष्यति ॥ २०

इत्येवमुक्ता ऋषयो देवाश्च ब्रह्मणा सह ।
कैलासं गिरिमासेद् रुद्रदर्शनकाङ्क्षिणः ॥ २१

न च पश्यन्ति तं देवं ततश्चिन्तासमन्विताः ।
ब्रह्माणमूचुर्मुनयः क्व स देवो महेश्वरः ॥ २२

ततो ब्रह्मा चिरं ध्यात्वा ज्ञात्वा देवं महेश्वरम् ।
हस्तिरूपेण तिष्ठन्तं मुनिधर्मानसैः स्तुतम् ॥ २३

अथ ते ऋषयः सर्वे देवाश्च ब्रह्मणा सह ।
गता महत्सरः पुण्यं यत्र देवः स्वयं स्थितः ॥ २४

न च पश्यन्ति तं देवमन्दिष्यन्तस्ततस्ततः ।
ततश्चिन्तान्विता देवा ब्रह्मणा सहिताः स्थिताः ॥ २५

जानकर किये गये समस्त पापोंको भी शुद्धि लिङ्गकी
पूजा करनेसे हो जाती है इसमें किसी प्रकारका अन्यथा
विचार नहीं करना चाहिये ॥ १२ ॥

तुम लोगोंने लिङ्गको गिरा दिया है इसलिये शीघ्र
ही उसे उठाकर प्रसिद्ध महान् सान्निहत्य-सरोवरमें
स्थापित करो। ब्राह्मणों। ऐसा करनेसे तुम लोग अपने
इच्छानुकूल मनोरथोंको प्राप्त करोगे सारे संसारमें उस
लिङ्गकी प्रतिद्धि स्थाणु नामसे होगी। देवताओंद्वारा
(भी) यह पूज्य होगा। यह लिङ्ग स्थाण्वीश्वरमें स्थित
रहनेके कारण स्थाण्वीश्वर नामसे स्मरण किया जायगा।
जो स्थाण्वीश्वरको सदा स्मरण करेंगे, उनके सारे पाप
कट जायेंगे और वे पवित्र-देह होकर मोक्षकी प्राप्ति
करेंगे। जब शंकरने ऐसा कहा तब ब्राह्मणों सहित
ऋषिलोग लिङ्गको उस दारुवनसे ले आनेका उद्योग
करने लगे। किंतु ऋषियोंसहित वे सभी देवगण उसे
हिलाने-डुलानेमें समर्थ न हो सके ॥ १३ ॥ १४ ॥

(फिर) वे बहुत परिश्रम करके ब्रह्माकी संप्रार्थना
गये ब्रह्मने परिश्रमसे ज्ञान-क्लान्त (संतप्त) हुए उन
लोगोंसे यह वचन कहा—देवताओं! अत्यन्त कठोर
परिश्रम करनेसे क्या लाभ? तुमलोग इसे उठानेमें समर्थ
नहीं हो देवाधिदेव भगवान् शंकरने अपनी इच्छासे इस
लिङ्गको गिराया है। अतः हे देवों! हम सभी एक साथ
उन्हीं भगवान् शंकरकी शरणमें चलें। महादेव सन्तुष्ट
होकर अपने आप ही (लिङ्गको) ले जायेंगे। इस प्रकार
ब्रह्माके कहनेपर सभी ऋषि और देवता ब्रह्माके साथ
शंकरजीके दर्शनकी अभिलाषासे कैलासपर्वतपर
पहुँचे ॥ १८—२१ ॥

वहाँ उन लोगोंने शंकरजीको नहीं देखा तब वे
चिन्तित हो गये। फिर उन्होंने ब्रह्माजीसे पूछा (कि
ब्रह्मन्) वे महेश्वरदेव कहाँ हैं? उसके बाद ब्रह्मने
चिरकालतक ध्यान लगाया और देखा कि मुनियोंके अन्तः-
करणसे स्तुत महेश्वर देव हाथोंके आकारमें स्थित है।
उसके पश्चात् वे ऋषि और ब्रह्माके सहित सभी देवता
उस स्थान महान् सरोवरपर गये जहाँ भगवान् शंकर
स्वयं उपस्थित थे। वे लोग वहाँ धधर-उधर चारों ओर
उन्हे ढूँढने लगे, फिर भी शंकरजीका दर्शन न पा सके।

पश्यन्ति देवीं सुप्रीतां कमण्डलुविभूषिताम् ।
प्रीयमाणा तदा देवी इदं वचनमब्रवीत् ॥ २६

अप्रेण महता युक्ता अन्विष्यन्तो महेश्वरम् ।
पीयताममृतं देवास्ततो ज्ञास्यथ सङ्करम् ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं भवान् स समुदाहृतम् ॥ २७

सुखोपविष्टास्ते देवाः पपुस्तदमृतं शुचि ।
अनन्तरं सुखासीनाः पप्रच्छुः परमेश्वरीम् ॥ २८

एत स देव इहावातो हस्तिरूपधरः स्थितः ।
दर्शितश्च तदा देव्या संगेमध्ये व्यबस्थितः ॥ २९

दृष्ट्वा देवं हर्षयुक्ताः सर्वे देवाः सहर्षिभिः ।
ब्रह्मापामगतः कृत्वा इदं वचनमब्रुवन् ॥ ३०

त्वया त्वक्तं महादेव लिङ्गं त्रैलोक्यवन्दितम् ।
तस्य चाप्यने गान्यः समर्घाः स्यान्महेश्वर ॥ ३१

इत्येवमुक्तो भगवान् देवो ब्रह्मादिभिर्हरः ।
जगाम ऋषिभिः सार्द्धं देवदारुवनाश्रमम् ॥ ३२

तत्र गत्वा महादेवो हस्तिरूपधरो हरः ।
करेण जग्राह ततो लीलया परमेश्वरः ॥ ३३

तप्तादाय महादेवः स्तूयमानो महर्षिभिः ।
निवेशयामास तदा सरःपार्श्वे तु पश्चिमे ॥ ३४

ततो देवाः सर्वे एव ऋषयश्च तपोधनः ।
आत्मानं सफलं दृष्ट्वा स्तव्यं चक्रुर्महेश्वरे ॥ ३५

नमस्ते परमात्मन् अनन्तयोने लोकसाक्षिन्
परमेश्ठिन् भगवन् सर्वज्ञ क्षेत्रज्ञ परावरज्ञ ज्ञानज्ञेय
सर्वेश्वर महाविरिञ्च महाविभूते महाक्षेत्रज्ञ
महापुरुष सर्वभूतावास मनोनिवास आदिदेव
महादेव सदाशिव ईशान दुर्ध्वज्ञेय दुराराध्य महाभूतेश्वर
परमेश्वर महायोगेश्वर अम्बक महायोगिन् परब्रह्मन्
परमज्योति ब्रह्मविदुत्तम ओम्कार षषट्कार
स्वाहाकार स्वधाकार परमकारण सर्वगत सर्वदर्शिन्

ब्रह्माके साथ दर्शन न पानेके कारण सभी देवता चिन्तित
हो गये। उसके बाद उन्होंने कमण्डलुसे सुशोभित
देवीको अत्यन्त प्रसन्न देखा। उस समय प्रसन्न होती हुई
देवी उनसे यह वचन बोली ॥ २२-२६ ॥

महेश्वरको ढूँढते हुए तुम लोग अत्यन्त आतश हो
गये हो। देवो तुम सब अमृतका फल करो तब तुम
सब सङ्करको जान सकोगे भवान्। द्वारा कही हुई इस
वाणीको सुनकर वे देवता सुखपूर्वक बैठ गये और
उन्होंने उस पवित्र अमृतको पी लिया उसके बाद
सुखपूर्वक बैठे हुए उन देवताओंने परमेश्वरीसे पूछा—
देवि! हाथीके रूपको धारण किये हुए भगवान् शंकर
देख यहाँ किस स्थानपर आये हुए हैं? देवताओंके इस
प्रकार पूछनेपर देवोंने सरोवरके बीचमें स्थित शंकरको
उन्हें दिखाकर दिया। ऋषियोंके साथ सभी देवता उनका
दर्शन पाकर हर्षित हो गये और ब्रह्माको आगे कर
शंकरजीसे वे वचन बोले— ॥ २७—३० ॥

महेश्वर! आपने तीनों लोकोंमें वन्दित जिस
लिङ्गको छोड़ दिया है, उसे ले आनेमें दूसरे किसकी
शक्ति नहीं है, उसे कोई दूसरा उठा नहीं सकता इस
प्रकार ब्रह्मा आदि देवताओंने जब भगवान् शंकरसे कहा,
तब देवदेव शिवजी ऋषियोंके साथ देवदारुवनके आश्रममें
चले गये वहाँ जाकर हाथीका रूप धारण करनेवाले
महादेव शिवने खेल-खेलमें (लिङ्गको) अपने सँदसे
पकड़कर उठा लिया शंकरजी महर्षियोंके द्वारा स्तुति
किये जाते हुए उस लिङ्गको लाकर सरोवरके पास
पश्चिम दिक्षामें स्थापित कर दिया। उसके बाद सभी
देवता एवं तपस्वी ऋषियोंने अपनेकी सफल समझा
और वे भगवान् शंकरकी स्तुति करने लगे ॥ ३१-३५ ॥

परमात्मन्! अनन्तयोने! लोकसाक्षिन्! परमेश्ठिन्!
भगवन्! सर्वज्ञ! क्षेत्रज्ञ! हे पर और अवरके ज्ञाता!
ज्ञानज्ञेय! सर्वेश्वर! महाविरिञ्च! महाविभूते! महाक्षेत्रज्ञ!
महापुरुष! हे सब भूतोंके निवास मनोनिवास! आदिदेव!
महादेव! सदाशिव! ईशान! दुर्ध्वज्ञेय! दुराराध्य! महाभूतेश्वर!
परमेश्वर! महायोगेश्वर! अम्बक! महायोगिन्! परब्रह्मन्!
परमज्योति! ब्रह्मविद्! उत्तम! ओम्कार! षषट्कार!
स्वाहाकार! स्वधाकार! परमकारण! सर्वगत! सर्वदर्शिन्!

सर्वशक्ते सर्वदेव अज सहस्रार्चि पृथार्चि सुधामन्
हरधाम अनन्तधाम संवर्त संकर्षण षडवानल
अग्निषोमात्मक पवित्र महापवित्र महामेष महामायाधर
महाकाम कामहन् हंस परमहंस महाराजिक महेश्वर
महाकामुक महाहंस भवक्षयकर सुरसिद्धार्चित
हिरण्यवाह हिरण्यरेता हिरण्यनाभ हिरण्याग्रकेश
मुञ्जकेशिन् सर्वलोकवरप्रद सर्वानुग्रहकर कमलेशय
कुलेशय हृदयेशय ज्ञानोदधे शम्भो विभो महायज्ञ
महायाज्ञिक सर्वयज्ञमय सर्वयज्ञहृदय सर्वयज्ञसंस्तुत
निराश्रय समुद्रेशय अत्रिसम्भव भक्तानुकम्पिन्
अभययोग योगधर वासुकिमहामणि विद्योतितविग्रह
हरितनयन त्रिलोचन जटाधर नीलकण्ठ चन्द्रार्धधर
उमाशरीरार्धहर गजधर्मधर दुस्तरसंसारमहासंहारकर
प्रसीद भक्तजनवत्सल ।

एवं स्तुतो देवगणैः सुभक्त्या
सन्नद्धमुखीश्च पितामहेन ।
त्यक्त्वा तदा हस्तिरूपं महात्मा
लिङ्गे तदा संनिधानं चकार ॥ ३६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४४ ॥



सानिहितसर—स्थाणुतीर्थ, स्थाणुवट और स्थाणुलिङ्गका माहात्म्य-वर्णन

सरत्कुमार उवाच

अश्वोवाच महादेवो देवान् ब्रह्मपुरोगमान् ।
ऋषीणां चैव प्रत्यक्षं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ १ ॥
एतन् सानिहितं प्रोक्तं सरः पुण्यतमं भट्टम् ।
मयोपसेवितं यस्मान् तस्मान्मुक्तिप्रदायकम् ॥ २ ॥
इह ये पुरुषाः केचिद् ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः ।
लिङ्गस्य दर्शनादेव पश्यन्ति परमं पदम् ॥ ३ ॥
अहन्यहनि तीर्थानि अरसमुद्रसरांसि च ।
स्थाणुतीर्थं समेष्यन्ति मर्त्यं प्राप्ते दिवाकरे ॥ ४ ॥

सर्वशक्ति! सर्वदेव! अज सहस्रार्चि! पृथार्चि! सुधामन्
हरधाम! अनन्तधाम! संवर्त संकर्षण षडवानल, अग्नि
और सौमस्वरूप! पवित्र! महापवित्र! महामेष! महामायाधर
महाकाम कामहन् हंस परमहंस! महाराजिक! महेश्वर!
महाकामुक! महाहंस! भवक्षयकर! हे देवों और सिद्धों
पूजित! हिरण्यवाह! हिरण्यरेता! हिरण्यनाभ! हिरण्याग्रकेश!
मुञ्जकेशिन्! सर्वलोकवरप्रद! सर्वानुग्रहकर! कमलेशय!
कुलेशय! हृदयेशय! ज्ञानोदधे! शम्भो! विभो! महायज्ञ!
महायाज्ञिक! सर्वयज्ञमय! सर्वयज्ञहृदय! सर्वयज्ञसंस्तुत!
निराश्रय! समुद्रेशय! अत्रिसम्भव! भक्तानुकम्पिन्! अभययोग!
योगधर! हे वासुकि और महामणिले श्रुतिमान्
शिव! हरितनयन! त्रिलोचन! जटाधर! नीलकण्ठ!
चन्द्रार्धधर! उमाशरीरार्धहर! गजधर्मधर! दुस्तरसंसारका
महासंहार करनेवाले महाप्रलयंकर शिव! इमारा आपको
नभस्कार है। भक्तजनवत्सल शङ्कर! आप हम सबपर
प्रसन्न हों।

इस प्रकार पितामह ब्रह्मा आदि त्रेह देवगणोंके
समय भक्तिपूर्वक स्तुति करनेपर उन महात्मने हस्तिरूपकर
त्यागकर लिङ्गमें संनिधान (निवास) कर लिया ॥ ३६ ॥

सरत्कुमारने कहा—इसके बाद महादेवने ऋषियोंके
सामने (श्री) ब्रह्मा आदि देवोंसे परमश्रेष्ठ तीर्थके
माहात्म्यको कहा ऋषियो! यह सानिहित नामक सरोवर
अत्यन्त पवित्र एवं महान् कहा गया है। यतः मेरे द्वारा
यह सेवित किया गया है, अतः यह मुक्ति प्रदान
करनेवाला है। यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य—सभी
वर्णोंके पुरुष लिङ्गका दर्शन कर ही परम पदकी दर्शन
करते हैं। समुद्रसे लेकर सरोवरतकके तीर्थ प्रतिदिन
भगवान् सूर्यके आकाशके मध्यमें आ जानेपर (दीपहरमें)
स्थाणुतीर्थमें आ जाते हैं ॥ १—४ ॥

स्तोत्रेणानेन च तरो यो मां स्तोष्यति भक्तितः ।
 तस्याहं सुलभो नित्यं भविष्यामि न संशयः ॥ ५

इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रो ज्ञानार्थानं गतः प्रभुः ।
 देवाश्च श्रवयः सर्वे स्वानि स्थानानि भोजिरे ॥ ६

ततो विरन्तरं स्वर्गं मानुषैर्मिश्रितं कुतम् ।
 स्थाणुलिङ्गस्य माहात्म्यं दर्शनात् स्वर्गमाप्नुयात् ॥ ७

ततो देवाः सर्वे एव ब्रह्माणं शरणं ययुः ।
 तानुवाच तदा ब्रह्मा किमर्थमिह चागताः ॥ ८

ततो देवाः सर्वे एव इदं वचनमब्रुवन् ।
 मानुषेभ्यो भयं तीव्रं रक्षास्मार्कं पितामह ॥ ९

तानुवाच तदा ब्रह्मा सुरांश्चिदज्ञनायकः ।
 पांशुना पूर्यतां शीघ्रं सरः शक्रे क्लृप्तं कुरु ॥ १०

ततो खर्व भगवान् पांशुना पाकशासनः ।
 सप्ताहं पूरयामास सरो देवैस्तदा वृतः ॥ ११

तं दृष्ट्वा पांशुखर्वं च देवदेवो भृगेश्वरः ।
 करेण धारयामास लिङ्गं तीर्थवटं तदा ॥ १२

तस्मात् पुण्यतमं तीर्थमाहं यत्रोदकं स्थितम् ।
 तस्मिन् स्नातः सर्वतीर्थैः स्नातो भवति मानवः ॥ १३

यस्तत्र कुरुते आर्द्रं वटलिङ्गस्य चान्तरे ।
 तस्य प्रीताश्च पितरो दास्यन्ति भुवि दुर्लभम् ॥ १४

पूरितं च ततो दृष्ट्वा श्रवयः सर्वे एव ते ।
 पांशुना सर्वगात्राणि स्पृशन्ति ब्रह्मया युताः ॥ १५

तेऽपि निर्धूतपापास्ते पांशुना मुनयो गताः ।
 पूज्यमानाः सुरगणैः प्रकृता ब्रह्मणः पदम् ॥ १६

ये तु सिद्धा महात्मानस्ते लिङ्गं पूजयन्ति च ।
 अजन्ति परमां सिद्धिं पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ॥ १७

एवं ज्ञात्वा तदा ब्रह्मा लिङ्गं शीलमयं तदा ।
 आद्यलिङ्गं तदा स्थाप्य तस्योपरि दधत् तत् ॥ १८

जो मनुष्य इस स्तोत्रसे भक्तिपूर्वक मेरा स्तवन करेगा, उसके लिये मैं सदा सुलभ होऊँगा—इसमें कोई संदेह नहीं है। यह कहकर भगवान् शंकर अद्वय हो गये। सभी देवता तथा ऋषिगण अपने-अपने स्थानको चले गये। उसके बाद पूरा—सारा का सारा स्वर्ग मनुष्योंसे भर गया; क्योंकि स्थाणुलिङ्गका यह माहात्म्य है कि उसका दर्शन करनेसे ही स्वर्ग प्राप्त हो जाता है फिर सभी देवता ब्रह्माकी शरणमें गये, तब ब्रह्माने उनसे पूछा—देवताओ! आप लोग यहाँ किस कार्यसे आये हैं? ॥ ५—८ ॥

तब सभी देवताओंने यह वचन कहा—पितामह! हम लोगोंको मनुष्योंसे बहुत भरो भय हो रहा है। आप हम सबकी रक्षा करें उसके बाद देवताओंके नेता ब्रह्माने उन देवोंसे कहा—इन्द्र! सरोवरको शीघ्र धूलिसे पाट दो और इस प्रकार इन्द्रका कल्याण करो ब्रह्माके इस प्रकार समझानेपर पाक नामके राक्षसको मारनेवाले (पाकशासन) भगवान् इन्द्रने देवताओंके साथ सात दिनतक धूलिकी वर्षा की और सरोवरको धूलिसे पाट दिया देवदेव भृगेश्वरने देवताओंद्वारा बरसायी गयी इस धूलिकी वर्षाको देखकर लिङ्ग कीर्ति तीर्थवटको अपने हाथमें ले लिया ॥ ९ ॥ १२ ॥

इसलिये पहले जिस स्थानपर जल था, वह तीर्थ अस्थित पवित्र है। उसमें स्नान करनेवाला मनुष्य सभी तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य वट और लिङ्गके बीचमें आर्द्र करता है उसके पितर उसपर संतुष्ट होकर उसे पृथ्वी (भर)—में दुर्लभ वस्तु सुलभ कर देते हैं—ऐसा सुनकर वे सभी ऋषि धूलिसे भरे हुए सरोवरको देखकर ब्रह्मासे अपने सभी अङ्गोंमें धूलि मलने लगे। वे मुनि भी धूलि मलनेके कारण निष्पाप हो गये और देवताओंसे पूजित होकर ब्रह्मलोक चले गये ॥ १३ ॥ १६ ॥

जो सिद्ध महात्मा पुरुष लिङ्गकी पूजा करते थे आवागमनसे रहित होकर परमसिद्धिको प्राप्त करने लगे। ऐसा जानकर तब ब्रह्माने उस आदिलिङ्गकी नीचे रख उसके ऊपर पाषाणमय लिङ्गको स्थापित कर दिया

ततः कालेन महता तेजसा तस्य रञ्जितम् ।
तस्यापि स्पर्शनात् सिद्धः परं पदमवाप्नुयात् ॥ १९

ततो देवैः पुनर्ब्रह्मा विज्ञप्तो द्विजसत्तम ।
एते यान्ति परां सिद्धिं लिङ्गस्य दर्शनान्तराः ॥ २०

तच्छ्रुत्वा भगवान् ब्रह्मा देवानां हितकाम्यया ।
ठप्युपरि लिङ्गानि सप्त तत्र अकर ह ॥ २१

ततो ये मुक्तिकामाश्च सिद्धाः शमपरायणाः ।
सेव्यं पाशुं प्रयत्नेन प्रयाताः परमं पदम् ॥ २२

पाशवोऽपि कुरुक्षेत्रे वायुना समुदीरितः ।
महादुष्कृतकर्माणं प्रयान्ति परमं पदम् ॥ २३

अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि स्त्रियो वा पुरुषस्य वा ।
नश्यते दुष्कृतं सर्वं स्थाणुतीर्थप्रभावतः ॥ २४

लिङ्गस्य दर्शनान्मुक्तिः स्पर्शनाच्च वटस्य च ।
तत्संनिधी जले स्नात्वा प्राप्नोत्यभिमतं फलम् ॥ २५

पितृणां तर्पणं यस्तु जले तस्मिन् करिष्यति ।
चिन्दौ चिन्दौ तु तोयस्य अनन्तफलभाग्भवेत् ॥ २६

यस्तु कृष्णतिलैः सार्द्धं लिङ्गस्य पश्चिमे स्थितः ।
तर्पयेच्छ्रद्धया युक्तः स प्रीणाति युगत्रयम् ॥ २७

यावन्मन्वन्तरं प्रोक्तं यावत्स्लिङ्गस्य संस्थितिः ।
तावत्प्रीताश्च पितरः पिबन्ति जलमुत्तमम् ॥ २८

कृते युगे सान्निहत्यं त्रेतायां वायुसंज्ञितम् ।
कलिद्वापरयोर्मध्ये कूपे रुद्रहृदं स्मृतम् ॥ २९

चैत्रस्य कृष्णपक्षे च चतुर्दश्यां नरोत्तमः ।
स्नात्वा रुद्रहृदे तीर्थं परं पदमवाप्नुयात् ॥ ३०

यस्तु वटे स्थितो रात्रिं ध्यायते परमेश्वरम् ।
स्थाणोर्बटप्रसादेन मनसा चिन्तितं फलम् ॥ ३१

कुछ समय बीत जानेपर उसके (आद्य लिङ्गके) तेजसे (यह पाषाण मूर्ति-लिङ्ग भी) रञ्जित हो गया। सिद्ध-समुदाय उसका भी स्पर्श करनेसे परमपदको प्राप्त करने लगा। द्विजश्रेष्ठ! तत्पश्चात् देवताओंने पुनः ब्रह्मको बतलाया ब्रह्मन्! ये मनुष्य लिङ्गका दर्शन करके परम सिद्धिको प्राप्त करनेका लाभ उठा रहे हैं। देवताओंसे यह सुनकर भगवान् ब्रह्मने देवताओंके मंगलकी इच्छासे एकके ऊपर एक, इस प्रकार सप्त लिङ्गोंको स्थापित कर दिया ॥ १७—२१ ॥

उसके बाद मुक्तिके अभिलाषी शम (दमादि) में लगे रहनेवाले सिद्धगण यज्ञपूर्वक धूलिका सेवनकर परमपदको प्राप्त करने लगे (यस्तुतः) कुरुक्षेत्रमें वायुके चलनेसे उड़ी हुई धूल भी बड़े-बड़े पापियोंको मुक्ति दे देती है किसी स्त्री या पुरुषने चाहे जानेमें या अनजानेसे पाप किया हो तो उसके सारे पाप स्थाणु-तीर्थके प्रभावसे नष्ट हो जाते हैं। लिङ्गका दर्शन करनेसे और वटका स्पर्श करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है और उसके निकट जलमें स्नान करनेसे मनुष्य मनचाहे फलको प्राप्त करता है। उस जलमें पितरोंका तर्पण करनेवाला व्यक्ति जलके प्रस्थिक बिन्दुमें अनन्त फलको प्राप्त करता है ॥ २२—२६ ॥

लिङ्गसे पश्चिम दिशामें काले तिलोंसे श्रद्धापूर्वक तर्पण करनेवाला व्यक्ति तीन युगोंतक (पितरोंको) तृप्त करता है। जबतक मन्वन्तर है और जबतक लिङ्गकी संस्थिति है, तबतक पितृगण संतुष्ट होकर उत्तम जलका पान करते हैं। सत्ययुगमें 'सान्निहत्य' सर, त्रेतामें 'वायु' नामका हृद, कलि एवं द्वापरमें 'रुद्रहृद' नामके कूप सेवनीय माने गये हैं। चैत्रके कृष्णपक्षकी चतुर्दशोके दिन 'रुद्रहृद' नामक तीर्थमें स्नान करनेवाला उत्तम पुरुष परमपद—मुक्तिको प्राप्त करता है। रात्रिक समय वटेके नीचे रहकर परमेश्वरका ध्यान करनेवालेको स्थाणुवटके अनुग्रह (दया)—से मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है ॥ २७—३१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें पैतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४५ ॥

छियालीसवाँ अध्याय

स्थाणु लिङ्गके समीप असंख्य लिङ्गोंकी स्थापना और उनके दर्शन अर्चनका माहात्म्य

सप्तकुमार उवाच

स्थाणोर्वटस्योत्तरतः शुक्रतीर्थं प्रकीर्तितम् ।
स्थाणोर्वटस्य पूर्वेण सोमतीर्थं द्विजोत्तम ॥ १
स्थाणोर्वटं दक्षिणतो दक्षतीर्थमुदाहृतम् ।
स्थाणोर्वटात् पश्चिमतः स्कन्दतीर्थं प्रतिष्ठितम् ॥ २
एतानि पुण्यतीर्थानि मध्ये स्थाणुरिति स्मृतः ।
तस्य दर्शनमात्रेण प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ३
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां यस्त्वेतानि परिक्रमेत् ।
पदे पदे यज्ञफलं स प्राप्नोति न संशयः ॥ ४
एतानि मुनिभिः साध्वैरादित्यैर्वसुभिस्तदा ।
भरुद्भिर्विद्भिर्द्विभिर्यैः सेवितानि प्रयत्नतः ॥ ५

अन्ये ये प्राणिनः केचित् प्रविष्टाः स्थाणुमुत्तमम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्ताः प्रयान्ति परमां गतिम् ॥ ६

अस्ति तत्सन्निधी लिङ्गं देवदेवस्य शूलिनः ।
उमा च लिङ्गरूपेण हरपार्श्वे न मुञ्चति ॥ ७

तस्य दर्शनमात्रेण सिद्धिं प्राप्नोति मानवः ।
वटस्य उत्तरे पार्श्वे तक्षकेण महात्मना ॥ ८

प्रतिष्ठितं महालिङ्गं सर्वकामप्रदायकम् ।
वटस्य पूर्वदिग्भागे विध्वक्कर्मकुलं महत् ॥ ९

लिङ्गं प्रत्यङ्मुखं दृष्ट्वा सिद्धिमाप्नोति मन्त्रवः ।
तत्रैव लिङ्गरूपेण स्थिता देवी सरस्वती ॥ १०

प्रणम्य तां प्रयत्नेन बुद्धिं मेधां च विन्दति ।
वटपार्श्वे स्थितं लिङ्गं ब्रह्मणा तत् प्रतिष्ठितम् ॥ ११

दृष्ट्वा वटेश्वरं देवं प्रयाति परमं पदम् ।
ततः स्थाणुवटं दृष्ट्वा कृत्वा चापि प्रदक्षिणाम् ॥ १२

प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीप्य बसुन्धरा ।
स्थाणोः पश्चिमदिग्भागे नकुलीशो गणः स्मृतः ॥ १३

सप्तकुमारने कहा—द्विजोत्तम! स्थाणुवटकी उत्तर दिशामें 'शुक्रतीर्थ' और स्थाणुवटकी पू्व दिशामें 'सोमतीर्थ' कहा गया है। स्थाणुवटके दक्षिण 'दक्षतीर्थ' एवं स्थाणुवटके पश्चिममें 'स्कन्दतीर्थ' स्थित हैं। इन परम पावन तीर्थोंके बीचमें 'स्थाणु' नामका तीर्थ है। उसका दर्शन करनेमात्रसे परमपद (मोक्ष)-की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य अष्टमी और चतुर्दशीको इनकी प्रदक्षिणा करता है, वह एक-एक पापपर यज्ञ करनेका फल प्राप्त करता है—इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ १-४ ॥

मुनियों, साध्वों, आदिश्यों, वसुओं, मरुतों एवं अग्निवोंने इन तीर्थोंका यज्ञपूर्वक सेवन किया है। जो भी अन्य कोई प्राणी उस उत्तम स्थाणुतीर्थमें प्रवेश करते हैं वे भी सभी पापोंसे मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त करते हैं। उसीके निकट त्रिशूल धारण करनेवाले देवदेव भगवान् शंकरका लिङ्ग है। उमादेवी वहाँपर लिङ्गरूपमें रहनेवाले शंकरजीके पासमें ही रहती हैं; वे उनकी बगलसे अलग नहीं होतीं। उस लिङ्गके दर्शन करनेमात्रसे मनुष्य सिद्धिको प्राप्त करता है। वटके उत्तरी भागमें महात्मना तक्षकने सभी कामनाओंको सिद्ध करनेवाले महालिङ्गको प्रतिष्ठित किया है। वटकी पू्व दिश्वकी ओर विध्वक्कर्मके द्वारा निर्मित किया गया महान् लिङ्ग है। पश्चिमकी ओर रहनेवाले लिङ्गका दर्शन कर मानवको सिद्धि प्राप्त होती है। वहाँपर देवी सरस्वती लिङ्गरूपसे स्थित हैं ॥ ५-१० ॥

मनुष्य उन्हें प्रणम्य (श्रद्धा-विधि)-पूर्वक प्रणाम कर बुद्धि एवं तीव्र मेधा प्राप्त करता है। वटकी बगलमें ब्रह्माके द्वारा प्रतिष्ठापित वटेश्वर लिङ्गका दर्शन करके मनुष्य परम पदको प्राप्त करता है। तत्पश्चात् जिसने स्थाणुवटका दर्शन और प्रदक्षिणा कर ली उसकी वह मानो सप्तों द्वीपवासी पृथिवीकी की हुई प्रदक्षिणा हो जाती है। स्थाणुकी पश्चिम दिशाकी ओर 'नकुलीश'

तमभ्यर्च्य प्रयत्नेन सर्वपापः प्रमुच्यते ।
तस्य दक्षिणदिग्भागे तीर्थं रुद्रकरं स्मृतम् ॥ १४

तस्मिन् स्नातः सर्वतीर्थे स्नातो भवति मानवः ।
तस्य चोत्तरदिग्भागे रावणेन महात्मना ॥ १५

प्रतिष्ठितं महालिङ्गं गोकर्णं नाम नामतः ।
आषाढमासे या कृष्णा भविष्यति चतुर्दशी ।
तस्यैवोर्ध्वं गोकर्णं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ १६

कामतोऽकामतो वापि यत् पापं तेन संचितम् ।
तस्माद् विमुच्यते कृपात् पूजयित्वा हरं शुचिः ॥ १७

कौमारब्रह्मचर्येण यत्पुण्यं प्राप्यते नरैः ।
तत्पुण्यं सकलं तस्य अष्टम्यां योऽर्चयेच्छिवम् ॥ १८
यदीच्छेत् परमं रूपं सीभाग्यं धनसंपदः ।
कुमारेभ्यश्च माहात्म्यात् सिद्ध्यते नात्र संशयः ॥ १९

तस्य चोत्तरदिग्भागे लिङ्गं पूज्य विभीषणः ।
अजरश्चामरश्चैव कल्पयित्वा बभूव ह ॥ २०

आषाढस्य तु मासस्य शुक्ला या चाष्टमी भवेत् ।
तस्यां पूज्य सोपवासो ह्यमृतत्वमवाप्नुयात् ॥ २१

खरेण पूजितं लिङ्गं तस्मिन् स्थाने द्विजोत्तम ।
तं पूजयित्वा यत्नेन सर्वकामानवाप्नुयात् ॥ २२
दूषणस्त्रिशिराश्चैव तत्र पूज्य महेश्वरम् ।
यथाभिलाषितान् कामानापनुस्तौ मुदान्वितौ ॥ २३

चैत्रमासे सिते पक्षे यो नरस्तत्र पूजयेत् ।
तस्य तौ वरदौ देवौ प्रयच्छेतेऽभिलाषितम् ॥ २४

स्थाणोर्वटस्य पूर्वेण हस्तिपादेश्वरः शिवः ।
तं दृष्ट्वा मुच्यते पापैरन्यजन्मनि संभ्रवी ॥ २५

तस्य दक्षिणतो लिङ्गं हरीतस्य ऋषेः स्थितम् ।
यत् प्रणम्य प्रयत्नेन सिद्धिं प्राप्नोति मानवः ॥ २६

नामके गण स्थित है । विधिपूर्वक उनकी पूजा करनेवाला मनुष्य सभी प्रकारके पापोंसे छूट जाता है । उनकी दक्षिण दिशामें 'रुद्रकरतीर्थ' है ॥ ११—१४ ॥

जिसने उस (रुद्रकरतीर्थ)-में स्नान कर लिया मानो उसने सभी तीर्थोंमें स्नान कर लिया उसकी उत्तर दिशाकी ओर माहात्मा खगने गोकर्ण नामक प्रसिद्ध महालिङ्ग स्थापित किया है । आषाढमासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिमें जो गोकर्णकी अर्चना करता है उसके पुण्यफलको सुनो । यदि किसीने अपनी इच्छा या अनिच्छासे भी पापसंघस्य कर लिया है तो वह भगवान् रुद्रकरकी पूजा करके पवित्र हो जाता है और वह संक्षिप्त पापसे छूट जाता है । जो अष्टमी तिथिमें शिवका पूजन करता है उसे कौमार-अवस्था (जन्मसे १६ वर्षकी अवस्था)-में ब्रह्मचर्य-पालनसे जो फल प्राप्त होता है वह सम्पूर्ण पुण्य फल उसे प्राप्त होता है ॥ १५ १८ ॥

यदि मनुष्य उत्तम सौन्दर्य, सौभाग्य या धन-सम्पत्ति चाहता है तो (उसे कुमारेभ्यः की आराधना करनी चाहिये क्योंकि) कुमारेभ्यःके माहात्म्यसे उसे निस्सन्देह उन सबकी सिद्धि प्राप्त होती है । उन (कुमारेभ्यः)-के उत्तर भागमें विभीषणने त्रिव-लिङ्गको स्थापित कर उसकी पूजा की, जिससे वे अजर और अमर हो गये आषाढ महोत्सवके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिमें उपवास रहकर उसकी पूजा करनेवाला मनुष्य देवत्व प्राप्त कर लेता है । द्विजोत्तम खरेने वहाँपर लिङ्गकी पूजा की थी उस लिङ्गकी विधिपूर्वक पूजा करनेवालेकी सभी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं ॥ १९—२२ ॥

दूषण एवं त्रिशिरने भी वहाँ महेश्वरकी पूजा की और वे प्रसन्न हो गये । उन दोनोंने अभिलाषित मनोरथ प्राप्त कर लिये चैत्र महोत्सवके शुक्लपक्षमें जो मनुष्य वहाँ पूजन करता है उसकी समस्त इच्छाएँ वे दोनों देव पूरी कर देते हैं 'हस्तिपादेश्वर' शिव स्वर्णगुलफकी पूजे दिशामें हैं । उनका दर्शन करके मनुष्य अन्य जन्मोंमें बने पापोंसे छूट जाता है । उसके दक्षिणमें हरीत नामके ऋषिद्वारा स्थापित किया हुआ लिङ्ग है, जिसकी विधि-पूर्वक प्रणाम करनेसे (ही) मनुष्य सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥ २३—२६ ॥

तस्य दक्षिणपार्श्वे तु व्यापीतस्य महात्मनः ।
लिङ्गं त्रैलोक्यविस्मयार्तं सर्वपापहरं शिवम् ॥ २७

कङ्कालरूपिणा चापि रुद्रेण सुमहात्मना ।
प्रतिष्ठितं महालिङ्गं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २८

भुक्तिदं मुक्तिदं प्रोक्तं सर्वकिल्बिषनाशनम् ।
लिङ्गस्य दर्शनाच्चैव अग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ २९

तस्य पश्चिमदिग्भागे लिङ्गं सिद्धप्रतिष्ठितम् ।
सिद्धेश्वरं तु विख्यातं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ३०

तस्य दक्षिणदिग्भागे भृक्कण्ठेन महात्मना ।
तत्र प्रतिष्ठितं लिङ्गं दर्शनात् सिद्धिदायकम् ॥ ३१

तस्य पूर्वं च दिग्भागे आदित्येन महात्मना ।
प्रतिष्ठितं लिङ्गकरं सर्वकिल्बिषनाशनम् ॥ ३२

चित्राङ्गदस्तु गन्धर्वी रम्भा चाप्सरसां वरः ।
परस्परं सानुरागी स्थाणुदर्शनकाङ्क्षिणी ॥ ३३

दृष्ट्वा स्थाणुं पूजयित्वा सानुरागी परस्परम् ।
आराध्य वरदं देवं प्रतिष्ठाप्य महेश्वरम् ॥ ३४

चित्राङ्गदेश्वरं दृष्ट्वा तथा रम्भेश्वरं द्विजः ।
सुभगो दर्शनीयश्च कुले जन्म समाप्नुयात् ॥ ३५

तस्य दक्षिणतो लिङ्गं यज्ञिणा स्थापितं पुरा ।
तस्य प्रसादात् प्राप्नोति मनसा क्षिप्तं फलम् ॥ ३६

पराशरेश मुनिना तत्रैवाराध्य शंकरम् ।
प्राप्तं कवित्वं परमं दर्शनाच्छंकरस्य च ॥ ३७

वेदव्यासेन मुनिना आराध्य परमेश्वरम् ।
सर्वज्ञत्वं ब्रह्मज्ञानं प्राप्तं देवप्रसादतः ॥ ३८

स्थणुः पश्चिमदिग्भागे वायुना जगदायुना ।
प्रतिष्ठितं महालिङ्गं दर्शनात् पापनाशनम् ॥ ३९

तस्यापि दक्षिणे भागे लिङ्गं हिमवतेश्वरम् ।
प्रतिष्ठितं पुण्यकृतं दर्शनात् सिद्धिकारकम् ॥ ४०

उसके निकट दक्षिण भागमें महात्मा व्यापीतके द्वारा संस्थापित सभी पार्श्वोंका हरण करनेवाला कल्याणकर्ता लिङ्ग है जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। कंकालके रूपमें रहनेवाले महात्मा भगवान् रुद्रने भी समस्त पार्श्वोंका नाश करनेवाला महालिङ्ग प्रतिष्ठित किया है। महात्मा रुद्रद्वारा प्रतिष्ठापित वह लिङ्ग भुक्ति एवं मुक्तिका देनेवाला तथा सभी पार्श्वोंको नष्ट करनेवाला है। उस लिङ्गकर दर्शन करनेसे ही अग्निष्टोम-यज्ञके फलकी प्राप्ति हो जाती है। उसकी पश्चिम दिशामें सिद्धोद्गारा प्रतिष्ठित सिद्धेश्वर नामसे विख्यात लिङ्ग है वह सर्वसिद्धिप्रदाता है ॥ २७—३० ॥

उसकी दक्षिण दिशामें महात्म भृक्कण्ठने (शिव) लिङ्गकी स्थापना की है। उस लिङ्गके दर्शन करनेसे सिद्धि प्राप्त होती है। उसके पूर्व भागमें महात्मा आदित्यने सम्पूर्ण पार्श्वोंको नष्ट करनेवाले श्रेष्ठ लिङ्गको प्रतिष्ठापित किया है। अप्सराओंमें श्रेष्ठ रम्भा और चित्राङ्गद नामके गन्धर्व—इन दोनोंने परस्परमें प्रेमपूर्वक स्थाणु भगवान् के दर्शन किये, फिर उनका पूजन किया और तब वरदात्री देवकी स्थापनाकर आराधना की। (उनसे स्थापित लिङ्गोंका नाम हुआ चित्राङ्गद और रम्भेश्वर) ॥ ३१—३४ ॥

द्विज! चित्राङ्गदेश्वर एवं रम्भेश्वरका दर्शन करके मनुष्य सुन्दर और दर्शनीय (रूपवाला) हो जाता है एवं सत्कुलमें जन्म ग्रहण करता है। उसके दक्षिण भागमें इन्द्रने प्राचीन कालमें लिङ्गकी स्थापना की थी इन्द्रद्वारा प्रतिष्ठापित लिङ्गके प्रसादसे मनुष्य मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर लेता है। उसी प्रकार पराशर मुनिने शंकरकी आराधना की और भगवान् शंकरके दर्शनसे सत्कृष्ट कवित्वको प्राप्त किया। वेदव्यास मुनिने परमेश्वर (शंकर) की आराधना की और उनकी कृपासे सर्वज्ञता तथा ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया ॥ ३५—३८ ॥

स्थाणुके पश्चिम भागमें जगत्के प्राण-स्वरूप (जगत्प्राण) वायुने महालिङ्गको प्रतिष्ठित किया है, जो दर्शनमग्नसे ही पापका विनाश कर देता है। उसके भी दक्षिण भागमें हिमवतेश्वर लिङ्ग प्रतिष्ठित है। पुण्यात्माओंने उसे प्रतिष्ठित किया है उसका दर्शन सिद्धि देनेवाला है।

तस्यापि पश्चिमे भागे कार्तवीर्येण स्थापितम् ।
लिङ्गं पापहरं सद्यो दर्शनात् पुण्यमाप्नुयात् ॥ ४१

तस्याप्युत्तरदिग्भागे सुपाशे स्थापितं पुनः ।
आराध्य हनुमांश्चाप सिद्धिं देवप्रसादतः ॥ ४२
तस्यैव पूर्वदिग्भागे विष्णुना प्रभविष्णुना ।
आराध्य वरदं देवं चक्रं लब्धं सुदर्शनम् ॥ ४३

तस्यापि पूर्वदिग्भागे मित्रेण वरुणेन च ।
प्रतिष्ठितौ लिङ्गवतौ सर्वकामप्रदायकौ ॥ ४४

एतानि मुनिभिः साध्वैरादित्यैर्वसुभिस्तथा ।
सेवितानि प्रयत्नेन सर्वपापहराणि वै ॥ ४५

स्वर्णलिङ्गस्य पश्चात् शुद्धिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
प्रतिष्ठितानि लिङ्गरानि येषां संख्या न विद्यते ॥ ४६

तत्र ह्युत्तरतस्तस्य यावदोषवती नदी ।
सहस्रमेकं लिङ्गानां देवपश्चिमतः स्थितम् ॥ ४७
तस्यापि पूर्वदिग्भागे बालखिल्यैर्महात्मभिः ।
प्रतिष्ठिता रुद्रकोटिर्यावत्संनिहितं सरः ॥ ४८

दक्षिणेन तु देवस्य गन्धर्वैश्चकिन्नैः ।
प्रतिष्ठितानि लिङ्गानि येषां संख्या न विद्यते ॥ ४९

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च लिङ्गानां वायुस्त्वती ।
असंख्यातः सहस्ररूपि ये रुद्रः स्थाणुमाश्रितः ॥ ५०

एतज्ज्ञात्वा श्रद्धाधानः स्थाणुलिङ्गं समाश्रयेत् ।
यस्य प्रसादात् प्राप्नोति मनसा चिन्तितं फलम् ॥ ५१
अकामो वा सकामो वा प्रविष्टः स्थाणुमन्दिरम् ।
विमुक्तः पातकैर्घोरैः प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ५२

चैत्रमासे त्रयोदश्यां दिव्यनक्षत्रयोगतः ।
शुक्रार्कचन्द्रसंयोगे दिने पुण्यतमे शुभे ॥ ५३

उसके पश्चिम भागमें कार्तवीर्येण (एक) लिङ्गकी स्थापना की है। (यह लिङ्ग) पापका तत्काल हरण करनेवाला है। (इसके) दर्शन करनेसे पुण्यकी प्राप्ति होती है। उसके भी उत्तरकी ओर मिलकुल निकट स्थानमें (एक) लिङ्गकी स्थापना हुई है; हनुमान्ने उस लिङ्गकी श्रद्धाधना कर संकरकी कृपासे सिद्धि प्राप्त की ॥ ४१—४२ ॥

उसके भी पूर्वी भागमें मित्रवशाली विष्णुने वरदाता महादेवकी आराधना कर सुदर्शनचक्र प्राप्त किया था। उसके भी पूर्वी भागमें मित्र एवं वरुणने सभी अभिलाषाओंकी पूर्ति करनेवाले दो लिङ्गोंकी स्थापना की है। ये दोनों लिङ्ग सभी प्रकारके पापोंका विनाश करनेवाले हैं। मुनियों, साध्यों, आदित्यों एवं वसुओंद्वारा इन लिङ्गोंकी वरसाहपूर्वक सेवा की गयी है। तत्त्वदर्शी ऋषियोंने स्वर्णलिङ्गके पीछेकी ओर जिन लिङ्गोंको प्रतिष्ठित किया है, उनकी संख्या नहीं गिनी जा सकती। उसी प्रकार स्वर्णलिङ्गके उत्तर ओषधती नदीतक पश्चिमकी ओर महादेवके एक हजार लिङ्ग स्थित हैं ॥ ४३—४७ ॥

उस (नदी) के पूर्वी भागमें महात्म बालखिल्योंने संनिहित सरोवरतक करोड़ों रुद्रोंकी स्थापना की है। गन्धर्वों, यक्षों एवं किन्नरोंने दक्षिण दिशाकी ओर भगवान् संकरके असंख्य लिङ्गोंकी स्थापना की है। वायुका कहना है कि साढ़े तीन करोड़ लिङ्गोंकी स्थापना हुई है। स्थाणुतीर्थमें अनन्त सहस्र रुद्र-लिङ्ग विद्यमान हैं। मनुष्यको चाहिये कि ब्रह्माके साथ स्थाणु-लिङ्गका आश्रय ले। इससे स्थाणु-लिङ्गकी दयासे मनोवाञ्छित फल मिलता है ॥ ४८—५१ ॥

जो मनुष्य निष्काम या सकामभावसे स्थाणु-मन्दिरमें प्रवेश करता है, वह चोर पापोंसे छुटकारा पाकर परम पदको प्राप्त करता है। जब चैत्र महीनेकी त्रयोदशी तिथिमें दिव्य नक्षत्रोंका योग हुआ और उसमें शुक्र, सूर्य, चन्द्रका (शुभ) संयोग हुआ तब

प्रतिष्ठितं स्थाणुलिङ्गं ब्रह्मणा लोकधारिणा ।
श्रद्धिभिर्देवसंघैश्च पूजितं शाश्वतीः समाः ॥ ५४ ॥

तस्मिन् काले निराहारा मानवाः अन्धव्यन्विताः ।
पूजयन्ति शिवं ये वै ते यान्ति परमं पदम् ॥ ५५ ॥

तदास्वप्नमिदं ज्ञात्वा ये कुर्वन्ति प्रदक्षिणम् ।
प्रदक्षिणीकृता तैस्तु सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥ ५६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवामनपुराणमें छियालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४६ ॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

स्थाणुतीर्थके सन्दर्भमें राजा वेनका चरित्र, पृथु-जन्म और उनका अभिषेक, वेनके उद्धारके लिये पृथुका प्रयत्न और वेनकी शिव-स्तुति

मार्कण्डेय उवाच

स्थाणुतीर्थप्रभावं तु श्रोतुमिच्छाम्यहं मुने ।
केन सिद्धिरथ प्राप्ता सर्वपापभयापहा ॥ १ ॥

सप्तकुमार उवाच

शृणु सर्वमशेषेण स्थाणुमाहात्म्यमुत्तमम् ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तो भवति मानवः ॥ २ ॥
एकार्णवे जगत्पस्मिन् गृहे स्थावरजङ्गमे ।
विष्णोर्नाभिसमुद्भूतं पद्ममव्यक्तजन्मनः ।
तस्मिन् ब्रह्मा समुद्भूतः सर्वलोकपितामहः ॥ ३ ॥
तस्मान्मरीचिरभवन्मरीचेः कश्यपः सुतः ।
कश्यपादभवद् भास्वास्तस्मान्मनुरजायत ॥ ४ ॥
मनोस्तु क्षुवतः पुत्र उत्पन्ने मुखसंभवः ।
पृथिव्यां चतुरन्तायां राजासीद् धर्मरक्षिता ॥ ५ ॥
तस्य पत्नी बभूवाथ भया नाम भयावहा ।
मृत्योः सकाशादुत्पन्ना कालस्य दुहिता तदा ॥ ६ ॥
तस्यां समभवद् वेनो दुरात्मा केयनिन्दकः ।
स दृष्ट्वा पुत्रवदनं क्रुद्धो राजा धनं ययौ ॥ ७ ॥

अतीव पवित्र शुभ दिनमें जगत्का धारण और पोषण करनेवाले ब्रह्मने स्थाणु-लिङ्गको प्रतिष्ठापित किया। श्रद्धियों एवं देवताओंके द्वारा अनन्त वर्षोंतक अर्थात् सदैव इसकी अर्चना होती रहेगी। जो मनुष्य उस समय निराहार रहते हुए व्रत करके ब्रह्मसे शिवकी पूजा करते हैं, वे परम पदको प्राप्त करते हैं। जिन मनुष्योंने स्थाणु-लिङ्गको शिवसे आरूढ़ (निषिष्ट) मानकर उसको प्रदक्षिणा की, उन्होंने मानो सात द्वीपवासी पृथिवीकी प्रदक्षिणा कर ली ॥ ५२-५६ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—मुने! जब मैं आपसे स्थाणुतीर्थके प्रभावको सुनना चाहता हूँ। इस तीर्थमें किसने सभी प्रकारके पापों एवं भयोंको दूर करनेवाली सिद्धि प्राप्त की? ॥ १ ॥

सप्तकुमारने कहा (उत्तर दिया)—मार्कण्डेय! तुम स्थाणुके उत्तम माहात्म्यको पूर्णतया सुनो, जिसको सुनकर मनुष्य सभी पापोंसे बिल्कुल छूट जाता है। इस अघर-सघर संसारके प्रलयकालीन समुद्रमें विलीन हो जानेपर अव्यक्तजन्मवाले विष्णुकी नाभिसे एक कमल उत्पन्न हुआ। उससे समस्त लोकोंके पितामह ब्रह्म उत्पन्न हुए। उनसे मरीचि हुए और मरीचिके पुत्र हुए कश्यप। कश्यपसे सूर्य उत्पन्न हुए एवं उनसे उत्पन्न हुए मनु। मनुके छोकनेपर उनके गृहसे एक पुत्रको उत्पत्ति हुई। वह सारी पृथ्वीके धर्मको रक्ष करनेवाला राजा हुआ। उस राजाकी भया नामकी पत्नी हुई, जो (सचमुच) भय उत्पन्न करनेवाली थी। वह कालकी कन्या थी और मृत्युके गर्भसे उत्पन्न हुई थी ॥ २-६ ॥

(फिर तो) उससे वेनने जन्म लिया जो दुष्टात्मक था तथा वेदोंकी निन्दा करनेवाला था। उस पुत्रके मुखको देखकर राजा क्रुद्ध हो गया और वनमें चला गया।

तत्र कृत्वा तपो घोरं धर्मेणावृत्य रोदसी ।
प्राप्तवान् ब्रह्मसदनं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ८

वेनो राजा समभवत् समस्ते क्षितिमण्डले ।
स मातामहदोषेण तेन कालात्मजात्मजः ॥ ९

घोषयामास नगरे दुरात्मा वेदनिन्दकः ।
न दातव्यं न यष्टव्यं न होतव्यं कदाचन ॥ १०

अहमेकोऽत्र वै जन्माः पूज्योऽहं भवतां सदा ।
मया हि पालिता यूयं निवसथ्यं यथासुखम् ॥ ११

तन्मनोऽन्यो न देवोऽस्ति युष्माकं चः परायणम् ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनमुषयः सर्व एव ते ॥ १२

परस्परं समागम्य राजानं वाक्यमब्रुवन् ।
श्रुतिः प्रमाणं धर्मस्य ततो यज्ञः प्रतिष्ठितः ॥ १३

यज्ञैर्विना नो प्रीयन्ते देवाः स्वर्गनिवासिनः ।
अप्रीता न प्रयच्छन्ति खट्विं सस्यस्य वृद्धये ॥ १४

तस्मात् यज्ञैश्च देवैश्च धार्यते सचराचरम् ।
एतच्छ्रुत्वा क्रोधदृष्टिर्वैनः प्राह पुनः पुनः ॥ १५

न यष्टव्यं न दातव्यमित्याह क्रोधमूर्च्छितः ।
ततः क्रोधसमाविष्टा ऋषयः सर्व एव ते ॥ १६

निजजुर्मन्त्रपूतैस्ते कुशैर्वज्रसमन्वितैः ।
ततस्त्वराराजके लोके तपसा संवृते तदा ॥ १७

दस्युभिः पीड्यमानास्तन् ऋषींस्ते शरणं ययुः ।
ततस्ते ऋषयः सर्वे यमन्धुस्तस्य वै करम् ॥ १८

सव्यं तस्मात् समुत्तस्थी पुरुषो ह्रस्वदर्शनः ।
तमचुर्ऋषयः सर्वे निषीदतु भवानिति ॥ १९

उसने वहाँ घोर तपस्या की तथा पृथ्वी एवं आकाशके बीचके स्थानको धर्मसे व्यतप्तकर नहीं लौटनेवाले स्थान उस ब्रह्मलोकको प्राप्त कर लिया। (और इधर) वेन सम्पूर्ण भूमण्डलका राजा हो गया। अपने माताके उस दोषके कारण कालकन्या भयाके उस दुष्टात्मा वेद-निन्दक पुत्रने नगरमें यह घोषणा करा दी कि कभी भी (कोई) दान न दे, यज्ञ न करे एवं हवन न करे—(दान, यज्ञ, हवन करना अपराध माना जायेगा) ॥ ७—१० ॥

इस संसारमें एकमात्र मैं ही आप लोगोंका वन्दनीय और पूजनीय हूँ। आप लोग मुझसे रक्षित रहकर आनन्दपूर्वक निवास करें। मुझसे भिन्न कोई दूसरा देवता नहीं है, जो आप लोगोंका उत्तम आश्रय हो सके। वेनके इस वचनको सुननेके पश्चात् सभी ऋषियोंने आपसमें मिलकर (निश्चय किया और) राजासे यह वचन कहा—राजन्! धर्मके विषयमें वेद (-शास्त्र) ही प्रमाण हैं। उन्हींसे यज्ञ विहित है, प्रतिष्ठित हैं—विष्णुरूपमें मान्य हैं। (उन) यज्ञोंके किये बिना स्वर्गमें रहनेवाले देवता सन्तुष्ट नहीं होते और बिना सन्तुष्ट हुए वे अन्नकी वृद्धिके लिये जलकी वृष्टि नहीं करते। अतः विष्णुमय यज्ञों और देवताओंसे ही 'चर-अचर समस्त संसारका धारण और पोषण होता है। यह सुनकर वेन क्रोधसे जाँखें लालकर बार-बार कहने लगा— ॥ १२—१५ ॥

क्रोधसे झल्लाकर (तिलमिलाकर) उसने 'न यज्ञ करना होगा और न दान देना होगा'—ऐसा कहा। उसके बाद ऋषियोंने भी क्रुद्ध होकर मन्त्रद्वारा वज्रमय कुशोंसे उसे मार डाला। उसके (मर जानेके) बाद (राजासे रक्षित) संसारमें अराजकता छा गयी, जिससे सर्वत्र अशान्ति फैल गयी। चोर्ते-ठाकुओंने लोकजनोंको पीड़ित कर डाला। दस्युदलोंसे व्रत जनवर्ग उन ऋषियोंकी शरणमें गया, जिस ऋषियोंने उस वेनको मार डाला था। उसके बाद उन सभी ऋषियोंने उसके चारों हाथको पकित किया। उससे एक पुरुष निकला जो छोटा बौना दीख रहा था। सभी ऋषियोंने उससे कहा—'निषीदतु भवान्' अर्थात् आप बैठें ॥ १६—१९ ॥

तस्मान्निषादा उत्पन्ना वेनकल्मषसंभवाः ।
ततस्ते ऋषयः सर्वे ममन्धुर्दक्षिणं करम् ॥ २०

मध्यमाने करे तस्मिन् उत्पन्नः पुरुषोऽपरः ।
बृहत्सालप्रतीकाशो दिव्यलक्षणलक्षितः ॥ २१

धनुर्बाणाङ्कितकरश्चक्रध्वजसमन्वितः ।
तमुत्पन्नं तदा दृष्ट्वा सर्वे देवाः सवासवाः ॥ २२

अभ्यर्चिञ्चन् पृथिव्यां तं राजानं भूमिपालकम् ।
ततः स रज्जयामास धर्मेण पृथिवीं तदा ॥ २३
पित्रोऽपरस्मिता तस्य तेन सा परिपालिता ।
तत्र राजेतिशब्दोऽस्य पृथिव्या रज्ज्वाद्भूत् ॥ २४

स राज्यं प्राप्य तेभ्यस्तु चिन्तयामास पार्थिवः ।
पिता मम अर्धमिष्टो यज्ञव्युच्चित्तिकारकः ॥ २५

कथं तस्य क्रिया कार्या परलोकसुखवहा ।
इत्येवं चिन्तयानस्य नारदोऽभ्याजगाम ह ॥ २६

तस्मै स चासनं दत्त्वा प्रणिपत्य च पृष्टवान् ।
भगवन् सर्वलोकस्य जानासि त्वं शुभाशुभम् ॥ २७

पिता मम दुराधारो देवब्राह्मणनिन्दकः ।
स्वकर्मरहितो विप्र परलोकमवाप्तवान् ॥ २८
ततोऽब्रवीन्नारदस्तं ज्ञात्वा दिव्येन चक्षुषा ।
म्लेच्छमध्ये समुत्पन्नं क्षयकुट्टसमन्वितम् ॥ २९

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य नारदस्य महात्मनः ।
चिन्तयामास दुःस्मार्तः कथं कार्यं मया भवेत् ॥ ३०

उस बायें हाथके मथनेसे निकले हुए बीने पुरुषसे ऋषियोंद्वारा 'निषीदतु भवन्' कहनेके कारण 'निषीदतु' के आधारपर निषादोंकी उत्पत्ति हुई जो वेनकी प्राप्ति थीं। इसके बाद उस बीने पुरुषको राज्यकार्यसंचालनमें अनुपयुक्त समझकर उन सभी ऋषियोंने (पुनः मेरे हुए) वेनके दायें हाथको मथा। उस हाथके मथे जानेपर बड़े शालवृक्षकी भाँति और दिव्य लक्षणोंसे युक्त एक दूसरा पुरुष निकला। उसके हाथमें धनुष, बाण, चक्र और ध्वजाकी रेखाएँ थीं। उस समय उसे उत्पन्न हुआ देखकर इन्द्रके सहित सभी देवताओंने उसको पृथ्वीमें भूलोकका पालन करनेवाले राजाके रूपमें (राजपदपर) अभिषिक्त कर दिया। उसके बाद उसने पृथिवीका धर्मपूर्वक रक्षण किया—प्रजाको प्रसन्न रखा ॥ २०—२३ ॥

उसके पिताने जिस जनताको अपने कुकृत्योंसे अपराधवासी बना दिया था उसी जनताको उसने भलीभाँति पालित किया। सारी पृथ्वीका रक्षण करनेके कारण ही उसे यथार्थरूपमें 'राजा' शब्दसे सम्बोधित किया जाने लगा। वह पृथ्वीपति राजा उनसे राज्य प्राप्त कर चिन्तन करने लगा कि मेरे पिता अधर्मी, पाप-मति और बलका विशेषतया उच्छेद करनेवाले थे। इसलिये कौन-सी क्रिया की जाय जो उन्हें परलोकमें सुख देनेवाली हो। (उसी समय) इस प्रकार चिन्तन करते हुए उसके पास नारदजी आ गये। उसने उन नारदजीको बैठनेके लिये आसन दिया और साष्टाङ्ग प्रणाम कर पूछ—भगवन्! आप सारे संसारके प्राणियोंके शुभ और अशुभको जानते हैं; (देखें,) मेरे पिता देवताओं और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाले दुराचारी थे। विप्रदेव! वे अपने कर्तव्य कर्मसे रहित थे और अब वे परलोक चले गये हैं (उनकी गतिके लिये मुझे कौन-सी क्रिया करनी चाहिये?) ॥ २४—२८ ॥

उसके बाद नारदभगवान् अपनी दिव्य दृष्टिसे देखकर उससे बोले—राजन्! तुम्हारे पिता म्लेच्छोंके बीचमें जन्मे हैं। उन्हें खयरोग और कुष्ठरोग हो गया है। महत्परा नारदके ऐसे वचनको सुनकर वह राजा दुःखी हो गया और विचारने लगा कि अब मुझे क्या करना चाहिये।

इत्येवं चिन्तयानस्य मतिर्जाता महात्मनः ।
पुत्रः स कथ्यते लोके यः पितृस्त्रायते भयात् ॥ ३१

एवं संविन्य स तदा नारदं पृष्ठवान् मुनिम् ।
तारणं गत्पितुस्तस्य मया कार्यं कथं मुने ॥ ३२

नारद उवाच

गच्छ त्वं तस्य तं देहं तीर्थेषु कुरु निर्मलम् ।
यत्र स्थाणोर्महतीर्थं सरः संनिहितं प्रति ॥ ३३
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नारदस्य महात्मनः ।
सचिर्वै राज्यमाधाय राजा स तु जगाम ह ॥ ३४
स गत्वा चोत्तरां भूमिं म्लेच्छमध्ये ददर्श ह ।
कुष्ठरोगेण महता क्षयेण च समन्वितम् ॥ ३५
ततः शोकेन महता संतप्तो वाक्यमब्रवीत् ।
हे म्लेच्छा नीमि पुरुषं स्वगुहं च नयाम्यहम् ॥ ३६
तत्राहुमेनं निरुजं करिष्ये यदि मन्यथा ।
तथेति सर्वे ते म्लेच्छाः पुरुषं तं दयापरम् ॥ ३७

ऊचुः प्रणतसर्वाङ्गा यश्चा जानासि तत्कुरु ।
तत आनीय पुरुषाञ्छिविकावाहनोचितान् ॥ ३८

दत्त्वा शुल्कं च द्विगुणं सुखेन नयत द्विजम् ।
ततः श्रुत्वा तु वचनं तस्य राज्ञो दयावतः ॥ ३९

गृहीत्वा शिविकां क्षिप्रं कुरुक्षेत्रेण यान्ति ते ।
तत्र नीत्वा स्थाणुतीर्थं अवतार्य च ते गताः ॥ ४०

ततः स राजा मध्याह्ने तं श्रापयति वै तदा ।
ततो वायुरन्तरिक्षे हृदं वचनमब्रवीत् ॥ ४१

मा तात साहसं कार्षीस्तीर्थे रक्ष प्रयत्नतः ।
अथ पापेन घरेण अतीव परिवेष्टितः ॥ ४२

वेदनिन्दा महत्पापं यस्यान्तो नैव लभ्यते ।
सोऽयं स्वानामहतीर्थं नाशयिष्यति तत्क्षणान् ॥ ४३

एतद् वयोर्वचः श्रुत्वा दुःखेन महताऽन्वितः ।
उवाच शोकसंतप्तस्तस्य दुःखेन दुःखितः ।
एष घरेण पापेन अतीव परिवेष्टितः ॥ ४४

इस प्रकार सोचते-विचारते उस महात्मा राजाको बुद्धि उत्पन्न हुई कि संसारमें पुत्र उसको कहते हैं जो पितरोंको नरकके भयसे तार दे। इस प्रकार विचार करके उस राजाने नारदमुनिसे पूछा—मुने! मैं उस दिवंगत पिताके उद्धारके लिये मुझे क्या करना चाहिये? ॥ २९—३२ ॥

नारदजीने कहा—तुम स्थाणु भगवान्के महान् तीर्थस्वरूप संनिहित नामके सरोवरकी ओर जाओ एवं उसकी उस देहको तीर्थमें शुद्ध करो। वह राजा महत्त्वा नारदजीकी यह बात सुन करके मन्त्रोंके ऊपर राज्य-भार सौंपकर वहाँ चला गया। उसने उत्तर दिशामें जाकर म्लेच्छोंके बीच महान् कुष्ठ और क्षयरोगसे पीड़ित अपने पिताको देखा। तब महान् शोकसे सन्तप्त होकर उसने कहा कि म्लेच्छो! मैं इस पुरुषको प्रणाम करता हूँ और इसे अपने घर ले जाता हूँ ॥ ३३—३६ ॥

यदि तुम लोग उचित समझो तो मैं इस पुरुषको वहाँ ले जाकर रोगसे मुक्त करूँ। वे सभी म्लेच्छ उस दयालु पुरुषसे सज्जङ्ग प्रणम्य करते हुए बोले—ठीक है; जैसा समझो, वैसा करो। उसके बाद उसने पालकी ढोनेवाले योग्य पुरुषोंको बुलाकर और उन्हें डगुना पारिश्रमिक देकर कहा—इस द्विजको सुख-पूर्वक ले चलो। उस दयालु राजाकी बात सुनकर वे लोग पालकी उठाकर शीघ्रतासे कुरुक्षेत्र होते हुए स्थाणुतीर्थमें ले जाकर और (उसे) उतारकर (स्वस्थान) बसे गये ॥ ३७—४० ॥

स्थाणु तीर्थमें पहुँचनेपर जब वह राजा म्लेच्छोंके बीच उत्पन्न हुआ एवं अथ और कुष्ठरोगसे आक्रान्त अपने पिताकी देहको मध्याह्न कालमें स्नान कराने लगा तो अन्तरिक्षमें वायुरूपसे देवताओंने यह वचन कहा कि तात! इस प्रकारका साहस मत करो। तीर्थकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा करो। यह अत्यन्त घोर पाप कर चुका है, (इसका) रोम-रोम पापसे भरा है, घिरा है। वेदकी निन्दा करना महान् पाप है, जिसका अन्त नहीं होता। अतएव वह जान करके इस महान् तीर्थको तत्काल नष्ट कर देगा। वायुरूपी देवताओंके इस वचनको सुनकर दुःखी एवं शोकसे सन्तप्त हुए राजाने कहा—देवताओ! यह घोर पापसे अत्यन्त परिवेष्टित है ॥ ४१—४४ ॥